जमनालाल बजाजके साथ दिल्लीमें

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७२

(१६ अप्रैल – ११ सितम्बर, १९४०)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमे १६ अप्रैलसे ११ सितम्बर, १९४० तककी सामग्री दी गई है। लगभग इन्ही दिनो नाजी सेनाने अप्रतिहत वेगसे बढते हुए उत्तरी तथा पश्चिमी यूरोपके अनेक देशो — फ्रान्स, डेनमार्क, नॉर्वे, नीदरलैण्ड्स, बेल्जियम, लुक्जैम्बर्ग — पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, और अब निरन्तर ब्रिटिश द्वीप-समूहपर बमबारी चल रही थी, जिसमे जीवन और सम्पत्तिकी भीषण क्षति हो रही थी। जिन देशोकी स्वतन्त्रता छिन गई थी उनके प्रति भारतमे सहानुभूतिकी प्रबल लहर उठी। इसके पूर्व भारतीय नेता स्पेन तथा चीनके गणतन्त्रोके साथ अपने समैक्यकी घोषणा कर चुके थे। और अब तो, जैसा कि गाधीजी ने कहा, "शायद ही कोई भारतीय" था जो "अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठनेवाले नॉर्वे और डेनमार्कके प्रति वैसी ही सहानुभूति"से प्रेरित नही था "जैसी सहानुभूति वह चीन और स्पेनके प्रति रखता था" (पृ० ३४)।

किन्तु पाश्चात्य लोकतन्त्रोके प्रति इस व्यापक सहानुभूतिको कार्य-रूप ग्रहण करने का अवसर नही दिया गया, यद्यपि यूरोपमे नाजी-विजयसे चिन्तित काग्रेसने इस अवधिमे ब्रिटिश सरकारके साथ सहयोगका आधार स्थापित करने का एक प्रयत्न अवश्य किया। युद्धके आरम्भमे उसने भारतकी भावी स्थितिके सम्बन्धमे ब्रिटेनसे जिन आश्वासनोकी माँग की थी उनके न मिलने पर मार्च महीनेमें अपने रामगढ अधिवेशनमें उसने यह घोषणा की थी कि ज्यो ही गाधीजी इस विषयमे आश्वस्त हो जायेंगे कि काग्रेस सगठन सविनय अवज्ञाके लिए हर तरहसे तैयार है, वह सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देगी (खण्ड ७१, परिशिष्ट ६)। अब अपने उस निर्णयको बदल कर — यद्यपि इस परिवर्तनके फलस्वरूप गाधीजी और काग्रेसके रास्ते अलग हो गये — उसने प्रस्ताव किया कि यदि ब्रिटेन "भारतकी पूर्ण स्वाधीनताकी स्वीकृतिकी सुस्पष्ट घोषणा" कर दे और "इसे तुरन्त लागू किये जाने के कदमके रूपमे केन्द्रमे एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकारका गठन" कर दे तो "काग्रेस देशकी प्रतिरक्षाके प्रभावकारी सगठनके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोमे अपना पूरा जोर लगा" देगी (परिशिष्ट ४)। इसके उत्तरमे वाइसरायने ८ अगस्तको जो वक्तव्य (परिशिष्ट ७) दिया उसमें पहलेकी सरकारी घोषणाओकी ही तरह "भारतके साथ ग्रेट ब्रिटेनके दीर्घ सम्बन्धोके कारण उसके [सरकारके] सिर" आये कर्त्तव्योंके उचित "निर्वाहकी जिम्मेदारी" की दुहाई देते हुए "भारतमे शान्ति स्थापित रखने और उसकी भलाई करने की अपनी जिम्मेदारियोको किसी भी ऐसी सरकारको सौपने" से इनकार कर दिया गया "जिसकी सत्ताको भारतीय राष्ट्रीय जीवनके बडे और शक्तिशाली तत्त्व प्रत्यक्ष रूपसे अस्वीकार करते हो" (पृ० ५२६)। साथ ही सरकारका रवैया देखकर यह सन्देह होने लगा कि काग्रेसके "सयमका लाभ उठाकर" वह उसे कुचल

देना चाहती है। गाधीजी को लगा और उन्होंने सार्वजनिक रूपसे ऐसा कहा भी कि ऐसी अवस्थामे मुझे "किसी-न-किसी प्रकारके प्रभावकारी सत्याग्रहका सहारा" लेना पड सकता है (पृ० ३८१), क्योकि, जैसा कि उन्होंने वाइसरायको लिखा, "मुझे लोगोको यह कहने का मौका नही देना चाहिए कि एक झूठे नैतिक आग्रहके कारण मैंने काग्रेसको विना सघर्ष किये कुचल जाने दिया" (पृ० ४९६)।

वस्तुत. अन्य प्रसगोकी तरह इस प्रसगमे भी नैतिकताका विचार आरम्भसे ही गाधीजी का मार्गदर्शक सिद्धान्त रहा था। 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के प्रतिनिधिके साथ अपनी बातचीतके दौरान उन्होंने उसी प्रश्नको दुहराया जो ४ सितम्बर, १९३९ को वाइसरायसे मुलाकात करनेके बाद उन्होंने अपने-आपसे पूछा था · "यदि ब्रिटेन और फ्रान्स हार जाते है तो भारतके लिए स्वतन्त्रताका क्या मूल्य है?" उन्होंने मुलाकातीसे कहा कि "यदि ये शक्तियाँ हार जाती है तो यूरोप और विश्वके इतिहासकी क्या रूपरेखा होगी, अभी कोई नही कह सकता" (पृ० १२-१३)। और यद्यपि गाधीजी ने काग्रेसकी माँगका समर्थन किया और न केवल यह कहा कि "आजादीकी माँगमे प्रवृत्त रहना . . . काग्रेसका कर्त्तव्य है", बल्कि यह कहनेमे भी कोई सकोच नही किया कि "सत्य और अहिसाका सक्रिय रूपसे पालन" करना तथा "विना किसी अन्तराल-विरामके अपने पूर्ण स्वाधीनताके लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील" रहना मित्र-राष्ट्रोके "उद्देश्यकी प्राप्ति . . मे काग्रेसका योगदान" होगा, किन्तु साथ ही उन्होंने अपने आलोचकोको भी आश्वस्त किया कि "मै जान-बूझकर ब्रिटेनको परेशान करनेवाली कोई बात नही करूँगा" (पृ० ९४-९५)। अग्रेजोको परेशान करने की उनकी कोई इच्छा नही थी—"खासकर ऐसे समय जब उनके सामने जीवन-मरणका प्रश्न खडा" था (पृ० २३)। वे "इग्लैण्डका बुरा नही" चाहते थे। उसकी हारसे उन्हे बहुत दु ख होता (पृ० ३४)। जब राममनोहर लोहियाने "तत्काल सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की पैरवी की" तो उत्तरमे अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए गाधीजी ने लिखा कि "सीधी कार्रवाईकी दिशामे उठाये गये किसी भी कदमसे उसे [ब्रिटिश सरकारको] परेशानी अवश्य होगी।" उनका विचार था कि "जबतक मित्र-राष्ट्रोकी भूमिपर चल रहा घमासान युद्ध शान्त और भविष्य अधिक स्पष्ट नही हो जाता तबतक हमे प्रतीक्षा करनी चाहिए। ब्रिटेनकी बर्बादीकी बुनियादपर हम अपनी आजादीका महल नही खडा करना चाहते। यह अहिंसाकी रीति नही है" (पृ० ११९)। शायद इसीलिए उन्होंने लॉर्ड जेटलैण्डके भाषणपर सार्वजनिक रूपसे कुछ कहने का लोभ सवरण किया (पृ० २४)। साथ ही, लगता है, गाधीजी के मनमे कही यह आशा भी थी कि ब्रिटिश राजनेताओको कदाचित् सुबुद्धि आ जाये। सच तो यह है कि नये भारत-मन्त्री एल० एस० एमरीका प्रथम सन्देश उन्हें "अच्छा" भी लगा (पृ० २०८)। किन्तु वे यह भी देख रहे थे कि सघर्ष शायद अनिवार्य ही हो जाये। उस स्थितिके निराकरणके लिए वे "असहयोगके प्रयोगकी ऐसी नीतिका शोध करनेके लिए आत्ममन्थन कर" रहे थे "जो प्रभावकारी होते हुए भी . . हिंसाका विस्फोट न होने" देती और इस प्रकार अग्रेजोको परेशानीसे बचा लेती (पृ० ७६)।

देशकी परिस्थितियाँ निश्चय ही अहिंसक संघर्षके लिए अनुकूल नहीं प्रतीत हो रही थी। किसानो और मजदूरोंके बीच अशान्ति छाई हुई थी। मजदूर नगरोमे हडताल और प्रदर्शन कर रहे थे तो किसान गाँवोमे कूचोका आयोजन कर रहे थे और रेलगाडियाँ रोक रहे थे (पृ० २२)। इसके अतिरिक्त, आबादीके एक हिस्सेमे — खासकर नगरोमे — असुरक्षा, बल्कि घबराहटका भी भाव व्याप्त था, और दिन-प्रति-दिन तीव्रसे तीव्रतर होता जा रहा था। फलत. गांधीजी को नगरवासियोसे अनुरोध करना पडा कि "वे दृढतापूर्वक अपनी-अपनी जगह डटे रहकर डरपोक लोगोको काल्पनिक अथवा वास्तविक खतरेसे बचने के लिए भाग निकलने का लोभ संवरण करने का साहस प्रदान करे" (पृ० २५६)। मुस्लिम लीगका तेवर और उसकी विभाजनकी माँग परिस्थितिको और भी कठिन बना दे रही थी। लीगके नेताओने दावा किया कि अकेले १९ अप्रैलको उन्होंने अपनी माँगके समर्थनमे १०,००० से अधिक सभाएँ आयोजित कराईं। पंजाबमें बेलचोसे लैस खाकसार लोग, मसजिदोको अपने छिपने के ठिकाने बनाकर, यूनियनिस्ट प्रशासन तथा पुलिसको चुनौती देते हुए, हिन्दुओको आतंकित कर रहे थे। गांधीजी को आशंका थी कि सरकार इन "विरोधी ताकतोको स्थितिको उलझाने का मौका" दे सकती है (पृ० ७)। इसलिए उन्होंने लिखा कि यदि ऐसी अव्यवस्थाके बावजूद "सविनय अवज्ञा आरम्भ की जाती है तो लोग उसे भी इस अव्यवस्थाका अंग न मान ले, इसके लिए यह जरूरी है कि हम इस अराजकतासे सविनय अवज्ञाके अन्तरको स्पष्ट रूपसे पहचान ले" (पृ० २२)। कानून भंग करके जेल जाना तो बहुत आसान काम था, लेकिन गांधीजी ने कहा, लोगोको सुनते-सुनते भले ही चिढ होने लगे, "मैं तो इस बातको दुहराता ही रहूँगा कि जेल-यात्राके पीछे अगर ईमानदारीसे किये गये रचनात्मक प्रयत्नोका बल नहीं है और हमारे हृदयोमे अन्यायीके प्रति सद्भावना नहीं है तो जेल-यात्रा हिंसा है और इसलिए सत्याग्रहमे इसके लिए कोई स्थान नहीं है" (पृ० १२०)।

गांधीजी ने सविनय अवज्ञाकी तैयारीके लिए जो रचनात्मक कार्यक्रम निर्धारित किया था, हिन्दू-मुस्लिम एकता उसका एक महत्त्वपूर्ण अंग थी (पृ० ९४); किन्तु उन्होंने महसूस किया कि मुस्लिम लीगकी "विभाजनकी माँगसे एकताके सारे प्रयत्नोका द्वार फिलहाल तो बन्द ही हो जाता है" (पृ० ७७)। उन्होंने इस माँगको "असत्य" कहा था, और यद्यपि वे यह मानते थे कि "यदि आठ करोड मुसलमान विभाजन चाहते ही है तो . . दुनियाकी कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती", तथापि उन्होंने स्पष्ट कहा कि "किसी सम्मानजनक समझौतेके आधारपर विभाजन सम्भव नहीं है।" धर्मकी "मनुष्यको ईश्वरसे और मनुष्यको मनुष्यसे" जोडने की संयोजक शक्तिकी चर्चा करते हुए उन्होंने पूछा : "क्या इस्लाम मुसलमानको केवल मुसलमानसे ही जोडता है और हिन्दूको उसका वैरी बनाता है? पैगम्बरने जो शान्तिका सन्देश दिया वह क्या केवल मुसलमानोंके ही हितमे और केवल मुसलमानोके आपसी सम्बन्धके विषयमें ही था? क्या उनका आदेश यह था कि हिन्दुओ और गैर-मुसलमानोके खिलाफ युद्ध करते रहो? क्या आठ करोड मुसलमानोंमें वही भावना भरी जानी है, जिसे मैं केवल विषकी ही संज्ञा दे सकता हूँ?" गांधीजी की दृष्टिमे "यह इस्लाम नहीं" था और

"जो लोग मुसलमानोके मस्तिष्कमे यह विष भर" कर हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच संघर्षका वातावरण तैयार कर रहे थे "वे इस्लामका सबसे बड़ा अहित कर रहे" थे (पृ० ३१-३२)। भारतीय सस्कृतिके सामासिक स्वरूपमे अपना विश्वास व्यक्त करते हुए उन्होने लिखा· "भारत एक बडा देश है, ऐसी विविध सस्कृतियोसे बना एक महान् राष्ट्र है जिनमे से प्रत्येकका रुझान शेष सभीके पूरकका काम करते हुए आपसमे एक-दूसरेसे मिल जाने की ओर है" (पृ० ३०)। भारतीय मुसलमानोको अपने "सगे भाई" बताते हुए उन्होने कहा कि वे सदा ऐसे ही रहेगे, "फिर वे मुझे चाहे जितना नकारे" (पृ० १५३)।

किन्तु बिगडती हुई युद्ध-परिस्थितिके समक्ष ये आन्तरिक समस्याएँ पृष्ठभूमिमे तिरोहित होती गईं। यूरोपमे मचा रक्तपात गाधीजी के लिए गहरे व्यक्तिगत दु खका प्रसग था। २८ मईको उन्होने मीराबहनको लिखा, "पश्चिममे तो बडी भयकर बाते हो रही हैं" (पृ० १२८), और दो दिन बाद एक अन्य अग्रेज मित्रको लिखा, ". . ऐसी घटनाएँ हुई है कि मै अवाक् रह गया हूँ" (पृ० १३३)। काग्रेस कार्य-समितिकी एक बैठकमे उन्होने स्वीकार किया कि "यूरोपमे जो भयकर बाते हो रही है उनसे मेरा मन व्यथा-विह्वल है" (पृ० २७०)। वे इतने विचलित हो उठे थे कि २६ मईको उन्होने वाइसरायको लिखा कि क्या वह "समय नही आ गया है कि मानव-जातिका खयाल करके शान्तिकी याचना की जाये", ताकि "यह भीषण नरसहार बन्द" हो सके। इतना ही नही, वे "जर्मनी या जहाँ भी जरूरत हो वहाँ जाकर . . . मानवताके कल्याणके लिए शान्तिकी याचना करने को" तत्पर थे (पृ० ११५)। सर सैम्युअल होरके ब्रिटेनकी स्थितिको समझने के अनुरोधके उत्तरमे उन्होने लिखा, "मै निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ कि सघर्षके स्थानपर शान्ति स्थापित हो" (पृ० १९७)। गाधीजी की रायमे हिटलरशाहीका सामना करने का एकमात्र सच्चा उपाय अहिंसक प्रतिरोध था, जिसमे "मृत्युके ग्रास केवल वही लोग बनते जिन्होने जरूरत पडने पर, किसीको मारे बिना और किसीके प्रति अपने मनमे दुर्भावनाको स्थान दिये बिना, मृत्युका वरण करने के लिए अपनेको प्रशिक्षित किया होता।" यदि चेको, पोलैण्डवासियो, नॉर्वेवासियो, फ्रान्सीसियो और अग्रेजोने उस मार्गका अनुसरण किया होता तो "यूरोपने अपनी नैतिक ऊँचाईकी अच्छी-खासी अभिवृद्धि की होती। और . अन्तत महत्त्वकी चीज नैतिक मूल्य ही है। बाकी सब तो निरर्थक वस्तु है" (पृ० २१५)।

गाधीजी ने अग्रेजोको भी ऐसी ही सलाह दी। उन्होने उनके साहस और सकल्पकी प्रशसा की, और उन्हे यह मालूम था कि "ब्रिटेनको मिटना भी हुआ तो अन्ततक लडता हुआ बहादुरीके साथ मिटेगा" (पृ० १५५)। किन्तु फ्रान्सके पतनके बाद जब ब्रिटेनपर नाजियोकी चढाई आसन्न प्रतीत होने लगी और अग्रेजोको हवाई और समुद्री मुठभेडोमें परेशान किया जाने लगा तब गाधीजी ने "हर ब्रिटेनवासीसे" खुली अपीलमे "लडाई बन्द करने" का अनुरोध किया, क्योकि उन्हे लग रहा था कि "युद्धकी समाप्तिपर, वह चाहे जिसके पक्षमे हो, विश्वमे लोकतन्त्रका प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई लोकतन्त्र बचा ही नही रहेगा।" उनकी दृष्टिमें "यह युद्ध

मानव-समाजके लिए एक अभिशाप . . के रूपमे आया" था, "इसलिए कि यह जितने वडे पैमानेपर इन्सानको हैवान वना रहा" था "उतने वडे पैमानेपर ऐसा होते पहले कभी नही देखा गया" था। अग्रेज वह लडाई नाजियोसे भी अधिक नृशस वन कर ही जीत सकते थे, और गाधीजी ने आग्रहपूर्वक कहा कि "चाहे जितने भी न्याय-सम्मत उद्देश्यके लिए प्रतिक्षण चल रहे इस अन्धाधुन्ध नरसहारको उचित नही ठहराया जा सकता।" उन्होने अग्रेजोको "एक अधिक उदात्त और वीरतापूर्ण, वहादुरसे-वहादुर सिपाहीके योग्य मार्ग" सुझाया — "नाजीवादका मुकावला विना किसी हथियारके" करने का मार्ग। ब्रिटिश साम्राज्यवादके विरुद्ध स्वय अपने अहिंसक सघर्पका हवाला देते हुए गाधीजी ने उन्हे आश्वस्त किया कि "मेरे देशका अन्तमे चाहे जो वने, आपके प्रति मेरा प्रेम अक्षुण्ण है और रहेगा" (पृ० २६२-६३)। इस अपीलके उत्तरमे ब्रिटिश सरकारने वताया कि यद्यपि गाधीजी के हेतुओके लिए उसके मनमे कद्र थी, किन्तु गाधीजी द्वारा सुझाई नीतिपर विचार करने मे वह असमर्थ थी, "क्योकि सारे साम्राज्यके साथ मिलकर उसने इस युद्धको विजय मिलने तक चलाते रहने का सकल्प कर रखा" था (पृ० २६५ पा० टि०)।

"हिटलरशाहीका मुकावला" करने के लिए जो मार्ग अपनाने का अनुरोध गाधीजी ने यूरोपके राष्ट्रोसे किया था, वाहरी आक्रमणोसे अपनी रक्षा करने के लिए वही मार्ग अगीकार करने का आग्रह उन्होने स्वदेशसे भी किया। वे चाहते थे, "हमे सवलकी अहिंसामे अपनी अविचल आस्थाकी घोपणा करनी चाहिए और कहना चाहिए कि हम अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा शस्त्रवलसे नही करना चाहते, वल्कि हम उसका वचाव अहिंसक शक्तिसे करेंगे" (पृ० २१५)। जव यह अपील तैयार किया गया उन दिनो काग्रेस कार्य-समितिकी वैठक चल रही थी और पाँच दिनके विचार-विमर्शके वाद ३१ जूनको उसने "अपने स्वातन्त्र्य-सघर्पमे अहिंसाके सिद्धान्तका दृढतासे पालन करते" रहने का निश्चय दुहराया, किन्तु "गाधीजी के साथ अन्ततक चलने" में अपनी असमर्थताकी घोपणा की, यद्यपि "अपने महान् आदर्शके मार्गपर अपनी रीतिसे चलने" की उनकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। इस "मुक्ति" से गाधीजी "खुश भी" थे और "गमगीन भी"। अहिंसाका प्रचार उनका जीवन-कार्य था, इसलिए उन्हे "लगा कि यही वह घडी है जव मै ईश्वर और मनुष्यके समक्ष अपनी श्रद्धाको सिद्ध कर सकता हूँ।" अत काग्रेससे टूटने की "व्यथाको वर्दाश्त" कर पाने और "अकेले खडे रहने की शक्ति प्राप्त" कर सकने पर वे खुश थे। गमगीन इसलिए थे कि उन्हे लगा, "जिन लोगोको इतने वर्षोसे — जो अभी कलकी तरह ताजा प्रतीत होते हैं — अपने साथ लेकर चलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त था, अव उन्हे अपने साथ ले चलने की शक्ति मेरे शब्द खो वैठे हैं"। गाधीजी का दृढ विश्वास था कि केवल सच्ची "अहिंसा ही विश्वको विनाशसे वचा सकती है" और ससारको यह सन्देश देना भारतका ही कर्त्तव्य है (पृ० २२२-२५), किन्तु कार्य-समितिकी राय थी कि वाहरसे "आक्रमण करनेवाले शत्रुओके विरुद्ध अहिंसासे लडने की शक्ति हिन्दुस्तानमे नही है" (पृ० २८३)। प्रतिपक्षके प्रवक्ता थे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, जिनकी दलील थी कि "हमारा सगठन राजनीतिक है, जो अहिंसाके लिए नही, एक राजनीतिक उद्देश्यके लिए

काम कर रहा है। हम अन्य राजनीतिक दलोकी स्पर्धाके बीच काम कर रहे हैं" (पृ० २७०)। राजाजी कार्य-समितिके अधिसंख्य सदस्योको, जिनमे सबसे महत्त्वपूर्ण थे सरदार पटेल, अपने पक्षमे लाने मे सफल हो गये, और गाधीजी को "यह बात दिनके प्रकाशकी भाँति तुरन्त स्पष्ट हो गई कि यदि मेरा दृष्टिकोण स्वीकार्य नही है, तो एकमात्र वास्तविक विकल्प राजाजी का दृष्टिकोण ही हो सकता है।" फलत. उन्होने राजाजी के प्रस्तावपर अमल करनेकी सलाह दी (पृ० २८९-९०)। कोई आलोचक कह सकता था कि जिस कोटिकी अहिसा गांधीजी चाहते थे वह उनके जीवन-कालमे सम्भव नही थी। ऐसे लोगोको उनका उत्तर था: "मैं अदम्य आशावादी हूँ। कोई भी वैज्ञानिक अपना प्रयोग शकाकुल मनसे आरम्भ नही करता। मैं कोलम्बस और स्टीवेन्सनकी परम्पराका आदमी हूँ। घोरतम कठिनाइयोके बीच भी उन्होने कभी आशाका दामन नही छोडा था। चमत्कारोका युग बीत नही गया है। जबतक ईश्वर है, चमत्कार भी होते रहेगें" (पृ० १८६)। गाधीजी के अनुसार, इतिहास भी अहिंसाके मार्गपर मनुष्यके बढते चरणकी साक्षी भरता है। हमारे पूर्वज नर-भक्षी और आखेटक थे। कालान्तरसे मनुष्यने खेती आरम्भ की और तब "घुमक्कड जिन्दगीके बदले . . . उसने गाँव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जागी, जो आगे चलकर सामाजिक हो गई। ये सब उत्तरोत्तर बढती अहिसाके ही चिह्न है।" अत मनुष्यको इस मार्गपर और भी प्रगति करनी है। यही उसका श्रेय है, उसकी नियति है, क्योकि हिंसक तो वह "पशुके रूपमे . . ही है, आत्माके रूपमे . . . अहिंसक है। . . . वह या तो अहिंसा सीखेगा या नष्ट हो जायेगा" (पृ० ३९३)। इसलिए गांधीजी यह मानने को तैयार नही थे कि "हिटलर या जर्मनोपर, जिन्हे हिटलरने यन्त्र-मानव बना दिया" था, "अहिसात्मक कार्रवाईका शायद कोई असर न हो। अगर अहिंसक कार्रवाई अपेक्षित प्रमाणमे की जाये तो . उसका असर अवश्य होगा", क्योंकि "किसी भी मनुष्यको सदाके लिए यन्त्र नही बनाया जा सकता।" गाधीजी का विश्वास था कि "अहिंसाके क्षेत्रमे अहिंसाका उपासक अपनी शक्तिसे काम नही करता है। शक्ति तो उसे ईश्वरसे प्राप्त होती है" (पृ० ४०५-६)। अहिंसक कार्रवाईके सगठनके अपने आधी सदीके अनुभवसे गांधीजी आशासे ओतप्रोत थे। उनका अहिंसाका यह प्रयोग अब "बहुत ही दिलचस्प, लेकिन साथ ही अत्यन्त कठिन अवस्थामे प्रवेश कर चुका" था। उन्हे अनुभव हो रहा था कि "मैं . . . ऐसे महासमुद्रमे अपनी नाव खे रहा हूँ जिसका मेरे पास कोई नक्शा नही है।" उन्हे हर घड़ी जलकी गहराईकी थाह लेनी पड रही थी, किन्तु कठिनाईसे उनमे "सघर्ष करने के उत्साहका सचार" हो रहा था (पृ० ४००)।

सेवाग्राम गाधीजी के लिए "अहिंसाकी प्रयोगशाला" था (पृ० २४१), किन्तु वह यदा-कदा उनके समक्ष मानव-स्वभावसे सम्बन्धित कठिन समस्याएँ उपस्थित कर देता था। २४ मईको उन्होने ऐसे ही कतिपय "नाना-मोटा [छोटे-मोटे] उदवेगों [उद्वेगो] के कारण" अनिश्चित कालका मौन लेते हुए अपना यह इरादा जाहिर किया कि अब मैं किसी प्रकारका आग्रह नही करूँगा और "आवश्यक बातमे मेरा अभिप्राय बताने से अधिक दलीलादि" नही करूँगा (पृ० १०५)। आश्रममे एक कलम और

पत्र चोरी चला गया, और ऐसा सन्देह था कि यह किसी आश्रमवासीका ही काम था। इस घटनासे गांधीजी के मनको इतना भारी आघात लगा कि उन्होंने अनिश्चित कालतक उपवास करने के इरादेकी घोपणा कर दी। उन्हे लगा कि यदि "मेरे सामने झूठ चल सकता है, हिंसा हो सकती है, चोरी हो सकती है तो मेरी किम्मत [कीमत] क्या" (पृ० १४२-४३)? गावीजी को आश्रमके एक खास व्यक्तिपर सन्देह था, लेकिन वस्तुत. उन्हे दु ख ही इस वातका था कि उनके मनमे शक पैदा हुआ (पृ० १७३)। कारण, "प्रेम कभी शक नही करता है। प्रेमके पास दोप छिप नही सकता है" (पृ० १७४)। अपने अहिंसाके प्रयोगकी पूर्णताके लिए कभी-कभी उन्हे लगता था कि "मै भाग चलूँ—लेकिन एकान्तसे प्राप्त होनेवाली शान्तिकी तलाशमे नहीं, वल्कि सम्पूर्ण अकेलेपनकी शान्तिमें अपने को पहचानने के लिए, अपनी वास्तविक स्थितिको जानने के लिए, और उस 'शान्त-मन्द स्वर' को अधिक अच्छी तरह सुनने के लिए" (पृ० २४१)। इस एकान्तवासकी इच्छाका कारण गावीजी ने अपने लेख मूलत मुख्य रूपसे गुजरातीमें लिखने के निर्णयका स्पष्टीकरण देते हुए "एक सही शिकायत" शीर्पक लेखमें समझाया "अहिंसाके सम्वन्वमे तो अपने सन्देशको दुनियाके दूर-दूरके हिस्सोतक पहुँचाने के लिए मुझे ..अपने विचारपर ही सवसे ज्यादा निर्भर रहना है।" लेकिन विचारमे आत्म-प्रसारकी ऐसी शक्ति तभी होती है जव वह "पवित्र जीवनसे स्फुरित और प्रार्थनापूर्ण एकाग्रतासे युक्त" होता है। "जीवन जितना पावन होगा, एकाग्रता जितनी अधिक होगी . विचारमे उतनी ही अधिक शक्ति होगी।. यह वह शक्ति है जिसे प्राप्त करने की आकाक्षा हर मनुष्यको रखनी है और जिसे समुचित प्रयत्नसे वह प्राप्त कर सकता है। मौनके स्वरको कभी अनसुना नही किया गया है" (पृ० २५४)।

अपनी प्रवल अहिंसक और जनवादी प्रवृत्तिका परिचय गावीजी ने इस प्रश्नके उत्तरमें दिया कि क्या वे गरीवोंके साथ इन्साफ करनेवाली अनुदार तानाशाहीका स्वागत नही करेंगे। उन्हे "उदार अथवा किसी भी तरहकी तानाशाही मजूर नही" थी, क्योंकि "उसमें न धनिकोका लोप होगा और न गरीवोकी हिफाजत। कुछ धनी लोग अवश्य मिट जायेंगे और कुछ गरीव सरकारी दानपर पलेंगे। . . . असली इलाज अहिंसात्मक लोकतन्त्र है, जिसे दूसरे शब्दोंमें सवका सच्चा शिक्षण कह सकते है" (पृ० १५७)। और ऐसी अहिंसक समाज-व्यवस्था कायम करना गाधीजी सर्वथा सम्भव मानते थे और वह उनकी दृष्टिमे ऐसा लक्ष्य था जिसके लिए सवको काम करना चाहिए, क्योंकि "अहिंसा सामाजिक धर्म है और सामाजिक धर्मके रूपमें ही उसका पालन किया जा सकता है.. ।" यही समझाने के लिए उनका प्रयत्न और प्रयोग चल रहा था (पृ० ४४७)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित सस्थाओ, व्यक्तियो, पत्र-पत्रिकाओ तथा पुस्तकोके प्रकाशकोके आभारी है

संस्थाएँ : इडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार, राष्ट्रीय गाघी सग्रहालय, नई दिल्ली और साबरमती आश्रम परिरक्षण तथा स्मारक न्यास एव सग्रहालय, अहमदाबाद।

व्यक्ति : श्रीमती अमृतकौर, श्री अमृतलाल चटर्जी, श्री ए० के० सेन, कलकत्ता, श्री एम० मुजीब, नई दिल्ली, श्री एस० अम्बुजम्माल, मद्रास, श्री कनुभाई मशरूवाला, अकोला, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी, श्री कान्तिलाल गाधी, बम्बई, श्री गोरूर रामस्वामी अय्यगार, श्री घनश्यामदास बिडला, कलकत्ता, लाला जगन्नाथ, श्रीमती तहमीना खम्भाता, बम्बई, श्री नारणदास गाधी, श्री नारायण देसाई, बारडोली, श्री नारायण सम्पत, अहमदाबाद, श्री पुरुषोत्तम का० जेराजाणी, बम्बई, सरदार पृथ्वीसिह, लालारू, श्रीमती प्रेमाबहन कटक, सासवड, श्री मगलदास पकवासा, श्रीमती मजुलाबहन म० मेहता, बम्बई, श्रीमती मीराबहन, ऑस्ट्रिया, श्री मुन्नालाल गगादास शाह, सेवाग्राम, श्री रामकृष्ण, श्री रिचर्ड बी० ग्रेग, सयुक्त राज्य, श्रीमती लीलावती आसर, बम्बई, श्री वल्लभराम वैद्य, अहमदाबाद, श्री वालजी गो० देसाई, पुणे, श्रीमती विजयाबहन म० पचोली, सणोसरा, श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई, श्रीमती शारदाबहन गो० चोखावाला, सूरत, श्री सतीश द० कालेलकर, अहमदाबाद, श्री सी० आर० नरसिंहम्, मद्रास और श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर।

पुस्तकें : '(द) इडियन एनुअल रजिस्टर, १९३९', 'गाधीजी और राजस्थान', 'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो—२ . सरदार वल्लभभाईने', 'बापुना पत्रो—४ मणिवहेन पटेलने', 'बापूकी छायामे', 'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापू—मैंने क्या देखा क्या समझा?', 'महात्मा लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाधी', जिल्द ५, 'मौलाना अबुल कलाम आजाद' और 'लेटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री'।

पत्र-पत्रिकाएँ : '(द) टाइम्स ऑफ इडिया', 'सर्वोदय', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजनसेवक', '(द) हितवाद', '(द) हिन्दुस्तान टाइम्स' एव '(द) हिन्दू'।

अनुसन्धान एव सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओके लिए सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार और श्री प्यारेलाल, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र है। प्रलेखोकी फोटो-नकल तैयार करने में मदद देने के लिए हम सूचना एव प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी है।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजी के स्वाक्षरोमे मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जोकी स्पष्ट भूलोको सुधारकर दिया गया है।

अग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करने में अनुवादको मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनाने का भी यथेष्ट ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूले सुधारने के बाद अनुवाद किया गया है, और मूलमे प्रयुक्त शब्दोके सक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणमे सशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गाधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है, वह हाशिया छोडकर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अश उन्होने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमे छापा गया है। भाषणकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधीजी के कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोडे गहरी स्याहीमे छापे गये है। भाषण और भेटकी रिपोर्टके उन अशोमे, जो गाधीजी के नही हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दाये कोनेमे ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोमे की गई है, और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हे आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गाधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ आधारपर उसका अनुमान लगाया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

इस ग्रंथमालामें प्रकाशित प्रथम खण्डका जहाँ-जहाँ उल्लेख किया गया है, वह जून १९७० का सस्करण है।

साधन-सूत्रोमें 'एस० एन०' सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' राष्ट्रीय गाधी सग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-

पत्रोका, 'एम० एम० यू०' मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिटका, 'एस० जी०' सेवाग्राममे सुरक्षित सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गाधी वाड्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाधी) द्वारा सगृहीत कागज-पत्रोका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देने के लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट भी दिये गये है। अन्तमे साधन-सूत्रोकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई है।

विषय-सूची

परिशिष्ट :

१. खतरेका संकेत

अजमेरकी घटनाओंके बारेमें मुझे जो तथ्य मालूम हुए हैं वे यदि सही हैं तो उन घटनाओंसे खतरेका संकेत मिलता है। इन तथ्योंकी सचाईमें अविश्वास करने की मेरे पास कोई वजह नहीं है। ये तथ्य कुछ यों हैं। जाने-माने कार्यकर्त्ताओंने राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान खादी-प्रदर्शनीका आयोजन किया। आयोजकोंने इस अवसर पर खादी और अन्य ग्रामोद्योगोंकी महत्तापर एक व्याख्यान-मालाका भी प्रबन्ध किया था। आम रस्मके मुताबिक इस समारोहके अवसरपर भी राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। अधिकारियोंने इस आशयकी एक सूचना जारी की कि चूँकि किलेके परकोटेपर राष्ट्रीय झण्डेके फहराये जाने से सम्राट्के कुछ प्रजाजनोंको खीज हुई है, इसलिए इसे एक घण्टेके अन्दर उतार लिया जाना चाहिए। परन्तु आयोजकोंका कहना था कि जिस जगहपर प्रदर्शनी लगी थी वह नगरपालिकाके अधिकार-क्षेत्रके अन्तर्गत थी और उन्होंने उस जगहपर प्रदर्शनी आयोजित करने के लिए उसकी पूर्व-अनुमति ले ली थी। लेकिन इस विरोधका कोई नतीजा नहीं निकला। पुलिसने अशिष्टता-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डेको उतार दिया और भाषणोंकी मनाही कर दी। यदि प्रदर्शनीका आयोजन नगरपालिकाकी अनुमतिसे किया गया था तो झण्डेके सम्बन्धमें ऐसी दस्त-न्दाजी गैरकानूनी थी। इस कार्यके गैरकानूनी होने की बातको अलग रखें तो भी झण्डेका इस तरह उतारा जाना अपने-आपमें एक अत्यन्त उत्तेजनात्मक कार्रवाई थी। ऐसे अपमानके सहज ही अप्रत्याशित परिणाम हो सकते हैं। इसलिए मेरी राय है कि केन्द्रीय अधिकारी इस घटनाकी जाँच-पड़ताल करें। मैं आशा करता हूँ कि केन्द्रीय सरकार ऐसी संघर्षकी स्थिति नहीं उत्पन्न करना चाहती है, किन्तु अगर अजमेरकी-सी घटनाओंकी पुनरावृत्ति होती है तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की पूरी आशंका है। जो स्थिति पैदा करने का कोई इरादा नहीं है वही स्थिति पैदा हो जाये तो यह बड़े दु:खकी बात होगी।

घटनाके तुरन्त बाद आयोजकोंने मेरी सलाह लेने के लिए मुझे टेलीफोन किया। आयोजकोंकी आशाके विपरीत मैंने कार्यकर्त्ताओंको सरकारी आदेशका पालन करने की सलाह दी। सामान्य तौरपर ऐसे सरकारी आदेशका उल्लंघन करने की सलाह देने में मुझे तनिक भी हिचकिचाहट न हुई होती। आखिर मैं ही तो इस झण्डेका जन्म-दाता हूँ। मुझे यह अपने प्राणोंके समान प्रिय है। लेकिन मुझे झण्डा फहराने-जैसे दिखावेमें कोई विश्वास नहीं है। यह झण्डा एकता, अहिंसा और चरखेके माध्यमसे देशके निम्नसे-निम्न श्रेणीके लोगोंके साथ उच्चसे-उच्च श्रेणीके लोगोंके तादात्म्यका प्रतीक है। इस झण्डेके किसी भी प्रकारके अपमानसे भारतीयोंके मनको गहरा आघात लगेगा। लेकिन आज हममें एकताकी कमी है; मुस्लिम लीगने इस झण्डेके प्रति अपना विरोध-

भाव प्रकट किया है; और जो लोग इसका आदर करते है वे आधिकारिक तौरपर बताये गये इसके फलितार्थोको स्वीकार नही करते। और देश एक बड़े सघर्षकी तैयारी कर रहा है। ऐसी स्थितिमे मुझे लगा कि इस अपमानका उत्तर देने के सहज उद्वेगको दबा देना ही सबसे अच्छा रास्ता है। मुझे यह भी लगा कि ऐसे सयमसे अजमेरके कार्यकर्त्ताओके अनुशासनकी परीक्षा भी हो जायेगी। इससे लोगोको अहिंसक कार्य-पद्धतिका एक पाठ मिलेगा और केन्द्रीय अधिकारियोको इसका अवसर मिलेगा कि जो चीज काग्रेसकी एक सामान्य और शान्तिमय अराजनीतिक प्रवृत्तिमे मनमानी दखलन्दाजी जान पडती है उसका वे मार्जन कर सके। ध्यातव्य है कि उक्त खादी-प्रदर्शनी का आसन्न सघर्षसे कोई सम्बन्ध नही था। मेरे सुझावोको तत्परतासे मान लेने के लिए मै कार्यकर्त्ताओको बधाई देता हूँ। अनुशासनका पालन करने की अपनी क्षमताका परिचय देकर उन्होंने काग्रेसकी शक्ति बढाई है।

सेवाग्राम, १६ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-४-१९४०

२. जोधपुरमे दमन

जोधपुरसे आई दमनकी खबरे बेचैनी पैदा करनेवाली है। जोधपुर लोक परिषद्, जिसे मुझे प्राप्त जानकारीके अनुसार स्थानीय अधिकारी अबतक आदरकी दृष्टिसे देखते रहे है, अचानक ही अवैध घोषित कर दी गई है। अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ता बिना मुकदमा चलाये जेलोमे डाल दिये गये है। भाषणो और जुलूसोपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

इससे भी बुरा वह भाषण है जो महाराजा बहादुरने इस आदेशका औचित्य बताते हुए दिया है। इस भाषणको पढते हुए ऐसा लगता है मानो पहाड खोदकर सिर्फ चुहिया निकाली गई हो। नीचे उस भाषणकी रिपोर्टके कुछ हिस्से दिये जा रहे है।[1]

> . . . इधर लोक परिषद् के सदस्य सभी प्रकारकी प्रतिष्ठित व्यवस्था और परम्पराकी भर्त्सना करने में अधिकाधिक उग्र रुखका परिचय देते रहे हैं। इस पार्टीके सदस्य हमें यह समझा रहे हैं कि विभिन्न दुःखोंका रामबाण इलाज . . . यही है कि हम अपना मत लोक परिषद्को दें और अपनेको पूर्ण रूपसे उसीके हाथोंमें सौंप दें। हमें यह भी समझाया जा रहा है कि लोक परिषद्के हाथोंमें शासनकी बागडोर आते ही धरतीपर स्वर्ग उतर आयेगा,

१. उद्धृत रिपोर्टके कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे है।

एक नई दुनियाका निर्माण हो जायेगा, तथा मुझ जोधपुरके महाराजासे यह अपेक्षा की गई है कि मैं अपने राजघराने और अपनी प्रजाका भाग्य लोक परिषद्के हाथोंमें सौंप दूं, ताकि यहाँ शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो सके और सभी लोग "स्वतन्त्रता"के सुखका उपभोग कर सकें।

यह सचमुच ही एक अनुचित एवं धृष्टतापूर्ण माँग है।... लोक परिषद् मुख्यतः उन्हीं अनुभवहीन नवयुवकोंकी जमात है जिन्होंने, लगता है, अपने विभिन्न धन्धोंमें कोई खास सफलता प्राप्त नहीं की है।...

उनमें सहयोगकी वृत्तिका तो लेश भी दिखाई नहीं देता।...

इस लड़ाईके समयमें एक निराधार राजनीतिक आन्दोलनको मैं अपने राज्यमें पनपने और फैलने दूं तो मैं समझता हूँ कि ब्रिटिश सरकारके एक वफादार मित्रके कर्त्तव्यसे च्युत हो जाऊँगा। इसी तरह, हमारे किसानोंको विद्रोह करने के लिए उकसाने और हमारे नवयुवकोंको बिगाड़ने के स्पष्ट उद्देश्य से चलाये जा रहे इस खुले विप्लवकारी आन्दोलनको अब और चलने देने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।

ऐसा लगता है कि स्वर तो महाराजाका ही है, परन्तु इस भाषणको तैयार करनेवाला कोई दूसरा ही है। भाषण सरासर अतिशयोक्तियोंसे भरा पड़ा है। राज्यमें परिषद्की ३० से अधिक शाखाएँ हैं, और बहुत-से अनुभवी लोग इसके सदस्य हैं। मैंने ऐसे अनेक पत्र देखे हैं जिनमें इनका सहयोग प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की गई है और इनसे सहयोगकी माँग भी की गई है। उद्धरणोंमें जैसा उल्लेख किया गया है, वैसी कोई भी माँग लोक परिषद्ने कभी नहीं की है। राज्यके अन्दर रहते हुए उत्तरदायी शासनको प्राप्त करना ही इसका लक्ष्य है। इसने मान्य तरीकोंसे ही आन्दोलन चलाया है। मैं समझता हूँ कि जिनका तथ्योंसे कोई दूरका भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसी बातें महाराजा साहबके मुँहसे कहलवाना उनके सलाहकारोंके लिए अत्यन्त ही अशोभनीय है। परिषद्के साथ किये जा रहे अत्याचारपूर्ण व्यवहारको उचित बताने के लिए उन्होंने युद्ध और "सन्धि"की बातको भी बीचमें घुसेड़ने में कोई आगा-पीछा नहीं किया है। मेरा विश्वास है कि यदि कार्यकर्त्ता स्वेच्छया कष्ट-सहनकी कसौटी पर खरे उतरते हैं तो परिषद् इस अग्नि-परीक्षामें से कुछ भी खोये बिना निकल आयेगी। और जो लोग जेलोंमें हैं वे तो जोधपुरकी जान और उसके सच्चे उद्धारक साबित होंगे, क्योंकि उन्हींको जनता अपना सच्चा सेवक समझेगी। राजाओं और उनके सलाहकारोंके लिए समयकी नब्जको न पहचानते हुए ऐसे वक्तव्यों और व्यवहारोंका सहारा लेना ठीक नहीं है जो निष्पक्ष जाँचकी कसौटीपर टिक न सकते हों। परिषद् द्वारा प्रकाशित पर्चेसे मालूम होता है कि उसने खुले मुकदमेकी माँग की है। महाराजाने अपने भाषणमें परिषद्पर जो भी आरोप लगाये हैं, कार्यकर्त्ताओंने उन सबको निराधार बताया है। जनताके प्रति राज्यका कमसे-कम इतना कर्त्तव्य तो है ही कि उसने परिषद्पर जो आरोप लगाये हैं उनके प्रमाण भी वह प्रस्तुत

करे। फिलहाल — चाहे परिषद्को न्याय मिले या न मिले — मैं तो यही आशा करता हूँ कि उसके सदस्योंपर जो भी जुल्म ढाये जायेंगे, उन्हे वे शान्तिपूर्वक और बहादुरीके साथ बर्दाश्त करेंगे।

सेवाग्राम, १६ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-४-१९४०

३. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
१७ अप्रैल, १९४०

चि० मुन्नालाल,[1]

वक्त मैं तुम्हे दूंगा। जब मैं घूमने निकलूं, तब ले लेना। यदि कंचन[2] भी स्वीकार करे, तो तुम दोनों जितना चाहो पत्र-व्यवहार करो, लेकिन बस मेरी मारफत। इसमे बड़ी रक्षाकी सम्भावना है। मैंने तो तुम लोगोसे यह भी कहा है कि यदि तुम दोनो गृहस्थाश्रममे प्रवेश करो, तो भी कोई पाप नही होगा। बाकी कंचनका सेवा-भाव तो सुन्दर है ही। वह उन्नति करेगी, ऐसी मेरी मान्यता है। रातमें उठना बन्द कर दो। काममे मस्त रहो तो सब ठीक हो जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४७) से। सी० डब्ल्यू० ७०८१ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेवाग्राम
१८ अप्रैल, १९४०

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। पैड[3] भी मिला। तूने उपवासके[4] बारेमे उपवाससे पहले लिखा होता, तो अच्छा होता। तब मैं शायद तुझे रोकता नही, लेकिन उसका और अधिक अच्छा उपयोग बताता। आशा है, अब तू सावधानीसे सामान्य खुराकपर आ रही होगी। तेरा पत्र अधूरा है। जो कहना चाहिए था, वह तू कह नही सकी।

१. सेवाग्राम आश्रमके एक सदस्य
२. मुन्नालाल गंगादास शाहकी पत्नी
३. हाथसे बने कागजका
४. प्रेमाबहन जब बिहारमें थीं तब उनसे आचरणकी कुछ भूलें हो गई थीं, जिनका प्रायश्चित्त करनेके लिए उन्होने सात दिनका उपवास किया था।

यह तेरे लिए उचित नहीं कहा जा सकता। अब भी लिख सके तो लिखना। यदि तू आकर बातें करना चाहे, तो आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०६) से। सी० डब्ल्यू० ६८४५ से भी, सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

५. चर्चा : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें

वर्धा
[१५/१९ अप्रैल, १९४०][1]

वर्तमान राजनीतिक स्थितिकी चर्चा करते हुए गांधीजी ने कहा कि देश-भरसे मुझे जो पत्र मिल रहे हैं उनसे लगता है कि अभी संघर्ष आरम्भ करने का वातावरण नहीं है। बंगाल और पंजाबमें हमें संघर्ष अंग्रेजोंके खिलाफ नहीं, बल्कि सम्बन्धित मन्त्रिमण्डलोंके खिलाफ करना होगा। लोग मुझसे पूछते हैं कि अब आगे क्या इरादा है। कुछ लोग यह जानना चाहते हैं कि क्या उन्हें सरकारी नौकरियाँ छोड़कर संघर्षकी तैयारीमें लग जाना चाहिए। कुछ अन्य यह पूछते हैं कि क्या आप मुस्लिम लीग और खाकसारोंके वर्तमान रवैयेके बावजूद संघर्ष आरम्भ करेंगे।

उन्होंने आगे कहा, कांग्रेसजन मुझे बताते हैं कि कांग्रेसमें न तो ईमानदारी है, न अनुशासन और न रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास। इन सब बातोंको देखते हुए मुझे संघर्ष आरम्भ करने का आदेश देने की हिम्मत नहीं होती। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, इसका मुझपर कोई असर नहीं होता। मेरी नजर तो आन्तरिक स्थितिपर टिकी हुई है और वह आशाजनक नहीं है। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यों ही चुपचाप बैठे रहेंगे और वर्तमान अवसरको हाथसे निकल जाने देंगे। मेरा उत्तर यह होता है कि जबतक संघर्षकी आवश्यक पूर्व-शर्तें पूरी नहीं होतीं तबतक तो मैं लाचार हूँ।

श्री जवाहरलालने कहा कि यह सब तो रामगढ़ प्रस्तावके समय भी मालूम था। तबसे कोई नई बात नहीं हुई है। उस प्रस्तावमें यह तजवीज है कि सरकार हमें उकसायेगी तो संघर्ष होगा। उन्होंने गांधीजी से पूछा कि क्या किसी ऐसे संघर्ष की बात आपके मनमें है जिसमें आम जनता शरीक न हो।

उत्तरमें गांधीजी ने कहा कि मुझे नहीं लगता, सरकार हमें उकसाने पर आमादा है। अगर मुझे ऐसा लगा तो फिर मैं इस बातके लिए इन्तजार नहीं करूँगा कि

१. चर्चाके मजमूनसे लगता है कि यह वह बैठक थी जो रामगढ़ कांग्रेस (मार्च १९४०)के बाद और वर्धामें कार्य-समितिकी १७ से २१ जून, १९४० तक चलनेवाली बैठकके पहले १५ से १९ अप्रैल, १९४० तक हुई थी।

इसमें कितने लोग शरीक होते हैं। आरम्भ तो मैं थोड़े-से लोगोंसे ही करूँगा। पचास हजार सत्याग्रहियोंके शरीक होने से भी हमारी कार्रवाई जन-संघर्ष नहीं बन जायेगी। जनका मतलब तो अनिश्चित संख्या है। लेकिन अगर पचास हजार सत्याग्रही आगे आ जाते हैं तो इसका मतलब यह हो सकता है कि सार्वजनिक सविनय अवज्ञाका दरवाजा खुल गया है।

श्री जवाहरलालजी ने कहा कि हो सकता है, अभी जितना उकसाया जा रहा है वह पर्याप्त न हो, लेकिन वह बढ़ता ही जायेगा। क्या राष्ट्रको उसके प्रतिरोधके लिए तैयारी नहीं करनी चाहिए? मैं यह कहने के लिए तैयार नहीं हूँ कि कार्रवाई अविलम्ब शुरू की जा सकती है। लेकिन यह सच है कि देशको पीछे धकेला जा रहा है। . . . उन्होंने गांधीजी से पूछा कि अगर आपको पचास हजार सत्याग्रही मिल जाते हैं तो आप क्या करेंगे?

गांधीजी का उत्तर यह था कि उस हालतमें भी साम्प्रदायिक तथा अन्य परिस्थितियोंके कारण कार्रवाई शुरू करना कठिन हो सकता है। गांधीजी यह चाहते थे कि सदस्य-गण मुस्लिम लीगके रुख तथा खाकसारोंकी आतंकवादी प्रवृत्तियोंको ध्यानमें रखकर संघर्षके सवालपर विचार करें।

डॉ० महमूदने कहा, कांग्रेसके प्रति मुसलमानोंके विरोधका विश्लेषण करने की आवश्यकता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राष्ट्रवादी मुसलमानोंने अपने कर्त्तव्य ठीकसे नहीं निभाये हैं।

. . . आज भारतमें ऐसी कोई चीज नहीं है जो विशिष्ट रूपसे मुसलमानोंकी मानी जा सके। भारतके हर सुधार-आन्दोलनके साथ सदृशीकरणकी प्रक्रिया आगे बढ़ती गई। यहाँतक कि थियोसॉफी आन्दोलनके भी यही परिणाम हुए। गांधीजी के सुधारोंका परिणाम भी अन्य किसी भी चीजकी अपेक्षा हिन्दू पुनरुत्थानके रूपमें ही अधिक सामने आया है। उनकी सुधार-योजनामें मुसलमानोंके लिए कोई स्थान नहीं है। कांग्रेस भी हिन्दू पुनरुत्थानकी भावनासे अपना दिशा-निर्देश ग्रहण करती है। . . .

गांधीजी ने सदस्योंसे फिर अनुरोध किया कि मुस्लिम लीग और खाकसारोंके रवैयेके अलावा डॉ० महमूद और श्री आसफअलीकी रायोंको भी ध्यानमें रखकर वे सविनय अवज्ञा आरम्भ करने के बारेमें अपने विचार बतायें। उन्होंने कहा कि खाकसार हिन्दुओंको आतंकित करना चाहते हैं और हिन्दुओंको मैं तो यह सलाह दूँगा कि वे इस खतरेका सामना अहिंसक रीतिसे करें। लेकिन वर्त्तमान परिस्थितियोंमें कांग्रेस मंचसे मैं ऐसा नहीं कर सकता।[१] . . .

१. उसके बाद जवाहरलाल नेहरू, शंकरराव देव, सरदार पटेल, सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पण्डित, अच्युत पटवर्धन, भूलाभाई देसाई तथा जे० बी० कृपलानीने सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की हिमायत की और राजेन्द्रप्रसाद, पी० सी० घोष, राजाजी और पट्टाभि सीतारामय्याने उसका विरोध किया।

मौलाना साहबके विचारसे, गांधीजी खाकसारोंके महत्त्व और शक्तिको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर आँक रहे थे। उनका कहना था कि उनका नेता बड़ा अहंमन्य है और वह किसी भी तरह जनताका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट रखना चाहता है।... आन्दोलनके बारेमें उन्होंने कहा कि कांग्रेस यह सब कोई पहली बार तो नहीं करने जा रही है। मँझधारमें पहुँचकर वह अपनी नीतियाँ नहीं बदलेगी।...

गांधीजी खाकसारोंके बारेमें मौलाना साहबकी रायसे सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा कि सरकार इस बार हमारा दमन करने में जल्दी नहीं करेगी, बल्कि लीग और खाकसार-जैसी विरोधी ताकतोंको स्थितिको उलझाने का मौका देगी। और जब ऐसा हो जायेगा तो मुझे लगता है कि लोग भयभीत हो जायेंगे। तब अगर वे कुछ करेंगे भी तो हिंसक रीतिसे ही करेंगे। अगर मेरी चले तो मैं यह भी नहीं चाहूँगा कि आन्दोलन आरम्भ करके मुसलमानोंमें क्षोभ पैदा करूँ। मैं मौलाना साहब और जवाहरलालजी से सहमत नहीं हूँ। मैं मानता हूँ कि सार्वजनिक सविनय अवज्ञा अभी नहीं हो सकती। अभी सामूहिक अहिंसाका पालन सम्भव नहीं है, क्योंकि उसका मतलब सभी आदेशोंको निष्ठापूर्वक मानना और उनका पालन करना है। अगर अवज्ञा और दस्तन्दाजी की गई तो सार्वजनिक आन्दोलन नहीं हो सकता। जनसाधारण आन्दोलनसे सम्बद्ध जरूर है, लेकिन वह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष है। अगर उचित अनुशासन हो तो कोई कारण नहीं कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा ही काला-न्तरमें सार्वजनिक सविनय अवज्ञामें परिणत न हो जाये।

हो सकता है, कांग्रेस आन्दोलन आरम्भ करे तो सफल भी हो जाये। सम्भव है, सरकार कांग्रेसकी माँगें स्वीकार कर ले। लेकिन आज तो उसका मतलब यही होगा कि मुसलमानोंकी उपेक्षा कर दी गई। मैं ऐसा समझौता या ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता। मैं इस्लामका आदर करता हूँ। मैं यह कहने को तैयार नहीं हूँ कि लीग मुस्लिम मानसका प्रतिनिधित्व नहीं करती। अगर मुसलमान अलग होना चाहते हैं तो मैं विरोध नहीं करूँगा। जब उन्हें वह चीज मिल जायेगी तब मैं उनका अहिंसक विरोध करूँगा। मैं जानता हूँ कि इस मामलेमें राष्ट्र मेरे नेतृत्वको स्वीकार नहीं करेगा और देशमें गृह-युद्ध होगा। मैं यह आशा करता हूँ कि ऐसे समयमें कमसे-कम कांग्रेस मेरे साथ होगी और वह यह घोषणा करेगी कि मुसलमानोंसे जबरदस्ती कुछ मनवाने या अंग्रेजोंसे संरक्षण पाने की किसी कोशिशमें हम नहीं शरीक होंगे।

चर्चाके दौरान गांधीजी ने अपना संविधान-सभा-सम्बन्धी विचार भी बताया। उन्होंने कहा कि कांग्रेसकी संविधान-सभाकी माँगमें यह बात भी निहित है कि सभा को पूर्ण स्वराज्य या औपनिवेशिक स्वराज्यके प्रश्नका निर्णय करने की भी पूरी स्वतन्त्रता होगी। कहने की जरूरत नहीं कि कांग्रेसकी पूर्ण स्वराज्यकी माँग तो कायम ही रहेगी। जवाहरलालजी ने कहा कि कांग्रेस-प्रस्तावमें जिस चीजको तजवीज

की गई है वह यह है कि सरकार पहले भारतको स्वतन्त्र घोषित करे और उसके बाद संविधान-सभा बुलाये। उन्होंने कहा, मैं चाहूँगा कि संविधान-सभा बुलाये जाने के पूर्व भारतसे एक-एक टामी चला जाये। हाँ, यूरोपीय अधिकारी भारतीयोंके निर्देशमें काम करें, इसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

गांधीजी ने कहा कि इन बातोंके बारेमें उनका ऐसा विचार नहीं था। इस मुद्देपर दोनोंमें मतभेद था, लेकिन अन्तमें लगा कि वे एक-दूसरेके दृष्टिकोणको समझ गये हैं और मामला वहीं छोड़ दिया गया।

[अंग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस, सत्याग्रह फाइल, १९४०-४१। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

६. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेवाग्राम
१९ अप्रैल, १९४०

चि० बलवंतसिंह,

अगर सब खत कि किताब बनाते है तो एक हि कदके कागद रखो।

तुमने खत लिखा सो अच्छा किया, लिखने का धर्म था। लिखने वाद तुमारा, धर्म समाप्त हुआ मेरा शुरू हुआ। तुमने लिखा है उसकी तहकीकात शुरू कर दी हैं। तुमारे समझने मे और जो बन रहा उसमे कुछ फरक-सा लगता है। कई चीजें बनती है उसे मैं सहन कर लेता हू। हा, पारनेरकरके शास्त्रीय ज्ञानपर मुझे श्रद्धा है सही। तुमारे अनुभव-ज्ञानपर है। आज जो कर रहे हो उसमे से और बल प्राप्ति होगी।

कृष्णचद्रके बारेमे देखुगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९३३) से

७. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेवाग्राम
२० अप्रैल, १९४०

चि० बलवंतसिंह,

इसे देखो। गीतामाता कहती है जिससे ज्ञान लेना है उसको प्रणीपात करो, परिप्रश्न करो, उसकी सेवा करो।[1] कृष्णचंद्रकी शक्तिका माप करके उससे शिक्षा लो। उससे अच्छा शिक्षक कहांसे मिलेगा।

मुन्नालालसे बात की है। वह तुमसे करेगा। उसका कहना जूदा है। जो प्रबंध हुआ है उसे भाग-बटाई न कहा जाय।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९३०) से

८. पत्र : पुरुषोत्तम कान्हजी जेराजाणीको

सेवाग्राम
२१ अप्रैल, १९४०

भाई काकुभाई,

भाई विट्ठलदासकी बात सही है। फिर भी तुम "ऐक्टिव" (सक्रिय) सदस्योंकी सूचीमें अपना नाम दर्ज करवा लो तो उसमें कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि मैं जिसे बुलाऊँ उसीको संघर्षमें शामिल होना है। तुम-जैसे लोगोंको अभी बाहर नहीं आने देना चाहता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४४) से। सौजन्य . पुरुषोत्तम का० जेराजाणी

१. भगवद्गीता, ४/३४

९. पत्र : विजयाबहन मनुभाई पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ अप्रैल, १९४०

चि० विजया,

तेरा पत्र मिला। आशा है, पिताजी शान्त होंगे। तेरा अभी वहाँ रहना ही ठीक है। मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२७) से। सी० डब्ल्यू० ४६१९से भी, सौजन्य: विजयाबहन म० पंचोली

१०. पत्र : कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीको

सेवाग्राम
२१ अप्रैल, १९४०

भाई मुंशी,

जब समय मिलेगा तुम्हारी पुस्तक अवश्य पढ़ूँगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री कन्हैयालाल मुंशी
२६, रिज रोड
बम्बई

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६५२)से। सौजन्य: कन्हैयालाल मा० मुंशी

११. पत्र : वालजी गोविन्दजी देसाईको

सेवाग्राम
२१ अप्रैल, १९४०

चि० वालजी,

वहुत छोटे अक्षर लिखना, पेन्सिलसे लिखना या मेरे-जैसे अक्षर लिखना, यह सव हिंसा माना जायेगा न? दस रुपये खर्च कर दिये, तो अव शायद अपनी दवा भी नही करोगे!!! फायदा हो, तो ठीक है, अभी वम्वईमे ही वने रहो। तुम्हारा लेख भी मिला। हेलेनकी वात समझ गया। उसकी माँग ज्यादा मालूम होती है। और फिर अग्रेजीका भी कोई ठौर-ठिकाना नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४९३) से। सौजन्य वालजी गोविन्दजी देसाई

१२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

सेगाँव
२१ अप्रैल, १९४०

प्रिय हरिभाऊ,

आपका पत्र मिला। अजमेरके वारेमें वापुका लेख[1] देखा होगा। इससे आपको इत्मिनान होना चाहिये।

रामनारायणके वारेमें वापुकी राय यह है। वापुको तो उन्होंने संतोष दिया है, और वापुका अभिप्राय यह है कि उनमें काफी परिवर्तन हुआ है। हां, परंतु वह परिवर्तन चिरस्थायी है ऐसा निश्चयसे नहीं कहा जा सकता है। परंतु हमारा धर्म यह होता है कि हम उनपर विश्वास रखकर काम ले। आपको वापु यह कहेंगे कि आप उनसे निखालसतासे वातें करे, और आप अपना अभिप्राय उनको दृढ़तासे व्यक्त करें। परंतु आपकी शंका कायम हो तो उनसे साफ कह दें कि "भाई, मेरी

१. देखिए "खतरेका संकेत", पृ० १-२

शंका कायम है, मैं आज भी तुमसे काम लेने से हिचकिचाता हूँ।" अगर शर्म रखकर उनसे संकोचसे बात करेंगे तो उनको इन्साफ नहीं होगा।

देवास नरेशका तो बहुत ही अच्छा है। उसपर 'हरिजन' में नोट आवेगी ही।

आपका,

महादेव

मूल पत्रसे: हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१३. भेंट: 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के प्रतिनिधिको

[२२ अप्रैल, १९४० के पूर्व][1]

प्र०: ब्रिटेनकी ओरसे कहा जा रहा है, "हम नहीं कह सकते कि युद्धके बाद नये विश्वका क्या स्वरूप होगा; भारतकी समस्याको विश्व-समस्यासे अलग नहीं किया जा सकता। . . . वर्त्तमान परिस्थितिमें हम भारतको अधिकसे-अधिक औपनिवेशिक स्वतन्त्रता ही दे सकते हैं।" स्वयं आपने भी कहा है, "यदि ब्रिटेन और फ्रान्स हार जाते हैं तो भारतके लिए स्वतन्त्रताका क्या मूल्य है?" क्या आप इन मुद्दोंपर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं?

उ०: भारतका कानूनी दर्जा तो — चाहे वह औपनिवेशिक दर्जा हो या अन्य कोई — युद्धके बाद ही कायम हो सकता है। इस घड़ी जिसका निर्णय करना है वह प्रश्न यह नहीं है कि भारतको फिलहाल औपनिवेशिक दर्जेसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए या नहीं। अभी तो केवल एक ही प्रश्न है और वह यह है कि ब्रिटेनकी नीति क्या है? क्या ग्रेट ब्रिटेन अब भी यही सोचता है कि भारतका दर्जा तय करनेका अधिकार केवल उसीको है, या कि यह तय करनेका अधिकार मात्र भारतको है? यदि यह प्रश्न न उठाया गया होता तो इस तरहकी चर्चाका प्रसंग ही पैदा न हुआ होता। जब प्रश्न उठा ही दिया गया है — और भारतको इस प्रश्नको उठानेका पूरा अधिकार था — तो मेरा जो भी प्रभाव-प्रतिष्ठा है उसका लाभ कांग्रेसको देना मेरा कर्त्तव्य हो गया। इस सबके बावजूद वह प्रश्न मैं आज भी दुहरा सकता हूँ जो मैंने वाइसरायसे अपनी पहली मुलाकातके[2] तुरन्त बाद अपने-आपसे पूछा था: "यदि ब्रिटेन और फ्रान्स हार जाते हैं तो भारतके लिए स्वतन्त्रताका क्या मूल्य है!"[3]

१. अमृतकौर द्वारा तैयार की गई यह रिपोर्ट दिनांक "सेवाग्राम, २२ अप्रैल, १९४०" के अन्तर्गत प्रकाशित हुई थी।

२. यह मुलाकात ४ सितम्बर, १९३९ को हुई थी।

३. देखिए खण्ड ७०, पृ० १८०, जहाँ इस कथनमें कुछ शाब्दिक अन्तर है।

यदि ये शक्तियाँ हार जाती है तो यूरोप और विश्वके इतिहासकी क्या रूप-रेखा होगी, अभी कोई नही कह सकता। इसलिए मेरे प्रश्नका अपना स्वतन्त्र महत्त्व भी है। लेकिन जो बात यहाँ प्रासगिक है वह यह है कि भारतके प्रति न्याय करके ब्रिटेन मित्रराष्ट्रोंकी विजय सुनिश्चित कर सकता है। क्योंकि तब विश्वका प्रबुद्ध जनमत मित्रराष्ट्रोंके पक्षको न्यायसगत मानकर उसका स्वागत और समर्थन करेगा।

प्र० : क्या विश्व-संघ (अर्थात् फिलहाल भारतको अलग रखकर केवल १५ श्वेत लोकतान्त्रिक देशोंका संघ बनाने की स्ट्रेटकी[1] योजना) के सम्बन्धमें या इसी तरह भारतको अलग रखकर ब्रिटिश राष्ट्रकुलके साथ पश्चिमी यूरोपके राष्ट्रोंका संघ बनाने की योजनाके विषयमें आपने कोई राय बनाई है? क्या आप अश्वेत जातियों पर श्वेत जातियोंके प्रभुत्वको रोकने के लिए भारतको ऐसे किसी बृहत्तर संघमें प्रवेश करने की सलाह देंगे?

उ० : निस्सन्देह, विश्वके सभी देशोको मिलाकर बनाये जानेवाले विश्व-सघका मैं स्वागत करूँगा। केवल यूरोपीय देशोको मिलाकर बनाया गया सघ एक अपवित्र गठजोड तथा मानवताके लिए खतरा होगा। मेरी रायमें, अब तो भारतको अलग रखकर कोई ऐसा सघ बनाना असम्भव ही है। भारत उस अवस्थाको पार कर चुका है जब आसानीसे उसकी उपेक्षा की जा सकती थी।

प्र० : आपने अपने जीवन-कालमें युद्धसे होनेवाला ऐसा महा-विनाश देखा है जैसा विश्व-इतिहासमें पहले कभी भी नहीं हुआ है। इसके बावजूद क्या आप अब भी नई संस्कृतिके आधारके रूपमें अहिंसामें विश्वास करते हैं? क्या आपको भरोसा है कि खुद आपके देशवासी मनमें कोई दुराव रखे बिना इसे पूरी तरह स्वीकार करते हैं? आपने ऐसा बार-बार दुहराया है कि सविनय अवज्ञा शुरू करने के पहले आपकी सभी शर्तें पूरी की जानी चाहिए। क्या आप अब भी उन शर्तोंपर कायम हैं?

उ० : आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि आज दुनियामे अश्रुतपूर्व विनाश-लीला मची हुई है। लेकिन यही तो अहिंसामे मेरे विश्वासकी परीक्षाका सच्चा अवसर है। मेरे आलोचकोको इसपर आश्चर्य हो सकता है, परन्तु अहिंसामें मेरी श्रद्धा अक्षुण्ण है। हो सकता है, जिस हदतक मै चाहता हूँ उस हदतक अहिंसाका दर्शन अपने जीवन-कालमे मुझे न हो पाये, लेकिन यह तो एक अलग बात है। इससे मेरा विश्वास हिल नही सकता, और यही कारण है कि सविनय अवज्ञाकी शुरुआतके पहले मेरी सभी शर्तें पूरी किये जाने के बारेमें मै इतना दृढ हो गया हूँ। कारण, दुनिया-भरकी हँसीका पात्र बनने का खतरा उठाकर भी मैं अपने इस विश्वासपर कायम हूँ कि जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, चरखा और अहिंसाके

१. सी० के० स्ट्रेट, एक अमेरिकी पत्रकार। यहाँ तात्पर्य उनकी उस योजनासे है जिसका प्रतिपादन उन्होंने **यूनियन नाऊ** में किया था।

बीच अटूट सम्बन्ध है। जिस तरह कुछ लक्षण ऐसे होते है जिनसे आप हिंसाको साफ पहचान सकते है, उसी तरह चरखा मेरे लिए अहिंसाकी अचूक पहचान है। बहरहाल, किसी दिन अपने सपनेको साकार होते देखने की आशासे सतत कार्य करते जाने से कोई भी शक्ति मुझे रोक नही सकती। भारतके सामने आज जो अनेक विकट समस्याएँ है, उनको सुलझाने के लिए मेरे पास दूसरा कोई रास्ता नही है।

प्र० : आप चाहते हैं, इस आशयकी घोषणा कर दी जाये कि आजसे भारत अपना शासन अपनी इच्छानुसार चलायेगा। आप यह भी सम्भव मानते हैं कि "श्रेष्ठतम अंग्रेज और श्रेष्ठतम भारतीय एक साथ मिलकर बैठें और दोनों को स्वीकार्य कोई समझौता-सूत्र तैयार करके ही अलग हों।"[1] उधर अंग्रेजोंका कहना है, "प्रतिरक्षा-कार्य, भारत-स्थित हमारे व्यापारिक हित तथा देशी राज्य हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।" क्या आप इस बातके लिए तैयार हैं कि आपके श्रेष्ठतम अंग्रेज और श्रेष्ठतम भारतीय "मित्रोंकी तरह एक-दूसरेके हितोंके लिए गुंजाइश करने की भावनासे"[2] इन मामलोंके सम्बन्धमें परस्पर एक सन्धि कर ले?

उ० : यदि श्रेष्ठतम अंग्रेज और श्रेष्ठतम भारतीय कोई-न-कोई समझौता कर लेने तक वार्त्ता जारी रखने के निश्चयके साथ मिल बैठते है तो मेरी कल्पनाकी संविधान-सभाके बुलाये जाने का रास्ता खुल गया माना जायेगा। निस्सन्देह इस संयुक्त समितिको लक्ष्य के सम्बन्धमे एकमत होना पडेगा। यदि लक्ष्य अनिश्चित रहने दिया गया तो उस बैठकमें अनन्त वितण्डावादके अलावा और कुछ भी नही होगा। इसलिए इस संयुक्त समितिके दोनो पक्षोका लक्ष्य आत्मनिर्णय ही होना चाहिए।

प्र० : मान लिया जाये कि आपके जीवन-कालमें ही भारत स्वतन्त्र हो जाता है तो आप अपने जीवनके शेष वर्षोंको किस कार्य हेतु अर्पित करेंगे?

उ० : यदि भारत मेरे ही जीवन-कालमे स्वतन्त्र हो जाता है और उसके बाद भी मुझमें शक्ति शेष रहती है, तो बेशक हुकूमतकी दुनियासे बाहर रहकर, विशुद्ध रूपसे अहिंसाके आधारपर राष्ट्र-निर्माणके कार्यमे मैं उचित योगदान करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-४-१९४०

१. देखिए खण्ड-७१, पृ० ४६१।

२. उद्धरण-चिह्नोंके अन्तर्गत दिया गया लेखांश १९२२ की इंग्लैण्ड-मिस्र सन्धिसे लिया गया है।

१४. प्रश्नोत्तर

गोमांस

प्र० : एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्नके सम्बन्धमें आम मुसलमानोंका समाधान करना जरूरी है। क्या हिन्दू बहुमतवाली सरकारके अधीन मुसलमानोंको अपना राष्ट्रीय आहार गोमांस खानेकी छूट रहेगी? यदि इस सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर आप मुसलमानोंको सन्तुष्ट कर सकें तो बहुत-सी गुत्थियाँ अपने-आप सुलझ जायेंगी। इस प्रश्नका आपको अपने पत्र 'हरिजन' में सीधा उत्तर देना चाहिए।

उ० समझमें नही आता है कि यह प्रश्न उठता ही कैसे है। कारण, जब कांग्रेसजन सत्तारूढ थे तब ऐसा तो कही नही सुना गया कि उन्होने मुसलमानोंके गोमासभक्षणमें कोई हस्तक्षेप किया। यह प्रश्न पूछा भी गया है खराब ढगसे। हिन्दू बहुमतवाली सरकार-जैसी कोई चीज तो है ही नही। यदि स्वतन्त्र भारतको शान्तिपूर्वक रहना है तो धार्मिक दलबन्दियोका स्थान धर्मेतर बातोपर आधारित राजनीतिक दलोको ग्रहण करना होगा। और आज यद्यपि धार्मिक मतभेदोका बड़ा बोलबाला दिखाई देता है, फिर भी वस्तुस्थिति यही है कि अधिकाश दल सभी धर्मो और सम्प्रदायोंके लोगोसे बने हुए हैं। इसके अलावा यह कहना भी सही नही है कि गोमास मुसलमानोंका "राष्ट्रीय" आहार है। पहली बात तो यह है कि भारतके मुसलमान अभी तक एक पृथक् राष्ट्र नही हैं। दूसरी बात यह कि गोमास उनका सामान्य आहार नही है। उनका सामान्य आहार तो वही है जो अन्य करोडो भारतवासियोका है। जो बात सच है वह यह कि ऐसे मुसलमान बहुत कम हैं जो धार्मिक हेतुसे शाकाहारी बने हुए हैं। इसलिए जब मिले तब वे मास — और गोमास भी — खा लेते है। लेकिन वर्षके अधिकाश समय करोडो मुसलमान अपनी गरीबीके कारण किसी भी प्रकारके मासके बिना ही काम चलाते हैं। ये तो है तथ्य। लेकिन जो सैद्धान्तिक प्रश्न पूछा गया है उसका स्पष्ट उत्तर देनेकी जरूरत है। मैं हिन्दू हूँ और पक्का शाकाहारी, और जिस तरह मैं अपनी माँ (जो अफसोस कि अब स्वर्गीया हो चुकी है) की पूजा करता हूँ उसी तरह गायको पूजता हूँ। फिर भी मैं मानता हूँ कि मुसलमानोको, अगर वे चाहे तो, गो-वधकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। ध्यान सिर्फ इस बातका रखा जाना चाहिए कि इसमें वे स्वास्थ्यके नियमोका उल्लघन न करे और यह काम ऐसे ढगसे न करे जिससे उनके हिन्दू पड़ोसियोकी भावनाको चोट पहुँचे। मुसलमानोंके गोहत्याके अधिकारकी पूर्णतम स्वीकृति साम्प्रदायिक एकताके लिए अनिवार्य है और गोरक्षाका एकमात्र रास्ता भी यही है। १९२१ में केवल मुसलमानोंके स्वेच्छासे किये गये

प्रयत्नोके फलस्वरूप हजारों गायोंकी जाने बचाई जा सकी थी। हमारे सिरपर जो काले बादल उमड-घुमड रहे है उनके बावजूद मै यह आशा त्यागने को तैयार नही हूँ कि एक दिन ये बादल छँट जायेगे और इस अभागे देशमे साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित होगी। अगर मुझसे इसका प्रमाण देने को कहा जाये तो मेरा उत्तर यही होगा कि मेरी आशाका आधार मेरी श्रद्धा है और श्रद्धा किसी प्रमाणकी मुखापेक्षी नही होती।

मृत्यु-दण्ड

प्र० : क्या आप मृत्यु-दण्डको अपने अहिंसाके सिद्धान्तके विरुद्ध मानते हैं? यदि मानते हों तो स्वतन्त्र भारतमें आप इसके विकल्पके रूपमें किस सजाकी व्यवस्था करना चाहेंगे?

उ० बेशक, मै मृत्यु-दण्डको अहिंसाके विरुद्ध मानता हूँ। जीवन लेने का अधिकार तो उसीको है जो जीवन देता है। अहिंसामे किसी प्रकारकी सजाके लिए स्थान नही है। इसलिए अहिंसाके सिद्धान्तोंके अनुसार शासित होनेवाले राज्यमे हत्यारेको किसी पश्चात्ताप-गृहमें भेजा जायेगा और वहाँ उसे अपनेको सुधारने का पूरा अवसर दिया जायेगा। हर अपराध एक प्रकारका रोग है और उसका उपचार भी उसी तरहसे होना चाहिए।

ईश्वरेच्छा

प्र० : कोई सामान्य आदमी ईश्वरेच्छा और स्वयं अपनी इच्छाका अन्तर कैसे समझ सकता है?

उ० इसका उपाय यह है कि जिस बातको ईश्वरकी इच्छा मानने के पक्षमे उसके पास निश्चित प्रमाण न हो, ऐसी किसी भी बातको ईश्वरकी इच्छा न माने। ईश्वरकी इच्छाको समझने की शक्ति प्राप्त करने के लिए उचित प्रशिक्षण लेना आवश्यक है।

कांग्रेसके प्रति अपराध

प्र० : पिछले स्वातन्त्र्य-दिवस समारोहके दौरान यहाँ आदमपुर दोआबाकी कुछ कांग्रेस कमेटियोंने अप्रमाणित खादीके झण्डे बनवाये और कुछने बिल्लेकी तरह इस्तेमालके लिए कागजके झण्डे बनवाये। इन्हे बेचकर उन्होने कोष एकत्र किया। इस सम्बन्धमें पूछने पर उन्होने यह दलील दी कि हम तो कांग्रेसके लिए कोष एकत्र करना चाहते है और खादीके बिल्ले-झण्डे एक-एक पैसेमें बेचना हमें नहीं पुसाता, क्योंकि तब खुद हमारे लिए कुछ नहीं बच रहेगा। कई जगहोंमें मैंने मिल के कपड़ेके राष्ट्रीय झण्डे फहरते देखे और उनमें से कुछपर तो चरखेका निशान भी नहीं था। खुद मैं मानता हूँ कि चरखा और खादी तो हमारे राष्ट्र-ध्वजकी आत्मा हैं; और जो झण्डा अप्रमाणित खादीसे और उसपर चरखेका चित्र अंकित

किये बिना तैयार किया जाता है या कागजसे बनाया जाता है वह राष्ट्र-ध्वज कहलाने योग्य नहीं है।

उ० आपकी आपत्ति बहुत उचित है। जिन कांग्रेस कमेटियोंने कागजके झण्डों का इस्तेमाल राष्ट्र-ध्वजकी जगह किया या जिन्होंने मिलके कपड़े या अप्रमाणित खादीके झण्डे बनवाये अथवा जिन्होंने चरखेके निशानसे रहित झण्डे तैयार करवाये उन्होंने कांग्रेसके प्रति एक अपराध किया है। उन्होंने राष्ट्र-ध्वजके प्रति तनिक भी सम्मानकी भावनाका परिचय नहीं दिया। किसी भी चिथड़ेका प्रयोग झण्डेकी तरह नहीं किया जा सकता। वह तो निश्चित नमूनेके मुताबिक ही बनाया जाना चाहिए। यदि अपने राष्ट्र-ध्वजका सम्मान हम खुद नहीं करते तो फिर दूसरोंसे उसके प्रति सम्मानका भाव रखने की अपेक्षा करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। आपकी बात पढ़कर मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि केन्द्रीय कार्यालयको विभिन्न आकारोंके झण्डोंका एक खासा भण्डार अपने पास रखना चाहिए। किसीको भी अनधिकृत झण्डे का इस्तेमाल राष्ट्र-ध्वजकी तरह करने की छूट नहीं होनी चाहिए।

सेवाग्राम, २२ अप्रैल, १९४०
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-४-१९४०

१५. बड़ी-बड़ी पेढ़ियाँ क्या कर सकती हैं

श्री विट्ठलदास जेराजाणीने सिन्धिया हाउसके श्री शान्तिकुमारके[1] एक पत्रमें से निम्न अंश[2] मुझे लिख भेजा है:

> राष्ट्रीय सप्ताहमें खादी बेचने का हर सम्भव प्रयास किया जायेगा।... फिर क्यों नहीं बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंसे . . . अपने चपरासियोंकी पोशाकें बनाने के लिए खादी खरीदने का आग्रह किया जाये? . . . पिछले साल सिन्धिया कम्पनीने अपने चपरासियोंको खादीकी पोशाकें दी थीं और इस साल भी हम वैसा ही करने जा रहे हैं। . . . मैं सिन्धिया कम्पनीसे सम्बन्धित अन्य कम्पनियों को भी खादीकी पोशाकें बनवाने के लिए राजी करने का प्रयास कर रहा हूँ।
>
> मैं सिन्धिया कम्पनीके कार्यालयमें हाथसे बने कागजका उपयोग किये जाने के लिए भी प्रयत्न कर रहा हूँ।

१. शान्तिकुमार मोरारजी
२. इनके कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

श्री शान्तिकुमारके सुझावका मै हार्दिक समर्थन करता हूँ। मै तो इससे भी एक कदम आगे जाना चाहूँगा। कार्यालयके वरिष्ठ कर्मचारियोको भी अपनी पोशाकके लिए स्वेच्छासे खादीका इस्तेमाल करके आदर्श उपस्थित करना चाहिए, ताकि चाहे-अनचाहे खादीकी पोशाके पहननेवाले चपरासियोमे कोई हीन भावना नही आये। खादी समता स्थापित करने के प्रमुख साधनोंमें से है। कुछ ऐसा किया जाये जिससे चपरासी खादीकी पोशाके पहनने मे गौरवका अनुभव कर सकें। यह तभी सम्भव है जब वे देखेगे कि उनके मालिक भी उसी कपडेकी पोशाक पहनते है जिससे उनकी पोशाके बनी हुई है। मालिक अपने कर्मचारियोसे जितनी अधिक निकटता कायम करेगे, वर्ग-सघर्षकी कठिन समस्याके शान्तिपूर्ण समाधानकी सम्भावना उतनी ही बढेगी। इसलिए मै आशा करता हूँ कि अन्य पेढियाँ भी श्री शान्तिकुमारके प्रयास के महत्त्वको समझेगी। वास्तवमें तो अस्पताल, छात्रावास आदि सभी सार्वजनिक सस्थानोको इस चीजको अपनाना चाहिए।

हाथसे बने कागजके प्रयोगमे तो और भी कम कठिनाई है। क्योकि हाथसे बना अच्छा कागज मिलमे बने साधारण कागजसे हर तरहसे अधिक कलात्मक और बेहतर है, और खादी तथा मिलमे बने कपड़ोके मूल्योमे जैसा अन्तर है वैसा कोई अन्तर इनके मूल्योमे नही है। बडी-बडी पेढियोका कर्त्तव्य है कि वे यथासम्भव हाथसे बनी वस्तुओका प्रयोग करके लाखो आम लोगोके प्रति अपना ऋण अदा करे।

सेवाग्राम, २२ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-४-१९४०

१६. जमींदारोंके सम्बन्धमें

दक्षिण भारतके एक प्रथम श्रेणीके सरदारने निम्नलिखित टेढे सवाल[1] मेरे उत्तर देने के लिए भेजे है :

> १० फरवरीके 'हरिजन' के[2] पृष्ठ ४४२ की ४ से ६ तककी पंक्तियोंमें आप कहते है कि आप यूरोपीयों और [भारतीय] जमींदारों तथा पूंजीपतियोंको एक ही धरातलपर रखते है। मै समझता हूँ, सामान्य अर्थबोधक "जमींदार" शब्दमें आपने इनामदारों, ताल्लुकेदारों और बड़े भूमिपतियोंको भी शामिल माना है।
>
> १. क्या यह बात आपके ध्यानमें है कि जहाँ यूरोपीय विदेशी है और उनकी सारी कमाई या मुनाफा अन्य राष्ट्रोंको समृद्ध करने और उन्हें भारतके

१. इसके केवल कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे है।
२. देखिए खण्ड ७१, पृ० २१७।

शोषणके और भी शक्तिशाली साधन बनाने के लिए देशके बाहर चला जाता है, वहाँ जमींदार और इनामदार . . . भारतीय हैं . . . और उनकी सारी कमाई और बचत और यहाँतक कि उनकी फिजूलखर्ची भी इसी देशके अन्दर रहेगी? . . . इनमें से बहुतोंके हृदयमें देश-हितकी भी पूरी भावना है। . . .

२. आपके विचारसे एक राष्ट्रवादी जमींदार और एक राष्ट्रवादी गैर-जमींदारमें क्या अन्तर है?

३. स्वतन्त्र भारतमें आप जमींदारो और इनामदारो तथा पूंजीपतियोके लिए वास्तवमें क्या स्थान निर्धारित करेंगे? . . .

४. जमींदारों और इनामदारों तथा पूंजीपतियोकी जो अपनी मर्यादाएँ और प्रतिबद्धताएँ हैं, उनके रहते क्या उन लोगोके लिए आजकी कांग्रेसमें कोई स्थान है?

उत्तर:

१ यदि यूरोपीय भी स्वतन्त्र भारतके कानूनोका पालन करे तो मेरे लिए उनके और भारतीयोंके बीच कोई फर्क नही है। अहिंसाके सम्बन्धमें मेरे जो विचार है उनका ध्यान रखते हुए मै ऐसा फर्क कर भी नही सकता। मेरी योजनाके अन्तर्गत यूरोपीय प्रवासियोको इस देशका शोषण नही करने दिया जायेगा, जैसा कि उनमें से अधिकाश आज कर रहे है। देशभक्तोको देशकी स्वतन्त्रताके रूपमें पुरस्कार तो मिल ही चुका होगा। निजी स्वार्थोको ध्यानमे रखकर काम करनेवाले लोग देशभक्त नही हैं। यदि हम विशुद्ध न्याय, सच्ची समानता और यथार्थ भाईचारेकी बुनियाद पर एक राज्यकी स्थापना करते है तो यूरोपीय विदेशी नही रह जायेंगे। तब वे सिर्फ अपने इस अपनाये हुए देशकी भलाईमें ही अपनी प्रतिभाका उपयोग करने मे गर्व महसूस करेंगे।

मुझे इस बातको स्वीकार करन मे खुशी होती है कि बहुत-से इनामदार, जमीदार और पूंजीपति उतने ही देशभक्त है जितना कोई भी काग्रेसी है।

२. राष्ट्रवादी जमीदार गैर-जमीदारो की तरह रहने का प्रयास करेगा। वह अपने काश्तकारोको अपना साझेदार समझेगा, दूसरे शब्दोमें, वह अपनी जमीदारीको अपने काश्तकारोकी सौंपी थातीके रूपमें देखेगा और उसमें से अपनी मेहनत और पूंजीके बदले साधारण कमीशन लेगा। राष्ट्रवादी गैर-जमीदार जमीदारको अपना स्वाभाविक शत्रु नही समझेगा, बल्कि अपने साथ किये गये अन्यायका मार्जन जमीदारके हृदय-परिवर्तनकी पद्धतिसे करवाने का प्रयत्न करेगा। मैं पहले भी दिखा चुका हूँ कि यह कोई दीर्घ कालतक चलनेवाली गाथा नही है।

३. इसका उत्तर तो ऊपरकी बातोमें ही आ जाता है। उस अवस्थामे विभिन्न वर्गोका आपसी विरोध समाप्त हो जायेगा। लोगोंके बीच एक जड और कृत्रिम समानताकी कल्पना मैं नही करता। उनके बीच वैसी ही विविधता होगी जैसी एक वृक्षके विभिन्न पत्तोमें पाई जाती है। हाँ, इतना तो निश्चित ही है कि कोई भी

दरिद्र और बेरोजगार नही रहेगा, और न उच्च वर्ग और सामान्य जनताके बीच आजकी-सी विषमता रहेगी। मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि यदि पूर्ण अहिंसा राज्यकी नीति बन जाये तो हम बिना किसी सघर्षके आवश्यक समानता प्राप्त कर लेगे।

४ काग्रेसके स्पष्ट सिद्धान्तोमे विश्वास करनेवाले सब लोग काग्रेसमे शामिल हो सकते है। सच तो यह है कि काग्रेसके बहुत-से सदस्य पैसेवाले है। एक ही उदाहरण दूं तो जमनालालजी एक पूंजीपति है और काग्रेसकी कार्य-समितिके सदस्य भी है।

सेवाग्राम, २२ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-४-१९४०

१७. पत्र : श्रीमती के० एल० रलियारामको

सेवाग्राम
२२ अप्रैल, १९४०

प्रिय बहन,

आपके प्रश्नपर मै 'हरिजन' मे विचार कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अग्रेजी (नें० आ० इ० फाइल न० ७३)से, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। जी० एन० ६८३७ से भी

१८. पत्र : बलवन्तसिंहको

२२ अप्रैल, १९४०

चि० बलवतसिंह,

कल रात बात हो गई इसलिये यहा वही चीज दोहराता नही हू। कलकी मेरी बात बहूत समजने के लायक है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९३१)से

१९. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

सेवाग्राम
२२ अप्रैल, १९४०

प्रिय भगिनि,

मेरे लेखसे[1] जो अर्थ तुमने निकाला है वह नही है। यद्यपि मालासे कुछ प्रत्यक्ष लाभ नही होता है तो भी श्रद्धासे चलाती रहो। कोई रोज प्रत्यक्ष लाभ देखोगी ही। ११ व्रतके[2] बारेमे इतना ही। अगर उनमे विश्वास है तो उनका स्मरण करना अच्छा ही है। कोई रोज ईश्वर उसको पालनकी शक्ति देगा।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू
२ वेअर्स रोड,
लाहौर

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९९०)से

२०. तार : 'न्यूज क्रॉनिकल'को[3]

[२२ अप्रैल, १९४० या उसके पश्चात्][4]

प्रारम्भिक समझौतेपर पहुँचने के लिए नेताओकी समिति बुलाने का प्रस्ताव आकर्षक है, बशर्ते कि ऐसे नेता मनोनीत नही, बल्कि किसी स्वीकार्य पद्धतिसे निर्वाचित हो। यह मेरी निजी राय है। सहयोगियोसे परामर्श नही किया है।

गाधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-४-१९४०

१. देखिए खण्ड ७१, पृ० ४३५।

२. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, स्वदेशी, सर्वधर्म-समानत्व और स्पर्श-भावना।

३. यह निम्न तारके उत्तरमें भेजा गया था : "सभी हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले नेताओंकी एक समिति अन्तिम संवैधानिक व्यवस्थाकी दृष्टिसे आवश्यक प्रारम्भिक समझौतेपर पहुँचने का प्रयत्न करे, इस प्रस्तावके सम्बन्धमें आपने अपने दृष्टिकोणका जो स्पष्टीकरण भेजा है उसके लिए हम आपके आभारी हैं।"

४. न्यूज क्रॉनिकल का तार २२ अप्रैल, १९४० को प्राप्त हुआ था।

२१. सविनय अवज्ञा

कार्य-समितिने[1] इस बार सोच-समझकर ही कोई चौंकानेवाला या नया प्रस्ताव पारित नहीं किया। कारण, उसके सामने कोई कार्यक्रम नहीं था। सविनय अवज्ञाके कार्यक्रमका विकास तो मुझे करना है। लेकिन जिस आन्दोलनकी बात सोची जा रही है, उससे सम्बन्धित बहुत-से मसलोंपर समितिमें उपयोगी चर्चा हुई। मैंने समितिके सदस्योंमें जो-कुछ कहा, उसका सारांश यहाँ कुछ आवश्यक स्पष्टीकरणके साथ देना चाहता हूँ।

आज देशमें जैसी अव्यवस्था फैली हुई है उसके बावजूद अगर सविनय अवज्ञा आरम्भ की जाती है तो लोग उसे भी इस अव्यवस्थाका अंग न मान लें, इसके लिए यह जरूरी है कि हम इस अराजकतामें सविनय अवज्ञाके अन्तरको स्पष्ट रूपसे पहचान लें। उदाहरणके लिए, खाकसारोंका विद्रोह सबकी रायमें खुल्लमखुल्ला हिंसा है।[2] जिन किसानोंने गया और किउलके बीच रेलगाड़ियोंको रोका था वे अहिंसाकी आड़में हिंसा कर रहे थे। अहिंसाकी कल्पनाके अनुसार तो वे दुहरे दोषी थे, क्योंकि कहते हैं, वे कांग्रेसी थे। रेलगाड़ीको रोकना निस्सन्देह अवज्ञा है। और जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, उसके रामगढ़के प्रस्तावके[3] अनुसार कोई भी कांग्रेसी मेरी अनुमतिके बिना न तो अकेले और न सामूहिक रूपसे ही सविनय अवज्ञा कर सकता है। मैंने पहले ही कहा है कि प्रो० रंगाकी अवज्ञा भी विनययुक्त नहीं थी।[4] उनकी अवज्ञाकी मैंने जो आलोचना की है, उनके मित्रोंने मुझसे उसे वापस ले लेने के लिए कहा है। मैं उनका एक खास मित्र होने का दावा करता हूँ। मेरी आलोचनाका विरोध करनेवाले जब उनसे परिचित हुए होंगे, शायद उससे भी पहले हम दोनों मित्र बन चुके थे। और इतना नजदीकी मित्र होने के कारण ही मैंने उनकी कार्रवाईकी स्पष्ट शब्दोंमें भर्त्सना की। मुझे पूरा विश्वास है कि वे मुझे गलत नहीं समझेंगे। जो भी हो, जब उनके जैसा विद्वान् आदमी जान-बूझकर अनुशासनहीनताकी कार्रवाई करता है तो उसे मैं अपने लिए जल्दबाजीमें कोई कदम न उठाने की चेतावनी मानता हूँ।

१. जिसकी बैठक वर्धामें १५ से १९ अप्रैल तक हुई थी।

२. पंजाबमें खाकसारोंके उकसाने के कारण बहुत हिंसा और फसाद हो रहे थे, इस सम्बन्धमें गांधीजी के विस्तृत अभिमतके लिए देखिए खण्ड ७१, पृ० ४५५-५७।

३. देखिए खण्ड ७१, पृ० ३९३-४००।

४. देखिए खण्ड ७१, पृ० ४६१-६२।

अब यदि सविनय अवज्ञा सचमुच विनययुक्त है तो यह विरोधीको भी अवश्य ही ऐसी दिखाई पड़नी चाहिए। उसे अवश्य ही ऐसा लगना चाहिए कि इस प्रतिरोधका उद्देश्य उसको किसी भी प्रकारसे हानि पहुँचाना नही है। अभी तो सामान्य अंग्रेज यही समझता है कि अहिंसा एक मुखौटा-भर है। मुस्लिम लीगके लोग यह समझते हैं कि सविनय अवज्ञा अंग्रेजोकी अपेक्षा उनके खिलाफ अधिक है। मै पूरी दृढताके साथ कहता हूँ कि जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मै अंग्रेजोको — खासकर ऐसे समय जब उनके सामने जीवन-मरणका प्रश्न खड़ा है — परेशान करने की कोई भी इच्छा नहीं रखता हूँ। सविनय अवज्ञाके माध्यमसे कांग्रेससे मै केवल इतना ही करवाना चाहता हूँ कि वह अंग्रेजी सरकारको अपने उस नैतिक प्रभावके लाभसे वंचित कर दे जो उसे कांग्रेसके सहयोग करने से मिलेगा। इस पूरे उपमहाद्वीपपर काबिज होने के फल-स्वरूप अंग्रेजी सरकार भारतके भौतिक साधनो तथा जनशक्तिका तो उपयोग अपने लाभके लिए कर ही रही है।

कांग्रेस जब सविनय अवज्ञासे अंग्रेजोको भी परेशान करने की इच्छा नही रखती, तो मुस्लिम लीगको परेशान करना तो वह क्या चाहेगी। और मै कांग्रेसकी ओरसे यह बात जितने विश्वासके साथ अंग्रेजोंके सम्बन्धमे कह सकता हूँ उससे बहुत अधिक विश्वास के साथ मुस्लिम लीगवालो के बारेमे कह सकता हूँ। एक तरफ सन्देह और सरासर गलतबयानीका बाजार गर्म है तो दूसरी तरफ कांग्रेसके अन्दर और उसके बाहर अव्यवस्थाका बोलबाला है। ऐसी परिस्थितिमे सविनय अवज्ञा शुरू करने के पहले मुझे हजार बार सोचना पड़ेगा।

अभी तो जहाँतक मै देख सकता हूँ, सामूहिक सविनय अवज्ञा असम्भव है। हमारे सामने ये विकल्प हैं — या तो बडे पैमानेपर लेकिन बहुत मर्यादित ढंगकी व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा की जाये, अथवा केवल मै ही यह काम करूँ। जो भी हो, सम्पूर्ण अविकृत कांग्रेस संगठन तथा जिन करोड़ो लोगोने कांग्रेसके सदस्य न होते हुए भी उसे हमेशा अपना मौन परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली सहयोग दिया है, उनका समर्थन तो हर हालतमें आवश्यक है।

इन स्तम्भोमे मै बार-बार यह बता चुका हूँ कि कांग्रेसजन और करोड़ो मूक लोग इसमें जो सबसे प्रभावकारी और प्रत्यक्ष सहयोग दे सकते हैं वह यही कि सविनय अवज्ञा सहज रूपसे जो स्वरूप ग्रहण करे उसमे वे कोई हस्तक्षेप नही करें और चरखा चलाते रहे तथा अन्य सभी वस्त्रोका त्याग करके खादीका उपयोग करते रहे। इग्लैण्डमें प्रिम-रोज दिवसपर सब लोग अपने कपड़ो आदिमे प्रिम-रोज फूल खोसते है। अगर यह मान ले कि इस प्रथाका कोई महत्त्व है तो मानना पडेगा कि यह बात कही अधिक महत्त्वपूर्ण है कि लोग एक खास तरहके वस्त्रका उपयोग करें और जो उद्देश्य उन्हे इतना अधिक प्रिय है उसे सफल बनाने के लिए खास किस्मके श्रमका दान करे। उनके द्वारा खादीकी शर्त पूरी किये जाने का मतलब मै यह समझूँगा कि उन्होने अस्पृश्यताका त्याग कर दिया है और वे जाति, रंग या धर्मका कोई भेद माने बिना सबको केवल भ्रातृत्वकी भावनासे देखते है।

जो इतना करेंगे वे उतने ही बड़े सत्याग्रही समझे जायेंगे जितने बड़े सत्याग्रही सविनय अवज्ञा करने के लिए चुने गये लोग माने जायेंगे।

सेवाग्राम, २३ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-४-१९४०

२२. पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ अप्रैल, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आजका यह पत्र शिकायतके तौरपर होगा। मन तो बहुत हो रहा था कि लॉर्ड जेटलैण्डके भाषणके[1] बारेमें समाचार-पत्रोंको लिखूँ, लेकिन फिर अपनेको रोक लिया। जो-कुछ कहना चाहता था वह इतना गम्भीर था कि उसे जनताके सामने नहीं रखा जा सकता था। इसलिए यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे सिर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। मैं गलतियोंसे बचना चाहता हूँ।

[भाषणमें] भारतके साथ न्याय करनेकी अनिच्छा ध्वनित होती है। वे चाहें तो कह सकते हैं, "निपटारेके लिए जो बातें जरूरी हैं, हम नहीं करना चाहते, आपको या तो उसके लिए लड़ना होगा या जो-कुछ हम दे रहे हैं उसे स्वीकार करना होगा।" यह सीधा उत्तर होगा। जिन समस्याओंके समाधानकी चिन्ता दोनों पक्षोंको समान रूपसे है उन्हें वे कांग्रेसके खिलाफ क्यों पेश करते हैं? हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न, अल्पसंख्यकोंका सवाल और ऐसी ही दूसरी समस्याओंका हल तो दोनों चाहते हैं। कांग्रेसका कहना है कि उनका सच्चा समाधान संविधान-सभा या उसकी बराबरीकी किसी चीजमें ही मिल सकता है। खुद ब्रिटेनवालोंके कथनानुसार, देशी नरेश तो आपकी ही सृष्टि हैं। यह सच है कि जब आप लोग आये उस समय वे यहाँ थे। वैसे तो और भी बहुत-सी संस्थाएँ थीं, लेकिन आपने जिन्हें अपने अस्तित्वके लिए आवश्यक समझा उन्हें कायम रहने दिया और जिन्हें बाधक

१. १८ अप्रैलको लॉर्ड सभामें बोलते हुए भारत-मन्त्री (१९३५-४०) लॉर्ड जेटलैण्डने कहा था: "अगर एकीकृत भारतकी कल्पनाको साकार होना है तो पहले भारतके विभिन्न समुदायोंके बीच काफी हदतक पारस्परिक सहमति होना आवश्यक है। . . . लेकिन बात दरअसल यह है कि कांग्रेस पार्टीने बहुत-से मुसलमानोंके मनमें सन्देह उत्पन्न कर दिये हैं, जिन्हें दूर भी नहीं कर सकती है। क्या कांग्रेस भारतकी एकताका दरवाजा बन्द करने से बाज आयेगी? उसीके उत्तरपर इस देशका भविष्य निर्भर है।" **इंडियन एनुअल रजिस्टर**, जनवरी-जून १९४०, पृ० ६२।

माना उन्हे नष्ट कर दिया।[1] इस किस्सेको आगे वढाना निरर्थक है। वैसे अगर आप चाहे तो मै यह कर सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि इस उदाहरण से वाकी वाते आप खुद ही समझ जायेंगे।

क्या आप मेरी शिकायते, आप जिस रूपमे भी ठीक समझे, लॉर्ड जेटलैण्ड तक पहुँचा देने की कृपा करेंगे? अगर मैंने उनकी वातोका गलत अर्थ लगाया हो तो आप मेरी गलती मुझे वतायेंगे। इसके लिए मै आपका आभारी होऊँगा।

आपकी और उनकी व्यस्ततासे मै अवगत हूँ। लेकिन जो काम आप लोगोंके हाथमें है, यह भारतीय प्रश्न उसका अभिन्न अग है—है न?

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

मुद्रित अग्रेजी नकलसे लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य. राष्ट्रीय अभिलेखागार

२३. पत्र : बलवन्तसिहको

२४ अप्रैल, १९४०

चि० वलवतसिह,

मै तो जानता हि था कि आखरमे तुमको सत्यकी समज पडेगी। काफी समजाने को दिल चाहता है लेकिन समय नही है। धीरजसे सव-कुछ अपने-आप स्पष्ट हो जायेगा। जो नुकसान देखा जाय उसकी मुझे खवर देना चाहीये। वी० ए० का खत पढ़ लिये। आने देने के पहले उसकी हाजत [आवश्यकता]की खवर निकालो।

वापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९३२) से

१. इसके उत्तरमें लॉर्ड लिनलिथगो ने अपने २९ तारीखके पत्रमें लिखा था: "लेकिन मुझे यह भी लगता है कि इस मामलेके ऐतिहासिक तथ्योंकी ओरसे या जिस ऐतिहासिक परिस्थितिमें देशी नरेशोंके साथ सम्राट्की सरकारके सम्बन्धका उदय हुआ उसकी ओरसे हम आँखें नहीं चुरा सकते।"

२४. तार : रामेश्वरदास पोद्दारको

वर्धागंज
२६ अप्रैल, १९४०

रामेश्वरदास पोद्दार
धूलिया

वालकोवाकी[1] नीदमे वाधा मत डालना। जरूरी हो तो उससे कल्याणमे मिल लेना।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७३८) से

२५. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ अप्रैल, १९४०

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मै 'हरिजनवन्धु' कभी पढ ही नही पाता। आज ही अनायास हाथमे आया, और तुम लिखते हो वही वाक्य मैंने पढा। वाक्य मुझे भी खटका। आज ही तीसरे पहर तुम्हारा पत्र मिला। कैसे आश्चर्यकी वात हुई, अथवा कैसा संयोग घटित हुआ?

तुम्हारे कामके वारेमें वल्लभभाईसे वाते तो हुई थी। उन्होने कहा था, मदद भेजेंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्ही शामलदास तथा काकुको[2] लिखना और उसका परिणाम मुझे वताना। कितने पैसे दिये जाते थे?

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७३ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

१. बालकृष्ण भावे, विनोवा भावेके अनुज, जो आज भी समाज-सेवा में रत हैं।
२. पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणी

२६. पत्र : जमना गांधीको

[२६ अप्रैल, १९४०][1]

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। ईश्वरने हमें जो शक्ति दी है, उसका उपयोग करके सन्तुष्ट रहना चाहिए। कन्हैयाका[2] कामकाज तो ठीक चल ही रहा है। अब उसने डार्करूम बनाने का निश्चय किया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७३ से भी, सौजन्य नारणदास गांधी

२७. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

२६ अप्रैल, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारे लिए उपाय सरल है। इतना ही निश्चय कर लो कि अशान्तिको यहीं बैठे हुए दूर करोगे, फिर चाहे जो हो जाये। प्यारेलालके बारेमें तो तुम समझ गये हो, इसलिए वह प्रश्न ही नहीं रह जाता। तुम अपनेको पराधीन मानो ही मत। अथवा यह मानो कि मनुष्य अपने मनोविकारोंका ही गुलाम बनता है, बाह्य वातावरणका नहीं, अत यह गुलामी केवल एक मानसिक स्थिति है।

कंचनका तो ठीक हो गया है। वह फिलहाल पचगनी जाये और अपने अच्छी हो जानेतक सेवा करे। उसका स्वस्थ होना और स्वस्थ बने रहना उसके हाथमें है। जैसे तुम स्वतन्त्र हो, वैसे ही वह भी स्वतन्त्र है। उसके लौटने के बाद अगर घर बसाना चाहोगे तो विचार करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४६) से। सी० डब्ल्यू० ७०८२ से भी, सौजन्य: मुन्नालाल ग० शाह

१. यह और पिछला पत्र दोनों एक ही कागजपर लिखे गये थे।

२. जमना गांधीका पुत्र

२८. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

सेवाग्राम
२६ अप्रैल, १९४०

चि० हरिभाऊ,

तुम्हारा खत मिला। अजमेरसे खत मिलने की प्रतीक्षा कर रहा हूं। सरकारी नोटका पूरा उत्तर देने की ताकत हमारेमे होनी चाहिए।[1] तुम्हारी प्रकृति अच्छी होगी।

बापुके आशीर्वाद

गांधीजी और राजस्थान, पृ० २५२ के सामने दी गई प्रतिकृतिसे। सी० डब्ल्यू० ६०८९ से भी, सौजन्य · हरिभाऊ उपाध्याय

२९. पत्र : अर्नेस्ट ए० ब्रैनको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ अप्रैल, १९४०

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं तो खुद ही अभी अन्धकारमे टटोल रहा हूँ और जिसका आपने उल्लेख किया है उस दिशामे प्रयोग कर रहा हूँ। अगर यह सफल हो गया तो संसारको एक अचूक शान्ति-योजना प्रदान करेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री अर्नेस्ट ए० ब्रैन
५५३२ केनवुड एवेन्यू
शिकागो

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०५३६) से

१. देखिए "खतरेका सकेत", पृ० १-२, "अजमेर-काण्ड", पृ० ३९-४१ तथा "अजमेर", पृ० ४८-५०।

३०. एक अंग्रेजका सुझाव

एक अग्रेज मित्रने यो लिखा है[1]

> आज भी हम यह मानकर चल सकते है कि मुसलमान "पाकिस्तान" से वहुत-कुछ कम स्वीकार कर लेगे। परन्तु मुश्किल यह है कि इस प्रश्नके समझौतापरक समाधानमें जितना अधिक विलम्व होगा "पाकिस्तान" की माँग उतनी ही जोर पकड़ती जायेगी, जिसके फलस्वरूप गृह-युद्ध या विभाजन यही दो विकल्प रह जायेंगे। कुछ लोगोंका यह विचार है कि अभी तो घटनाएँ क्या मोड़ लेती है, यह देखते हुए प्रतीक्षा करने के अलावा और कुछ करने लायक नहीं है। मेरी समझसे यह विचार घातक है। अब ब्रिटेनका धर्म यह है कि वह समझाने-बुझाने और राजनयिकताकी अपनी सारी शक्तिका उपयोग करके सम्वन्धित पक्षोंको समझौता करने के लिए विवश कर दे।
>
> मुद्देकी बात यह है कि केन्द्रीय सत्ता किनके हाथोमें हो—हिन्दुओके या मुसलमानोके? इस प्रश्नपर कांग्रेसको भारी रियायतें देने के लिए तैयार रहना चाहिए।... यदि कांग्रेसने शीघ्र ही इस वास्तविकताको स्वीकार नहीं किया तो मुझे आशंका है, स्थिति इतनी विगड़ जायेगी कि विभाजन, यदि एकमात्र नहीं तो, सबसे अच्छा विकल्प अवश्य बन जायेगा।...

निस्सन्देह, अग्रेज सरकार वहुत-कुछ कर सकती है। उसने शक्ति-प्रयोगसे वहुत-कुछ किया है। शक्ति-प्रयोग द्वारा वह सम्वन्धित पक्षोको किसी समझौतेपर पहुँचने को मजबूर कर सकती है। लेकिन उतनी दूर जाने की आवश्यकता नही है। अभीतक तो उसने उचित समाधानका रास्ता रोका ही है। अपने इस कथनके प्रमाणके लिए मै माननीय पत्र-लेखकको 'हरिजन' पढने की सलाह देता हूँ। अग्रेज सरकारको तो केवल एक ही चीज करनी है—अपने रुखमे परिवर्तन। क्या वह ऐसा करेगी? भारतपर अपना नियन्त्रण वह केवल फूट डालो और राज करो की नीतिके सहारे ही वनाये रख सकती है। मुसलमानो और हिन्दुओके वीच एक सजीव एकता कायम हो जाये, यह उसके शासनके लिए खतरनाक है। इस एकताका अर्थ होगा उसके शासनकी समाप्ति। इसलिए मुझे तो ऐसा लगता है कि सच्चा समाधान—वास्तविक नही तो सम्भाव्य—उसके शासनकी समाप्तिके वाद ही आयेगा।

१. यहाँ केवल कुछ अश ही दिये जा रहे है।

पाकिस्तानकी धमकीके सामने किया ही क्या जा सकता है ? यदि यह धमकी नही, एक वाछनीय लक्ष्य है तो इसे रोका ही क्यो जाये ? परन्तु यदि यह अवाछनीय है और इसका अर्थ केवल यह है कि इसकी आडमे मुसलमान कुछ ज्यादा हासिल कर ले तो कोई भी समाधान अन्यायपूर्ण होगा। यह स्थिति तो कोई समाधान न हो पाये, इससे भी बदतर होगी। इसलिए मै पूरी तरहसे इस धमकीके समाप्त होनेतक प्रतीक्षा करने के पक्षमे हूँ। भारतकी स्वतन्त्रता एक सजीव वस्तु है। उसके किसी आभाससे काम नही चलेगा। आज समस्त ससार नव-जन्मकी प्रसव-पीडासे गुजर रहा है। एक क्षणिक लाभके लिए कुछ करना भ्रूणहत्याके समान होगा।

मै सकुचित हिन्दुत्व या सकुचित इस्लामके दायरेमे नही सोच सकता। जोड-तोड़कर तैयार किये गये किसी समाधानमे मेरी कोई रुचि नही है। भारत एक बड़ा देश है, ऐसी विविध सस्कृतियोसे बना एक महान् राष्ट्र है जिनमे से प्रत्येकका रुझान शेष सभीके पूरकका काम करते हुए आपसमे एक-दूसरेसे मिल जाने की ओर है। यदि मुझे इस प्रक्रियाके सम्पन्न होनेतक प्रतीक्षा करनी है तो मै अवश्य करूँगा। सम्भव है, यह मेरे जीवन-कालमे पूरी न हो पाये। मै इस विश्वासके साथ कि समय आने पर यह होकर रहेगा, मरना भी पसन्द करूँगा। उस समय मुझे यह सोचकर प्रसन्नता होगी कि मैने इस प्रक्रियाके मार्गमे कोई बाधा नही डाली। इस शर्तके साथ मै मेल-जोल कायम करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ। मेरा जीवन समझौतोसे ही बना है, लेकिन ये समझौते ऐसे रहे है जो मुझे अपने लक्ष्यके नजदीक लाये है। पाकिस्तान विदेशी प्रभुत्वसे बदतर नही हो सकता। अन-चाहे ही सही, विदेशी प्रभुत्वके अधीन तो मै रहता ही आया हूँ। यदि ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा हुई, तो मुझे अपने [हिन्दू-मुस्लिम एकताके] स्वप्न-भंगका असहाय साक्षी भी बनना ही पड़ेगा। लेकिन मै नही मानता कि मुसलमान वास्तवमे भारतको खण्डित करना चाहते है।

सेवाग्राम, २९ अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३१. हिन्दू-मुस्लिम गुत्थी

विभाजनके प्रस्तावने[1] हिन्दू-मुस्लिम समस्याका रूप ही बदल दिया है। मैंने तो इसे एक असत्य कहा है। इसके साथ कोई समझौता नही हो सकता। साथ ही मैंने यह भी कहा है कि यदि आठ करोड़ मुसलमान विभाजन चाहते ही है तो उसका चाहे जितना हिंसक या अहिंसक विरोध किया जाये, दुनियाकी कोई ताकत उसे रोक नही सकती। किन्तु किसी सम्मानजनक समझौतेके आधारपर विभाजन सम्भव नही है।

यह तो इसका राजनीतिक पहलू हुआ। लेकिन जो राजनीतिक पहलूसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उस धार्मिक और नैतिक पहलूका क्या होगा? कारण, विभाजनकी माँगकी जड़मे यही विश्वास तो काम कर रहा है कि इस्लाम एक ऐसा भ्रातृसघ है जिसमें मुसलमानोंके अतिरिक्त और किसीके लिए स्थान नही है और वह हिन्दू-विरोधी है। यह अन्य धर्मोके भी विरुद्ध है अथवा नही, यह नही कहा गया है। विभाजनकी हिमायत करनेवाली जो अखबारी कतरने मुझे देखने को मिलती है उनमे हिन्दुओको लगभग अछूत बताया जाता है। उनके अनुसार हिन्दुओ या हिन्दुत्वसे किसी भी अच्छाईकी आशा नही की जा सकती। हिन्दू-शासनमे रहना एक पाप है। यहाँतक कि सयुक्त हिन्दू-मुस्लिम शासनकी बात भी नही सोची जा सकती। इन कतरनोसे यह भी प्रकट होता है कि हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच आपसी सघर्षकी स्थिति तो है ही, और अब उन्हे अन्तिम लड़ाईके लिए तैयारी करनी चाहिए।

एक ऐसा भी समय था जब हिन्दू यह सोचते थे कि मुसलमान उनके स्वाभाविक शत्रु है। परन्तु हिन्दू-धर्मकी यह प्रकृति रही है कि वह अन्तमे अपने शत्रुसे भी समझौता करके उसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यह प्रक्रिया अभी पूरी नही हुई थी। मानो विधाताने हिन्दू-धर्मको उसके अपराधोके लिए दण्डित किया हो, मुस्लिम लीगने भी वही खेल शुरू कर दिया और मुसलमानोको यह सीख दी कि दोनो संस्कृतियोका मिश्रण हो ही नही सकता। इस विषयपर मैंने अभी श्री अतुलानन्द चक्रवर्तीकी लिखी एक पुस्तिका पढी है। उसमे यह दिखाया गया है कि जब इस्लामका सम्पर्क हिन्दू-धर्मके साथ हुआ उसी समयसे दोनो धर्मोके श्रेष्ठ विचारक एक-दूसरेके धर्मकी अच्छाइयोको देखने और एक-दूसरेके बीच जो सतही असमानता है उसके बजाय दोनोकी आन्तरिक समानतापर जोर देने का

१. अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने अपनी लाहौरकी बैठकमें २३ मार्चको एक प्रस्ताव पास करके यह विचार व्यक्त किया कि ऐसी कोई संवैधानिक योजना जिसका आधार क्षेत्रीय पुनर्व्यवस्था और स्वतन्त्र मुस्लिम राज्योंकी स्थापना न हो, व्यावहारिक नही होगी।

प्रयास करते रहे है। लेखकने भारतमे इस्लामके इतिहासको अच्छे रूपमे पेश किया है। यदि उन्होने इसमे सत्य और सत्यके सिवाय कुछ नही कहा है तो यह एक श्रेष्ठ पुस्तिका है, जिसे पढकर सभी हिन्दू और मुसलमान लाभान्वित हो सकते है। लेखकने सर शफात अहमद खाँसे पुस्तिकाके लिए एक अनुकूल और विचारपूर्ण प्राक्कथन और अन्य कई मुसलमानोके भी प्रशसापत्र प्राप्त किये है। पुस्तिकामे प्रस्तुत किये गये तथ्य यदि भारतमे इस्लामके सच्चे विकासको प्रतिबिम्बित करते है तो फिर मानना पडेगा कि विभाजनकी हिमायत इस्लाम-विरोधी है।

धर्म मनुष्यको ईश्वरसे और मनुष्यको मनुष्यसे जोडता है। क्या इस्लाम मुसलमानको केवल मुसलमानसे ही जोडता है और हिन्दूको उसका वैरी बनाता है? पैगम्बरने जो शान्तिका सन्देश दिया वह क्या केवल मुसलमानोके ही हितमे और केवल मुसलमानोके आपसी सम्बन्धके विषयमे ही था? क्या उनका सन्देश यह था कि हिन्दुओ और गैर-मुसलमानोके खिलाफ युद्ध करते रहो? क्या आठ करोड मुसलमानोमे वही भावना भरी जानी है, जिसे मै केवल विषकी ही सज्ञा दे सकता हूँ। जो लोग मुसलमानोके मस्तिष्कमे यह विष भर रहे है वे इस्लामका सबसे बडा अहित कर रहे है। मै जानता हूँ कि यह इस्लाम नही है। मै मुसलमानोके साथ और उनके बीच एक-दो दिन नही, बल्कि लगातार करीब बीस वर्षोतक रहा हूँ और उनसे काफी घनिष्ठ होकर रहा हूँ। किसी भी मुसलमानने मुझे यह नही सिखाया कि इस्लाम हिन्दू-विरोधी धर्म है।

सेवाग्राम, २९ अप्रैल, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३२. अहिंसा किस कामकी?

एक भारतीय मित्र लिखते है[1]

> कल रायटरकी रिपोर्टमें बड़े करुण शब्दोंमें वर्णन किया गया है कि बमों और मशीन-गनोंकी गोलियोकी बौछारके बीच नॉर्वेवासी किस प्रकार बिलकुल पस्तहिम्मत और आतंकित होकर शहरोंको खाली कर रहे है।... हिंसाकी निरर्थकता और साथ ही ... उसकी अस्थायी प्रभावकारिता भी सिद्ध हो रही है।... हम आशा करे कि हिंसाकी निरर्थकता अन्ततः सबकी समझमें आ जायेगी और विश्वमें एक नया युग अवतीर्ण होगा। लेकिन क्या हम सचमुच विश्व-समस्याके समाधानमें अहिंसक योग दे रहे है? नॉर्वे, स्वीडन और डेन-

१. यहाँ इसके कुछ अश ही दिये जा रहे है।

मार्कके लिए हमारी अहिंसा किस कामकी है ? क्या हम वस्तुतः जर्मनीको इस तरह चालाकी करने का मौका नहीं दे रहे हैं ? यह सच है कि ब्रिटेनको हम सिर्फ परेशान कर रहे हैं -- इससे ज्यादा कुछ नहीं, और शायद हम यह भी कह सकते हैं कि ऐसी परेशानी अनिवार्य है और हम जान-बूझकर उसे परेशानीमें नहीं डाल रहे हैं। . . . ब्रिटेनका हृदय-परिवर्तन करने में हमारे सफल होने की सम्भावना नहीं दिखाई देती। और नॉर्वे-जैसे आक्रान्त देश कभी भी हमारे रुखके औचित्यको नहीं समझ पायेंगे। हमारे वर्तमान रुखको देखते हुए अगर बाहरी दुनिया अतीतमें चीन और स्पेन-जैसे आक्रान्त देशोंको हमारे द्वारा दी गई सहायताका गलत अर्थ लगाये तो उसमें कुछ अनुचित नहीं होगा। क्या आजके आक्रान्त देशोंकी अपेक्षा वे हमारी सहायताके अधिक उपयुक्त पात्र थे ? अगर नहीं थे तो फिर यह भेद-भाव क्यों ? . . . आपने पिछले युद्धके दौरान सेनामें लोगोंको भरती करने में बड़ा जोरदार हिस्सा लिया था, लेकिन अपने उस आचरणपर आपने कभी भी खेद प्रकट नहीं किया है। आपका इस बारका रुख उस समयके रुखसे बिलकुल भिन्न है, यद्यपि आप कहते यह हैं कि दोनों रुख सही हैं।

डेनों और नॉर्वेवासियों-जैसे सुसंस्कृत तथा निरीह लोगोंपर जो-कुछ बीत रहा है, पत्र-लेखक भाई उसपर विलाप करनेवाले अकेले व्यक्ति नहीं हैं। यह युद्ध हिंसा की निरर्थकता दिखा रहा है। अगर हिटलर मित्रराष्ट्रोंपर विजयी हो जाते हैं तो भी वे कभी भी इंग्लैण्ड और फ्रान्सको अपना गुलाम नहीं बना पायेंगे। इसका मतलब दूसरा युद्ध होगा। और अगर मित्रराष्ट्र ही विजयी हो जाते हैं तो उससे भी दुनियाकी दशा कोई सुधर नहीं जायेगी। वे अधिक शिष्टतासे भले काम लें, लेकिन निष्ठुरतामें पीछे नहीं रहेंगे। हाँ, अगर वे युद्धके दौरान अहिंसाका सबक ले लें और हिंसासे प्राप्त लाभका त्याग कर दें तो बात दूसरी होगी। अहिंसाकी पहली शर्त जीवनके सभी क्षेत्रोंमें सर्वतोमुखी न्याय है। मानव-स्वभावको देखते हुए उससे ऐसी आशा करना शायद बहुत ज्यादा हो। लेकिन मैं ऐसा नहीं सोचता। मनुष्य-जातिकी ऊपर उठने या नीचे गिरनेकी क्षमताके सम्बन्धमें किसीको कोई अटल सिद्धान्त तय करने की हिमाकत नहीं करनी चाहिए।

सुसंस्कृत पाश्चात्य शक्तियोंको भारतकी अहिंसासे कोई राहत नहीं मिली है तो इसीलिए कि उसकी अहिंसा अब भी अकिंचन कोटिकी ही है। इसकी व्यर्थताको देखने के लिए हम उतनी दूर क्यों जायें ? कांग्रेसकी अहिंसाकी नीतिके बावजूद हम भारतीयोंमें आपसमें ही कलह-क्लेश मचा हुआ है। खुद कांग्रेसको अविश्वासकी दृष्टिसे देखा जाता है। जबतक कांग्रेस या ऐसी कोई और जन-संस्था अपने आचरण द्वारा सबलकी अहिंसाको साकार करके नहीं दिखाती तबतक दुनियाको इसकी छूत नहीं लग सकती।

स्पेन और चीनको भारतने केवल नैतिक सहायता दी थी। जो स्थूल सहायता दी गई थी वह तो नैतिक सहायताका प्रतीक-मात्र थी। शायद ही कोई भारतीय हो जो बात-की-बातमे अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठनेवाले नॉर्वे और डेनमार्कके प्रति वैसी ही सहानुभूति नही रखता हो जैसी सहानुभूति वह चीन और स्पेनके प्रति रखता था। यद्यपि डेनमार्क और नॉर्वेका मामला चीन और स्पेनके मामलेसे भिन्न है, किन्तु इन दोनोकी तबाही उनकी अपेक्षा शायद बहुत अधिक हुई है। यो तो चीन और स्पेनके बीच भी काफी अन्तर है, लेकिन जहाँतक उनके प्रति सहानुभूतिकी बात है, दोनोमे कोई अन्तर नही है। दरिद्र भारतके पास इन देशोको भेजने के लिए सिवाय अहिंसाके और कुछ नही है। लेकिन जैसा कि मैने कहा है, अभीतक यह भी कही भेजी जाने लायक वस्तु नही बन पाई है। जब भारत अहिंसाके मार्गसे स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगा तब वह अवश्य वैसी वस्तु बन जायेगी।

अब रहा ब्रिटेनका मामला। कांग्रेसने उसे किसी तरह परेशान नही किया है। मै पहले ही घोषित कर चुका हूँ कि मै ऐसा कुछ नही करूँगा जिससे ग्रेट ब्रिटेनको परेशानी हो। अगर भारतमे अराजकता हो तो यह ब्रिटेनके लिए परेशानीकी बात हो सकती है। और जबतक कांग्रेस मेरे अनुशासनमे है तबतक वह अराजकताको कोई समर्थन नही देगी।

कांग्रेस अगर नही कर सकती है तो यह कि वह ब्रिटेनको अपने नैतिक प्रभावका लाभ दे। नैतिक प्रभावका लाभ यन्त्रवत् दिया भी नही जा सकता। उसे तो ब्रिटेनको खुद ही हासिल करना होगा। शायद ब्रिटिश राजनयिक यह मानते ही नहीं है कि कांग्रेसके पास देने को ऐसी कोई पूँजी है। शायद वे मानते है कि इस युद्धरत विश्वमे उन्हे कुल आवश्यकता केवल भौतिक सहायताकी ही है। अगर वे ऐसा मानते है तो बहुत गलत नही करते। युद्धमे तो नैतिकता निषिद्ध वस्तु है। पत्र-लेखक भाई यह कहकर ब्रिटेनके सम्बन्धमे अपना पूरा पक्ष ही हार बैठे है कि "ब्रिटेनका हृदय-परिवर्तन करने मे हमारे सफल होने की सम्भावना नही दिखाई देती।" मैं इग्लैण्डका बुरा नही चाहता। ब्रिटेनकी हारसे मुझे बहुत दुःख होगा। लेकिन जबतक ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमे अपना दामन पाक नही कर लेता तबतक उसे कांग्रेसके नैतिक प्रभावका लाभ नहीं मिल सकता। नैतिक प्रभाव अपना काम कर सके, उसकी कुछ शर्ते होती है और उन शर्तोमे कभी कोई परिवर्तन नही हो सकता।

मेरे मित्रको खेड़ामे भरतीके सम्बन्धमें मैंने जो काम किया था उसमे और आज मेरा जो रुख है उसमे निहित अन्तर दिखाई नही देता। पिछले विश्व-युद्धके दौरान नैतिक प्रश्न नही उठाया गया था। कांग्रेस तब अहिंसाके लिए प्रतिश्रुत नही थी। आज जन-साधारणपर उसका जो नैतिक प्रभाव है वह तब नही था। उस समय मैंने जो-कुछ किया, अपनी ओरसे और अपनी जिम्मेदारीपर किया। यहाँतक कि मै युद्ध-परिषद्मे भी शामिल हुआ था। और मैंने जो बात कही थी उसे ईमानदारीसे पूरा कर सकूँ, इसके लिए अपने स्वास्थ्यको खतरेमे डालकर भी मै भरतीका काम

कर रहा था। मैंने लोगोसे कहा कि अगर आप हथियारवन्द होना चाहते हैं तो सेनामें काम करना उसका सबसे सुनिश्चित रास्ता है, लेकिन अगर आप मेरी तरह अहिंसक है तो फिर मैं आपसे कुछ नही कहूँगा। जहाँतक मुझे मालूम है, मैं जिन श्रोतृ-समूहोंके सामने वोला उनमे कोई भी अहिंसक आदमी नही था। उनकी अनिच्छा का कारण ब्रिटेनके प्रति उनकी दुर्भावना थी। इस स्थितिमे से धीरे-धीरे विदेशी शासनका जुआ कन्धेपर से उतार फेंकने के प्रवुद्ध सकल्पका विकास हो रहा था।

जो वात तव थी वह अव नही है। पिछले युद्धके दौरान ब्रिटेनको भारतसे जो सर्वसम्मत सहायता और समर्थन मिला उसके वावजूद उसने भारतके प्रति अपने रुखका परिचय रौलट अधिनियम और ऐसे ही दूसरे कदमोके रूपमे दिया। ब्रिटेनके इस आतकका मुकावला करने के लिए काग्रेसने अहिंसक असहयोगका रास्ता अपनाया। जलियाँवाला वाग, साइमन आयोग, गोलमेज परिषद्, चन्द लोगोंके दुष्कृत्योके लिए सम्पूर्ण वगालको भीरु और पुसत्वहीन वनाने की कार्रवाई, इस सवकी स्मृति जनमानसमे कायम है। काग्रेसने अहिंसाको स्वीकार कर लिया है, इसलिए अव मुझे रगरूट भरती करने के लिए जनताके बीच जाने की जरूरत नही रह गई है। काग्रेसके माध्यमसे मैं थोडे-से रगरूटोकी अपेक्षा निश्चय ही वहुत वडा योगदान दे सकता हूँ। स्पष्ट है कि ऐसे योगदानकी ब्रिटेनको जरूरत नही है। सो मैं ब्रिटेनकी सहायता करने का इच्छुक होते हुए भी लाचार हूँ।

सेवाग्राम, ३० अप्रैल, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३३. वीदरमे विनाश-लीला

वीदर (हैदरावाद राज्य) मे हुए दारुण दुष्काण्डपर[1] मेरी चुप्पीसे एक पत्र-लेखकको वहुत दुख हुआ है। एक अन्य सन्दर्भमे पहले भी कह चुका हूँ कि यदि मैं कतिपय अन्यायोंके विरुद्ध सार्वजनिक रूपसे कुछ नही कहता तो इससे यह कभी नही समझना चाहिए कि मै उनसे वेखवर हूँ या उनके सम्वन्धमे कुछ नही कर रहा हूँ। किसी खास परिस्थितिमें कौन-सा मार्ग सवसे अच्छा है, इसका निर्णय मुझपर छोड देना चाहिए। वीदरके वारेमे मैंने जो-कुछ सुना है (समाचार-पत्रोमें सव-कुछ नही छपा है), यदि वह सच है तो मानना पडेगा कि इस तरहकी वात भारत-भरमें और कही नही हुई है। यदि हैदरावाद राज्यको अपने-आपको अराजकताके हाथो नही सौंप देना है और यदि हिन्दुओंके जान-मालको नगण्य वस्तु नही वना देना है तो उस घटनाकी ऐसी पूरी और निष्पक्ष न्यायिक जाँच होनी चाहिए जिसमे जनताका

१. तात्पर्य बीदरमें हुए साम्प्रदायिक दंगे से है। देखिए "बीदर", २८-५-१९४० भी।

विश्वास जम सके, और जो लोग इस घटनाके कारण अचानक बेघरबार हो गये हैं उन्हें पूरा मुआवजा मिलना चाहिए। हम ऐसी आशा करेंगे कि हैदराबाद राज्यसे बाहरका मुस्लिम लोकमत भी इस घटनाकी पूरी छानबीनकी माँग करेगा।

सेवाग्राम, ३० अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३४. प्रश्नोत्तर

कोई उलझन नहीं

प्र० : भारतीय स्थितिके बारेमें लोगोंके मनमें अब भी बहुत उलझन है। उसे कैसे दूर किया जा सकता है?

उ० : लोक-निर्वाचित मन्त्रियोंके त्यागपत्र देते ही उलझन दूर हो जानी चाहिए थी। वे जनताके चुने हुए प्रतिनिधि थे। अपने कार्यके सम्पादनमें वे आश्चर्यजनक परिश्रमशीलता और कुशलतासे जुट गये थे, जिसके फलस्वरूप उन्हें गवर्नरोंसे भी शुद्ध प्रशंसा मिली। उन्होंने न खुद आराम किया और न अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंको आराम करने दिया। उन्होंने अपने सामने एक सुनिश्चित कार्यक्रम रख लिया था और यदि उक्त कार्यक्रम कार्यान्वित हो गया होता तो निस्सन्देह आम जनताकी स्थिति बहुत सुधर जाती। ऐसी स्थितिमें पद-त्याग करना उन्हें काफी अखरा होगा। परन्तु वे यह देखकर चकित रह गये कि जिस प्रान्तीय स्वायत्तताके वास्तविक और पूर्ण होने की घोषणा सर सैम्युअल होरने इतने जोर-शोरसे की थी, उसे पल-भरमें एक स्वाँग बनाकर रख दिया गया। जहाँतक युद्ध-सम्बन्धी उपायोंका सम्बन्ध था, ये लोक-निर्वाचित मन्त्री मात्र ऐसे पंजीयन-अधिकारी बनकर रह जानेवाले थे जिनका काम केन्द्रीय कार्यपालिकाकी इच्छाका पालन करना होता। इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मसलेपर औपचारिक या अनौपचारिक किसी भी तरहसे उनका परामर्श नहीं लिया जाता था। निदान उन्हें त्यागपत्र देने पड़े। उनका यह एक ही कदम सब-कुछ स्पष्ट कर देने की दृष्टिसे अपने-आपमें पूर्ण था। यदि इस कदमका यथेष्ट महत्त्व अनुभव नहीं किया जाता तो उसका कारण यह है कि कांग्रेसने अहिंसाका वरण किया है।

कांग्रेस जिम्मेदार नहीं

प्र० : बहुत-से लोग मानते हैं कि कांग्रेसके रुखके कारण ही मुस्लिम लीगको भारत-विभाजनका प्रस्ताव पास करना पड़ा।[1]

१. देखिए पृ० ३१, पा० टि० १।

उ० मै ऐसा नही मानता। लेकिन अगर काग्रेसके रुखके कारण ही ऐसा हुआ है तो भी यह एक निश्चित लाभ है। यह अच्छा ही है कि जो बाते छिपी हुई थी वे सामने आ गईं। अब समस्यासे निपटना आसान हो गया है। इसका समाधान खुद ही निकल आयेगा। एक निश्चित लाभ यह है कि राष्ट्रवादी मुसलमान अपने कर्त्तव्यके प्रति जागरूक हो गये है।

मुस्लिम शासन = भारतीय शासन

प्र० : क्या आप ब्रिटिश शासनसे मुस्लिम शासनको अधिक पसन्द करेंगे ?

उ० : प्रश्न गलत ढगसे पेश किया गया है। अग्रेज होने के नाते आप ऐसा सोचने की आदतसे बाज नही आ सकते कि भारत महज इस लायक है कि कोई-न-कोई उसपर राज करे। मुस्लिम शासनका मतलब तो भारतीय शासन ही हुआ। इस प्रश्नके बजाय अगर आपने यह पूछा होता कि क्या मै ब्रिटिश शासनसे बगाली या मराठी शासनको अधिक पसन्द करूँगा तो भी बात यही होती। मराठो, बगालियो, सिखो, द्रविड़ो, पारसियो, ईसाइयो (भारतीय), मुसलमानो — इन सबका शासन भारतीय शासन ही होगा। कुछ मुसलमान अपनेको पृथक् राष्ट्र मानते है, इससे मेरे लिए कोई फर्क नही पडता। मेरे लिए तो यही काफी है कि मै उन्हे पृथक् नही समझता। वे भी इसी देशकी सन्तान है। यदि मुसलमानोको पृथक् करके देखा जाये तो भी उन्हे अपने सम्बलके लिए भारत-भरमे बिखरे हुए आठ करोड निहत्थे मुसलमानोका ही तो मुखापेक्षी बनना पड़ेगा। लेकिन आपका सहारा तो आपका राष्ट्र और भारतपर काबिज आपकी सेना है। आप शासक जातिके लोग है। जिनपर आप हुकूमत करते है उन ३५ करोड़ भारतीयोंके बीच आपकी संख्या एक लाखसे भी कम है। यह एक शर्मनाक बात है — हमारे लिए भी और आपके लिए भी। किसके लिए ज्यादा शर्मनाक है, इसकी नाप-जोख करने की जरूरत नही है। जितनी जल्दी हम इस स्थितिसे बाहर निकल जाये, हम दोनोके लिए उतना ही अच्छा होगा।

अब आप समझ जायेगे कि मुझे हर सूरतमे अग्रेजी हुकूमतसे मुसलमानोका शासन ज्यादा पसन्द है, ऐसा मै क्यो कहता हूँ। मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि यदि अपनी सुविधानुसार हममे से एक या दूसरेका पक्ष लेकर हमारे बीच फूट डालनेवाला ब्रिटिश शासन आज हटा लिया जाये तो हिन्दू और मुसलमान अपने सभी झगड़ोको भूलकर भाई-भाईकी तरह, जैसे कि वे वास्तवमे है भी, मिल-जुल-कर रहने लगेंगे। परन्तु यदि मान लिया जाये कि जो सबसे बुरी बात है वही हो जाती है, अर्थात् यदि यहाँ गृह-युद्ध भड़क उठता है तो भी वह केवल कुछ दिन या कुछ महीने ही चलेगा, अन्तमे हममें समझदारी आयेगी और हम आपसी कलह बन्द करके अपने-अपने काममें लग जायेंगे। हम दोनोकी हैसियत बराबर है। आपकी बात और है। आपने हमे निःशस्त्र बना दिया है। हममे से जिन लोगोको आपने शस्त्रास्त्रोका प्रशिक्षण दिया है वे वास्तवमे हमारे न होकर आपके ही है।

सैन्य शक्तिमे हम आपकी बराबरी कर ही नही सकते। आप नही जानते कि आपके शासनने इस राष्ट्रको कितना बौना बना दिया है। भावी अनिष्टकारी परिणामोंके सम्बन्धमें आज जो तरह-तरहकी चेतावनियाँ दी जा रही है, उनके बावजूद दुनिया देखेगी कि ब्रिटिश शासनके समाप्त होते ही हम कैसा अभूतपूर्व विकास करते है।

यह पक्षपात क्यों?

प्र० : प्रो० रंगा और श्री जयप्रकाश नारायण दोनोंको कानूनके अधीन सजा दी गई है। परन्तु जहाँ श्री जयप्रकाश नारायणकी सजासे आप विचलित हो उठे,[1] वहाँ आपने प्रो० रंगाकी भर्त्सना की है;[2] और यह सब आपने यह जानते हुए किया कि प्रो० रंगाका यदि कोई अपराध था तो वह केवल तकनीकी था, जब कि श्री जयप्रकाशने युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नोंमें बाधा डाली और इस तरह जान-बूझकर सजाको बुलावा दिया। मैं इससे सहमत हूँ कि प्रो० रंगाको कानून नहीं तोड़ना चाहिए था। लेकिन क्या आपके रुखसे एकके प्रति पक्षपात और दूसरेके प्रति विरोधका भाव प्रकट नहीं होता?

उ० आप सरासर गलत हैं। आपका यह स्वीकार करना ही कि आदेशका उल्लघन करके प्रो० रगाने गलती की, यह प्रदर्शित करता है कि आपका पक्ष न्याय-सगत नही है। प्रो० रगा मेरे उतने ही अच्छे मित्र है जितने श्री जयप्रकाश। यदि श्री जयप्रकाशने भी वही-कुछ किया होता जो प्रो० रगाने किया है तो मैंने उनकी भी वैसी ही आलोचना की होती। सार्वजनिक जीवनमे पक्षपातपूर्ण मित्रताके लिए कोई जगह नही है। सच तो यह है कि सच्ची मित्रताको पक्षपातकी कोई आवश्यकता ही नही है। श्री जयप्रकाशके प्रति मेरे मनमें कोई पक्षपात नही है। उसी तरह प्रो० रगाके प्रति मेरे मनमे कोई विरोध-भाव नही है। शायद मेरे और श्री जयप्रकाशके बीच जितने मतभेद है उतने मेरे और प्रो० रगाके बीच नही है, लेकिन इससे मेरे लिए कोई अन्तर नही पडता। श्री जयप्रकाशने किसी आदेशका उल्लघन नही किया। उन्होने एक भाषण दिया, जिसे कानूनके विरुद्ध माना गया। प्रो० रगाने, जो आदेश उन्हे दिया गया, उसका उल्लघन जान-बूझकर किया। इन दोनो बातोंमें अन्तर है। मैंने आपके प्रश्नका उत्तर इसलिए दिया है कि मैं आदेश-उल्लघन को महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। मैं उन सभी लोगोको, जो काग्रेसके अनुशासनको स्वीकार करते है, इस प्रकारके आदेश-उल्लघनके खिलाफ सावधान कर देना चाहता हूँ।

नगरपालिकाके अध्यक्षका कर्त्तव्य

प्र० : मेरे पिता किसी खास जगहकी नगरपालिकाके अध्यक्ष है, और वे कांग्रेसी है। हालमें वहाँके एक हलकेमें हुए उप-चुनावमें अधिकृत कांग्रेसी उम्मीद-

१. देखिए खण्ड ७१, पृ० ३६३।

२. वही, पृ० ४६१-६२।

बार पराजित हो गया। एक स्थानीय युवक-संस्थाने गैर-कांग्रेसी विजयी उम्मीदवारके सम्मानमें चाय-पार्टीका आयोजन किया। मेरे पिता भी आमन्त्रित थे और वे वहाँ गये भी।

उनका विचार है कि कोई उम्मीदवार चाहे किसी भी दलका हो, उसके निर्वाचित होते ही अध्यक्षके नाते उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उसका स्वागत करें और नागरिकोंके कल्याणके लिए उससे अधिकसे-अधिक सहयोग प्राप्त करें। कुछ लोग ऐसा महसूस करते हैं कि किसी विरोधीके सम्मानमें आयोजित समारोहमें शरीक होने से अपने दलके हितको हानि होती है।

उ० मुझे पूरा विश्वास है कि आपके पिताका आचरण बिलकुल सही था। यदि वे उस समारोहमें शरीक न हुए होते तो गलती करते। अपने सिद्धान्तोंके प्रति जितनी कद्रकी अपेक्षा हम दूसरोंसे करते हैं, अपने विरोधीके सिद्धान्तोंके प्रति भी हमें उतना ही सम्मान रखना चाहिए। अहिंसाकी माँग है कि हमें अपने विरोधीके हृदयको जीतने के हर अवसरकी ताकमें रहना चाहिए। और उनके सुख-दुखमें भागी बनने से अच्छा अवसर और क्या हो सकता है? इसके अतिरिक्त, अध्यक्षके नाते आपके पिताको निष्पक्ष तो होना ही था। अतएव यह तो उनका दुहरा कर्त्तव्य था कि वे उस समारोहमें शरीक होते।

सेवाग्राम, ३० अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३५. अजमेर-काण्ड

राष्ट्रीय झण्डे-सम्बन्धी घटनाके बारेमें खादी-प्रदर्शनीके आयोजकोंके पक्षका सार[1] प्रकाशित करने के बाद उसके सम्बन्धमें अजमेर-मेरवाड़के आयुक्तकी निम्न-लिखित विज्ञप्तिको छापना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है

> अजमेर कांग्रेस द्वारा मनाये जानेवाले 'राष्ट्रीय सप्ताह' नामक समारोहकी एक विशेषता यह रही है कि 'खादी ग्रामोद्योग प्रदर्शनी कमेटी' की संज्ञासे अभिहित एक समिति प्रदर्शनीका आयोजन करती है। इसके लिए किलेसे लगी नजूलकी जमीनपर, जो नगरपालिकाके कब्जेमें है, कई काम-चलाऊ इमारतें खड़ी की गईं। प्रदर्शनी देखने के लिए लोग बड़ी संख्यामें आते थे। इसका लाभ उठाकर प्रदर्शनी-स्थल और शहर कोतवालीके प्रवेश-द्वारके बीच खाली पड़ी जमीनमें राजनीतिक सभाएँ आयोजित की गईं। इनमें से दो सभाओंमें बहुत ही आपत्तिजनक ढंगके भाषण दिये गये। और यह स्पष्ट था

१. देखिए "खतरेका संकेत", पृ० १-२।

कि इन सभाओंके आयोजक, जो स्थानीय कांग्रेसके सदस्य हैं, खादी और आम तौरपर सभी ग्रामोद्योगोंकी वस्तुओंके उपयोगको बढ़ावा देने के बहाने सरकारके खिलाफ घृणा और तिरस्कारकी भावनाका प्रचार कर रहे थे। और ये राज-द्रोहात्मक भाषण ऐसी जगह दिये जा रहे थे जो कोतवाली पुलिसके सिपाहियोंके रहने की बैरकोंसे लगी हुई है। यह बात आगमें घी डालने के समान थी।

फिर, प्रदर्शनीके आयोजकोंने किलेके काफी बाहरकी ओर पड़नेवाले एक बुर्जपर एक ध्वज-स्तम्भ गाड़ दिया, जिसपर कांग्रेसका झण्डा फहराया गया। यह बुर्ज सरकारी जमीनपर है और कोतवाली पुलिस स्टेशनका हिस्सा है। इस कार्रवाईके लिए न तो इजाजत माँगी गई और न हासिल की गई। एक सरकारी इमारतसे किसी एक पार्टीके इस तरहके प्रतीकका प्रदर्शन किया जाये, यह बात अपने-आपमें तो अवांछनीय है ही; इसके अतिरिक्त स्मारकके रूपमें सरकार द्वारा संरक्षित एक प्राचीन मुगल किलेके प्राचीरपर कांग्रेसके झण्डेके फहराये जाने से जनताके अमुक हिस्सेकी भावनाओंको गहरा आघात लगा।

इस सम्बन्धमें व्यक्तिगत रूपसे तथ्योंकी जाँच करके आश्वस्त हो जाने के बाद आयुक्तने सार्वजनिक शान्ति भंग न होने देने के विचारसे दो निषेधात्मक आदेश जारी करने का निश्चय किया। पहला आदेश खास प्रदर्शनीके आयो-जकोंके नाम था, और उसमें उन्हे घण्टे-भरके अन्दर झण्डे और ध्वज-स्तम्भको हटा देने और किलेकी चारदीवारी से ४०० गज तककी दूरीके अन्दर उसे कही भी दुबारा न गाड़ने का निर्देश दिया गया था। दूसरा आदेश आम ढंगका था, जिसमें नगरपालिकाकी परिसीमाके अन्दर दस दिनोंतक कोई भी राजनीतिक सभा आयोजित करने का निषेध किया गया था। कांग्रेसके कुछ पक्षधरोंने खादी-प्रदर्शनीके आयोजन द्वारा प्रस्तुत अवसरका जिस ढंगसे दुरुपयोग किया था उसको देखते हुए यह आदेश जारी करना आवश्यक हो गया था।

जहाँतक पहले आदेशका सम्बन्ध है, जिन व्यक्तियोंके नाम यह जारी किया गया था, उन्होंने लिखकर यह सूचित किया कि वे इसका पालन नहीं करेंगे। इसपर पुलिसको झण्डे और ध्वज-स्तम्भको हटा देने का निर्देश दिया गया। प्रदर्शनीके आयोजकों द्वारा आदेशका पालन करने से इनकार किये जाने के मामलेके बारेमें अलगसे कार्रवाई की जा रही है।

यदि ऊपरका विवरण सही है तो प्रदर्शनी-समितिका पक्ष धराशायी हो जाता है। यहाँ यह भी बता दूँ कि अपनेको निष्पक्ष बतानेवाले एक पत्र-लेखकने भी अपने पत्रमें अजमेरके अधिकारियोंके विवरणका समर्थन किया है। जबतक मै अपनी जाँच-पड़ताल पूरी नही कर लेता तबतक इस सम्बन्धमे अपनी राय जाहिर नही करूँगा। फिर भी एक बात स्पष्ट है। आयुक्तने प्रदर्शनी-समितिके विरुद्ध मुसलमानोंको भड़काने का हर सम्भव प्रयत्न किया है। विज्ञप्तिके कुछेक अंशोंमें समितिके विरुद्ध द्वेषकी भावना साफ झलकती है। यदि तथ्य वही हो जो आयुक्तने बताये हैं तो भी वे

चाहते तो 'मुगल किले' के ऐसे भड़कानेवाले उल्लेखके विना भी काम चला सकते थे। उन्हें मालूम था कि मुसलमानोकी भावनाओंको चोट पहुँचाने का प्रदर्शनी-समितिका कोई इरादा नहीं हो सकता था।

मुझे यह सूचना भी मिली है कि अजमेरमे और भी कठिन परिस्थितिका सामान जुटाया जा रहा है। परन्तु पूरे तथ्योंकी जानकारी मिलने के वाद ही मै इस सम्वन्धमें और कुछ कहूँगा।[1]

इसी प्रसंगमें मै पाठकोंका ध्यान सीमा प्रान्तके एक आयुक्तके चतुराई-भरे कदमकी जो खवर मिली है, उसकी ओर दिलाना चाहता हूँ। कहते है, एक कांग्रेसी उनके कार्यालयपर झण्डा फहराने के लिए गया। आयुक्तने खुद आगे वढकर अपने ही हाथोंसे उस झण्डेको वहाँ फहरा दिया और साथ ही मुस्लिम लीगके झण्डेको भी फहरा दिया, लेकिन उसने इस वातका ध्यान रखा कि यूनियन जैक सवसे ऊपर ही लहराये। आयुक्तकी इस विनोद-वृत्ति और चतुराईके विना जाने वहाँ क्या-कुछ हो गया होता।

सेवाग्राम, ३० अप्रैल, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-५-१९४०

३६. पत्र : विपिनविहारी वर्माको

१ मई, १९४०

भाई विपिन,

जैसे हो वैसे रहो। इसीमें तुमारी साधना है।

बापुके आशीर्वाद

श्री विपिन वावू
मानापुर
वेतिया, चम्पारन

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२४९)मे

१. देखिए "अजमेर", पृ० ४८-५०।

३७. तार : हचिंग्सको

२ मई, १९४०

श्री हचिंग्स
२६ फायरे स्ट्रीट
रंगून

हिन्दुओं और मुसलमानोंमें फिरसे मेल-जोल कायम करने के उद्देश्यसे दोनों समुदायोंके प्रतिनिधियोंकी बैठक होने जा रही है, यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। आशा करता हूँ कि यह बैठक स्थायी शान्ति कायम करने के उपाय खोजने में सफल होगी।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३८. तार : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

२ मई, १९४०

गुरुदेव
शान्तिनिकेतन

बहुत ज्यादा काम होने के कारण समय नहीं मिला। शीघ्र ही आपको अपनी सुचिन्तित राय[1] भेजने की आशा करता हूँ। अपरिहार्य विलम्बके लिए क्षमा करेंगे।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. देखिए "पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको", पृ० ४६।

३९. पत्र : विट्ठल लक्ष्मण फड़केको

सेवाग्राम
२ मई, १९४०

चि० मामा,

अपना उपवास समाप्त करो। मैं तुम्हारा काजी नहीं बनूँगा। तुम्हारा उपवास सफल हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८४२) से

४०. एक वक्तव्य

जब गांधीजी को रायटर द्वारा तारसे भेजा गया सर ह्यू ओ'नीलका[1] वक्तव्य दिखाया गया तो उन्होंने कहा कि मेरी स्थिति तो बिलकुल स्पष्ट है।

ब्रिटिश सरकार ही वह एकमात्र प्राधिकरण है जो निर्वाचित नेताओंकी कोई प्रारम्भिक परिषद् बुला सकती है, और जब वह सत्ता-त्यागका निर्णय तथा भारतके अपना स्वातन्त्र्य-पत्र आप तैयार करने के अधिकारको स्वीकार कर लेगी तभी वह कोई परिषद् बुलायेगी और सत्ताके हस्तान्तरण आदिके उपाय निकालेगी।[2]

सेवाग्राम, ३ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-५-१९४०

१. कामन्स सभाके एक सदस्य

२. देखिए "तार: 'न्यूज क्रॉनिकल' को", पृ० २१ भी।

४१. पत्र : मणिबहन पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
४ मई, १९४०

चि० मणि,

तेरे भेजे आँकड़े उत्तम हैं। मुझे पत्र लिखने की बजाय कातना ज्यादा अच्छा।

पिताजी से पूछना कि वे एक हजार रुपये मैं उन्हें भेजूं या सीधे पृथ्वीसिंहको। उनकी तबीयत कैसी रहती है?

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मणिबहेन
मारफत – सरदार पटेल
६८ मरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ १२६

४२. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
[४ मई, १९४०][1]

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला है। शुद्ध है। मैं दलील नहीं करूंगा। तुमारी शुभेच्छा परिपूर्ण हो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकलसे रामेश्वरी नेहरू पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. उसी साधन-सूत्रसे प्राप्त इस पत्रकी नकलसे

४३. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
४/५ मई, १९४०

चि० जयसुखलाल,

तुम तो अब अच्छी तरह ठीक-ठिकाने लग गये। अब सब तुमपर निर्भर करेगा। संयुक्ता[1] यदि इसी वर्ष विवाह करना चाहती हो, तो पोरबन्दरमे तुम्हारे बिना कर ले। सेवाग्राममे तो विवाह अगले वर्ष ही हो सकता है। तुम्हारा इस समय छुट्टी माँगना मै जरा भी ठीक नही समझता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४)से

४४. पत्र : अमृतकौरको

[५ मई, १९४०][2]

चि० अमृत,

तुम्हारा तार मिला। मै ठीक हूँ। आज तो मात्र स्नेह भेजने के लिए बस यही दो पक्तियाँ है। आशा है, मोचका दर्द बिलकुल ठीक हो गया होगा।

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६४)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२७३ से भी

१. जयसुखलाल गाधीकी पुत्री

२. यह पत्र किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ५ मईको उर्दूमें अमृतकौरको लिखे गये पत्रके ऊपर लिखा गया है।

४५. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

सेवाग्राम, वर्धा
५ मई, १९४०

प्रिय गुरुदेव,

रथीनके[1] पत्रका उत्तर देने मे विलम्ब करने के लिए सहस्रदश क्षमा-याचनाएँ। मेरे पास समय कम और कार्य-भार अत्यधिक है, फलत पत्रोत्तर आदिके काम पिछडते ही जा रहे है। लेकिन आपके प्रस्तावके सम्बन्धमे मै निष्क्रिय नही रहा हूँ। रॉजर हिक्सके साथ उसपर पूरी चर्चा की। स्वतन्त्र रूपसे स्वय भी उसपर विचार करता रहा हूँ। मेरा निष्कर्ष साथके सशोधित मसौदेसे[2] जान लीजिए। इसमें आप जैसा चाहे वैसा सुधार कर ले। इसको वह सँवार-निखार भी दे देगे जो केवल आप ही दे सकते है।

पता नही क्यो, कक्ष और अस्पताल-सम्बन्धी अपील मुझे जँच नही पाई। शान्तिनिकेतन जितना आपका है उतना ही उनका भी था। जिस चीजको उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था और जो उनकी प्रेरणाका स्रोत थी उसको एक स्थायी आधार प्राप्त हो जाये, इससे अच्छा और क्या हो सकता है? जितनी राशिकी माँग की गई है, वह शायद बहुत कम हो। ऐसा लगा तो उसे बढाया जा सकता है। मैंने कहा है कि शान्तिनिकेतनकी स्थापना मूलत महर्षिने[3] की। इस कथनमें प्रत्यक्ष अन्तर्विरोध है। कृपया इसका समाधान कीजिएगा।

अपीलपर हम तीनों[4] हस्ताक्षर करे, यह विचार मुझे ठीक लगा है।

बिशपको इसकी प्रति नही भेजी है।

अगर आपको मेरा प्रस्ताव ठीक न लगे और आप मूलको ही रखना चाहे तो उसमे सकोच न करे।

आशा है, आप स्वस्थ-प्रसन्न होगे।

स्नेह,

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२९०)से

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पुत्र रथीन्द्रनाथ ठाकुर

२. यह १-६-१९४० के *हरिजन*में "देशबन्धु मेमोरियल" (देशबन्धु-स्मारक) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

३. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर

४. अन्तमें अपीलपर गांधीजी, अबुल कलाम आजाद, एस० के० दत्त, मदनमोहन मालवीय, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री और बिशप फॉस वेस्टकॉटने हस्ताक्षर किये थे।

४६. प्रश्नोत्तर

हिन्दू-मुस्लिम एकता

प्र० : आप हरिजन-कार्य कर सकते हैं, खादी और ग्रामोद्योगोंका संगठन कर सकते हैं, लेकिन जब हिन्दू-मुस्लिम एकताकी बात आती है तब उस दिशामें प्रयत्न न करने के लिए अनेक बहाने ढूँढ़ने लगते हैं।

उ० जिन्हे मैं नही जानता हूँ ऐसे कई मुसलमान पत्र-लेखकोंने मुझपर यह आरोप लगाया है। लेकिन इधर हालमे एक ऐसे व्यक्तिने इस आरोपको बहुत जोर देकर दुहराया है जो मुझे निकटसे जानते हैं। फरियादीने मुझे 'हरिजन'मे इसका उत्तर देने की चुनौती दी है। हरिजनो और मुसलमानोमे कोई तुलना नही हो सकती। हरिजनोका मुझपर ऋण है और उन्हे तो जो भी सहायता दी जा सकती है, सबकी उन्हे जरूरत है। हरिजन-कार्य मानव-दयाका कार्य है। मुसलमान मेरी ऐसी दयाके मोहताज नही हैं। वे एक ताकतवर कौमके लोग हैं, जिन्हे ऐसी कोई जरूरत नही है। उनके लिए हरिजन-कार्यके ढगपर कोई काम किया जाये तो उससे उन्हे रोष ही आयेगा। मेरे खिलाफ खादी और ग्रामोद्योगोका उदाहरण देने में विचार-शून्यता है। इन कार्योंसे जो भी लाभ उठाना चाहे उन सबके लाभके लिए इनका सगठन-सचालन किया जा सकता है और किया जाता है। सच पूछिए तो इन प्रवृत्तियोसे हिन्दू और मुसलमान दोनो — बल्कि वास्तवमे दूसरे लोग भी — लाभ उठा रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रश्न बिलकुल अलग और स्वतन्त्र चीज है। इस क्षेत्रमें अपने हिस्सेका काम करने की कोशिश मैंने की है और अब भी कर रहा हूँ। इसमें मुझे कदाचित् ऐसी सफलता न मिली हो जो स्पष्ट दिखाई दे, लेकिन मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि जिस दिशामे मैं काम कर रहा हूँ वह सही है और एक दिन हमे अपने लक्ष्यतक अवश्य ले जायेगी।

बीदर और बिहार

प्र० : बीदरमें जो-कुछ हुआ उसका तो आपको बहुत दर्द है। इस मामलेमें आपको न्याय चाहिए, और आप चाहते हैं कि हैदराबादसे बाहरके मुसलमान तब-तक सन्तोषसे न बैठें जबतक बीदरके पीड़ितोंको न्याय न मिल जाये।[1] जब मुसलमानोंके साथ दुर्व्यवहार होता है — जैसा कि बिहारमें हुआ — तब भी क्या आपको इतनी ही पीड़ा होती है?

उ० पत्र-लेखकने बिहारका उल्लेख ठीक-ठीक किस प्रसगको लेकर किया है, यह मुझे मालूम नही है। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि हिन्दुओ द्वारा मुसल-

१. देखिए पृ० ३५-३६।

मानोंके साथ दुर्व्यवहारका कोई मामला मेरे सामने आया हो और मैंने उसकी जाँच न की हो, ऐसा कभी नहीं हुआ है। खिलाफतके समयसे ही यह मेरा दस्तूर रहा है। सत्यका पता लगाने या पीड़ित पक्षोंको यथासम्भव सब-कुछ कर चुकने का विश्वास दिलाने में मैं सदा सफल रहा होऊँ, ऐसा मैं नहीं कहता। बिहार-सम्बन्धी आरोप इतना गोलमोल है कि उसका इससे अधिक विस्तृत उत्तर नहीं दिया जा सकता। यदि किसी विशेष प्रसगका उल्लेख किया गया होता तो मैं शायद कह सकता कि मैंने उसके सम्बन्धमें क्या किया। लेकिन मान लीजिए, मैं न्याय करने के अपने कर्त्तव्यमें चूक गया, और यह भी मान लीजिए कि "हिन्दुओं द्वारा मुसलमानोंके साथ किये गये अन्यायसे मुझे इतनी ही पीड़ा" नहीं हुई, तो क्या इसके आधारपर बीदरके मामलेकी उपेक्षा करना उचित माना जायेगा? मैंने कहा है कि पहलेके हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंमें ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसकी तुलना, जो-कुछ बीदरमें हुआ, उससे की जा सके — बशर्ते कि यह मान लिया जाये कि हमने जो आरोप लगाये वे सही हैं। मैंने इतनी ही माँग तो की है कि जो सबकी दृष्टिमें निष्पक्ष हो, ऐसे न्यायाधिकरणके माध्यमसे इस मामलेमें पूरा न्याय और क्षतिपूर्त्ति की जानी चाहिए। और जो निवेदन मैंने बीदरके मामलेमें किया है वह ऐसे सभी मामलोंमें लागू होना चाहिए।

सेवाग्राम, ६ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-५-१९४०

४७. अजमेर

अजमेरके आयुक्तकी विचित्र विज्ञप्तिको[1] पढते ही मैंने अजमेरके कार्यकर्त्ताओंसे अपने आरोपोंके समर्थनमें आवश्यक प्रमाण भेजने को कहा। मैं समझता हूँ, उन आरोपोंके हर ब्योरेका लिखित प्रमाण मौजूद है। अब सम्बन्धित प्रलेखोंकी प्रतियाँ मुझे उपलब्ध हैं। इनमें तथाकथित अजमेर किलेको और जिस प्राचीरके बुर्जपर कांग्रेसका झण्डा फहराया गया उसकी स्थिति दिखलानेवाला एक नक्शा भी है। नीचे वह वक्तव्य[2] छापा जा रहा है जिसमें अजमेरके आयुक्तके सभी आरोपोंका स्पष्ट शब्दोंमें खण्डन किया गया है। वक्तव्यसे प्रतीत होता है कि आयुक्तके मनमें कांग्रेसके विरुद्ध पूर्वग्रह है।

१. दीवार और पीछेके एक हिस्से-सहित उस जमीनपर पट्टेदारके रूपमें नगरपालिकाका अधिकार है।

१. देखिए पृ० ३९-४०।
२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. खादी-सेवकोंने प्रदर्शनीके लिए इस जमीनका उपयोग करने की अनुमति विधिवत् प्राप्त की थी।

३. झण्डा फहराने के लिए अलगसे अनुमति लेना जरूरी नहीं माना जाता और न कभी माना गया है।

४ सच तो यह है कि प्रदर्शनीके खर्चके लिए स्वय नगरपालिकाने ५१ रुपये का अनुदान दिया।

५ अजमेरका किला एक स्पष्ट रूपमे परिभाषित-सीमाकित इमारत है। इन दिनो उसका उपयोग कोतवाली आदिके लिए होता है। निस्सन्देह यह एक संरक्षित प्राचीन स्मारक है और सरकारके अधिकारमें है। बाहरी दीवार जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें है और जो जमीन नगरपालिकाको पट्टेपर दी गई है उसमें पडती है। नगरपालिका उसे गिराने जा रही है।

६ दीवारपर झण्डा फहराने के खिलाफ खादी-सेवकोसे कोई शिकायत नही की गई। उससे किसीकी भावनाको चोट नही पहुँच सकती थी। अजमेरकी नगर-पालिकामें मुसलमान सदस्य भी है। उस जमीनपर प्रदर्शनी आयोजित करने की अनुमति देने का निर्णय सर्वसम्मतिसे किया गया था। मुसलमान प्रदर्शनी देखने खूब जाते थे। सेठ जमनालालजी[1] के सम्मानमें दिये गये प्रीतिभोजमें जाने-माने मुसलमान भी शरीक हुए थे, हालांकि उन्हे मालूम था कि बाहरी दीवारपर झण्डा फहराया गया है।

मैंने अधिकारियोको जनता द्वारा लगाये गये ऐसे आरोपोका खण्डन करते बहुत बार देखा है जिनके कारण वे अपनेको अटपटी स्थितिमें पाते हैं। लेकिन अजमेरके आयुक्त द्वारा तथ्योकी यह शर्मनाक तोड़-मरोड़ तो लासानी है। उन्होने इससे ब्रिटेनकी प्रतिष्ठामे कोई वृद्धि नही की है। यदि सविनय अवज्ञाको आमन्त्रित करनेवाला कोई स्पष्ट प्रसग कभी उपस्थित हुआ है तो निश्चय ही यह अजमेर-काण्ड भी वैसा ही प्रसग है। अब अगर मैं अपनेको रोक रहा हूँ तो इसलिए कि आज वातावरण अस्वच्छ है और मैं नही चाहता कि कोई ऐसा कदम उठाऊँ जिससे सकटकी स्थिति उत्पन्न हो। उत्तेजनाके गम्भीरतम प्रसग उपस्थित होने के बावजूद आत्मसयमसे काम लेकर अजमेरके कार्यकर्त्ताओंने श्रेष्ठ आचरण किया है। केन्द्रीय सरकारको इस मामलेपर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने की जरूरत है। मेरी रायमें, न्यायके तकाजेको पूरा करने के लिए कमसे-कम इतना तो जरूरी है ही कि यह आयुक्त जिस ऊँचे पदपर आसीन हैं उसपर से उसे हटा दिया जाये।

इसपर यह दलील दी जा सकती है कि अजमेरके आयुक्त-जैसे तो दूसरे बहुत-से अधिकारी भी पडे हुए है, जो उससे भी बडे-बड़े दुष्कृत्य करते हैं और बिना किसी दण्ड-ताड़नाके चैनसे रहते हैं। दलील सही है। लेकिन यो तो निर्णायक साक्ष्योंके बिना बहुत-से चोर भी मजासे बच निकलते है, मगर जब कोई रँगे हाथों पकडा जाये तब तो उसे दण्ड देकर उसके कारण नुकसान उठानेवाली जनताको

१. जिन्होंने प्रदर्शनीका उद्घाटन किया था

सन्तुष्ट करना वाजिब ही है। लॉर्ड कर्जनमे बड़े गम्भीर दोप थे। लेकिन वे मानते थे, न्याय तो किया ही जाना चाहिए, और इसलिए जब एक प्रमाणयुक्त मामला उनकी निगाहमे आया तो उन्होने सख्ती और चुस्तीसे कार्रवाई करने मे तनिक भी आगा-पीछा नही किया। मै मानता हूँ, अभी सविनय अवज्ञाको रोकने की चिन्ता सरकार और काग्रेस दोनोको है। काग्रेस सविनय अवज्ञाका सहारा तभी लेगी -- वशर्ते कि उस समय भी वह उसके लिए तैयार हो -- जब वह स्पष्टत अनिवार्य हो जायेगी। अभी तो उसे रोकने के लिए मै कुछ भी उठा नही रख रहा हूँ। लेकिन यदि अधिकारी वैसा आचरण करेगे जैसा अजमेरके आयुक्तने -- लगता है -- किया है तो अपनी तमाम कोशिशोके बावजूद शायद मै आगको भड़कने से न रोक पाऊँ।

गत मासकी २९ तारीखको चूँकि महीनेका आखिरी रविवार भी पड़ा था इसलिए उस दिन पूरे देशमे झण्डावन्दनका आयोजन किया गया था। अजमेरमें भी काग्रेसने टाउन हॉलके प्रागणमे समारोहका आयोजन किये जाने का विज्ञापन किया था। लेकिन इस बार आयुक्तने, जो वहाँके जिलाधीश भी है, इस प्रयोजनके लिए टाउन हॉलके उपयोगपर रोक लगा दी। नगरपालिकाकी जमीनके उपयोगपर उन्होने जिस ढगसे रोक लगाई उसका उन्हे कोई कानूनी अधिकार था या नही, इस विषयपर विवाद हो सकता है। लेकिन इस समय उसकी कोई प्रासगिकता नही है। हाँ, ऐसा आदेश जारी किया गया, यह तथ्य इस बातका द्योतक अवश्य है कि आयुक्तके मनमे काग्रेसके खिलाफ बद्धमूल धारणाएँ है। इस मामलेमे मुझसे टेली-फोनपर सलाह माँगी गई। मैने काग्रेसको सलाह दी कि वह आदेशका पालन करे और अन्यत्र भी कोई सभा करने की कोशिश न करे। लेकिन अगर आयुक्त महोदय वैर बेसाहने पर तुले ही हुए है तो, मेरा खयाल है, उसमे कामयाब हुए विना उन्हे चैन नही मिलेगा।

सेवाग्राम, ६ मई, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ११-५-१९४०

४८. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
६ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

थोडी देर हो जाने पर भी तुम वरदाश्त कर लेते हो, इसलिए उत्तर देने में ढील की है। काम वहुत जमा हो गया है। तुम्हे शान्ति ही शायद अशान्तिमें मिलती है, क्योंकि मनको समझा लो, तो कही अशान्ति नही है। यहाँ कामका ढेर लग गया है।

कंचनको या तो तुम पत्नीके रूपमें भूल जाओ, या फिर घर जमाकर उसे सँभालो। वह पचगनी अपनी उत्कट इच्छाके कारण गई है। जैसे तुम कही जाओ, तो उसे सन्देह नही करना चाहिए, वैसा ही उसके वारेमें भी समझो। तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं उसका मन वदल दूं, लेकिन उससे फिर इन लोगोंकी योजना गड़वड हो जायेगी। तुम पूनामें रहो, यह विलकुल शोभा नही देता, और उससे कोई लाभ भी नहीं होगा। तुम उसे साधारण पत्र लिखा करो।

वुरहानपुरके वारेमें तुम्हे जो करना हो, सो करो। मैं उसके वारेमें ठीक-ठीक कुछ समझता नहीं।

तुम्हारे पत्र कौन पढता है? और पढता भी हो, तो समझता क्या होगा? फिर भी तुम्हारी इच्छा हो कि कोई न पढे, तो ऊपर निजी लिख दिया करो, जिससे मैं उन्हे तुरन्त लौटा दूंगा या फाड़ डालूंगा।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४५) से। सी० डब्ल्यू० ७०८४से भी, सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

४९. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
६ [मई][1] १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारा शिमलासे भेजा तार भी मिल गया था। साथमे दो लेख है। इनका अनुवाद तुम फुर्सतसे कर सकती हो। सुशीलाने प्रश्नोंका अनुवाद अच्छा और शीघ्रतासे किया। अजमेर-सम्बन्धी लेख तैयार नही था। उसका अनुवाद वह कल करेगी। लेकिन तुम्हे उनका अनुवाद निष्ठापूर्वक करना चाहिए। अगर तुम दोनोको इस कार्यका अभ्यास हो जाये तो 'हरिजनसेवक' की पूरी सामग्री यही तैयार हो सकती है और तब मै चिन्तासे मुक्त हो जाऊँगा।

आनन्दको[2] चेचक नही थी। टीका लेने के बाद दाने निकल आये थे। उसे बुखार और खाँसी है। महादेव आज आया।

स्नेह।

बापू

७ मई, १९४०

[पुनश्च :]

इसके साथ अंग्रेजी लेख न भेज पाऊँ तो चिन्ता मत करना। अनुवादकी जरूरत नही है। अभ्यास कुछ दिन रोका जा सकता है। साथमे गोसीबहनका पत्र है। कमलापुरम्के बारेमे तुम्हारा लेख[3] और हिन्दी अनुवाद दोनो छप रहे है। अनुवाद अच्छा है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६५)से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२२४ से भी

१. साधन-सूत्र में "६-६-४०" है, जो स्पष्ट ही चूक है, क्योंकि पुनश्चके रूपमें लिखे अंशपर ७ मई की तिथि दी गई है और पत्रमें अजमेरपर लिखे जिस लेखका उल्लेख है वह (देखिए पृ० ४८-५०) ६ मई को लिखा गया था।

२. शारदा गो० चोखावालाका पुत्र

३. देखिए "एक घृणित बुराई", १८-५-१९४०।

५०. एकतरफा जाँच

मैंने आशा की थी कि मैसूरमें सत्याग्रही कैदियोंके साथ दुर्व्यवहारके आरोपोंके बारेमें न्यायमूर्ति नागेश्वर अय्यरकी रिपोर्टके सम्बन्धमे मुझे कुछ कहना नही पडेगा। लेकिन रियासत कांग्रेस द्वारा इस जाँचसे अलग रहने की कार्रवाईकी समाचार-पत्रोंमें जो आलोचना हुई है उसको देखते हुए मेरा स्पष्टीकरण देना जरूरी हो गया है। यदि रियासत कांग्रेसने जाँचसे अलग रहकर गलती की तो उसकी जिम्मेदारी मुझपर है। यह जाँच दीवानकी[1] इच्छापर महादेव देसाईकी मैसूर-यात्रा और फिर उनके (महादेव देसाई) द्वारा मुझे दी गई उस खानगी रिपोर्टका परिणाम थी जिसकी एक नकल दीवानको भी सुलभ करा दी गई थी। महादेव देसाईने जानी-मानी ईमानदारीवाले वाहरके किसी न्यायाधीशकी अध्यक्षतामे खुली अदालती जाँच करवाने की सिफारिश की थी। इसके वदले हुआ यह कि मैसूर राज्यके ही एक न्यायाधीश द्वारा मात्र विभागीय जाँच करवा दी गई। कुछ समयसे मैं मैसूर कांग्रेसका मार्गदर्शन करता आया हूँ और कांग्रेसने मेरी सलाह मानकर इस न्यायाधीशके समक्ष कोई साक्षी नही दी। ऐसी सलाह देने का कारण यह था कि मुझे लगा, मैसूरका यह न्यायाधीश अपने पदके दायित्वोंके निर्वाहके क्रममे जिन अधिकारियोंके निकट-सम्पर्कमे आया होगा उनके आचरणको परखने मे वह पूरी निष्पक्षता नही वरत सकता। जो व्यक्ति सरकारी नौकरकी स्थितिसे उठकर न्यायाधीशके आसनपर वैठा हो, उससे निष्पक्ष जाँचकी आशा रखना तो वहुत ज्यादा था।

आरोप वहुत गम्भीर ढगके थे और वे महादेव देसाईकी उपस्थितिमे उप-आयुक्त, जिला पुलिस अधीक्षक, जेल अधीक्षक आदि उच्च अधिकारियोंके सामने दुहराये गये थे। जिन लोगोंने आरोप लगाये वे अपराधी नही, वल्कि स्वयसेवक थे, और उनमे से कुछकी समाजमे वडी ऊँची प्रतिष्ठा थी। ऐसे लोगोको झूठा मानना असम्भव है, लेकिन इस रिपोर्टमे तो ऐसा ही माना गया प्रतीत होता है।

स्वयं न्यायाधीशकी रिपोर्ट अवतक मेरे हाथमे नही आई है। जो चीज मेरे सामने है वह रिपोर्टका सरकारकी ओरसे प्रकाशित एक ऐसा साराश है जिसका उद्देश्य किसी खास वातको सिद्ध करना है। इसमे वीच-वीचमें सरकारने अमुक घटनाओंके अपने विवरण चस्पाँ कर दिये हैं और न्यायमूर्ति नागेश्वर अय्यरने अपनी रिपोर्टमें उनपर जो टिप्पणियाँ की है वे भी साथमें दे दी गई हैं। समझमें नही आता कि फरियादियोंके अधिकारीके समक्ष उपस्थित होने से इनकार कर देने के वाद भी जाँचकी कार्रवाई कैसे जारी रखी गई। न्यायाधीशको सवूतके अभावमें मामलेको

१. सर मिर्जा इस्माइल

बर्खास्त कर देना चाहिए था। मुद्देके साक्ष्योके अभावमे वे निश्चित निष्कर्षोंपर कैसे पहुँचे, यह कहना कठिन है। न्यायाधीश महोदय यह स्वीकार करते है कि "जिन लोगोने मार-पीट और यातनाके आरोप लगाये उनमे से अधिकाशने उन आरोपोको सिद्ध करने का प्रयत्न नही किया", किन्तु साथ ही वे यह भी बताते है कि उनके समक्ष "पुष्कल प्रमाणमे मौखिक और लिखित साक्ष्य" प्रस्तुत थे। हमे नही मालूम कि ये "लिखित साक्ष्य" क्या थे। मौखिक साक्ष्य ऐसे लोगोके थे जिनका जाँचसे कोई सम्बन्ध नही था, बल्कि जिन्हे पुलिस सिर्फ इसलिए खीचकर न्यायाधीशके समक्ष ले आई थी कि सरकारी पक्षको सही सिद्ध किया जा सके। न्यायाधीश महोदय कहते है कि "ऐसी ही सामग्री और व्यापक सम्भावनाओं" के आधारपर वे इन निष्कर्षोंपर पहुँचे है। न्यायाधीशके मुँहसे ऐसी भाषा शोभा नही देती। जिस तरहके असम्बद्ध साक्ष्योकी छान-बीन न्यायमूर्ति नागेश्वर अय्यरने की उनकी जाँच करने की चिन्ता किसी भी ईमानदार और निष्पक्ष न्यायाधीशने नही की होती, और न अपने सामने सत्याग्रहियोके साक्ष्य देने से इनकार करने पर नाहक उस तरहकी टीका-टिप्पणी की होती जिस तरहकी टिप्पणी उन्होने यह जानते हुए भी की कि इस इनकारका कारण उनकी योग्यता, स्वतन्त्रता और निष्पक्षतामे सत्याग्रहियोकी शका थी। विज्ञप्तिके दो अनुच्छेदोमें सिर्फ यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि आन्दोलनके नेताओने जेलोसे चोरी-छिपे पत्र भेजने के लिए आपत्तिजनक तरीके अपनाये। इसका यातनाके आरोपोसे क्या सम्बन्ध है, समझमे नही आता। इस प्रकार, काग्रेसियो द्वारा लगाये गये किसी भी आरोपकी छान-बीनकी बात तो दूर रही, उलटे इसने सरकारी अफसरो द्वारा लगाये गये आरोपोंकी जाँचकी शक्ल ले ली, और न्यायाधीशने, जिन लोगोके खिलाफ ये आरोप लगाये गये थे, उन्हे इनका उत्तर देने का कोई अवसर प्रदान किये बिना इन सबको सही करार दे दिया है।

लेकिन इस दुर्भाग्यपूर्ण जाँचका उल्लेख करने मे मेरा प्रयोजन सिर्फ यह बताना है कि मैसूर काग्रेसने जो-कुछ किया, मेरी सलाहपर किया। न्यायाधीशके पक्षपात-पूर्ण निष्कर्ष इस बातको सिद्ध करते है कि जो राय मैने दी, वह सही थी। सत्याग्रहियोकी हैसियतसे मैसूर काग्रेसके सदस्योकी इस बातमे कोई रुचि नही थी कि दोषी पक्षोंकी भर्त्सना की जाये। उनकी रुचि तो इस बातमे थी कि लोगोको सत्यका पता लग जाये। एकतरफा जाँचके सुनहले आवरणने सत्यको ढक रखा है। लेकिन उनमे श्रद्धा[१] होनी चाहिए कि एक-न-एक दिन यह आवरण अवश्य हटेगा और सत्य प्रकाशमे आ जायेगा। अधिकारियोके इस तरह दोष-मुक्त कर दिये जाने के फलस्वरूप उनके रुखमे और भी कठोरता आ सकती है और कैदियोके साथ पहलेसे भी ज्यादा दुर्व्यवहार किया जा सकता है। यदि ऐसा ही हुआ तो कैदियोको अपने कष्टमे उल्लासका अनुभव करना चाहिए, और यह समझ लेना चाहिए कि

१. साधन-सूत्रमें कुछ भूल रह गई प्रतीत होती है, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है

यदि उन्होंने किसी प्रकारके द्वेष-दुर्भावके बिना उसे सह लिया तो वे स्थानीय कांग्रेसको अपने लक्ष्यके निकटतर ले जायेंगे।

सेवाग्राम, ७ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-५-१९४०

५१. एन्ड्रयूजका प्रभाव[1]

एलगिन (स्कॉटलैण्ड) के श्री ए० जी० फ्रेजरने मुझे दीनबन्धुके बारेमें नीचे लिखा हृदयस्पर्शी पत्र भेजा है :

आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि चार्ली एन्ड्रयूजके लिए, जो हालमें ही हमें छोड़कर चले गये हैं, आप आनन्द और प्रेरणाके स्रोत थे और इसलिए कि अन्य किसी व्यक्तिकी अपेक्षा आप उनके बिछोहको अधिक अनुभव करते होंगे। उनका जीवन एक महान् और आन्तरिक आनन्दसे आप्लावित था, और जिन बातोंने उनके जीवनको समृद्ध किया था उनमें आपकी मैत्रीका एक प्रमुख स्थान था। आपके आनन्दके लिए मैं यहाँ उनके जीवनके एक प्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ।

मेरी जानकारीमें, सर गोर्डन गैंगिसबर्ग ब्रिटिश गवर्नरोंमें सबसे नेक व्यक्ति थे। उनके बारेमें यह बात अक्षरशः सत्य है कि आफ्रिकावासियोंके लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। सर गोर्डन चार्लीसे मिलनेको बड़े उत्सुक थे। उन्होंने मुझसे मुलाकात करवानेको कहा — बने तो पाल माल-स्थित अपने आर्मी ऐंड नेवल क्लबमें दोपहरके भोजनके समय। यह क्लब लन्दनके ऐसे क्लबोंमें से है जो पोशाकके मामलेमें सबसे अधिक सख्ती बरतते हैं। इसलिए मैंने गैंगिसबर्गको बताया कि चार्ली क्लब द्वारा निर्धारित पोशाक में तो नहीं आ सकेंगे। लेकिन उन्हें इसकी परवाह नहीं थी। इसलिए क्लबमें दोपहरके भोजनकी व्यवस्था की गई। इस मुलाकातवाले दिन मैं गैंगिसबर्गके साथ बैठा हुआ था, तभी दरबानने आकर कहा, "महोदय, एक आदमी दरवाजेपर खड़ा है। वह कहता है कि उसने आपसे मिलनेका समय ले रखा है, लेकिन जबतक आप खुद उसे न देख लें, तबतक मैंने उसे अन्दर आने देना ठीक नहीं समझा।" यह सुनकर मैंने गैंगिसबर्गसे कहा, "ये चार्ली ही होंगे।" और सचमुच वही थे। वे इतनी खराब पोशाकमें थे, जितनी खराब पोशाकमें मैंने उन्हें यूरोपमें कभी नहीं देखा था। लेकिन गैंगिसबर्ग तो उनसे

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

मिलकर इतने प्रसन्न हुए कि इस बातकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। हम बीचकी एक छोटी-सी मेजपर भोजन कर रहे थे। गैंगिसबर्ग हालमें ही इंग्लैण्ड लौटे थे, इसलिए कई एडमिरल, जनरल और गवर्नर उठकर उनसे मिलने आये। उन्होंने एन्ड्रयूजसे उन सबका परिचय कराया। इसके बाद हम शान्तिसे बातें करने को एक एकान्त कोनेमें जा बैठे। इसी बातचीतमें चार्लीके ब्रिटिश गियाना जाने की बात तय हुई। आखिर चार्लीके उठने का समय आया। गैंगिसबर्ग उनको छोड़ने सड़कतक गये और खुद एक टैक्सी बुलाकर उन्हे उसमें बिठाया। टैक्सी चली तो गैंगिसबर्गकी निगाह उसीपर टिकी रही। उनका सिर नत था। आखिर एक मोड़पर टैक्सी आँखोसे ओझल हो गई, लेकिन वे कुछ देरतक वहीं निश्चल-मौन खड़े रहे। फिर उन्होने मुड़कर मुझसे कहा, "मुझे तो लग रहा है, मानो स्वयं प्रभु यीशु मेरे साथ भोजन करके मुझे कृतार्थ कर गये है।" यह दो महान् व्यक्तियोंकी मुलाकात थी और ये दोनो गियाना-स्थित भारतीय मजदूरोके कल्याणके लिए मिले थे।

इस समय आप चार्लीका विछोह, यहाँ रहनेवाले और उनको प्यार करनेवाले हम लोग जितना जान सकते हैं, उससे कहीं अधिक अनुभव कर रहे होंगे। लेकिन हम प्रार्थना कर रहे है कि आपको और आपके माध्यमसे भारतको प्रभुका प्रसाद प्राप्त हो और आपको शान्ति मिले।

सेवाग्राम, ७ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-५-१९४०

५२. पत्र : बाल कालेलकरको

७ मई, १९४०

चि० बाल,

मैं यह संशोधित मसौदा[१] भेज रहा हूँ। जरा देर तो हो गई, लेकिन क्या करूँ? तेरे दोनो पत्र मिले थे। इस पत्रपर हस्ताक्षर करके मुझे भेज देना। मैं ही इसे भेजूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४१)से

१. तात्पर्य घनश्यामदास बिड़लाके नाम बाल कालेलकरके पत्रके मसौदेसे है। इसमें बाल कालेलकरने अमेरिकामें अपनी डी० एस-सी० (इंजीनियरिंग) की पढ़ाईका खर्च पूरा करने के लिए बिड़लासे ९,००० रुपयेकी छात्रवृत्ति देने का अनुरोध किया था।

५३. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

७ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

मुझे लगता है, अभी तुम्हारा कचनके पास जाना उचित नही होगा। मुझे डर है, वहाँ झगड़ा होगा। ठीक यह लगता है कि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उसे लिखकर देखूँ और उसका मन टटोलूँ। वहाँ वह गई है, तो अब उसे अव्यवस्थित करना ठीक नहीं। पतिके नाते भी तुम्हारा सयम बरतना उचित है। उसकी स्वतन्त्रता तुम्हे सुरक्षित रखनी चाहिए। उसे सलाह दी जा सकती है, हुक्म नही दिया जा सकता। जल्दबाजीमें कुछ न करना। बदरीनारायण या कलकत्ते जाना हो, तो इसमें उससे पूछने की क्या बात है? लेकिन जैसा तुम्हे अच्छा लगे वैसा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४८) से। सी० डब्ल्यू० ७०८६ से भी; सौजन्य मुन्नालाल ग० शाह

५४. पत्र : राजेन्द्रप्रसादको

[७ मई][1] १९४० [के पश्चात्]

तुम्हारा खत मिला। मैंने "स्टैटमेट"[2] भी देखा था। हमारे लिए तो नैतिक प्रश्न है। और जब सल्तनत हठसे न्याय देना नही चाहती है तो हम कैसे मदद करे? अगर गुलामखोरी बुरी है तो मालिककी पसदगी क्या? काग्रेसकी तो यही नीति चली

१. साधन-सूत्रमें यह और इससे अगला पत्र, दोनों ७ मई, १९४० की प्रविष्टिके बाद दिये गये हैं।

२. साधन-सूत्रसे पता चलता है कि राजेन्द्र बाबूने "घबराहटमें" ब्रिटिश शासकोंके पक्षमें एक वक्तव्य दे डाला था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है: "फिर जब उसने (जर्मनी ने) हॉलैण्ड, बेल्जियम, डेनमार्क और नॉर्वेपर भी चढ़ाई कर दी तो मेरे दिलपर इसका बहुत असर पड़ा। मुझे मालूम होने लगा कि किसी भी कमजोर देशको जर्मनी स्वतन्त्र नहीं रहने देगा। अंग्रेजोंके प्रति जो थोड़ा-सा गुस्सा था वह कम हो गया और मुझे ऐसा भान होने लगा कि हमको ब्रिटिशकी मदद करनी चाहिए, जिससे वह जर्मनीको हरा सके, और इस अन्यायी शक्तिका दमन कर सके।

यह भाव इतना प्रबल हो गया कि मैंने एक छोटे बयानमें अपने उद्गारको प्रकाशित भी कर दिया।"

आती है। बेचैनीका कोई कारण नही है। अगर हम सब स्वतंत्रता चाहते है तो हमसे कोई छीन नही सकता है। अगर थोडे ही चाहते है तो उसीकी तलाशमे मर जायेगे। हमारे पास देनेको नैतिक बलके सिवाय है क्या? और वह तो इन्साफके साथ ही दिया जा सकता है न? पैसा वगैरा तो हम चाहें या नही उनको मिल ही रहा है। उनकी सरदारी है तबतक वे लेते रहेगे। जवाहरलालने अपना उत्तर मुझे बताया है। बिलकुल ठीक है। हम सी० डी०[1] न करे वह कोई छोटी चीज नही है। आराम खूब लो।

बापुके आशीर्वाद

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य. नारायण देसाई

५५. पत्र : कैलाशनाथ काटजूको[2]

[७ मई, १९४० के पश्चात्]

मेरी जो स्थिति पहले थी वह सही तो थी ही, लेकिन उसे यन्त्रवत् नही अपनाया जा सकता था। जो स्थिति कांग्रेसने अपनाई है वह भी सही है। हमारी समस्या विशुद्ध रूपसे नैतिक है। जिस क्षण ब्रिटेनवाले नैतिकतापूर्ण आचरण करने लग जायेंगे उसी क्षणसे कांग्रेसका नैतिक सहयोग-समर्थन उनके साथ होगा। कांग्रेसके पास देनेको और कुछ है ही नही। मै नही समझता कि युद्धके बादलोके और भी घनीभूत हो जाने से ही स्थितिमे कोई बदलाव आ गया है। अपने गलत राहपर चलते बेटेके प्रति मेरी सहानुभूति तो हो सकती है, लेकिन जबतक वह गलत राहपर चल रहा है तबतक मेरा नैतिक समर्थन उसके किसी काम नही आयेगा। और भारतसे ब्रिटेन भौतिक सहायता तो प्राप्त कर ही रहा है। उसमे हमारे चाहने या न चाहने से कोई फर्क नही पडता। लेकिन हम जो कर सकते है वह यह कि जल्दबाजीमे कोई कदम उठाकर ब्रिटेनको परेशानीमे न डाले। जबतक रास्ता बिलकुल साफ नही हो जाता तबतक मै सविनय अवज्ञाका सहारा नही लूंगा। जो-कुछ मैंने कहा है वह अगर आपको न जँचे तो आप जवाहरलाल और दूसरे लोगोसे इसपर चर्चा कीजिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य : नारायण देसाई

१. "सी० डी०" (सिविल डिसओबिडियन्स = सविनय अवज्ञा) अंग्रेजी लिपिमें लिखा गया है।

२. कैलाशनाथ काटजूने लिखा था : "आपने बिना शर्त सहयोग के बारेमें जो-कुछ लिखा वह बिलकुल सही है। आज एक अन्तर्राष्ट्रीय संकट उपस्थित हो गया है। अब भी मौका है कि हम अपने कदमपर फिरसे विचार करें और बने तो सहायता देनेका निश्चय करें। अभी तो हाल यह है कि सभी छोटे राष्ट्रोंका अस्तित्व संकटमें पड गया है।"

५६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
[८ मई, १९४०][1]

चि० अमृत,

तुम्हारा पहला पत्र आज मिला। तुम्हारा खूब स्वागत हो रहा है, यह जानकर खुशी हुई। मुझे इसमें कोई शका भी नही थी। अब तुम्हे अपना वजन बढाना चाहिए। 'टाइम्स ऑफ इडिया' के "आजका विचार" में यह उद्धरण दिया गया है. "आपकी निराशा आपके परिवेश बदलने से दूर नही होगी। उसके लिए जरूरी यह है कि आप अपना दृष्टिकोण बदले — अपने हृदयमे परिवर्तन लाये।"

तुम्हारी डाक और लेख मैं भेजता रहा हूँ। आज दो पत्र है।

साथमे लेख भी भेज रहा हूँ। कल भी भेज सकता था, लेकिन तब बहुत ज्यादा श्रम पड़ जाता। अनुवाद यहाँसे जा चुके है।

आनन्द-सहित सभी सकुशल है। आखिर ललिताकुमारी आ ही रही है।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६६) से, सौजन्य · अमृतकौर। जी० एन० ७२७५ से भी

५७. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मई, १९४०

चि० प्रभा,

तू कैसी उलटी खोपडीकी है! मैं तेरे पत्रोंके उत्तर देता ही रहता हूँ, तिसपर भी तुझे सन्तोष नही होता और उलटे शिकायत करती है? तो क्या यह बेहतर न होगा कि तू यही रहने लगे। जयप्रकाशको अखबार क्यो नही मिलता? मैंने पूना पत्र लिखवाया है। यदि अब न मिले, तो मुझे खबर देना। राजेन्द्र बाबूका पत्र आया है। पिताजी के बारेमें मैं समझ गया। अब उनकी तबीयत भी ठीक होगी। तेरा कार्य-विभाग निश्चित हो गया क्या? बा अच्छी है। राजकुमारी शिमला गई है। उसका

१. गाधीजी द्वारा पिछले दिन लेख न भेज पाने के उल्लेख से, देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृ० ५२।

पता मनोर विला, शिमला है। यहाँ बहुत तेज गर्मी पड रही है। शारदा यही है। मै मजेमे हूँ।

बापूके आशीर्वाद

श्री० प्रभावती देवी
मारफत — श्री ब्रिजविहारी सहाय
ए/३२, हाई कोर्ट क्वार्टर्स
पटना

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४१)मे

५८. पत्र : कंचन मुन्नालाल शाहको

सेवाग्राम
८ मई, १९४०

चि० कचन,

तेरा पत्र मिला। मुन्नालाल तुझे लिखता रहता है, इसलिए मैने समयकी बचत कर ली। तेरा नोटिस मुझे स्वीकार है। मैने तो कबसे कह रखा है कि तुम लोगोको अलग घर बसाना चाहिए। कहाँ और कब, अब यही सोचने को रह जाता है। तू वहाँसे मुक्त होगी, तब इसपर विचार करेगे। क्या तू चाहती है कि मुन्नालाल वहाँ आये? क्या वहाँ उसकी समाई हो सकेगी? जैसा तेरे मनमे हो, लिखना।

क्या तेरी तबीयत वहाँ ठीक रहती है? सुभीते सब है या नही? समय कैसे कटता है? यहाँ तो बहुत गर्मी पड रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८२) से। सी० डब्ल्यू० ७०८३ से भी, सौजन्य मुन्नालाल ग० शाह

५९. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

८ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

साथका पत्र[1] पंचगनी भेज देना। तुम्हारे घर वसाने की वात मुझे पसन्द है। कंचनके लौटने पर हम इस वारेमें विचार कर लेगे। कंचनका जवाव मिलने पर, अगर जरूरी हो तो पचगनी हो आना। तुम वहाँ रहो और कंचन यहाँ आ जाये तो मुझे इसमे भी कोई आपत्ति नही है।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४३) से। सी० डब्ल्यू० ७०८५ मे भी, सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

६०. पत्र : प्रभुलालको

सेवाग्राम, वर्धा
८ मई, १९४०

भाई प्रभुलाल,

तुम्हारे कामका व्योरा मिल गया था। कहना चाहिए, ठीक है।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१३५)से

१. देखिए पिछला शीर्षक।

६१. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके गत २९ तारीखके तत्परतापूर्ण और स्पष्ट उत्तरके लिए धन्यवाद।

'हैंसर्ड' की प्रति मेरे पास थी जो कुमारी हैरिसनने कृपापूर्वक मुझे भेज दी थी। इसलिए मैं लॉर्ड जेटलैण्डका पूरा भाषण[1] पढ़ गया। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि जितना बुरा तारसे भेजा उसका साराश लगा था, भाषण उससे भी ज्यादा बुरा लगा। लेकिन मैं अलग-अलग मुद्दोंपर दलील देकर आपको उबाना नहीं चाहता। मेरी स्थिति यह है कि अगर ग्रेट ब्रिटेन अपने व्यवहारको नैतिक दृष्टिसे ठीक करना चाहता है तो उसे भारतके आत्म-निर्णयके अधिकारके सम्बन्धमें अपेक्षित घोषणा बिना शर्त करनी चाहिए। यदि आप यह कहते हैं कि जब भारत आपके द्वारा तय की गई शर्तें पूरी कर देगा तभी उसका आत्म-निर्णयका अधिकार मंजूर किया जायेगा तो इसका मतलब इस अधिकारको शायद अनिश्चित कालतक के लिए टाल देना ही होगा, क्योंकि हो सकता है कि शर्तें कभी भी पूरी न की जा सकें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२५७) से। सौजन्य : इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन

१. देखिए पृ० २४, पा० टि० ११

६२. पत्र : अकबर हैदरीको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४०

प्रिय सर हैदरी,

आपका पत्र तो विचित्र है।[1] इक्के-दुक्के उदाहरणोंके आधारपर कोई सामान्य राय बना लेना या गम्भीर उपद्रवोंकी लीपा-पोती करने से साम्प्रदायिक एकता कभी स्थापित नहीं हो सकती। मुझे नहीं मालूम कि आपका मतलब बिहारकी किस घटनासे है। लेकिन अगर बिहारमें न्याय नहीं किया गया तो यह कोई ऐसी नजीर नहीं है जिसकी और जगह नकल की जाये।

और एक बड़े उपद्रवकी सार्वजनिक आलोचनाका अलग-अलग व्यक्तियोंके खिलाफ चल रही अदालती कार्यवाहियोंकी निष्पक्षतापर प्रतिकूल प्रभाव क्यों पड़ना चाहिए?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८०१८)से

१. अकबर हैदरीने २ मई, १९४० के अपने इस पत्रमें लिखा था: "मैं आपसे कम निराश नहीं हूँ। इन तमाम छोटी-मोटी घटनाओं और कार्रवाइयोंके पीछे साम्प्रदायिक एकताका वही बड़ा सवाल उपस्थित है, और जबतक उस सवालके हलमें प्रगति नहीं होगी, तबतक बहुत-से दूसरे सवाल जहाँ-के-तहाँ कायम रहेंगे, और साम्प्रदायिक झगड़े होते ही रहेंगे।

"जहाँतक [illegible] बीदरके काण्ड (जो पिछले सालकी बिहारकी घटनाओंका स्मरण कराता है) का सम्बन्ध है, कई अभियुक्तोंके मामले अदालतमें पेश हैं। इस बातपर तो मैं अपना आश्चर्य ही प्रकट कर सकता हूँ कि ऐसे वक्तव्य जारी किये गये हैं जो कई मुद्दोंके सम्बन्धमें अदालतकी निष्पक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं।"

६३. पत्र : जगन्नाथको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४०

प्रिय जगन्नाथ,

बेशक, इस बातकी कोई जरूरत नही है कि मै डॉ० गोपीचन्दका[1] परिचय दूं या उन्हें कोई प्रमाणपत्र दूं। यही काफी है कि जिन चीजोको लेकर मै चल रहा हूँ, उन सबके ये अभिकर्त्ता (एजेट) है। इनकी कोई चिन्ता न करो। पजावमे तो अपना परिचय और अपना विज्ञापन ये आप ही है। ये ससदीय भारसे मुक्त हो गये है, इसकी मुझे खुशी है। रचनात्मक कार्यके क्षेत्रमे मै इनसे वडी-वडी अपेक्षाएँ रखूंगा।

साथका कागज[2] शकुन्तलादेवीको दे देना।

तुम्हारा,
वापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८५)से। सौजन्य जगन्नाथ

६४. पत्र : मनुबहन सुरेन्द्र मशरूवालाको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४०

चि० मनुडी,

तेरा पत्र मिला। तू अपना पता भला क्यो लिखेगी, क्योकि तुझे तो सारा ससार जानता है? इसलिए यदि मै सिर्फ वम्बई लिखूं, तो क्या पत्र तुझे नही मिल जायेगा? अथवा तू समझती होगी कि तेरा पता तो मुझे मुखाग्र होना ही चाहिए। बा मजेमें है। क्या तू आषाढमें यहाँ आना चाहती है? तू तो जानती ही है, जब चाहे यहाँ आ सकती है। कुँवरजी[3] की तबीयत ठीक है। शारदा अभी यही है।

१. गोपीचन्द भार्गव
२. यह उपलब्ध नही है।
३. मनुबहन मशरूवाला के पिता

बालक मजेमें है। उसे छाजन (एक्जिमा) है, लेकिन वह बढ रहा है। यहाँ खूब गर्मी पड़ रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० २६७६) से। सौजन्य कनुभाई मशरूवाला

६५. पत्र : सरस्वती गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४०

चि० सरू,

तेरा खत मिला है। तुझे आशीर्वाद न देनेके कारण मैंने नही लिखा है ऐसा नहि है। तेरी और कातिपर गुस्सा करके मै कहा जाउँ? तुम सबका भला हो वा और मै सोच सकते है। शाति[1] अच्छा है सुनकर खुश होता हु। काति नापास हूआ सो भी सुना। नापास होनेसे दुखी नही होगा। और पढनेका मौका मिलेगा। आरामसे पढते-पढते अच्छा दाक्तर हो जायगा। तेरी तबीयत अच्छी रहती होगी।

बापुके आशीर्वाद

श्रीमती सरस्वती
माधवी मन्दिरम्
ईश्वरवट्टम्
नैयाट्टिकरा
त्रावणकोर[2]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७५) से। सी० डब्ल्यू० ३४४९ से भी, सौजन्य कान्तिलाल गाधी

१. सरस्वती गाधीका पुत्र
२. पता सी० डब्ल्यू० प्रतिसे लिया गया है।

६६. भेंट : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाताको[1]

सेवाग्राम
९ मई, १९४०

श्री गांधी सिरपर गीला कपड़ा लपेटे, बहुत कम उपस्करवाले अपने छोटे-से कमरेमें, चटाईपर बैठे हुए थे। अपना दृष्टिकोण उन्होंने बड़ी सावधानीसे समझाया। वे बड़ी उत्कटतासे बोल रहे थे।

जिससे सम्मानजनक शान्ति स्थापित हो सके, ऐसे समझौतेका मैं स्वागत करूँगा। वाइसराय जानते हैं कि इसके लिए मैं बराबर तैयार हूँ।

प्रतिरक्षा और व्यापारिक हितो-जैसे प्रश्नोपर मै ब्रिटेनसे समझौता करने के खिलाफ नही हूँ, और मै इस बातके लिए पूरी तरहसे राजी हूँ कि इनके सम्बन्धमे जो-कुछ तय हो उसे दोनो पक्षोमे हुए इकरारनामेके अगके रूपमे सविधान-सभाको विचारके लिए सौपा जाये।

इसके बाद श्री गांधीने संविधान-सभाके सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण समझाते हुए कहा:

मै तो मानता हूँ कि इस कामको करने का यह सबसे अच्छा तरीका है। लेकिन यह मत भूलिए कि इस मामलेमे मै अन्य सुझावोपर भी गौर करने को तैयार हूँ। अगर कुछ लोग यह मानते हो कि इसके इससे भी अधिक प्रातिनिधिक तरीके है तो मै इस बातके लिए तैयार हूँ कि वे मुझे अपनी बात समझाकर अपने दृष्टिकोणका कायल करें। आज मेरा कहना यह है कि सविधान-सभाका निर्वाचन वयस्क मताधिकारसे हो, लेकिन इस सम्बन्धमे भी मै अन्य सुझावोपर विचार करने को तैयार हूँ, बशर्ते कि इन सुझावोंको प्रतिनिधि-जनोका समर्थन प्राप्त हो।

संवाददाताने पूछा, "यदि वाइसराय यह घोषणा करें कि मैं 'श्रेष्ठ कोटिके अंग्रेजों और श्रेष्ठ कोटिके भारतीयोंकी' एक परिषद् बुलाऊँगा, और साथ ही अगर वे इस बातपर भी राजी हो जायें कि उसे यथासम्भव कमसे-कम समयमें स्वशासनकी स्थापनाकी व्यवस्था करने का काम सौंपा जायेगा तो क्या सदाशयताका परिचय देनेवाला यह कदम आपको स्वीकार्य होगा?"

निश्चय ही स्वीकार्य होगा। प्रारम्भिक परिषद्मे यह जरूरी होगा कि श्रेष्ठ कोटिके अग्रेज और श्रेष्ठ कोटिके भारतीय मिल-बैठकर अपने मतभेदोंका निबटारा कर ले, लेकिन संविधान-रचनाके काममे तो केवल भारतीय ही शरीक हो।

१. यह हरिजनमें "एन इंपॉर्टेन्ट इंटरव्यू" (एक महत्त्वपूर्ण भेंट-वार्ता) शीर्षकसे छपा था।

यदि वाइसरायको इस आशयकी घोषणा करने का अधिकार दे दिया जाता है कि सम्राट्की सरकार निश्चित रूपसे इस निष्कर्षपर पहुँच चुकी है कि भारत किस प्रकारका शासन चाहता है, यह तय करने का अधिकार केवल भारतको ही है, और यदि इस लक्ष्यको ध्यानमें रखकर वाइसराय संविधानकी रचना करने और जो भी सवाल उठें उनका निबटारा करने के लिए संविधान-सभा बुलाने का उपाय ढूंढने के निमित्त श्रेष्ठ कोटिके अंग्रेजों और किसी स्वीकार्य पद्धतिसे निर्वाचित श्रेष्ठ कोटिके भारतीयोंकी परिषद् बुलायें तो यह प्रस्ताव मैं अवश्य स्वीकार कर लूंगा। लेकिन आज तो मुझे इसके लिए उपयुक्त वातावरणका आभास नहीं मिल रहा है।

इसके बाद श्री गांधीसे यह पूछा गया कि अगर सम्राट्की सरकार परिषद् बुलाये और सद्भावपूर्ण आचरण करे तो क्या वे कांग्रेसी मन्त्रियोंको पुनः सरकारमें शामिल होने पर राजी करने के लिए अपने प्रभावका प्रयोग करेंगे। महात्माजी ने छूटते ही उत्तर दिया :

नहीं, जबतक हिन्दू-मुस्लिम समझौता नहीं हो जाता तबतक तो नहीं करूँगा। तबतक मुझे इन्तजार करना होगा।

मैंने जब श्री गांधीसे विदा ली तो उन्होंने परिहास करते हुए कहा :

आप इस मुलाकातके पात्र नहीं थे। आप अपने साथ सेवाग्राममें यह गर्म हवा ले आये।

उस समय तापमान १०८ डिग्री था। उनके परिहासका मैंने जो प्रत्युत्तर दिया— यानी, "जो हवा किसीको लाभ न पहुँचाये वह सचमुच खराब हवा है"— उसे सुनकर वे ठठाकर हँस पड़े।

[अंग्रेजीसे]
टाइम्स ऑफ इंडिया, १०-५-१९४०; हरिजन, १८-५-१९४० भी

६७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
११ मई, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला।

डॉ० रिस्टी मित्र-सहित सर्किट हाउसमें बड़े मजेमें ठहर सकती है।

घनश्यामदास और जमनालालजी यहीं हैं। काममें गर्क हूँ।

शारदाके आनन्दको चेचक नहीं हुई थी। बहुत-से लोग टीका लगवाने को तैयार थे। बा, दुर्गा और अन्य महिलाओंने इनकार कर दिया। लेकिन तूफान गुजर चुका है। गाँवमें भी थम गया है।

लीलावतीको बिच्छूने डक मार दिया था, अम्तुस्सलामको भी। लीलावतीको बहुत कष्ट हुआ।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६७) से, सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ७२७६ से भी

६८. पत्र : अन्नपूर्णा चुन्नीलाल मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
११ मई, १९४०

चि० अन्नपूर्णा,

तेरा पत्र मिला। तेरा कल्याण हो। तेरे सब शुभ मनोरथ पूर्ण हो। जब यहाँ आने का मन हो, आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४२६) से

६९. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

११ मई, १९४०

सब बातोको ध्यानमे रखते हुए अच्छा तो यह है कि तुम पंचगनी हो आओ। कचनका तार भी आया है कि मुन्नालालको भेज दीजिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४२) से। सी० डब्ल्यू० ७०८८ से भी, सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

७०. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेवाग्राम, वर्धा
११ मई, १९४०

चि० अमला,

तेरा पत्र मिला। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। तू अन्धे कुत्तेकी सेवा करती है, यह अच्छी बात है। अपनी माँकी सेवा तो तू करती ही है। यहाँ सब मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

डॉ० मार्गरेट स्पीगल
आइवेनहो, बैंकके वाध्सके सामने
फोर्ट, बम्बई

मूल गुजरातीसे. स्पीगल पेपर्स। सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

७१. प्रश्नोत्तर

लोकतन्त्र और अहिंसा

प्र० : आप यह क्यों कहते हैं कि "लोकतन्त्रकी रक्षा अहिंसासे ही हो सकती है"?[1]

उ०. इसलिए कि जबतक लोकतन्त्र हिंसाके बलपर टिका हुआ है तबतक वह कमजोरोंका भरण-पोषण या उनकी रक्षा नहीं कर सकता। लोकतन्त्रकी मेरी अवधारणा यह है कि इसमें कमजोरसे-कमजोर लोगोंको भी वैसे ही अवसर सुलभ होने चाहिए जैसे सबलसे-सबल लोगोंको सुलभ हैं। यह केवल अहिंसाके द्वारा ही हो सकता है, और किसी तरह नहीं। आज दुनियाका कोई भी देश कमजोरोंके प्रति कृपा-भावके अलावा और कोई भाव नहीं रखता। आप लोगोंका तो कहना यह है कि दुर्बलकी हमेशा हार है। आप खुद अपना ही उदाहरण लें। आपका देश चन्द पूंजीपतियोंके हाथोंमें है। यही बात दक्षिण आफ्रिकापर लागू होती है। ये विशाल मिल्कियतें प्रकट नहीं तो प्रच्छन्न हिंसाके बलपर ही टिकी रह सकती हैं। आज पाश्चात्य लोकतन्त्र जिस तरहसे चल रहा है वह सूक्ष्म ढंगका नाजीवाद या

१. प्रश्नकर्त्ता एक अमेरिकी था।

फासिज्म ही है। ज्यादासे-ज्यादा यही कहा जा सकता है कि यह साम्राज्यवादकी नाजीवादी और फासिस्ट प्रवृत्तियोको ढकने का एक आवरण है। आज जो युद्ध चल रहा है वह लूटके मालमें हिस्सा बँटाने के लिए नही तो और किसलिए चल रहा है? ब्रिटेनने भारतपर कोई लोकतान्त्रिक पद्धतिसे कब्जा नही किया। दक्षिण आफ्रिकी लोकतन्त्रका मतलब क्या है? उसका सविधान ही उस देशके मूल निवासियों, अश्वेत लोगोके खिलाफ गोरोको सरक्षण देने के लिए बनाया गया है। और उत्तरके राज्योने गुलामीको मिटाने के लिए जो-कुछ किया उसके बावजूद खुद आपके देशका इतिहास शायद इससे भी अधिक काला है। आप लोग हब्शियोके साथ जैसा व्यवहार करते रहे हैं वह अपयश की बात है। और ऐसे ही लोकतन्त्रोकी रक्षाके लिए यह लडाई लड़ी जा रही है। इस सबमे बहुत बडा पाखण्ड है। अभी मैं जो-कुछ सोच रहा हूँ, अहिंसाकी दृष्टिसे सोच रहा हूँ, और हिंसाको उसके सर्वथा नग्न रूपमें सामने रख देने की कोशिश कर रहा हूँ।

भारत सच्चा लोकतन्त्र, अर्थात् हिंसासे रहित लोकतन्त्र विकसित करन का प्रयत्न कर रहा है। हमारे हथियार सत्याग्रहके हथियार हैं, जिनके प्रकट रूप हैं — चरखा, ग्रामोद्योग, दस्तकारी द्वारा प्राथमिक शिक्षा, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक मेल-जोल, मद्य-निषेध और अहमदाबादके ढगपर अहिसक रीतिसे मजदूरोका सगठन। इन सबका मतलब है जन-प्रयत्न और जन-शिक्षण। इन प्रवृत्तियोको चलाने के लिए हमारे पास बडे-बड़े सगठन हैं। ये सब स्वयसेवाके आधारपर खड़े हैं और उनकी शक्तिका एकमात्र स्रोत निम्नतम श्रेणीके लोगोकी सेवा है।

यह अहिंसक प्रयत्नका स्थायी अग है। इसी प्रयत्नसे अहिंसक प्रतिरोधकी शक्ति उद्भूत होती है। इस अहिंसक प्रतिरोधको असहयोग या सविनय अवज्ञाकी सज्ञा दी गई है, जिसकी परिणति सामूहिक लगानबन्दी और करबन्दीके रूपमे हो सकती है। जैसा कि आपको मालूम है, हमने असहयोग और सविनय अवज्ञाका प्रयोग काफी बडे पैमानेपर और बहुत हदतक सफलतापूर्वक किया है। इस प्रयोगमे भव्य भविष्यकी सम्भावना समाई हुई है। अबतक हमारा प्रतिरोध कमजोरोका प्रतिरोध रहा है। लक्ष्य सबल लोगोके योग्य प्रतिरोधकी क्षमताका विकास करने का है। आपके युद्ध कभी भी लोकतन्त्रको निरापद नही बना पायेगे। अगर भारतके लोग अपेक्षित ऊँचाईतक उठ पाये, या दूसरे शब्दोमे, अगर ईश्वरने मुझे भारतके इस प्रयोगको सफल बनाने लायक सूझ-बूझ और शक्ति प्रदान की तो यह प्रयोग लोकतन्त्रको निरापद बना सकता है और बनायेगा।

पाखण्ड

प्र० : मै आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि सत्याग्रहियोंकी सूचीमें नाम दर्ज करवाने के लिए आपने जो कसौटी रखी है उसमें विश्वास न रखनेवाले लोग कांग्रेस संगठनमें किसी भी पदपर न रहे। लेकिन वास्तवमें हो यह रहा है कि जो लोग स्पष्ट रूपसे स्वीकार करते है कि आपकी कसौटीमें उनका विश्वास नहीं है

उनपर तो यह प्रतिबन्ध कारगर हुआ है, लेकिन पाखण्डी लोगोंकी खूब बन आई है। जिन लोगोंका आपके कार्यक्रमसे कोई लगाव नहीं है वे भी सत्ता प्राप्त करने के लिए सत्याग्रहकी प्रतिज्ञापर[1] हस्ताक्षर करके आगे आ रहे हैं। उनकी योग्यता सिर्फ यही है कि वे उचित-अनुचितकी कोई परवाह नहीं करते। क्या सत्याग्रही सेनाके सेनापतिकी हैसियतसे आप इस सबकी ओरसे आँखें बन्द रख सकते हैं? अगर नहीं तो फिर आप इसका क्या इलाज सुझाते हैं?

उ०. मैं मानता हूँ कि [अंग्रेज कवि] कूपरकी समझमे जब यह बात नही आई कि पाखण्डियोंके लिए वे क्या कहे तो उन्होने उनके लिए भी अच्छे शब्दोंका ही प्रयोग करते हुए कहा "पाखण्ड [प्रकारान्तरसे] सद्‌गुणकी प्रशस्ति है"।[2] और वास्तवमें है भी ऐसा ही। लेकिन जिन सज्जनोंसे आपका तात्पर्य है वे शीघ्र ही अपनी भूल समझ जायेंगे — चाहे वह इस कारणसे हो कि मै पाखण्डकी गन्ध पाकर सघर्ष आरम्भ ही न करूँ या इसलिए कि वे स्वय ही एक ऐसी भूमिकासे ऊब जाये जो उनसे कुछ श्रमकी अपेक्षा रखती है। फिलहाल तो मै हरएककी बातका विश्वास करके ही चलूँगा और मानूँगा कि जिन्होंने प्रतिज्ञा ली है, ईमानदारीसे ली है। जबतक मुझे किसीके मंशामे शक करने का निश्चित प्रमाण न मिल जाये तबतक मुझे उसपर शक करने का कोई अधिकार नही है।

भारत रक्षा अधिनियम

प्र० : रामगढ़ कांग्रेसमें पास किये गये प्रस्तावमें[3] कहा गया है: "कांग्रेसजन तथा कांग्रेसमें आस्था रखनेवाले अन्य लोग धन, जन और सामग्री देकर युद्ध जारी रखने में मदद नहीं दे सकते।" कांग्रेसजनों या कांग्रेस कमेटियोंको लोगोंको कांग्रेसका हर प्रस्ताव समझाना तो है ही। अगर हम वैसा करते हैं तो निश्चय ही भारत रक्षा अधिनियमको भंग करेंगे — मतलब यह कि सेनापतिकी हैसियतसे आपके आदेश देने से पहले ही हम सविनय अवज्ञा करने लग जायेंगे। इस परिस्थितिमें हमें क्या करना चाहिए?

उ० : मुझे नही लगता कि लोगोंको प्रस्ताव समझाने-मात्रसे आप भारत रक्षा अधिनियमका उल्लंघन करने के दोषी बन जायेंगे। लेकिन अगर आप प्रस्तावको समझाने की क्रियामें तनिक नमक-मिर्च लगा दें और ब्रिटिश शासनके खिलाफ एक उग्र भाषण दे डाले तो सहज ही आप इस अधिनियमकी गिरफ्तमे आ जायेंगे। आपकी जगह मैं होऊँ तो ऐसा न करूँ। ब्रिटिश शासन क्या है, यह लोगोंको काफी समझाया जा चुका है। लेकिन आपको जोर इस बातपर देना चाहिए कि विदेशी शासनसे छुटकारा पाने के लिए लोगोंको क्या करना है। इसलिए सब-कुछ इसपर निर्भर है

१. देखिए परिशिष्ट १।

२. फ्रांसीसी लेखक रोशफुकोने भी यही बात इन शब्दोंमें कही थी: "पाखण्ड दुर्गुण द्वारा सद्‌गुणको अर्पित श्रद्धांजलि है।"

३. देखिए खण्ड ७१, परिशिष्ट ६।

कि आप अपनी बात कहते किस प्रकार हैं। यदि आपपर कोई स्पष्ट आदेश जारी किया जाये और आप उसको न मानें तो माना जायेगा कि आपने मेरे निर्देशोंको भंग किया।

आत्म-निर्णय

प्र० : जिस मामलेसे हिन्दू, सिख आदि अन्य जातियोंका भी इतना महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है उसके बारेमें मुसलमानोंको आत्म-निर्णयका अधिकार देकर क्या आप सही काम कर रहे हैं? मान लीजिए, मुस्लिम लीगके प्रस्तावके अनुसार अधिकांश मुसलमान विभाजनके पक्षमें राय देते हैं तो उस हालतमें हिन्दुओं, सिखों आदिके आत्म-निर्णयका क्या होगा, क्योंकि मुस्लिम-बहुल राज्योंमें वे तो अल्पसंख्यक ही होंगे? अगर आप इस तरह चलायेंगे तो इसका अन्त कहाँ होगा?

उ० : बेशक, हिन्दुओं और सिखोंको भी वही अधिकार प्राप्त होगा। मैंने तो केवल यह कहा है कि इस समस्याके अहिंसक समाधानका कोई और रास्ता नहीं है। अगर राष्ट्रका हर महत्त्वपूर्ण हिस्सा अपने लिए आत्म-निर्णयकी माँग करता है तो इसका मतलब यह होगा कि हम एक राष्ट्र नहीं हैं और इसलिए हमें स्वतन्त्रता भी नहीं मिल सकती। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि पाकिस्तान एक ऐसा असत्य है जो टिक नहीं सकता। जिस क्षण इसके निर्माता इसे अमली शक्ल देने लगेंगे उसी क्षण उन्हें मालूम हो जायेगा कि यह व्यवहार्य नहीं है। जो भी हो, मेरी यह राय तो एक निजी राय है। विशाल हिन्दू जन-समुदाय या अन्य लोग क्या कहते या करते हैं, यह मुझे नहीं मालूम। मेरा काम सबके बीच एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना है, सबकी समान भलाईके लिए कोशिश करना है।

क्या करें?

प्र० : कार्य-समितिकी पिछली बैठकमें[1] यह तय किया गया था कि या तो सभी कांग्रेस कमेटियाँ अपनेको सत्याग्रह कमेटियोंकी शक्ल दे दें या कमेटियोंके जो पदाधिकारी किसी कारणवश प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर न कर पायें वे त्यागपत्र देकर उन लोगोंके लिए जगह खाली कर दें जिन्होंने उसपर हस्ताक्षर किये हैं। अब अगर किसी कांग्रेसीका आपकी कार्य-पद्धतिमें तो विश्वास न हो, लेकिन उसने सिर्फ कार्य-समितिके प्रस्तावको कार्यान्वित करने के खयालसे उस कार्य-पद्धतिको स्वीकार कर लिया हो और सिर्फ इसलिए कातता हो कि वह पदासीन रहना चाहता है तो क्या उसे सत्याग्रही बनने और पदारूढ़ रहने का अधिकार है?

उ० : निश्चय ही ऐसे पदाधिकारियोंको त्यागपत्र दे देने चाहिए। सिर्फ पदासीन रहने के लिए ली गई प्रतिज्ञाका कोई मूल्य नहीं है। ऐसे आदमीको कांग्रेसके किसी पदपर नहीं होना चाहिए।

१. वर्धा में १५ अप्रैलसे १९ अप्रैलतक चलनेवाली बैठक

कर्त्तव्य न करने पर

प्र० : सत्याग्रहके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाला अगर उसमें निर्धारित नियमोंका पालन न करे तो ऐसे सत्याग्रहीके खिलाफ क्या कार्रवाई की जायेगी?

उ० वह जिस पदपर हो उसपर से उसे हटाया जा सकता है।

अगर कोई कमेटी इनकार कर दे

प्र० : अगर कोई कांग्रेस कमेटी अपनेको सत्याग्रह कमेटीका रूप देने से इनकार कर दे तो उस कमेटीकी स्थिति क्या होगी?

उ० यदि कोई कमेटी इस तरहसे निष्प्रभाव हो जाये और उसके स्थानपर कोई दूसरी कमेटी बनानेवाले कांग्रेसी उस क्षेत्रमें सामने न आयें तो सत्याग्रह-संघर्षमें उस क्षेत्रको बिना प्रतिनिधित्वके रहना पड़ेगा।

क्या ये लोग प्रतिज्ञा ले सकते हैं?

प्र० : क्या निम्न प्रकारके लोग सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ले सकते हैं?

(क) जिस वकीलने अदालतको यह वचन दे रखा हो कि वह सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें भाग नहीं लेगा;

(ख) जो आदमी खुद तो खादी पहनता हो लेकिन [परिवारके] अन्य लोगोंके लिए मिलके कपड़े खरीदता हो और अपने बिस्तरकी चादर आदिके लिए भी ऐसे ही कपड़ेका इस्तेमाल करता हो;

(ग) जो आदमी खादीधारी होते हुए भी विदेशी वस्त्रका व्यापार करता हो।

उ०. ऐसे लोग प्रतिज्ञा नहीं ले सकते।

सेवाग्राम, १३ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-५-१९४०

७२. पक्षपात

९ मार्चके 'हरिजन' मे सेग खासी स्कूलके विषयमे मेरी टिप्पणीको[1] पढ़कर एक भाई लिखते हैं :[2]

> ... यह बिलकुल सच है कि पाठ्यक्रमके लिए निर्धारित सूचीमें लगभग सारी पुस्तकें मिशन द्वारा तैयार कराई गई हैं, और वे किसी गैर-ईसाई स्कूलमें पढ़ाई जाने लायक नहीं हैं। ... जहाँतक खासी क्षेत्रमें शिक्षाका सम्बन्ध है, शिक्षा-विभागमें जो भी प्रभावशाली लोग हैं, सब ईसाई हैं, और मिशनकी ओरसे चलाये जानेवाले स्कूलोंके साथ बहुत पक्षपात किया जाता है तथा आपको पत्र लिखनेवाले सज्जनने जैसे साहसपूर्ण प्रयत्नकी चर्चा की है, वैसे प्रयत्नोंके मार्गमें अड़चन पैदा की जाती है। ...

यह ऐसा सवाल है जिसका निवटारा असम सरकारको करना चाहिए। पहले जो भी हुआ हो, पत्र-लेखकने जैसे काण्डकी चर्चा की है वैसा काण्ड जनताके प्रति जिम्मेदार किसी भी सरकारके अधीन नही होना चाहिए।

सेवाग्राम, १३ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-५-१९४०

७३. असहयोग

एक प्रभु-परायण राजनीतिक मित्रने, जिन्हे सभी जानते हैं, मुझे निम्नलिखित पत्र[3] भेजा है :

> ... आपके अहिंसा और सत्याग्रहके प्रयोगका मैं बारीकीसे अध्ययन करता रहा हूँ। ... लेकिन मैं आपको बता दूँ कि आपके इन शस्त्रोंका दुनियामें दुरुपयोग हुआ है और हो रहा है। ... असहयोग दैनिक जीवनमें अभिशाप-रूप बन गया है। पारिवारिक जीवन, संघ-संस्थाओं, कार्य-व्यापार, कारखानों और सरकारी दफ्तरों, सबमें इसके दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं।

१. देखिए खण्ड ७१, पृ० २५३-५४।
२. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।
३. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

. . . आपसे इसका प्रयोग सीखकर स्वार्थी लोग आपके नामपर इसका उपयोग स्वार्थ साधने के लिए करते हैं और हजारों लोगोंको कष्टमें डालते हैं। इसलिए आपसे विनती है कि आप राजनीतिमें इस शस्त्रका प्रयोग छोड़ दें। . . .

आपसे मेरा अनुरोध है कि आज जब ब्रिटेनवासी जीवन-मृत्युके संघर्षमें लगे हुए हैं, आप उन्हें किसी प्रकारसे परेशानीमें न डालें। लेकिन मैं जानता हूँ कि खुद कांग्रेसमें तो ऐसा करने का धैर्य नहीं होगा। हाँ, आपकी सलाहपर वह ऐसा कर सकती है। . . .

अगर कांग्रेसजन ब्रिटेनवासियोको परेशान करना चाहते हो तो मुझे लगता है कि उन्हे फिरसे प्रान्तोमें सत्तारूढ़ होकर प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान-सभाओमें ब्रिटिश सरकारके समक्ष कदम-कदमपर मुश्किले खड़ी करनी चाहिए। . . .

फिर, हमें हिन्दू-मुस्लिम समस्याको भी हल करना है। इसके लिए हमें सभी साम्प्रदायिक नेताओ और दलीय नेताओकी एक परिषद् बुलानी चाहिए। यदि हम पहलेसे ही प्रयत्न आरम्भ कर दें तो सम्भव है, जबतक सरकार संविधान-सभा बुलाने पर राजी हो तबतक हममें एकता स्थापित हो जाये। देर बिलकुल नहीं करनी चाहिए। ज्यो-ज्यो समय बीतेगा, मुसलमानोकी माँगें बढ़ती ही जायेंगी। यदि हम सच्चे मनसे अविलम्ब प्रयत्न करना आरम्भ कर दें तो मुझे विश्वास है कि ईश्वर एकता-प्राप्तिमें हमारी सहायता करेगा। . . .

पत्र-लेखक भाई हममे सबमे अधिक उत्साही लोगोमे हैं। उन्होंने तसवीरका एक पहलू पेश किया है, लेकिन सभी एकागी तसवीरोकी तरह यह तसवीर भी भ्रामक है।

हर क्षमतायुक्त चीजका दुरुपयोग हो सकता है। अफीम और संखिया बहुत ही प्रभावकारी और उपयोगी औषधियाँ हैं, मगर उनका भारी दुरुपयोग भी हो सकता है। लेकिन इसी कारणसे किसीने ऐसा सुझाव नही दिया है कि उनका सदुपयोग भी बन्द कर दिया जाये। यदि असहयोग का कही-कही दुरुपयोग हुआ है तो अनेक प्रसगोमे इसका समझदारी-भरा उपयोग पूर्णत कारगर भी सिद्ध हुआ है। किसी चीजकी कीमत उसके वास्तविक परिणामको ध्यानमें रखकर आँकी जाती है। अहिंसक असहयोगका वास्तविक परिणाम भारतके लिए अत्यन्त लाभदायक रहा है। इससे जनसाधारणमें ऐसी जागृति आई है जिसके लिए हमें अन्यथा शायद पीढियोतक प्रतीक्षा करनी पडती। इसने रक्तपात और अराजकताको रोका है और कुल मिलाकर अंग्रेजोंके साथ हमारे सम्बन्धको सुधारा है। आज हम दोनो एक-दूसरेको जितने सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं उतने सम्मानसे पहले कभी नही देखते थे, फलत अब हम एक-दूसरेको पहलेकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। और यह सब हमारे असहयोगके पूरी तरह अहिंसक न होने के बावजूद हो पाया है। मैं मानता हूँ कि असहयोगका उपयोग सर्वत्र हो सकता है। इसका प्रयोग ठीक ढगसे किया जाये तो यह राजनीतिमें पारस्परिक विनाशके बर्बरतामय शस्त्रास्त्रोका स्थान पूर्ण रूपसे ले

सकता है। इसलिए जरूरी यह नही है कि इसके प्रयोगको मर्यादित किया जाये, वल्कि यह है कि उसे विस्तार दिया जाये। हाँ, इसका ध्यान अवश्य रखना होगा कि जो जाने-माने नियम इसका नियमन करते है उन्हीके अनुसार इसका प्रयोग किया जाये। दुरुपयोगका खतरा तो उठाना ही होगा। लेकिन इसके सही उपयोगके ज्ञानकी वृद्धिके साथ-साथ दुरुपयोगके खतरेको कम किया जा सकता है।

असहयोगमे एक निरापद बात यह है कि इसके दुरुपयोगसे अन्तत, जिसके खिलाफ दुरुपयोग किया जाता है, उसके बजाय स्वयं दुरुपयोग करनेवाले का ही नुकसान होता है। इसका सबसे अधिक दुरुपयोग पारिवारिक सम्बन्धोमे होता है, क्योकि वहाँ जिन पर इसका प्रयोग किया जाता है उनमें इसके दुरुपयोगका प्रतिरोध करने की शक्ति नही होती। इस परिस्थितिमे यह अनुचित लाड-प्यारवाली बात बन जाता है। अपने बच्चो को जरूरतसे ज्यादा लाड़ देनेवाले माता-पिता या अपने पतियोंको ऐसा प्रेम देनेवाली पत्नियाँ इसकी सबसे ज्यादा शिकार होती है। इन लोगोमे बुद्धिमानी तब आयेगी जब वे यह समझ लेगे कि प्रेमका मतलब किसी प्रकारके दुराग्रहको स्वीकार कर लेना नही होता। इसके वजाय, सच्चा प्रेम तो उसका विरोध करेगा।

पत्र-लेखकने विघ्न उपस्थित करने के उसी सामान्य संसदीय कार्यक्रमका सुझाव दिया है। यदि इसके पीछे आवश्यकता होने पर असहयोग और सविनय अवज्ञा करने की तत्परताका बल न हो तो यह कार्यक्रम कितना निरर्थक है, यह पूरी तरह सिद्ध हो चुका है।

जहाँतक अग्रेजोका सम्बन्ध है, मै पहले ही कह चुका हूँ कि उन्हे परेशानीमे डालने के लिए मै कुछ नही करूँगा। सघर्ष न हो, इसके लिए मै हरचन्द कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन हो सकता है कि अग्रेज इसे अनिवार्य बना दे। अगर ऐसा हो जाये तब भी मै असहयोगके प्रयोगकी ऐसी नीतिका शोध करने के लिए आत्ममन्थन कर रहा हूँ जो प्रभावकारी होते हुए भी देश-भर मे हिंसाका विस्फोट न होने दे और इस वजहसे अग्रेजोको परेशानीमे न पडने दे।

यहाँ मै यह बता दूँ कि यद्यपि काग्रेसजनोकी ओरसे सक्रिय सहयोग विशेष देखने को नही मिल रहा है, तथापि उनकी ओरसे निष्क्रिय सहयोगका अभाव नही है। यदि लोगोकी ओरसे छिटपुट तौरपर हिंसक कार्रवाइयाँ होती रहती तो अहिंसक शक्तियोको प्रभावकारी ढगसे सगठित करने के मेरे प्रयत्नमे बड़ी बाधा पड़ती। लेकिन आज तो स्थिति यह है कि लोग जिस सयमसे काम ले रहे है उसे देखकर मेरा मन भविष्यके प्रति आशासे भर उठता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता अपने-आपमे एक बडा काम है। लेकिन मेरे मित्रका ऐसा सोचना गलत है कि मुसलमान भविष्यमे अपनी माँगे और भी बढ़ा सकते है, इस खतरेको ध्यानमें रखते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकताकी स्थापनामे तेजी लानी चाहिए। ये माँगें किनके खिलाफ होगी? भारत जितना औरोका है उतना ही मुसलमानोका भी है। एकताका रास्ता उचित अथवा अनुचित जैसी भी माँगे हो उनको बराबर बढ़ाते

रहना नही बल्कि जो उचित मॉंगें हो, उन्हे एक ही बार पेश कर देना है। विभाजन की मॉंगसे एकताके सारे प्रयत्नोंका द्वार फिलहाल तो बन्द ही हो जाता है। मै मानता हूँ कि ब्रिटेन अपनी ओरसे भारतके साथ न्याय करे, इसके लिए यह जरूरी नही है कि पहले साम्प्रदायिक समझौता हो जाये। जिस दिन ब्रिटेनवाले यह महसूस करेंगे कि उन्हे भारतका आत्म-निर्णयका अधिकार स्वीकार कर लेना चाहिए उस दिन जिन बातोको वे अपने मार्गकी बाधा बताते है उन सबका अस्तित्व सूर्यके प्रकाशके सामने ओसकी बूँदोकी तरह मिट जायेगा। आत्म-निर्णयके अधिकारका मतलब सभी वर्गो और समुदायों द्वारा और अन्तत. देखे तो हर व्यक्ति द्वारा किया जानेवाला निर्णय है। सविधान-सभाकी मॉंगमें यह बात निहित है कि वर्गो और समुदायो तथा व्यक्तियोंके निर्णय एकरूप होगे। लेकिन अगर ऐसा न हो और विभाजनकी बात ही चल निकले तो हम या तो विदेशी शासनके बजाय देशके दो या अधिक टुकड़े होने देंगे, या आपसमें खींचतान करते हुए पराधीनता भोगते रहेंगे अथवा हमारे बीच एक खासा गृह-युद्ध होगा। जो भी हो, आज की अनिश्चयकी स्थिति कायम नही रह सकती। इसका निबटारा किसी-न-किसी रूपमे होना ही है। मै आशावादी आदमी हूँ। मुझे पूरी आशा है कि जब हम अन्तमें निबटारा करने बैठेंगे तब हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य सभी समुदाय भी अपना सारा वजन उस भारतके पक्षमें डालेंगे जिसे वे सब अपना मानेंगे।

सेवाग्राम, १३ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-५-१९४०

७४. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ मई, १९४०

भाई वल्लभभाई,

मैंने तुम्हें इस सम्बन्धमें लिखा तो था। उसे[1] भी लिखा है। नानाभाई इससे सम्बद्ध है, यह तो जानते हो न? अभी तो २,००० रुपये भेजने पड़ेंगे, इसका प्रबन्ध हम कर सकेंगे। मै उसे ब्योरेवार लिख रहा हूँ। तुम भी लिखना।

शकर-सम्बन्धी पत्र मैंने अभी पढ़ा नही है। हो सका तो कुछ करूँगा। राजकोटमें क्या हुआ?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २४०

१. पृथ्वीसिंहको, देखिये पृ० ७९।

७५. पत्र : दिलखुश दीवानजीको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ मई, १९४०

भाई दिलखुश,

महादेवने तुम्हारे कामका बडा रोचक वर्णन किया है। क्या तुम सब पेटियोपर लेबल लगाते हो? गाये रखी है क्या? क्या कोल्हू भी है? और दूसरे कौन-से उद्योग आरम्भ किये है? वही काम हाथमे लेना चाहिए जो आसानीसे हो सके। लेकिन आदमी तुम्हारे कहेमे है, इसलिए उनसे शायद तुम नया काम भी ले ही सकते हो। इससे उन्हे भी दो पैसेकी कमाई हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

श्री दिलखुश दीवानजी
खादी आश्रम
कराड़ी
नवसारी होते हुए

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४५) से

७६. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
१४ मई, १९४०

चि० मणिलाल,

'इ०' [डियन ओपीनियन] मे जिन्ना साहबपर तूने जो आक्रमण किया है, वह ठीक नही किया। तुझे यहाँके झगड़ोमे पडना ही नही चाहिए। लेकिन यह तो यहाँ बैठे हुए मेरे मनपर जो छाप पडी है उसके आधारपर लिख रहा हूँ। ऐसी कड़ी आलोचना करने का तेरे पास कोई खास कारण हो तो मै नही जानता।

मेढ[1] आ गये है। २१ को उनकी बेटीकी शादी हो रही है। मेरे पास अभी नही आये। मैंने उन्हे लिखा है कि चाहे जब आ जाये।

१. सुरेन्द्रराय वापूभाई मेढ; गांधीजी के सहयोगी और दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें भाग लेनेवाले एक प्रमुख सत्याग्रही

वा स्वस्थ है। मैं तो स्वस्थ हूँ ही। संघर्ष मैं अभी शीघ्र शुरू करूँगा, ऐसे कोई आसार नही है।

राधा दो-तीन दिन हुए यहाँ आई है। जरा दुबली हो गई है।

यहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है।

किशोरलाल बम्बईमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१२) से

७७. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
१४ मई, १९४०

भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारा सरदारको लिखा पत्र उन्होंने मुझे भेजा है। रुपया तो वे तुम्हें भेजेंगे, लेकिन तुम्हारे खर्चका अनुमान सावधानीसे नही लगाया गया है। दूधके भाव पानी लेकर क्या कैम्प चलाये जाते हैं, सो भी ऐसे कगाल देशमें? तुम कहते हो, सब लोग खुश रहते है। क्यो न रहेंगे? वहाँ तो तुम उन्हे 'पिकनिक' कराते हो, हवा खिलाते हो। पन्द्रह मील दूरसे दूध मँगाकर देना, यह साहब लोगोका काम है। तुम्हारी ऐसी शर्तोपर तो ६०० आदमी भी आ जायेंगे। सेवा करना सीखनेवाले को गर्मी क्या और सर्दी क्या? मुझे डर है कि तुम्हारे शिष्य-शिष्या कोई बडे कामके नही निकलेंगे। इसलिए २,००० रुपये तो ले लो, लेकिन उनका उपयोग सावधानीसे करना। तुम्हारी लाज जायेगी तो मेरी भी गई समझना। मैं समझता हूँ, घोघाका काम समाप्त करके, अपनी मूल बातपर लौट आने में ही कुशल है — बोरसद, अहमदाबाद या बारडोली — जहाँ भी सरदार पसन्द करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९४९) से। सौजन्य : पृथ्वीसिंह

७८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ मई, १९४०

दुबारा नहीं पढ़ा

चि० अमृत,

तुम्हारे दोनो महत्त्वपूर्ण पत्र पढते ही फाड दिये गये थे। इसलिए मुझे जो-कुछ लिखना है, स्मरण-शक्तिपर भरोसा रखकर ही लिखना है। लेकिन जब तुम्हारा आग्रह है तो मुझे यह सब करना ही पडेगा।

लेख तो मै पहले भी भेज सकता था, लेकिन यह सोचकर ढिलाई कर दी कि सुशीला उनका अनुवाद बहुत अच्छा और जल्दी भी कर सकती है। तुम्हारा[1] अनुवाद तो उसी सप्ताह कदापि दिल्ली नही पहुँच सकता। तुम्हे बता चुका हूँ कि अनुवाद तो मै यहाँ भी करवा सकता हूँ। लेकिन अभ्यासके लिए तुम अनुवाद अब भी करती रहो, ताकि लौटकर तुम अनुवाद-कार्यमे अधिक योग्यता और गतिका परिचय दे सको। इसलिए यदि इन लेखोके तुम्हारे अनुवाद छपनेवाले होते तो तुम इनका अनुवाद जितनी सावधानीसे करती उतनी ही सावधानी अब भी बरतो। अनुवाद करके जाँचने के लिए मेरे पास भेज देना। जबतक तुम अपना अनुवाद न कर लो तबतक सुशीलाका किया हुआ अनुवाद मत पढो।

सर मिर्जा[2] मुझे निराश कर रहे है। उनका पत्र विचित्र है। लेकिन तुम्हारा यह कहना ठीक है कि हमें ऐसे लोगोंके साथ भी मैत्री-सम्बन्ध बनाने है। हमे तो कट्टर-से-कट्टर लोगोका भी हृदय-परिवर्तन करना है।

मै यह नही कह सकता कि तुम्हारा यहाँ न होना खलता है। मै प्रतिदिन अधिकाधिक अनासक्त होता जा रहा हूँ। मुझे तो लगता है कि मुझे किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तुकी कमी नही खटकती। इन चीजोंके बारेमे सोचने की मुझे फुर्सत ही नही है। मेरे सिर जो जिम्मेदारी है, उसीको निबटाने मे मेरा सारा समय लग जाता है। इसका मतलब यह नही कि तुम्हारा लौट आना मुझे अच्छा नही लगेगा या यहाँ तुम्हारे लिए काम नही है। काम है भी और नही भी है। आरम्भसे ही जीवन ऐसा रहा है। लेकिन पहलेकी अपेक्षा अब ऐसा अधिक है। एकान्तकी आन्तरिक लालसा अनुभव करता हूँ। अगर आज 'हरिजन' बन्द हो जाये तो यह बात भी मुझे नही खलेगी। इसके बावजूद यह जगह आबाद ही होती जा रही है।

१. यहाँ मूलमें कुछ चूक नजर आती है, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है।

२. मूलमें नामका प्रारम्भिक अक्षर ही दिया गया है। पूरा नाम (सर मिर्जा इस्माइल) अनुमानसे दिया जा रहा है; देखिए "एकतरफा जाँच", पृ० ५३-५५।

अब चेचक नही है।

ललिताकुमारी आज आ गई। साथमे दो नौकर है। वे मेरे साथ ठहरी है।

रामनारायणका पत्र निराशाजनक है। उसे और लिखने की तुम्हे जरूरत नही। मैं जब लिख सकूँगा, लिखूँगा।

नरसिंहगढके राजाको लिखा तुम्हारा पत्र अच्छा है। आज भेजा जा रहा है।

युद्ध बहुत घिनौना रूप लेता जा रहा है। देखे, क्या होता है। पता नहीं क्यो, जैसा तुम्हें महसूस होता है वैसा मुझे नही होता। मै मित्र-राष्ट्रोको पराजित नही देखना चाहता। लेकिन हिटलरको जितना बुरा बताया जाता है उतना बुरा मैं उसे नहीं मानता। वह ऐसी योग्यताका परिचय दे रहा है जो चकित करनेवाली है और बहुत रक्तपातके बिना ही विजय-पर-विजय प्राप्त करता जान पड़ता है। अंग्रेज वैसी ही शक्तिका परिचय दे रहे है जैसी साम्राज्य बनानेवालो से अपेक्षित है। वैसे जितनी ऊँचाईपर वे दीख रहे है, मै उनसे उससे बहुत अधिक ऊँचाईतक उठने की अपेक्षा रखता हूँ। लेकिन अब मै पत्र समाप्त करूँगा।

अगर तुम्हारे किसी प्रश्नका उत्तर न दे पाया होऊँ तो याद दिलाना। यहाँ तो काफी गर्मी है। लेकिन मै ठीक-ठाक हूँ।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च]

यह सुबहके साढे नौ बजे लिखा गया था। तुम्हारा आजका पत्र अभी दिनके डेढ बजे आया है। तुम्हे अपने सारे लेख भेज चुका हूँ। मैंने लिखे ही बहुत कम। दो-चार महत्त्वहीन पक्तियोंके अलावा और सब इसके साथ जा रहे है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६७) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६४७६ से भी

७९. पत्र : देवदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ मई, १९४०

चि० देवदास,

तेरा पत्र मिला। तूने जो लिखा है वह ठीक है। हमारे यहाँके लोग जल्दी पिघल जाते हैं। फोनसे तेरा सन्देसा मिला। मैं फौरन कुछ नही लिखना चाहता। समय आने पर लिखूँगा। रामूकी[1] खबर हमे मिल गई थी। मुझे तो दु ख नही हुआ, लेकिन बा को हुआ कि तूने खबर नही दी। बा में अब भी ऐसा मोह मौजूद है, यद्यपि वह बहुत हलका पड गया है। बा की क्षमता, समता, उदारता,

१. देवदासके पुत्र रामचन्द्र

धैर्यशक्ति, दृढता — सब मुझे आश्चर्यमे डाल देते है। उसकी तबीयत अच्छी है और वह प्रसन्न रहती है।

मुझे किसीका अमेरिका जाना जरूरी नही लगता। यहीसे हम जो कर सकेंगे, उसीका सच्चा प्रभाव पड़ेगा। फिर भी, अगर वैसा मौका आया तो देखा जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१२३)से

८०. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
१५ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। अच्छा हुआ, तुम वहाँ चले गये। तुम्हे वहाँ शान्ति मिली, इसे मै बडी बात मानता हूँ। अब कर्त्तव्यकी दृष्टिसे जबतक वहाँ ठहरना जरूरी हो, ठहरना। और फिर अपने मनकी शान्तिके लिए जबतक रुकना जरूरी हो, तबतक तो रुकना ही है।

बापूके आशीर्वाद

श्री मुन्नालालजी
मारफत श्री बालकृष्ण
वाडीलाल साराभाई आरोग्य-भवन
पचगनी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४१) से। सी० डब्ल्यू० ७०८९से भी, सौजन्य मुन्नालाल ग० शाह

८१. पत्र : पुरातन जे० बुचको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ मई, १९४०

चि० पुरातन,

तू बहुत उम्दा काम कर रहा है। लेकिन यह तो नही चाहता न कि इस सारे कामका उल्लेख 'हरिजन' मे किया जाये? अगर उससे कोई लाभ हो, तो मैं अवश्य लिखूँगा। तू और आनन्द मजेमे होगे।

बापूके आशीर्वाद

श्री पुरातन बुच
हरिजन आश्रम
साबरमती
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१७५) से

८२. सन्देश : सीमा प्रान्तके प्रतिनिधि-मण्डलको[1]

वर्धा
१६ मई, १९४०[2]

मै तो अपना सन्देश पहले ही दे चुका हूँ, और कोई नया सन्देश देने को नही है। मैं आपसे इतना ही कहूँगा कि जब आपने पूरी तत्परतासे इस महान् कार्यको अपने हाथमे ले लिया है तो जबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित नही हो जाती तबतक आप अपना प्रयत्न न छोडे। मैं आपमे यह कहूँगा कि मुस्लिम लीगवालो से आपका कोई झगडा है, यह बात आप भूल जाये। आपका ध्येय उनसे भिन्न है, लेकिन वे भी हमारे भाई है, और यदि हम उनके साथ भाईकी तरह बरताव नही करेगे और उनपर व्यक्तिगत प्रहार करने से मुँह नही मोडेगे तो उनका हृदय-परिवर्तन नही कर पायेगे। आपको तो उन्हे अपने दृष्टिकोणका कायल करना है,

१. महादेव देसाईके "गॉड-स्पीड" (मगल-कामना) शीर्षक लेखसे उद्धृत। लगभग सत्ताईस लाल कुर्ती स्वयसेवक विधान-सभा सदस्य अली बहादुर खानके साथ अप्रैल महीनेमें दिल्लीमें आजाद मुस्लिम सम्मेलनमें भाग लेने आये थे। सम्मेलनके बाद देशके कई भागोंका दौरा करते हुए वे वर्धा पहुँचे। जहाँ उन्होंने गाधीजी से मिलकर उनसे कोई सन्देश देने को कहा।

२. हिन्दूके १७-५-१९४० के अकसे

क्योकि जबतक आप या हम उनका दिल नही जीतेंगे तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित नही हो सकती। मै आपकी सफलताके लिए मगल-कामना करता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-५-१९४०

८३. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१७ मई, १९४०

चि० अमृत,

तुमने जो सुधार किये है वे काफी अच्छे है। हम सबके ध्यानमे ये बाते आनी चाहिए थी, लेकिन तुम बाजी मार ले गई।

तुम्हारे लिए कुछ पत्र भेज रहा हूँ।

तुम्हारे अनुवाद जाँचकर मै तुम्हे वापस भेज दूँगा। जाँचना शुरू कर दिया है?[1]

ललिताकुमारी सरदर्दसे पड़ी हुई है। चिन्ताकी बात नही है। ऐसे दौरे उन्हे अक्सर आते रहते है।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च]

जवाहरलाल कल आये, आज चले गये।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६८) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२७७ से भी

१. साधन-सूत्रमें इस जगह कागज कुछ कटा-फटा है। अतः शब्दोंको अनुमानसे पूरा करके अनुवाद किया गया है।

८४. पत्र : डॉ० सैयद महमूदको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ मई, १९४०

प्रिय महमूद,

तुम्हारा पत्र मिला। हम दिल्ली सम्मेलनका[1] लाभ उठा सकें, इसके लिए काफी प्रारम्भिक कार्य करने की आवश्यकता है।

अंग्रेज मुझे बारी-बारीसे पसन्द और नापसन्द करते रहते हैं। लेकिन मैं तो सदा वही-का-वही हूँ।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०६६) से

८५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ मई, १९४०

चि० अमला,

मैंने 'शरम'[2] नहीं, 'सारु' लिखा था। यह अच्छा — सारु — है कि तू अन्धे कुत्तेकी सेवा कर रही है।[3] यह बहुत ही प्रसन्नताकी बात है कि सभी शिक्षकोंमें एक तू ही गोरी (यूरोपीय) है। महादेवमें तुझे लिखने का उत्साह नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे : स्पीगल पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. २७ से ३० अप्रैलतक दिल्लीमें सम्पन्न अखिल भारतीय आजाद मुस्लिम सम्मेलन (ऑल इंडिया आजाद मुस्लिम कॉन्फ्रेंस)। कॉन्फ्रेंस द्वारा पास किये गये एक प्रस्तावमें पाकिस्तान की योजनाको "अव्यावहारिक और आम तौरपर पूरे देश और खास तौरपर मुसलमानोंके हितके लिए हानिकर" बताकर उसकी निन्दा की गई थी।

२. देखिए "पत्र : मार्गरेट स्पीगलको", पृ० ६९।

३. "सारु" शब्दके अतिरिक्त मूलमें यह वाक्य अंग्रेजीमें है।

८६. एक घृणित बुराई[1]

कमलापुरम्से एक मित्रने निम्न प्रकार लिखा है .

मेरा निश्चित विचार है कि कांग्रेसजनोको इस बुराईको बर्दाश्त नही करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-५-१९४०

८७. प्रस्तावना : 'मौलाना अबुल कलाम आजाद' की[2]

सेवाग्राम, वर्धा
१८ मई, १९४०

मुझे १९२० से ही राष्ट्रीय कार्यके सिलसिलेमे मौलाना अबुल कलाम आजादके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। इस्लामका जितना ज्ञान उन्हे है उससे अधिक किसीको नही होगा। वे अरबीके उद्भट विद्वान् है। उनकी जितनी दृढ श्रद्धा इस्लाममे है उतनी ही दृढ उनकी राष्ट्रवादिता भी है। और आज वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके सर्वोच्च पदपर आसीन है, इसका एक गहरा अर्थ है, जिसकी उपेक्षा भारतीय राजनीतिके किसी भी अध्येताको नही करनी चाहिए।[3]

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

मौलाना अबुल कलाम आजाद

१. अमृतकौरके लिखे इस लेखमें, जो यहाँ नहीं दिया जा रहा है, धार्मिक उत्सवों और मेलोंके स्थानोंमें वेश्याओंके तम्बू लग जाने की बुराईकी चर्चा की गई थी। उसमें कमलापुरम्से लिखा एक पत्र भी उद्धृत किया गया था, जिसमें इस समस्याके प्रति वहाँके कांग्रेसजनोंकी उदासीनताकी शिकायत की गई थी।

२. महादेव देसाई द्वारा लिखी संस्मरणात्मक जीवनी

३. मूलमें एक शब्द सुधारकर इस वाक्यका अनुवाद किया गया है।

८८. तार: जमनालाल बजाजको

वर्धागंज
१८ मई, १९४०

जमनालालजी
श्री, वम्बई

इस बार सरोजिनीदेवीसे कहने का साहस नही है।[1] वे बीमार हैं।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ २३४

८९. पत्र: मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
१८ मई, १९४०

चि० मीरा,

मैं सोच रहा था कि इतने दिनोसे तुम्हारा कोई पत्र क्यो नही मिला है। हफ्तेसे ज्यादा तो मेरे लिए लम्बा समय होगा। तुम्हारे वर्णनात्मक पत्र तो मुझे अच्छे लगते ही हैं (वे तुम्हारी विशेषता हैं), लेकिन जब तुम्हारे पास समय न हो तब पोस्टकार्डको ही काफी मानूँगा।

क्या तुमने ओएल[2] सदाके लिए छोड दिया है? छोड दिया हो तो इसमे मैं कोई हर्ज नही मानता। मै चाहता हूँ, तुम आजाद महसूस करो और अपनेको खुश रखो।

अपनी नई जगहका[3] तुम्हारा वर्णन आकर्षक है, लेकिन पता नही, वहाँ कभी आ पाऊँगा। मेरे शिमला जाने के कोई आसार नही दीखते। सेवाग्राम अभी तो भट्ठीकी तरह तप रहा है, फिर भी बाहर जाने का मन बिलकुल नही है। मेरा सारा समय काममे ही बीत जाता है।

१. जमनालालजी ने गाधीजी से सरोजिनी नायडूको जयपुर भेजने का आग्रह किया था।
२. ओएल आश्रम, जहाँ मीराबहनने तीन महीने विताये थे।
३. पालमपुर (काँगडा)

राजकुमारी[1] शिमलामे है। विजयनगरम्की महारानी इस समय यहाँ है। राधा भी।

पृथ्वीसिंह ३४० लडके और ४० लड़कियोकी टोलीके साथ घोघामे है। पानी, दूध और सब्जियाँ रोज भावनगरसे लानी पडती है।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५२) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० १००४७से भी

९०. पत्र: शान्तिकुमार एन० मोरारजीको

दुबारा नहीं पढ़ा

सेवाग्राम
१८ मई, १९४०

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारे दो पत्र मिले। यहाँके अस्पतालके सामानके लिए सयुक्त रूपसे दादीजी और तुम्हारी ओरसे ५,००० का चेक भी मिला है। मुझे आशा है, मैं उक्त रकमको काममे ला सकूँगा।

तुम्हारा दूसरा पत्र बडे महत्त्वका है। खादी आदिके बारेमे तुम इतनी बारीकीसे ब्योरेवार सोचते-विचारते हो, यह मुझे बहुत अच्छा लगता है। इससे सम्बन्धित अनेक मामलोमे मेरा मत तुमसे मिलता है। अब मैं इस सम्बन्धमे काकुभाईसे पत्र-व्यवहार शुरू करूँगा।

प्रदर्शनी-सम्बन्धी स्थिति जरा उलझी हुई है। यह बात नही कि जहाजरानी, इस्पातका उत्पादन आदि काम देशके लिए लाभदायक नही है, लेकिन इनके लिए काग्रेसकी मददकी जरूरत नही है, और यदि हो भी तो दूसरे प्रकारसे होगा। प्रदर्शनीमें केवल देहाती उद्योगोको स्थान देने का उद्देश्य इन उद्योगोका महत्त्व बढाना, लोगोको शिक्षा देना और इस ओर देशका ध्यान आकर्षित करना है। सच पूछो तो प्रदर्शनीमे भीतर या बाहर, ग्रामोद्योगकी वस्तुओके सिवा और कुछ नही होना चाहिए। लेकिन अपनी बात अभी मै सबके गले नही उतार सका हूँ। इसलिए थोडी गड़बड चल रही है। वैसे इस सम्बन्धमे अन्य दृष्टिकोण भी हो सकते है। तुम किसी समय यहाँ आकर चर्चा कर जाना। अभी तो यहाँ बहुत गर्मी पड रही है। जूनके महीनेमे ठडा हो जायेगा, तब आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७३१) से। सौजन्य शान्तिकुमार एन० मोरारजी

१. अमृतकौर

९१. प्रश्नोत्तर

नियमित कताई

प्र० : "नियमित कताई"[1] से आपका क्या तात्पर्य है? यदि कोई महीनेमें दो-एक घण्टे काते या हफ्तेमें एक-दो बार आधे-आधे घण्टेतक काते तो क्या यह माना जायेगा कि उसने नियमित कताईकी शर्त पूरी कर दी?

उ० पहले "दैनिक" शब्दका प्रयोग किया गया था, लेकिन बादमे उसके स्थानपर "नियमित" शब्द रखा गया। इसका प्रयोजन आकस्मिक रूपसे या अनिवार्य कारणोसे पड़ जानेवाले व्यवधानके लिए गुंजाइश करना था। इसलिए हर हफ्ते या किसी निश्चित अन्तरालसे कताई करने से शर्त पूरी नही होगी। बीमारी, यात्रा आदि उचित कारणोसे असमर्थ होने के सिवाय हर हालतमे सत्याग्रहीसे प्रतिदिन कातने की अपेक्षा की जायेगी।

सत्याग्रह-शिविर और अस्पृश्यता

प्र० : स्वयंसेवकोके प्रशिक्षणके लिए देश-भरमें सत्याग्रह-शिविरोंका आयोजन किया जा रहा है। लेकिन हर प्रकारकी अस्पृश्यताके त्यागके सिद्धान्तपर कड़ाईसे अमल नहीं किया जा रहा है। क्या आप नहीं मानते कि शिविरोके लिए यह एक अनिवार्य नियम बना दिया जाना चाहिए कि ऐसे किसी व्यक्तिको शिविरमें शामिल नहीं होने दिया जायेगा जो हरिजनोके स्पर्शको अशुद्ध करनेवाला मानता है और उनके साथ निस्संकोच-भावसे नहीं मिलता-जुलता?

उ० मैं निस्सकोच कहूँगा कि जिसमे अस्पृश्यताकी भावनाका लेश भी है वह सत्याग्रह सेनामे भरती होने के योग्य बिलकुल नही है। मैं अस्पृश्यताको हमारे पतन और हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यका मूल कारण मानता हूँ। अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका और इसलिए हिन्दुस्तानका कलक है। यह पाप इतना व्यापक है कि हिन्दू धर्म छोडकर कोई अन्य धर्म अपनानेवाले का भी पीछा नही छोडता।

विभाजन और गैर-मुसलमान

प्र० : आपने 'हरिजन' में कहा है कि "यदि आठ करोड़ मुसलमान विभाजन चाहते ही हैं तो . . . दुनियाकी कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती।"[2] क्या आपको नहीं लगता कि इस मामलेमें २५ करोड़ गैर-मुसलमानोका भी कुछ कहना हो सकता

१. देखिए परिशिष्ट १।

२. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम गुत्थी", पृ० ३१-३२।

है? क्या आपके इस कथनका मतलब यह नहीं है कि आप मुसलमानोंके मतको जरूरतसे ज्यादा महत्त्व और हिन्दुओंकी रायको जितना चाहिए उससे भी कम महत्त्व देते है?

उ० : मैंने तो अपनी राय ही दी है। यदि हिन्दुओ, ईसाइयों या सिखोका वहुमत —— यहाँ तक कि सख्यामे बहुत कम पारसियोका भी बहुमत —— आठ करोड़ मुसलमानोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी स्पष्ट रायका डटकर विरोध करेगा तो वह गृह-युद्धका खतरा उठाकर ही वैसा करेगा। यह कोई अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यकका प्रश्न नही है। अगर हमें अहिंसक रीतिसे अपनी समस्याएँ सुलझानी है तो और कोई रास्ता नही है। यह बात मैं इसलिए नही कह रहा हूँ कि यहाँके आठ करोड लोग मुसलमान है। यदि वे आठ करोड लोग किसी अन्य कौमके होते तो भी मैं यही कहता।

वकालत और सत्याग्रह

प्र० : आप तो जानते ही है कि इस देशमें वकालतके धन्धेमें झूठ-फरेबका कैसा बोलबाला है। फिर भी क्या आप वकालतका धन्धा करनेवाले किसी वकीलको सक्रिय सत्याग्रहियोंकी सूचीमें अपना नाम दर्ज करवाने देंगे?

उ० : आपने जैसी मर्यादा-रहित बात कही है उसे मानने मे मैं असमर्थ हूँ। कोई वकील सत्याग्रही बनना चाहता है, यह बात अपने-आपमे ऐसी है जिससे प्रकट होता है कि उसमे किसी सीमातक आचरणकी शुद्धता होगी। इसमे सन्देह नही कि कांग्रेसमें कपटी लोग भी होंगे, बल्कि मैं जानता हूँ कि ऐसे लोग कांग्रेसमें है। यह तो किसी भी बडी सस्थाके लिए अनिवार्य है। लेकिन सत्याग्रहीके लिए यह बात शोभनीय नही मानी जायेगी कि वह किसी आदमीको इसलिए तिरस्कृत करे कि वह अमुक धन्धा करता है।

सत्याग्रह और अवरोध-नीति

प्र० : क्या अवरोध-नीतिका मेल सत्याग्रहसे बैठता है? सत्याग्रहीके बारेमें तो ऐसा समझा जाता है कि वह किसी दलके हितोंके लिए काम नहीं करता, बल्कि कतिपय सिद्धान्तोंके लिए उत्सर्ग होता है। इसलिए क्या उसके लिए यह उचित है कि यदि कोई काम उसका दल करे तो उसके प्रति उसका रुख कुछ और हो और जब वही काम कोई विपक्षी दल करे तो उसके प्रति उसका रुख कुछ और हो? आज नगरपालिकाओं और जिला बोर्डोमें कांग्रेसी इसी नीतिपर चल रहे हैं। क्या आप इसे उचित कहेंगे?

उ० : मैं तो अवरोध-नीतिको सत्याग्रह-विरुद्ध बात मानकर बराबर उसकी खिलाफत करता रहा हूँ। कांग्रेसजनोके लिए उचित यह होगा कि जहाँ उनके विरोधी बहुमतमें हों और वे कोई ठीक कदम उठाये वहाँ वे उनके साथ सहयोग करें।

काग्रेसजनोका लक्ष्य कभी भी सत्ता भोगने के लिए सत्ता प्राप्त करना नही होना चाहिए। सच तो यह है कि ऐसे विवेकपूर्ण सहयोगसे काग्रेसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और हो सकता है कि जहाँ वह अल्पमतमे हो वहाँ भी अपने ऐसे आचरणके कारण बहुमत प्राप्त कर ले।

हरिजनोंको रसोइयेका काम सिखाना

प्र० : अगर कांग्रेस हिन्दू परिवारोंने रसोइयेका काम करने के लिए हरिजनोको अच्छा रसोइया बनाने के उद्देश्यसे उनके प्रशिक्षणकी योजना आरम्भ करे और हर आश्रम या कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओके लिए चलाये जानेवाले सामूहिक भोजनालय (मेस) में इस तरह प्रशिक्षित हरिजन रसोइया ही रखने का नियम बना दिया जाये तो क्या आप नहीं मानते कि इससे अस्पृश्यता जल्दी मिट जायेगी?

उ०. हमारा लक्ष्य तो हरिजनोको ऊँचेसे-ऊँचे स्थानतक पहुँचने के योग्य बनाना होना चाहिए। हम अपने सामने ऐसा आदर्श जरूर रखें, लेकिन इस बीच हरिजनोको कुशल रसोइया बनने का प्रशिक्षण देना बहुत अच्छा रहेगा। मैंने देखा है कि उन्हें हम अपने घरेलू जीवनमे जितना अधिक स्थान देते जाते है, सुधारकी गति उतनी ही बढती जाती है। जो हरिजन हमारे घरोमे घुल-मिल जाते है वे हीनताकी भारी भावनाका त्याग कर देते है और अन्य हरिजनो तथा सवर्णोंके बीचकी सजीव कड़ी बन जाते है।

सेवाग्राम, १९ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-५-१९४०

९२. टिप्पणियाँ

अप्रतिरोध

दैनिक समाचार-पत्रोमे मैंने निम्नलिखित खबर पढी है

> बहुत-से मुसलमानोके हस्ताक्षरोसे नगरनिगमके अधिकारियोको इस आशयका प्रार्थना-पत्र भेजा गया है कि उन्होने अपने पिछले प्रार्थना-पत्रमें मुसलमान लड़कों और लड़कियोके लिए चलाई जानेवाली निगम पाठशालाओमें से गांधीजी की तसवीरे हटा देने का जो निवेदन किया था वह अगर स्वीकार नहीं किया जायेगा तो उन संस्थाओका बहिष्कार किया जायेगा। उनका कहना है कि किसीकी तसवीर लगाना एक प्रकारकी वीर-पूजा है, और यह चीज इस्लाम धर्मके खिलाफ है।

अगर यह समाचार सत्य हो तो मैं पूरे आग्रहके साथ यह सलाह दूँगा कि मुसलमानोकी माँग स्वीकार कर ली जाये। कांग्रेस इस माँगका विरोध करे, इससे कुछ मिलनेवाला नही है। साथ ही इस आन्दोलनके अगुओसे निवेदन करूँगा कि आन्दोलनका समर्थन गलत दलील देकर किया जा रहा है, क्योकि उनके अपने वीर पुरुष भी तो है। उचित और निर्णायक तर्क यह है कि अब मै उनका वीर पुरुष नही रहा। समयके साथ-साथ वीर पुरुष भी बदलते रहे है। अपनेको ऐसे परिवर्तनोके अनुरूप ढालते रहने मे सार्वजनिक संस्थाओका कल्याण है।

पाँच प्रश्न

१. क्या सत्याग्रही (अर्थात् सत्याग्रहकी प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करनेवाले लोग) गिरफ्तार होने पर अदालतमें अपना बचाव कर सकते हैं?

२. क्या सत्याग्रही जेलमें कैदियोंको दी जानेवाली उच्चतर श्रेणी — जैसे 'ए' या 'बी' — प्राप्त करने की कोशिश कर सकता है?

३. जेलमें सत्याग्रही कैदीको जिस हालतमें भी रखा जाये उसे उसको स्वीकार कर लेना चाहिए या जिस व्यवहारको वह अधिक मानवीय और सन्तोषजनक मानता है वैसा व्यवहार पाने की कोशिश करनी चाहिए?

४. सत्याग्रहीको कमसे-कम कितनी देर कातना चाहिए या उसे कमसे-कम कितना सूत कातना चाहिए?

५. क्या आपके सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ते ही सत्याग्रहके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करके कोई सत्याग्रही गिरफ्तार हो सकता है, या कि किसी निश्चित अवधितक सत्याग्रही रह चुकने के बाद ही वह सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें भाग ले सकता है?

उत्तर

१ अदालतमें अपना बचाव करने मे कोई हर्ज नही है, बल्कि कभी-कभी तो — जैसे कि अजमेरके मामलेमे — यह कर्त्तव्य हो जाता है।

२. मेरी रायमें तो उसे श्रेणी बदलवाने की कोई कोशिश नही करनी चाहिए। खुद मैं किसी भी प्रकारके वर्गीकरणके खिलाफ हूँ।

३ जैसी हालतमे मनुष्यको रखना चाहिए वैसी हालतमे उसे रखा जाये, इसके लिए उसे हर उचित प्रयत्न करने का अधिकार है।

४ मै समझता हूँ, प्रतिदिन कमसे-कम एक घटा कातना चाहिए। और प्रति घटा ३०० तारकी गति ठीक मानी जानी चाहिए। सार्वजनिक कार्योमे लगे लोग इससे कम भी कात सकते हैं।

५ जो आदमी शर्तोका पालन करने से बचने के लिए जान-बूझकर अन्तिम घड़ी तक प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर नही करता वह धोखेबाज है और सत्याग्रही बनने का पात्र नही है। लेकिन मैं किसी ईमानदार आदमीके हस्ताक्षर करके तुरन्त जेल

जाने की स्थितिकी भी कल्पना कर सकता हूँ। जिन लोगोके भविष्यमे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने की सम्भावना है और जो लोग हस्ताक्षर कर चुके हैं उनका साथ और समर्थन खो देने का खतरा उठाकर भी मैं कहूँगा कि निकट भविष्यमे आन्दोलन छेड़े जाने की कोई सम्भावना नही है।

सेवाग्राम, २० मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-५-१९४०

९३. हमारा कर्त्तव्य

नाजी जर्मनीके निर्ममतापूर्ण आक्रमणका सिलसिला और आगे बढ़ रहा है और ब्रिटेनपर दबाव बढ़ता जा रहा है तथा वह बड़ी मुसीबतमें पड़ा हुआ है। इस हालतमें क्या अहिंसाका तकाजा यह नहीं है कि हम उससे कह दें कि हम अपनी स्थितिसे तो तिल-भर भी पीछे हटने को तैयार नहीं हैं और जहाँतक उसके साथ हमारे सम्बन्धो और हमारे भविष्यका सवाल है, हमें अपनी माँगमें रंच-मात्र भी कमी करना मंजूर नही है, लेकिन उसके इस घोर संकटकी घड़ीमें हम उसे परेशान नहीं करना चाहते और इसलिए फिल-हाल हम अपने मनमें न तो सविनय अवज्ञा आन्दोलनका कोई विचार लायेंगे और न उसकी कोई बात ही करेंगे? नाजीवाद जिस तरह खुल्लमखुल्ला दूसरोपर अपना आधिपत्य जमाने की बात लेकर चल रहा है, क्या उसके बारेमें सोचकर ही हमारे मन विद्रोह और वितृष्णासे भर नहीं उठते? क्या मानव-सभ्यताका सम्पूर्ण भविष्य आज खतरेमें नहीं पड़ा हुआ है? यह सच है कि विदेशी शासनसे हमारी मुक्ति भी हमारे लिए जीवन-मरणका प्रश्न है। लेकिन जब ब्रिटेन निश्चित रूपसे बर्बरतापूर्ण तरीकोसे काम लेनेवाले आक्रमणकारियोंके खिलाफ लड़ रहा है तब क्या हमें ठीक वक्तपर ऐसी मानवोचित सद्भावनाका परिचय नहीं देना चाहिए जिससे अन्ततः हम विरोधियोंके हृदयको जीत सकें? और अगर ऐसी सद्भावनाका ब्रिटेनपर कोई असर न हो और सम्मानजनक समाधान असम्भव हो तो भी क्या यह बात हमारे लिए अधिक श्रेष्ठ और उत्कर्षकारी नहीं होगी कि हम उसके खिलाफ अहिंसक लड़ाई तब आरम्भ करें जब वह इस तरह चारो ओर से मुसीबतोंसे घिरा हुआ न हो? क्या इसके लिए हमें अधिक शक्तिकी आवश्यकता नहीं होगी और इसलिए उस लड़ाईसे हमें अधिक बड़ा और स्थायी लाभ नहीं होगा, और क्या यह युद्धरत संसारके लिए एक भव्य उदाहरण नहीं होगा?

क्या इससे यह बात भी सिद्ध नही होगी कि अहिंसा मुख्य रूपसे सबल लोगोंका शस्त्र है?

नॉर्वेमे मित्र-राष्ट्रोकी पराजयके बादसे मुझे जिन लोगोने पत्र लिखे है, शायद उन सबकी भावना इसमे ठीक-ठीक प्रतिबिम्बित हुई है। यह इन पत्र लेखकोके हृदयोकी उदार वृत्तिका सूचक है। लेकिन साथ ही इससे वास्तविकताके सही बोधका अभाव भी लक्षित होता है। इन पत्रोमे अग्रेजोकी प्रकृतिका खयाल नही किया गया है। उन्हे अपने अधीनस्थ देशोके लोगोकी सहानुभूतिकी आवश्यकता नही है, क्योकि वे उनसे जो-कुछ भी चाहे, सब ले सकते है। वे बडे बहादुर और अभिमानी लोग है। ऐसी आधी दर्जन पराजयोसे भी वे हतोत्साह नही होनेवाले है। अपने ऊपर आनेवाली किसी भी कठिनाईका सामना करने मे वे पूरी तरहसे समर्थ है। भारतको इस युद्धमे जिस तरह भाग लेना है उसके सम्बन्धमे उसे कुछ भी कहने का अधिकार नही है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलकी इच्छा-मात्रसे उसे युद्धमे शामिल होना पडा। उसके साधन-सामग्रीका उपयोग ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलकी इच्छा-नुसार हो रहा है। भारत एक अधीनस्थ देश है और ब्रिटेन अतीतकी तरह इस बार भी अपने इस अधीनस्थ देशकी शक्ति और साधनोको बूँद-बूँद करके निचोड लेगा। इन परिस्थितियोमे काग्रेसको किस तरह अपनी सद्भावनाका परिचय देना है? जो बड़ीसे-बड़ी सद्भावना वह व्यक्त कर सकती है वह तो कर ही रही है। वह देशमे कोई उपद्रव नही खड़ा कर रही है। वह अपनी ही नीतिके पालनसे हाथ समेटे बैठी है। मै पहले भी कह चुका हूँ और फिर कह रहा हूँ कि मै जान-बूझकर ब्रिटेनको परेशान करनेवाली कोई बात नही करूँगा। यह बात सत्याग्रहकी मेरी कल्पनाके विरुद्ध होगी। इससे अधिक करना काग्रेसकी सामर्थ्यके बाहर है।

सच पूछिए तो अपनी आजादीकी माँगमे प्रवृत्त रहना और सविनय अवज्ञाकी यथाशक्ति अधिकसे-अधिक तैयारी करते रहना काग्रेसका कर्त्तव्य है। इस तैयारीके स्वरूपको ठीकसे समझ लेना चाहिए। खादी तथा ग्रामोद्योगो और साम्प्रदायिक एकताको बढावा देना, अस्पृश्यता-निवारण और मद्य-निषेधके लिए काम करना और इन कार्योके लिए काग्रेसके सदस्य बनाना और उन्हे प्रशिक्षण देना, यही हमारी तैयारी है। क्या यह तैयारी बन्द कर दी जानी चाहिए? मै यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि यदि काग्रेस सच्चे अर्थोमे अहिंसक बन जाये और अपनी अहिंसाकी नीतिका अनुसरण करते हुए वह उपर्युक्त रचनात्मक कार्यक्रमको सफलता-पूर्वक कार्यान्वित करे तो वह स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगी, इसमे सन्देह करने की कोई गुंजाइश नही है। तब एक स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें भारतके लिए यह तय करने का उचित अवसर आयेगा कि उसे इग्लैण्डको किस तरहकी सहायता और किस प्रकार देनी चाहिए।

मित्र-राष्ट्रोका उद्देश्य जहाँतक अच्छा हो सकता है वहाँतक उस उद्देश्यकी प्राप्ति और विश्व-शान्तिकी स्थापनामें काग्रेसका योगदान यही है कि वह सत्य

और अहिंसाका सक्रिय रूपसे पालन करे और बिना किसी अन्तराल-विरामके अपने पूर्ण स्वाधीनताके लक्ष्यको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे।

सच तो यह है कि कांग्रेसकी स्थितिपर विचार करने और उसकी न्याय्यताको स्वीकार करने से बार-बार इनकार करके और झूठे सवाल उठाकर ब्रिटेन अपने उद्देश्यको स्वयं ही हानि पहुँचा रहा है। मैंने जिस ढंगकी संविधान-सभाका सुझाव रखा है उसमें सिवाय एक कठिनाईके — अगर वह सचमुच कठिनाई हो तो — शेष सबके हलकी व्यवस्था है। उसमें भारतकी नियतिके निर्माणमे ब्रिटेनके हस्तक्षेप करने की गुंजाइश नही रखी गई है। अगर इसे कठिनाईकी तरह पेश किया जाता है तो कांग्रेसको तबतक इन्तजार करना होगा जबतक यह स्वीकार नही कर लिया जाता कि यह न केवल कोई कठिनाई नही है, बल्कि भारतको आत्म-निर्णयका निर्विवाद अधिकार है।

इसी सन्दर्भमे मैं अपने पास आये उन पत्रोकी भी चर्चा कर दूं जिनमे मुझ पर किसी-न-किसी बहानेसे सविनय अवज्ञाकी घोषणा करने से बचते रहने का आरोप लगाया गया है। इन मित्रोको यह मालूम होना चाहिए कि अहिंसा-रूपी शस्त्रकी प्रभावकारिताका परिचय देने की चिन्ता मुझे उनसे अधिक है। इस शोधसे मैं क्षण-भरको भी विरत नही होता। मैं प्रकाशके लिए निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ। लेकिन जिस प्रकार सविनय अवज्ञा आरम्भ करने का उपयुक्त समय आ जाने पर किसी बाहरी दबावके कारण मैं उसे आरम्भ करने से बाज नही आऊँगा उसी प्रकार परिस्थितिके अपरिपक्व रहते दूसरोके दबावमे आकर मैं बिना सोचे-समझे उसे आरम्भ भी नही कर सकता। मैं जानता हूँ कि यह मेरी सबसे बड़ी परीक्षा की घड़ी है। मेरे पास इस बातके प्रचुर प्रमाण हैं कि बहुत-से कांग्रेसजनोंके हृदयोंमे अब भी हिंसाकी भावना काफी है और उनमे स्वार्थपरता भी बहुत है। अगर कांग्रेसजन अहिंसाकी सच्ची भावनासे ओतप्रोत होते तो हमे १९२१ मे ही आजादी मिल गई होती और तब हमारा इतिहास कुछ और ही तरहसे लिखा गया होता। लेकिन मुझे इस सबकी शिकायत नही करनी चाहिए। मेरे पास जो औजार है उन्हींसे मुझे काम करना है। बस इतना ही है कि मै जो ऊपरसे देखने मे निष्क्रिय प्रतीत हो रहा हूँ उसका कारण कांग्रेसजन समझ ले।

सेवाग्राम, २० मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-५-१९४०

९४. पत्र : रामकृष्णको

सेवाग्राम, वर्धा
२० मई, १९४०

प्रिय रामकृष्ण,[१]

तुम्हारा उपनयन होनेवाला है, ऐसा तुम्हारे पिताजीने बतलाया है। इसका अर्थ है द्विजत्व — अर्थात् पवित्र और सेवामय जीवन बिताने का संकल्प।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४६) से। सी० डब्ल्यू० २८०४ से भी, सौजन्य. रामकृष्ण

९५. पत्र : के० टी० नरसिंहचारको

[२० मई, १९४०][२]

प्रिय के० चार,

इसकी कोई आवश्यकता पड़ने की सम्भावना नही है।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४६) से। सी० डब्ल्यू० २८०४ से भी; सौजन्य : रामकृष्ण

१. के० टी० नरसिंहचारके भाई
२. यह और पिछला पत्र दोनों एक ही कागजपर लिखे हुए हैं।

९६. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेवाग्राम
२० मई, १९४०

चि० जमनालाल,

सरोजिनीदेवीको लिखनेकी मेरी हिम्मत नही हुई।[1] श्री काटजू[2] अजनबी नही कहे जा सकते। वे प्रख्यात वकील हैं और कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलमे मन्त्री भी थे। पद उनका ऊँचा था। लोगोको ऐसे मोह भी छोड देने चाहिए।

लगता है, ओम[3] अनुत्तीर्ण हो गई है। अगर ऐसा हो तो उसे निराश नही होना चाहिए। फिर मेहनत करे तो पास हो ही जायेगी। एक प्रसिद्ध व्यक्ति २१ बार अनुत्तीर्ण हुआ था, लेकिन वह प्रयत्न करता रहा और अन्तमे पास हो गया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०११) से

९७. पत्र : भोलानाथको

सेवाग्राम, वर्धा
२० मई, १९४०

भाई भोलानाथ,

मेरा ऐसा खयाल है कि तुमारे २६-३-'४० के खतका उत्तर मैंने भेजा था। आज सब खत देख रहा हूं, इसमे यह भी मिला। अब क्या हाल है, बताइये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १३७७) से

१. देखिए "तार: जमनालाल बजाजको", पृ० ८७।
२. देखिए "पत्र: कैलाशनाथ काटजूको", पृ० १३०-३१ भी।
३. जमनालाल बजाजकी छोटी पुत्री

९८. पत्र : तारासिंहको[1]

[२१ मई, १९४० के पूर्व][2]

सिखोंके साम्प्रदायिक अधिकारोंके बारेमें लाहौर अधिवेशनमें पास किये गये अपने प्रस्तावपर[3] कांग्रेस दृढ़ रहेगी, अर्थात् ऐसा कोई भी साम्प्रदायिक समझौता कांग्रेसको मान्य न होगा जो सिखोंको स्वीकार्य न हो।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २३-५-१९४०

९९. निर्देश : आश्रमवासियोंको

सेवाग्राम

२१ मई, १९४०

भाजी तैयार करनेका कार्य अव्यवस्थित है। कानून तो यह है कि बगैर कारण कोई भी भाजी [तैयार करनेके] काममें से गैरहाजिर न रहे, और उसे ही[4] सब सार्वजनिक कार्यके लिये [लागू] समजा जाय। जो ऐसी प्रवृत्तिओमें जब हिस्सा नहिं ले सकते हैं तब अपना नाम उन-उन प्रवृत्तियोंके संचालकको दे देवे। जो ऐसे कोई काममें कभी नहिं जा सके वह एक हि दफा अपनी अशक्ति जाहर करे।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से; जी० एन० ६८६६ से भी

१. अकाली दलके नेता तारासिंहने गांधीजी का ध्यान अबुल कलाम आजादके वक्तव्यकी ओर दिलाया था। अबुल कलाम आजादने कहा था कि मुस्लिम लीगकी पाकिस्तान-योजनाको यदि मुसलमान मान लेंगे तो कांग्रेस भी उसे स्वीकार कर लेगी। तारासिंहने सूचित किया था कि इस वक्तव्यसे कांग्रेस-समर्थक सिखोंके मनमें बहुत चिन्ता उत्पन्न हो गई है, क्योंकि उन्हें विभाजनका विचार पसन्द नहीं है।

२. जिस रिपोर्टसे यह पत्र लिया गया है उसपर "२१ मई, १९४०" की तारीख दी हुई है।

३. देखिए खण्ड ४२, पृ० ३७०।

४. अर्थात् इसी नियमको

१००. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४०

चि० अमृत,

तमाम कोशिशके बावजूद तुम्हे अबतक नही लिख पाया। कारण है, समयकी कमी।

तुमने लिखा था, कनुको पत्र भेज रही हूँ। वह तो पहुँचा ही नही। सूतका हिसाब भी कल ही मिला।

मैंने तुम्हारे प्रश्नका उपयोग किया है। उसके लिए मैं तुम्हारी प्रशसा नही कर सकता। उसमे कोई तर्क नही है। हल्केसे तुम्हारी खिचाई कर दी है।

कलसे मौसममे कुछ सुधार है।

तुम्हे कुछ पत्र भेज रहा हूँ।

ललिताकुमारी अभी यही हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक नही रहता, लेकिन वे किसीको परेशान नही करती। उनके सेवक उनकी देखभाल करते हैं। मैंने उन्हे अपने साथ रखा था, लेकिन उनका समय बा के कमरेमें बीतता है और वे प्रसन्न हैं।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९६९) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२७८ से भी

१०१. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे राजकोट जाने मे तो अभी देर है। यदि वहाँ थोडी शक्ति अर्जित कर लो, तो माना जायेगा कि तुम एक कदम और आगे बढे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३७) से। सी० डब्ल्यू० ७१७ से भी, सौजन्य . नवजीवन ट्रस्ट

१०२. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४०

भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारे तीन पत्र मिले। प्रभाकुमारीके मामलेमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। लेकिन इस किस्सेसे समझमें आता है कि सब बातोंमें सावधानीकी जरूरत है। अहिंसामें मानसिक तथा कायिक अपरिग्रह आवश्यक होता है, सत्यमें मौन। इतना समझ लिया जाये तो हिंसक और अहिंसक प्रवृत्तिका भेद सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंमें साफ-साफ देखा जा सकता है।

घोघा जाने के बारेमें तुम्हारा मामला मुझे कमजोर लगता है। तुम लिखते हो, उतना कष्ट तो सभी खिलाड़ियोंको भोगना पड़ता है। तुम्हारे वर्णनसे मुझे नहीं लगता कि बुद्धिपर कोई बड़ा प्रहार किया जा रहा हो। लेकिन सचाई शीघ्र ही सामने आ जायेगी। कैम्पमें आनेवालों को कितना लाभ हुआ है, इसका पता अन्ततः लग ही जायेगा। अहिंसाकी शिक्षा देते मेरा शरीर छीज गया, लेकिन न तो मैं उसे पूरी तरह अपनाने में सफल हुआ हूँ, न दूसरोंको उसे अपनाने में मदद कर सका हूँ। अब मैं इसके लिए तुम्हारी ओर ताक रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९५०) से; सौजन्य : पृथ्वीसिंह

१०३. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ मई, १९४०

भाई विट्ठलदास,

मुझे लगता है, अभी हमें चन्दा नहीं माँगना चाहिए। यही मैंने शकरलाल [बैंकर] को भी लिखा है। एकाध महीनेमें पता चल जायेगा। इस बीच हमें उस पर विचार करना चाहिए।

आन्तरिक स्थिति कैसे सुधारी जाये?

यदि चन्दा बिलकुल न मिले, तो क्या किया जाये?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७९५) से

१०४. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

अच्छा है, तुम वहीं रहो। तुम वहाँ पूरी तरह काम आ रहे हो और तुम्हें थोड़ी शान्ति भी मिलती है। कंचनको तो मिलती ही है। जब यह स्पष्ट हो जाये कि तुम्हारे वहाँ रहने की जरूरत नहीं है, तभी वापस आना। कंचनसे कहना, कभी मुझे लिखे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५४०) से

१०५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४०

चि० कृष्णचन्द्र,

भाजीका मैंने समजा, ठीक चल रहा था इसलिये मैंने कुछ नहिं किया। अब मैंने नोंधपोथी (निर्देश पुस्तिका) में लिख दिया है।[1]

महादेव तो आश्रममें रहते है, ऐसे न माना जाय। उसके पाससे सार्वजनिक कामके लिये एक मिनट भी नहिं मिल सकती है। प्यारेलालका कुछ भिन्न है सही लेकिन उसको भी न कहा जाय।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४२) से

१. देखिए पृ० ९८।

१०६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ मई, १९४०

भाई घनश्यामदास,

तुमारा खत मिला। मैंने माधवको[1] भी खत तो लिखा है। तुम सबको सुमित्राके मृत्युका दुख तो काफी होना ही है। लेकिन ऐसे मौकेपर हमारे ज्ञानकी और श्रद्धाकी परीक्षा होती है ना? मुझे विश्वास है कि इस परीक्षामें तुम सब उत्तीर्ण होगे।

यूरोपमें तो बराबर यादवस्थली जमी है। कुछ भी हो, मेरा हृदय इस बारेमें बहुत कठिन हो गया है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०४६) से। सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१०७. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम, वर्धा
२२ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। आजकी डाकसे जवाब नहीं भेज पाया। तुम्हे तार करूँ, इसकी जरूरत नहीं है। कंचनसे कहना कि वह मुझे इस सम्बन्धमें लिखे। बालकृष्ण और कुँवरजी भी लिखे। यह बात भी समझमें नहीं आती कि भोजूभाऊ और कचनके बीच बोलचाल क्यों नहीं है। इस झगड़ेके कारण बालकृष्णके काममें तो कोई बाधा नहीं पहुँचती न? बालकृष्णको इस बातका थोडा डर था और अगर ऐसा हो, तो उसे एकान्त मिलना चाहिए। इन सब बातोंका पूरा विचार करने के बाद ही मैं तुम्हारे बारेमें अपना निर्णय दे सकूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३९) से। सी० डब्ल्यू० ७०९० से भी; सौजन्य मुन्नालाल ग० शाह

१. रामेश्वरदास बिड़लाके पुत्र

१०८. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
२२ मई, १९४०

चि० मणिलाल,

सुशीलाका सातवाँ महीना चल रहा है, यह वात कहने में शर्म काहे की? और इसका दु ख भी क्या? मनुष्यसे जितना हो सकता है, सयम करता है। इससे अधिक वह कर भी क्या सकता है? यह ससार ऐसे ही चलनेवाला है।

हाँ, सेवाग्राम वहुत वढ रहा है। कितना वढेगा, इसका अनुमान कोई नही लगा सकता।

यहाँ अभी मेरे जल्दी सघर्ष शुरू करने की कोई वात नही है।

भाभा वगैरह चाहे जो लिखते रहे, लेकिन तेरे लिए यही उचित है कि तू जिन्ना साहवके वारेमें कुछ न लिखे। और लिखे तो शिष्ट भाषाका प्रयोग करना चाहिए। लेकिन यह तो हुई मेरी राय। मेरी यह इच्छा विलकुल नही है कि तू डरकर कुछ न लिखे, अथवा लिखे।

वहाँके सघर्षके वारेमे मुझे जो उचित लगा, वह मैंने लिखा। लेकिन उस पर अमल करना या न करना तो तुम्हारा काम था। मेढ आकर मिल गये हैं। उनके साथ जी भरकर वाते हुईं। अभी फिर आयेंगे। उनकी लडकीकी शादी है, इसलिए जिस दिन आये, उसी दिन वापस लौट गये।

वा की उम्रको देखते हुए उसका स्वास्थ्य अच्छा है। और सव लोग भी अच्छे हैं।

तुममे से किसीके अभी जल्दी यहाँ आने की उम्मीद मैं नही करता। तुम वहाँ पडे हो और इस प्रकार कुछ सेवा हो रही है, यह ठीक ही है।

रामदास टाटा कम्पनीमे है तो सही, लेकिन वहुत वेचैन है। शान्त नही है। उसका स्वास्थ्य भी वहुत अच्छा नही रहता। नीमु उसके साथ ही है।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१३)से

१०९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मई, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

साथका पत्र पढकर मुझे सलाह दो। पत्र-लेखकको मैंने बता दिया है कि उसका सुझाव[1] मुझे जँचता है और अगर मुझे रास्ता सूझा तो मै इसपर पूरी तरह या अशत अमल करूँगा।

स्नेह।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
गाधी-नेहरू पेपर्स, १९४०। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

११०. पत्र : जी० ए० नटेसनको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मई, १९४०

प्रिय नटेसन,

आपको अपना पत्र मुझे भेजने का पूरा अधिकार था।

पराधीन देशके नाते भारतसे जो-कुछ करवाया जाये उससे अधिक वह क्या कर सकता है? क्या आप सोचते हैं कि इस देशसे वे जो-कुछ लेना चाहते हैं उसे लेने में कभी कोई सकोच करते है? काग्रेसके पास नैतिक समर्थनके सिवा देने को कुछ है ही नही। उन्होने भारतको इससे ज्यादा कुछ करने के लायक छोड़ा ही नही है। पराधीन देशके रूपमें भारत ब्रिटेनको नही बचा सकता है। हाँ, भारत अगर

---

१. लखनऊ-निवासी अब्दुल हई अब्बासीने सुझाव दिया था कि साम्प्रदायिक झगड़े आम तौरपर उत्तर भारतमें ही शुरू होते हैं, इसलिए गाधीजी को संयुक्त प्रान्तके किसी ऐसे गाँवमें बसना चाहिए जहाँ मुसलमानोंकी बहुसंख्या हो।

स्वाधीन हो तो शायद बचा सके। मुझमें मदद देने की इच्छाका अभाव हो, ऐसा नहीं है। बस, उसकी सामर्थ्य नहीं है। आशा है, आपकी पत्नी स्वस्थ होगी।

स्नेह।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२३८) से

१११. पत्र : दिलखुश बी० दीवानजीको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मई, १९४०

भाई दिलखुश,

तुम्हारा पत्र बिलकुल लम्बा नहीं है। जिस एकाग्रतासे तुम काम कर रहे हो, उसमें किसी अन्य विचारके लिए अवकाश ही नहीं रहता। तुम्हारी आर्थिक अड़चनें मैं दूर तो कर सकता हूँ, लेकिन मेरी राय यह है कि अपनी अड़चनोंमें से तुम्हीं अपना रास्ता निकालो, यह ज्यादा अच्छा होगा। बुनकर तुमने वही तैयार किये हैं न? न किये हों, तो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६४६) से

११२. निर्देश : आश्रमवासियोंको

सेवाग्राम
२४ मई, १९४०

नाना-मोटा [छोटे-मोटे] उद्वेगोंके कारण मैंने मौन आज लिया है। जहां तक हो सके मौन चलता रहेगा। वर्किंग कमिटी आवेगी तब तो खोलना होगा। ऐसे ही आकस्मिक कारणसे भी खुलेगी। मेरी भावना इस समय एक ही हो सकती है। इसमें मौन बहुत आवश्यक है। बोलने से खलल आती है। मैं यह भी देखता हूं कि न बोलने से मेरी शक्ति बच जाती है। किसी प्रकार का आग्रह नहिं रहा है इसलिये आवश्यक बातमें मेरा अभिप्राय बताने से अधिक दलीलादि करने को जी नहिं चाहता है।

बापु

सी० डब्ल्यू० ४६७४ से। जी० एन० ६६८६ से भी

११३. पत्र : एम० मुजीबको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४०

प्रिय मुजीब,

राजू यहाँ आया था और अब अपनी जगह लौट गया है। बने तो वह वही काम करना चाहता है। जितना समय उसने मुझसे चाहा, मैंने उसे दिया और काकाके कार्यालयसे भी सम्पर्क करवा दिया। उसकी इच्छाके मुताबिक मैंने डॉ० पट्टाभिके नाम उसे एक पत्र भी दे दिया है।

मुझे यकीन है, तुम दो परस्पर-विरोधी दिखाई देनेवाले कर्त्तव्योंके बीच सन्तुलन स्थापित कर लोगे। डॉ० जाकिरको बता देना कि उर्दू स्कूलका मामला सन्तोषजनक ढगसे निबटाया जा रहा है।

स्नेह।

बापू

प्रो० मुजीब
जामिया मिलिया
नई दिल्ली

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १४६६) से। सौजन्य एम० मुजीब

११४. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारे अनुवाद मिल गये हैं। उन्हे पढने के लिए समय निकालना ही पडेगा। वियोगी हरिका[1] कहना है कि अभी उन्हे अनुवादोकी जरूरत नही है। फिर भी तुम अभ्यास तो करती रहो। कौन जाने, कब जरूरत पड जाये।

सुधार स्याहीसे किया करो — मेरा नहीं, मेरी आँखोका खयाल करके।

उम्मीद है, इस सप्ताहके लेख आज भेज दिये जायेगे। कनुसे अभीतक मिले नही है।

१. हरिजनसेवक के सम्पादक

अभी और लिखने के लिए समय नही है। नानाभाई भट्ट आ गये है। आज सुबह ७.३० बजेसे अनिश्चित समयके लिए मौन ले रहा हूँ।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६८)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६४७७ से भी

११५. पत्र : श्रीमती के० एल० रलियारामको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४०

प्रिय बहन,

आपका कहना सच है। मैं लिखूंगा, लेकिन नही जानता कि उसका असर क्या और कितना होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी (एन० ए० आई० फाइल स० ७४)से, सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार। जी० एन० ६८३६ से भी

११६. पत्र : शारदाबहन गोरधनदास चोखावालाको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४०

चि० बबुडी,

तेरे दो पत्र मिले। डॉ० भास्करका भी ब्योरेवार पत्र मिला। तुझे वहाँ भेजा, यह अच्छा ही हुआ। अब तुझे अच्छा हो जाना चाहिए। तेरा मन कमजोर है, उसे मजबूत बनाना। यहाँ २० से मौसम बदला है। गर्मी बहुत कम हो गई है। फिर भी तू गई, यह तो अच्छा ही हुआ। शकरीबहनको अब कुछ ज्यादा शान्ति मिलती होगी। जबतक रहना पडे, तबतक खुशीसे रहे।

तुम सबको,

बापूके आशीर्वाद

शारदाबहन चोखावाला
पाटीदार आश्रम
सूरत

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२८)से। सौजन्य शारदाबहन गो० चोखावाला

११७. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेवाग्राम
२४ मई, १९४०

चि० बलवन्तसिंह,

तुमारा खत मैं पढ गया हू। बात यह है पारनेरकर कहते है वह अकेले तीन काम नहिं संभाल सकते है — दूधघर, गाय-बैल और खेती। इसलिये वह राजी है कि गाय-बैल और खेती तुमारे सिपुर्द किये जाय। मुझे यह अच्छा लगता है और पारनेरकरके काममे तुमको काफी करने का रहता है। चिमनलाल और मुन्नालाल उसका जहातक वे समज सकते हैं समर्थन करते है। पारनेरकर भी कुछ तो कबूल करते है, कारण बताते हैं मददका अभाव। इस हालतमे मेरा धर्म होता है कि मैं तुमको गाय-बैल और खेतीका काम सिपुर्द करू। कमिटी बनाना तो मुझे पसंद नहिं है। ऐसा तो मुझे पसद नहिं है ऐसा ही समझो कि मैं कमिटी हू। मुझको जरूर होगी उनकी मदद ले लूगा। अन्यथा जिस बारेमें निर्णय करना होगा मैं करूंगा। इसका वास्तविक अर्थ यह होगा कि बहूत-सी बात तुमारे पर छोडी जायगी।

गोशाला आज जैसी है ऐसी ही जहांतक बन सकता है रहने देना। अनुभवसे उसमें कुछ परिवर्तनकी आवश्यकता लगे तो किया जायगा।

नौकर तो जो अच्छे लगे वही रहेगे।

भाजी तो हमारी ही होनी चाहीये। कपास तो हमारा होता ही है। फल-झाड है उसको अच्छे रखना ही चाहीये।

यह तो मेरा अभिप्राय हूआ, लेकिन किसी कारण तुमारा दिल इसमे न लगे तो मैं आग्रह करना नही चाहता हू। कई रोज नाथजी[1] के पास जाना है तो अवश्य जाओ और बडे पैमानेपर कुछ काम करना चाहते है तो भी अवश्य कीजीये। यह काम उठाया जाय तो पूर्ण सतोष और धर्म समजकर। केवल मैं कहता हू इसलिये नहिं, क्योंकि इस बारेमे मुझे कुछ ज्ञान नहि है। मैं तो तुमारेपर विश्वास है और तुमारी हाजरी यहा है इसलिए यह काम तुमको सिपुर्द करना चाहता हू।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९४४) से

१. केदारनाथ कुलकर्णी

११८. वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको[1]

वर्धा
२४ मई, १९४०

आज पश्चिमी दुनियामें सतत संहार-लीला मची हुई है और शान्तिपूर्ण घर तबाह किये जा रहे हैं। ऐसे समयमें मुझमें यह साहस नहीं है कि कॉमन्स सभामें श्री वेजवुड बेनके प्रश्नके उत्तरमें श्री एमरी द्वारा दिये गये वक्तव्यके[2] सम्बन्धमें सार्वजनिक रूपसे कुछ कह सकूँ।

इतना कहना ही पर्याप्त है कि वर्तमान गतिरोधको समाप्त कर कोई शान्तिपूर्ण और सम्मानजनक समाधान निकालने के लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखूंगा।

[अंग्रेजीसे]
हितवाद, २६-५-१९४०

१. यह १-६-१९४० के हरिजनमें भी "विल लीव नो स्टोन अनटर्न्ड" (कुछ भी उठा नहीं रखूँगा) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। झुलसानेवाली गर्मीके कारण गांधीजी अपने सिरपर गीला कपड़ा ओढ़े अपनी कुटियामें लेटे हुए थे, तभी एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने कॉमन्स सभामें दिया गया एमरीका वक्तव्य गांधीजीके हाथमें थमा दिया।

गांधीजी ने वक्तव्यको ध्यानसे पढ़ा। फिर वे कुछ मिनटतक विचारमें डूब गये प्रतीत हुए। इसके बाद एक कागज और पेंसिल उठाकर उन्होंने खुद ही अपना यह वक्तव्य लिख दिया।

२. भारत-मन्त्री एल० एस० एमरीने कॉमन्स सभामें २३ मईको कहा था: "ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें भारत पूर्ण और बराबरीके साझीदारका दर्जा प्राप्त कर ले, यह हमारी नीतिका लक्ष्य है। जैसा कि मेरे पूर्ववर्ती भारत-मन्त्रीने अपने १८ अप्रैलके भाषणमें स्पष्ट कर दिया था, हम यह स्वीकार करते हैं कि भारतकी परिस्थितियों और भारतके दृष्टिकोणके अनुरूप अच्छेसे-अच्छा संविधान तैयार करने में स्वयं भारतीयोंको एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। यह वचन तो दिया ही जा चुका है कि १९३५के अधिनियमपर और जिस नीति तथा योजनापर यह अधिनियम आधारित है उसपर युद्धके बाद पुनर्विचार किया जायेगा। इस पुनर्विचारका मतलब ऊपरसे कोई निर्णय थोपा जाना नहीं, बल्कि अनिवार्यतः आपसी चर्चा और वार्ता है। जिसमें सभी समुदायों और हितोंके उचित दावोंका खयाल रखा जाये, ऐसे सर्वसम्मत समाधानका मार्ग प्रशस्त करने के लिए किये जानेवाले किसी भी प्रयत्नमें हम बाधा नहीं डालना चाहते। इसके विपरीत, हम तो ऐसे समाधानमें अपना योगदान करने को उत्सुक रहे हैं और आज भी हैं।"

११९. पत्र : विजयाबहन मनुभाई पंचोलीको

[२५ मई, १९४० के पूर्व][1]

चि० विजी,

तेरा पत्र और सुन्दर रूमाल भी मिले। रूमाल काममे लाना शुरू कर दिया है। पिताजीके समाचार देती रहना। तू स्वस्थ होगी। मेरा पत्र मिला होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१०६) से। सी० डब्ल्यू० ४५९८ से भी, सौजन्य. विजयाबहन म० पचोली

१२०. तार : सिकन्दर हयातखाँको[2]

वर्धा

[२५ मई, १९४०][3]

सर सिकन्दर हयातखाँ,

गोपनीय। आपके तारके[4] लिए बहुत आभारी हूँ। समर्थनकी पर्याप्त घोषणाएँ की जा चुकी है। काग्रेस बाधा नही डालती तो यही काफी होना चाहिए। स्पष्ट ही काग्रेस इससे आगे नही जा सकती। जो चीज समझमे नही आती वह यह है कि ब्रिटेन यह घोषणा न करने पर क्यो अडा हुआ है कि भारत स्वतन्त्र देश है, जिसे ब्रिटेनके हस्तक्षेपके बिना अपने भाग्यका निर्माण आप करने का पूरा अधिकार है। ऐसी घोषणा और युद्धके दौरान

१. "पत्र : विजयाबहन मनुभाई पंचोलीको", पृ० ११३ पर "रूमालकी पहुँच" सूचित करने के उल्लेखसे।

२. पंजाबके जमीदार, यूनियनिस्ट पार्टीके नेता और पजाबके मुख्य मन्त्री

३. साधन-सूत्रमें तारीख नहीं दी गई है। लेकिन जिस तारका यह उत्तर था उसकी और इस तारकी नकलें महादेव देसाईने २५ मईको राजगोपालाचारीको भेजी थी।

४. इस तारमें सिकन्दर हयातखाँने गाधीजी और काग्रेससे "सभ्यता तथा भारतकी सुरक्षाकी खातिर युद्ध-प्रयत्नोमें हार्दिक समर्थन देने" का अनुरोध किया था।

यथासम्भव तदनुरूप कार्रवाईके विना नैतिक शक्तियाँ काम नही कर सकती। यह आपके तारपर मेरी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया है। मौलाना और जवाहरलालसे परामर्श कर रहा हूँ। आशा है, आप स्वस्थ होगे।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८८३) से। सौजन्य . सी० आर० नरसिंहन्

१२१. पत्र : अब्दुल दादर बेगको

२५ मई, १९४०

प्रिय मिर्जा साहब,

साथमें आपके आरोपका श्री गर्ग द्वारा दिया गया उत्तर भेज रहा हूँ। मै इसपर आपकी प्रतिक्रिया जानना चाहूँगा। राजनीतिक मतभेद तो रहेगे ही। लेकिन तमाम दलगत कटुतासे वचना चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

१२२. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ मई, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हे वताया था कि मीरा बूँदला चली गई है। उसने उस जगहका वडा उत्साहजनक वर्णन किया है।

ललिताकुमारी गर्मीको मजेमे वर्दाश्त कर रही है। यहाँ आकर वे वहुत प्रसन्न है।

लीलावतीने कोई कार्यक्रम निश्चित नही किया है।

अमतुस्सलाम तो खुश होना ही नही चाहती। वह सोचती है, हर आदमी उसके पीछे पडा हुआ है।

वालजीभाईका पता है — हरिजन आश्रम, सावरमती।

तुम्हे पत्र तो मै काफी नियमित रूपसे लिखता रहा हूँ। तुम्हे खिन्नता क्यो महसूस होनी चाहिए? मित्र-राष्ट्र हर जगह हारते नजर आ रहे है। लेकिन युद्धमे तो यह सब होता ही है। तुम्हे इन बातोकी चिन्ता [नही][1] करनी चाहिए। भयकर नरसंहार हो रहा है, लेकिन वह तो होगा ही। सभी पक्ष जानते है कि इस मामलेमे असलियत ठीक-ठीक क्या है।

अगर तुम व्यक्तिगत कारणोसे खिन्न हो तो यह तो बचपनेसे भी बदतर बात है। मृत्युके इस ताण्डवके बीच हम अपनेको तो भूल ही जाये। और फिर तुम्हारे पास तुम्हारा रोजका काम है।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६६९)से, सौजन्य · अमृतकौर। जी० एन० ६४७८से भी

१२३. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ मई, १९४०

चि० मीरा,

तुम्हारा चटपटा पत्र मिला। तुम्हारे यहाँके प्राकृतिक दृश्योकी बात पढकर तो मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है। लेकिन मुझे तो तूफानके बीच ही रहना है। काम करने और शान्ति प्राप्त करने के विचारसे मै कलसे अनिश्चित कालके लिए मौन ले चुका हूँ। यह कार्य-समिति या किसी अप्रत्याशित घटनाके कारण ही टूटेगा।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५३)से; सौजन्य . मीराबहन। जी० एन० १००४८ से भी

१. साधन-सूत्रमें यह शब्द किसी अन्य व्यक्तिकी लिखावटमें पेन्सिलसे जोड़ा गया है।

१२४. पत्र : विजयाबहन मनुभाई पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ मई, १९४०

चि० विजया,

पत्र तो मैंने तुझे लिखा है। रूमालकी पहुँच भी लिखी है। आमोंकी बात मैं समझ गया। यहाँ पहुँच जाने पर उनकी व्यवस्था करूँगा। वे तो एक दिनमें ही खत्म हो जायेंगे।

जब तुझे आना हो, एक चक्कर लगा जाना।

नानाभाई दो दिन रहकर चले गये। भावनगरके कामके लिए आये थे। और सब मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आम आ गये हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२८)से। सी० डब्ल्यू० ४६२०से भी, सौजन्य : विजयाबहन म० पंचोली

१२५. पत्र : बलवन्तसिंहको

सेवाग्राम
२५ मई, १९४०

चि० बलवन्तसिंह,

प्रह्लादके साथ बात कर लेना। चार्ज देनेका उसको जमीन देनेका [फिल]हाल तो छूट ही गया है। मकानके बारेमें नवेम्बरमें देखा जायगा।

'नानामोटा'[1]की सुधारणा ठीक बताई।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९३५) से

१. देखिए "निर्देश : आश्रमवासियोंको", पृ० १०५, गांधीजी ने हिन्दी शब्द "छोटे-मोटे" की जगह प्रचलित गुजराती शब्द "नानामोटा" का प्रयोग किया था।

१२६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
२५ मई, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

तुमारी इच्छा तो शुभ है। लेकिन जबतक सहज मे पत्र तुमारे क्षेत्रमे नही आते है तबतक सयम-पालन करना उचित है। तुमारी इच्छा मे याद रखुगा। ऐसा मौका आने पर हो जायगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४३)से

१२७. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ मई, १९४०

चि० ब्रजकृष्ण,

तुमारा खत रा० कु० [राजकुमारी] पर देखा। तुमारे किसीके नामकी भरती करना नही।[1] जो तुमसे हो सके इतनी सेवा करो।

लडाई हुई तो उस वक्त साच-झूट बाहर आ जायगा। देहातोमे कुछ हो सके तो अवश्य करो। मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४८१)से

१. सम्भवत: व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाके लिए

१२८. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेगाँव, वर्धा
२६ मई, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके १९ तारीखके पत्रके लिए वहुत-वहुत धन्यवाद। मेरे और सर सिकन्दरके बीच जिन तारोंका[1] आदान-प्रदान हुआ है उनकी नकलें साथमें भेज रहा हूँ। मेरा [तार] केवल मेरी व्यक्तिगत स्थितिको ही प्रतिबिम्बित करता है। मुझे लगता है कि जबतक ब्रिटेन स्पष्ट घोषणा नहीं करता, उसकी नैतिक स्थिति शंकास्पद ही रहेगी।

लेकिन मैं यह पत्र अपनी शिकायतें वताने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। इसका प्रयोजन युद्धकी परिस्थितिके सम्बन्धमें आपको अपनी प्रतिक्रिया वतलाना है। स्थिति ने हालमें जो मोड लिया है वह वहुत गम्भीर प्रतीत होता है। सही समाचार न मिलने से वड़ी खीज होती है। मैं समझता हूँ, यह अनिवार्य है। लेकिन अगर मान लिया जाये कि मित्र-राष्ट्रोंकी स्थिति जितनी प्रतीत होती है, सचमुच उतनी ही निराशाजनक है तो क्या समय नहीं आ गया है कि मानव-जातिका खयाल करके शान्तिकी याचना की जाये? मैं नहीं मानता कि श्री हिटलरको जितना बुरा बताया जाता है, वे उतने बुरे हैं। उनका देश मित्र-देश भी हो सकता था और अब भी हो सकता है। यह भीषण नरसंहार पीड़ित मानवताकी खातिर बन्द होना ही चाहिए।

अगर मेरी वातमें कोई तत्त्व है और अगर ब्रिटेनका मन्त्रिमण्डल चाहे तो मैं जर्मनी या जहाँ भी जरूरत हो वहाँ जाकर, किसी स्वार्थ विशेषकी रक्षाके लिए नहीं बल्कि मानवताके कल्याणके लिए, शान्तिकी याचना करने को तैयार हूँ।

हो सकता है, यह स्वप्नलोकमें विचरण करनेवाले व्यक्तिका विचार हो। लेकिन आप मेरे मित्र हैं, इस नाते आपको इससे अवगत करा देना मेरा कर्त्तव्य है। हो सकता है, यह स्वप्नसे अधिक समझदारी ही साबित हो।[2]

१. देखिए "तार : सिकन्दर हयातखाँको", पृ० ११०।

२. अपने ३ जूनके पत्रमें इसका उत्तर देते हुए वाइसरायने लिखा: "सम्राट्की सरकारने इस संघर्षको टालने और फिर इसे . . . यथासम्भव सीमित रखने के लिए भरसक प्रयत्न किया। . . . लेकिन उसका यह स्पष्ट संकल्प है कि जिन उद्देश्योंके लिए वह लड़ रही है वे जबतक सिद्ध नहीं हो जाते तबतक उसे युद्ध चलाते रहना होगा। और अबतक जो-कुछ होता रहा है उसको ध्यानमें रखते हुए श्री हिटलर के किसी वादे या वचनपर वह भरोसा नहीं कर सकती। . . . विजय प्राप्त करने तक जूझते रहने के अलावा उसके सामने . . . और कोई रास्ता नहीं है।"

आपके दो पुत्र और एक जमाता सक्रिय सैनिक सेवामे है। ईश्वर उन्हें सुरक्षित रखे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे: लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१२९. पुर्जा: अमृतलाल चटर्जीको

२६ मई, १९४०

मुझे खेद है कि यहाँ तुम्हे सिर्फ हिंसा, पाखण्ड और अस्पृश्यता ही देखने को मिली। तुम्हारे पत्रमे गोपनीय कुछ भी नही है। तुम यहाँके सभी लोगोसे बातचीत करोगे। आजकल मैंने मौन ले रखा है, इसलिए मैं तो ज्यादा-कुछ नही कर पाऊँगा। देख-रेखके काममे भी तुम सेवा कर सकते हो। लेकिन तुम्हे अपना काम खुद तय करने की छूट होगी।[1] पर हिंसा, पाखण्ड आदिके बीच तुम कैसे रह सकोगे? तुम्हे अपने लिए खुद ही एक कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए। मुझे खेद है, लेकिन मैं लाचार हूँ।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १४४९)से। सौजन्य: ए० के० सेन

१३०. पत्र: चन्दन कालेलकरको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ मई, १९४०

चि० चन्दन,

तू कैसी लड़की है! तुझे सेवाग्रामसे जाने ही नही देना चाहिए था। तू चंगी रहे या बीमार, तुझे वही रहना चाहिए जहाँ तेरी शोभा है। अब खुराक वगैरहके नियमोका पालन करके शीघ्र चंगी हो जाना। यदि कुछ समय यहाँ बिता जाये तो अच्छा हो। मुझे लिखना तो तू भूल ही गई है!

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९५४)से। सौजन्य: सतीश द० कालेलकर

१. अमृतलाल चटर्जीने गांधीजी से आश्रममें देख-रेखका काम करने के बजाय सेवाग्रामके हरिजनोंके बीच काम करने की अनुमति माँगी थी।

१३१. केरल कांग्रेस[1]

केरलमें सम्बन्धित लोगोसे मिलकर लौटने के बाद मियाँ इफ्तिखारुद्दीनने मुझे बताया था कि परस्पर प्रतिद्वन्द्वी गुटोंके जिन मतभेदोके कारण केरलमें वास्तविक प्रगतिका रास्ता रुका हुआ था उनका निबटारा हो गया है। यह जानकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ था। लेकिन उसके बाद केरलसे जो पत्र आये हैं उनसे प्रकट होता है कि निबटारा सतही था। केरल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित एक लम्बा प्रस्ताव मेरे सामने है। इसमें मेरे प्राय सभी कार्यो और लेखोंकी निन्दा की गई है, रचनात्मक कार्यक्रमका मजाक उडाया गया है, और कांग्रेसके नियमका नाम-मात्रका पालन करने के लिए ऊपरी मनसे कांग्रेस-प्रस्तावका अनुमोदन भी कर दिया गया है। यह प्रस्ताव पास करने के लिए जिम्मेदार केरलके कांग्रेसियोसे मेरा निवेदन है कि यह न तो अच्छे सैनिकका तरीका है और न अच्छे खिलाड़ीका। शब्दार्थ प्राण लेता है, भावार्थ प्राण देता है। कांग्रेसियोको कांग्रेस-प्रस्तावकी भावनाको समझकर उसपर अमल करना चाहिए। इस तरह वे अपनेमें भी जीवनका सचार करेंगे और मुझमें भी। अगर वे ऐसा नही कर सकते तो बहादुरी और ईमानदारीका काम यह होगा कि वे कांग्रेसके वर्त्तमान नेतृत्व और कार्यक्रमका शोभनीय ढगसे विरोध करे। मेरे सामने जो प्रस्ताव है, उससे केवल यही होना है कि जिनके लिए यह प्रस्ताव है वे उलझनमें पडेंगे। मैं आशा करता हूँ कि केरलके बहुसख्य गुटके नेता अपनी गलती महसूस करके अपने कदम वापस लेंगे। लेकिन वे ऐसा करे या न करे, अल्पसख्य गुटको, जिसका कांग्रेस-कार्यक्रममें विश्वास है, चुपचाप उसपर अमल करते रहना चाहिए और ठोस काम करके लोगोको अपनी ईमानदारीसे प्रभावित करना चाहिए।

सेवाग्राम, २७ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-६-१९४०

1. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

१३२. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
२७ मई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारे दोनों पत्र आज ही मिले। अभी तो तुम वही बने रहो। तुम्हारे पतनकी बात समझी। लेकिन अब उसकी डुग्गी पीटने की जरूरत नहीं है। मैंने तो जब तुम्हें जाने दिया था, तभी सोच लिया था कि यही होना है। लेकिन उस तरह मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता था। मानसिक मिलाप तो तुम रोज करते ही रहते थे। तब अच्छा यही था, शारीरिक मिलाप भी होना हो तो हो ही जाये। अब तुम फिरसे घर बसा लो, यही अच्छा है। घर बसाने का मतलब साथ सोना थोड़े ही है! घर बसाने के बाद भी अगर तुम दोनो सयमका पालन कर सको, तो माना जायेगा कि काफी हुआ। वहाँ बैठे दोनो एक-दूसरेकी परीक्षा करना। यही ठीक होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

इतना लिखने के बाद नींद आने लगी, इसलिए गड़बड़ होने लगी। हिम्मत मत हार बैठना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कंचन अथवा और किसीको आज नहीं लिखता। आजका दिन 'हरिजन' के लिए है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३८) से। सी० डब्ल्यू० ७०९१ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

१३३. अभी देर है

पाठक इसी अंकमें अन्यत्र डॉ० राममनोहर लोहियाका लेख देखेंगे, जिसमे उन्होने तत्काल सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की पैरवी की है। विश्व-शान्तिकी रक्षाके लिए उन्होने जो उपचार बताया है, उससे मै सहमति प्रकट करता हूँ। अपने उपचारके स्वीकारार्थ वे तत्काल सविनय अवज्ञा आरम्भ करनेको कहते है। यहाँ मै उनसे सहमत नही हूँ। अहिंसाकी कार्य-पद्धतिकी मेरी संकल्पनासे यदि वे सहमत हो, तो उन्हें यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नही होगी कि मौजूदा वातावरण ऐसा नही है कि अंग्रेजोको सविनय अवज्ञा द्वारा सही दिशा की ओर प्रेरित किया जा सके। डॉ० लोहिया यह स्वीकार करते है कि ब्रिटिश सरकारको परेशानीमें नही डालना चाहिए। लेकिन मुझे लगता है कि सीधी कार्रवाईकी दिशामे उठाये गये किसी भी कदमसे उसे परेशानी अवश्य होगी। अगर अभी मै सविनय अवज्ञा आरम्भ कर दूं तो उसका सारा प्रयोजन ही व्यर्थ हो जायेगा।

अगर देश स्पष्ट रूपसे अहिंसक और अनुशासित होता तो मै बेझिझक सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देता। लेकिन दुर्भाग्यसे कांग्रेसके बाहर ऐसे बहुत-से गुट है जो न अहिंसामें विश्वास रखते है और न सविनय अवज्ञामें। खुद कांग्रेसमें ही अहिंसाकी कार्य-साधक शक्तिके सम्बन्धमें लोगोकी अलग-अलग रायें है। ऐसे कांग्रेसियोंकी गिनती उँगलियोंपर की जा सकती है जो भारतकी प्रतिरक्षाके लिए भी अहिंसाके प्रयोगमें विश्वास रखते है। यद्यपि हमने अहिंसाकी दिशामें काफी प्रगति की है, फिर भी हम ऐसी अवस्थातक नही पहुँच पाये है जब अजेय होने की आशा रख सकें। कांग्रेसने महान् नैतिक प्रतिष्ठा अर्जित की है। इस समय कोई भी गलत कदम उठाने से वह अपनी प्रतिष्ठा गँवा सकती है। हमने यह बात काफी स्पष्ट रूपसे दिखा दी है कि साम्राज्यवादसे कांग्रेस कोई सरोकार रखने को तैयार नही है और वह आत्म-निर्णयके निर्बाध अधिकारसे कम किसी चीजसे सन्तुष्ट होनेवाली नहीं है।

यदि ब्रिटिश सरकार स्वत ही भारतको अपना दर्जा और अपना संविधान स्वयं तय करने के अधिकारसे युक्त स्वतन्त्र देश घोषित नही करती तो मेरी राय है कि जबतक मित्र-राष्ट्रो की भूमि पर चल रहा घमासान युद्ध शान्त और भविष्य अधिक स्पष्ट नही हो जाता तबतक हमे प्रतीक्षा करनी चाहिए। ब्रिटेनकी बर्बादीकी बुनियादपर हम अपनी आजादीका महल नही खड़ा करना चाहते। यह अहिंसाकी रीति नही है।

लेकिन अगर हममें सचमुच शक्ति है तो उसका परिचय देने के अनेक अवसर हमें प्राप्त होगे। चाहे कोई भी पक्ष विजयी हो, शान्ति तो एक-न-एक दिन स्थापित होगी ही। तब हम अपनी शक्तिका परिचय दे सकते है।

लेकिन क्या हममे शक्ति है? आधुनिक शस्त्रास्त्रोंके अभावमे क्या भारत निरुद्विग्न है? आक्रमणकारियोंसे अपनी रक्षा करने की सामर्थ्यके अभावमें क्या भारत लाचार नही महसूस कर रहा है? क्या स्वय कांग्रेसी भी निश्चिन्त है? अथवा क्या उन्हे ऐसा नही लगता कि कमसे-कम अभी कुछ वर्ष तो भारतको ब्रिटेन या किसी अन्य देशकी सहायता लेनी पड़ेगी? अगर हमारी दशा ऐसी दयनीय है तो फिर युद्धके बाद सम्मानजनक शान्तिकी स्थापना या विश्व-स्तरपर निरस्त्रीकरणमें कोई प्रभावकारी योगदान करने की आशा हम कैसे कर सकते है? पहले हमें अपने देशमे सबलकी अहिंसाकी शक्तिका परिचय देना चाहिए। उसके बाद ही हम पश्चिमकी जबरदस्त तौरपर शस्त्र-सज्जित शक्तियोंको प्रभावित करने की आशा कर सकते हैं।

लेकिन बहुत-से कांग्रेसी तो अहिंसासे खिलवाड़ कर रहे हैं। वे सविनय अवज्ञाका मतलब जैसे-तैसे जेलोंको भर देना समझते है। यह तो सविनय अवज्ञा-जैसी महान् शक्तिकी बचकाना व्याख्या है। लोगोंको भले ही सुनते-सुनते चिढ होने लगे, लेकिन मै तो इस बातको दुहराता ही रहूँगा कि जेल-यात्राके पीछे अगर ईमानदारीसे किये गये रचनात्मक प्रयत्नोंका बल नही है और हमारे हृदयोंमें अन्यायीके प्रति सद्भावना नही है तो जेल-यात्रा हिंसा है और इसलिए सत्याग्रहमें इसके लिए कोई स्थान नही है। अहिंसासे उत्पन्न शक्ति मनुष्यकी बुद्धि और कौशलसे आविष्कृत समस्त शस्त्रास्त्रोसे प्राप्त होनेवाली शक्तिसे लाख गुना महान् है। इसलिए अहिंसा सविनय अवज्ञाका निर्णायक तत्त्व है। जिस शक्तिकी छिपी हुई सम्भावनाओंकी शोध करने का विनम्र प्रयत्न मै प्रायः आधी सदीसे करता आ रहा हूँ, उसके साथ भारतके इतिहासकी इस सबसे नाजुक घड़ीमें मै खिलवाड नही कर सकता। सौभाग्यसे, अन्तमे मुझे स्वय अपना ही सहारा लेना है। मुझसे कहा गया है कि लोग कोई बात-की-बातमे अहिंसक नही हो जायेंगे। मैंने यह कभी नही कहा है कि ऐसा हो सकता है। लेकिन मै यह जरूर मानता रहा हूँ कि अगर उनमें अहिंसक बनने की इच्छा है तो उचित प्रशिक्षणसे वे अहिंसक बन सकते है। सविनय अवज्ञा करनेवालोके लिए सक्रिय अहिंसा आवश्यक है। लेकिन सविनय अवज्ञाके लिए चुने जानेवालोके साथ सहयोग करने के लिए तो इतना ही काफी है कि लोगोंमें अहिंसक बननेकी इच्छा हो और उन्हे उचित प्रशिक्षण दिया जाये। कांग्रेस द्वारा निर्धारित रचनात्मक कार्यक्रम सही प्रशिक्षण है। यदि ठीक तैयारी की जाये तो युद्धको सही रीतिसे समाप्त करने मे कांग्रेस शायद सबसे प्रभावकारी योगदान कर पायेगी। हालाँकि भारतका नि शस्त्रीकरण मूलत जबरदस्ती किया गया है, लेकिन अगर इसे राष्ट्र सद्गुणकी तरह स्वेच्छासे अपना ले और भारत यह घोषित कर दे कि वह अपनी रक्षा शस्त्र-बलसे नहीं करेगा तो उसका यूरोपकी परिस्थितिपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए जो लोग भारतको अपनी नियतिको अहिंसाके माध्यमसे प्राप्त करते देखना चाहते है, उन्हे सविनय अवज्ञाकी बात सोचे विना अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करने मे लगा देनी चाहिए।

सेवाग्राम, २८ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-६-१९४०

१३४. प्रश्नोत्तर

फुर्सतका सारा समय

प्र० : आपका कहना है कि सक्रिय सत्याग्रहीको अपना फुर्सतका सारा समय रचनात्मक कार्योंमें लगाना चाहिए। फुर्सतके समयसे आपका क्या तात्पर्य है?

उ० : ऐसा हर क्षण जो निजी कामोंके लिए जरूरी नहीं, फुर्सतका समय होगा। किसी व्यापारीके पास स्वभावत फुर्सतका समय नही होता, क्योकि उसका सारा समय पैसा बनाने में — जो अगर ईमानदारीसे बनाया जाये और ईमानदारीसे खर्च किया जाये तो अपने-आपमें कोई गलत चीज नही है — लग जाता है। वह सक्रिय सत्याग्रही तो नहीं हो सकता। सक्रिय सत्याग्रही निजी कार्यके लिए कमसे-कम समय देगा। जो बचता है वह उसका फुर्सतका समय है। उसके लिए समयका मूल्य पैसेसे अधिक होता है। इसलिए उसे अपने हर क्षणके सदुपयोगका हिसाब दे सकना चाहिए। इन मामलोका अन्तिम निर्णायक वह खुद होता है।

छुट्टियोंका उपयोग कैसे करें

प्र० : विद्यार्थी छुट्टियोमें क्या करें? वे छुट्टियोंमें पढ़ना नहीं चाहते और लगातार कातने से ऊब जायेंगे।

उ० : अगर वे कातने से ऊब जाते है तो इसका मतलब यह है कि वे चरखेके जीवनदायी गुण और उसमें विद्यमान सहज सम्मोहनको नही पहचान पाये है। यह बात समझने में क्या कठिनाई है कि उनके द्वारा काता गया एक-एक गज सूत राष्ट्रीय आयमें वृद्धि करता है? एक गज सूत अपने-आपमें ज्यादा नही है, लेकिन यह सबसे आसान शरीर-श्रम है और इसलिए आसानीसे बहुगुणित किया जा सकता है। इस तरह कताईका सम्भाव्य मूल्य बहुत ऊँचा है। विद्यार्थियोसे चरखेकी यन्त्र-रचना समझने और उसे अच्छी अवस्थामें रखने की अपेक्षा की जाती है। जो ऐसा करेंगे उन्हे कताईमें अनोखा सम्मोहन दिखाई देगा। इसलिए मैं कोई दूसरा काम बताना ही नहीं चाहता। बेशक ज्यादा जरूरी — मेरा मतलब है, प्राथमिकताकी दृष्टिसे ज्यादा जरूरी — काम आ पड़ने पर कताईको छोड़कर पहले उस कामको निबटाया जा सकता है। पड़ोसी गाँवोको स्वच्छ रखने में और बीमारोकी देखभालके लिए या हरिजन बच्चोको पढाने आदिके लिए उनकी सहायताकी आवश्यकता हो सकती है।

प्रामाणिक शंका

प्र० : हममें से कुछ लोग कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंके उस वर्गमें आते हैं जो निश्चित तौरपर यह नहीं मानते कि चरखा बिलकुल बेकार है और इसलिए आपके नेतृत्वके साथ-साथ चरखेका भी यथासम्भव जल्दीसे-जल्दी त्याग कर दिया जाना चाहिए। साथ ही हम आपके उन भाग्यवान अनुयायियोंके समूहमें भी नहीं हैं जिनका चरखेके राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक प्रयोजनमें अटल विश्वास है। कमसे-कम देश की वर्त्तमान परिस्थितिको देखते हुए, हम खादीमें विश्वास रखते हैं। लेकिन हम ईमानदारीके साथ यह नहीं कह सकते कि हम यज्ञार्थ कताईकी आवश्यकताको समझते हैं। हम शहरी लोग हैं और शहरोंमें रोजी-रोटी देने के साधनके रूपमें चरखेके लिए बहुत कम स्थान है। फिर भी, हम लोग सत्याग्रहियोंकी सूचीमें अपने नाम दर्ज करवाना चाहते हैं। हम वचन दे सकते हैं कि आपकी अपेक्षाके अनुसार हम पूरी ईमानदारीसे कातेंगे, लेकिन चरखेमें जो श्रद्धा आप चाहते हैं, वैसी श्रद्धा हम उसमें रखेंगे, यह वादा हम नहीं कर सकते। सम्भव है, जब हम चरखा चलाने लगें तब वह श्रद्धा हममें आ जाये। लेकिन अभी तो हमने जैसा कहा है, स्थिति वैसी ही है। क्या हम सत्याग्रहके प्रतिज्ञा-पत्रपर ईमानदारीसे हस्ताक्षर कर सकते हैं?

उ० . बेशक, आप अपने नाम दर्ज करवा सकते हैं। चरखा चलानेवाले सभी लोग उसके रोजी-रोटी देने के गुणके ही कारण चरखा नही चलाते। बहुत-से लोग दूसरोंके लिए एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करने और कताईका वातावरण तैयार करने की दृष्टिसे यज्ञार्थ चरखा चलाते हैं।

सभी सदस्योंकी परीक्षा

प्र० : मैं एक कांग्रेस समितिका मन्त्री हूँ। ऐसा लगता है कि प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले कुछ सदस्य उसपर अमल नहीं कर रहे हैं — विशेष रूपसे कताईके मामलेमें। क्या हम उनसे पूछ सकते हैं, वे कातते हैं या नहीं? और अगर हमें यह लगे कि उनका उत्तर टालनेवाला या झूठ है तो क्या मामलेकी जाँच करना हमारा कर्त्तव्य होगा? हममें से कुछका विचार है कि हमें उनकी बात पर भरोसा करके चलना चाहिए और उसकी बहुत छानबीन नहीं करनी चाहिए।

उ० . मन्त्रियोकी हैसियतसे ऐसे नियम बनाना आपका कर्त्तव्य है जिनसे न केवल सन्दिग्ध सदस्योकी हदतक, बल्कि सब सदस्योके सम्बन्धमें इस बातकी परीक्षा स्वत. हो जाये कि वे कातते है या नही। इसकी एक कसौटी तो यह हो सकती है कि सभी सदस्य अपना काता हुआ सूत किसी केन्द्रमे जमा करायें। प्रत्येक सदस्यसे आशा की जाती है कि वह प्रति-दिन कितना कातता है, इसका हिसाब रखे। लेकिन ऐसी जाँचसे बचना चाहिए जिसमे बहुत चखचख हो।

भरती बनाम रचनात्मक कार्य

प्र० : हम अपना समय सत्याग्रहियोंकी भरती लगायें या जो सत्याग्रही हमारे पास हैं उन्हीं के बूते रचनात्मक कार्यका संगठन करने में लगायें? इन दोनोंमें से आप किसे प्राथमिकता देंगे?

उ० : निश्चय ही जो लोग भरती हो चुके है उनके सहारे आपको रचनात्मक कार्यका सगठन करना चाहिए। इसके फलस्वरूप लोग अपने-आप भरती भी होने लगेंगे।

पुरुष और स्त्रियाँ

प्र० : मै जानना चाहता हूँ कि आप यह चाहेंगे कि पुरुष और स्त्री सत्याग्रही बिना किसी मर्यादाके आपसमें मिलकर एक साथ काम करें या यह कि उन्हें ऐसी अलग-अलग इकाइयोंमें संगठित किया जाये जिनके कार्य-क्षेत्र स्पष्ट रूपसे निर्धारित हों। मेरा अनुभव यह है कि मिलकर काम करने से अनुशासनहीनता और भ्रष्टाचारको बढ़ावा मिलेगा और मिला है। अगर आप मुझसे सहमत हों तो इस सम्भावित बुराईसे बचने के लिए आप कैसे नियम बनाने का सुझाव देना चाहेंगे?

उ० मै अलग-अलग इकाइयाँ बनाना चाहूँगा। महिलाओंके लिए तो स्वयं महिलाओंके बीच ही काफी काम है। हमारे यहाँ स्त्री-वर्ग घोर रूपसे उपेक्षित है और उनके बीच काम करनेके लिए खरी ईमानदारीवाली सैकड़ो बुद्धिमती स्त्री कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। सैद्धान्तिक तौरपर भी मैं पुरुषो और स्त्रियोंके एक-दूसरेसे अलग रहकर अपना-अपना काम करनेमे विश्वास रखता हूँ। लेकिन इसके लिए मै कठिन और कडे नियम बनाये जानेके पक्षमे नही हूँ। दोनोके बीचके सम्बन्धोका नियमन विवेकसे होना चाहिए। दोनोके बीच भेदकी कोई दीवार नही खडी की जानी चाहिए। आपसी व्यवहार सहज और स्वाभाविक होना चाहिए।

खादी और विज्ञापन

प्र० : कुछ स्थानोंमें चरखा संघ द्वारा खादीकी बिक्री बढ़ाने के लिए लाउडस्पीकरो, लोकप्रिय ग्रामोफोन रिकार्डो आदिका उपयोग किया जा रहा है। क्या आप इस तरहकी नीतिको ठीक मानते है? क्या आप यह नहीं मानते कि खादीकी बिक्रीके इन्तजामकी जानकारी देनें के सिवा किसी भी प्रकारकी विज्ञापनबाजी अशोभनीय और खादी-भावनासे असंगत है?

उ० . खादीको लोकप्रिय बनाने के लिए लाउडस्पीकरो आदिका उपयोग करने में मुझे कोई बुराई या अशोभनीयता नही दिखाई देती। इन साधनोका उपयोग करके भी खादीकी कीमत आदिकी जानकारी देनें के अतिरिक्त और कुछ नही किया जा रहा है। लाउडस्पीकरो और अन्य ऐसे ही उपकरणो द्वारा या उनके बिना झूठी जानकारी देना जरूर अशोभनीय, बल्कि उससे भी बदतर होगा।

जिजीविषा

प्र० : कहा गया है कि जिजीविषा बुद्धि-विरुद्ध वस्तु है, क्योंकि इसके मूलमें जीवनके प्रति भ्रामक आसक्ति है। तब फिर आत्महत्याको पाप क्यों माना गया है?

उ० : जिजीविषा बुद्धि-विरुद्ध वस्तु नहीं है। यह स्वाभाविक भी है। जीवनके प्रति आसक्ति भ्रम नहीं, वास्तविकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जीवनका अपना एक उद्देश्य है। उस उद्देश्यको निष्फल करने की कोशिश पाप है। इसलिए आत्महत्याको जो पाप माना गया है वह बिलकुल सही है।

सेवाग्राम, २८ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-६-१९४०

१३५. बीदर

हैदराबाद (दक्षिण)से पाँच सज्जनोंने मेरे पास एक प्रस्ताव भेजा है। प्रस्तावकी भूमिकाके रूपमे जो-कुछ लिखा गया है उसमे मुझपर तरह-तरहकी व्यंग्योक्तियाँ की गई हैं। उस भूमिकाको उद्धृत करके इन स्तम्भोको व्यर्थ बढ़ाने की जरूरत नही। जिन विशेषणोंका मेरे लिए प्रयोग किया गया है वे अगर मेरे योग्य हैं तो मै उन्हे प्रकाशित करूँ या न करूँ, वे अपनी जगह कायम तो रहेंगे ही। अगर उनका प्रयोग लिखनेवालों ने अज्ञानवश किया है — और मै जानता हूँ कि बात ऐसी ही है — तो फिर उनकी कोई चर्चा न करना ही योग्य है। प्रस्ताव निम्न-प्रकार है :

> **क्या गांधीजी यह स्वीकार करने को तैयार हैं कि जिस आर्यसमाजी आन्दोलनके कारण यह और इस तरहके अन्य उपद्रव हुए हैं उनकी पूरी तरह जाँच की जाये? जाँचका काम एक ऐसे आयोगको सौंपा जाये जिसका अध्यक्ष कोई पारसी या ईसाई हो और जिसमें हिन्दू और मुसलमान, दोनों समुदायोंके बराबर-बराबर सदस्य हों। अगर गांधीजी खुद ही पंच बनने को राजी हों तो हम उसके लिए भी तैयार है, क्योंकि हमें पूरा विश्वास है कि हमारे पास जो प्रमाण हैं वे हमारा पक्ष सिद्ध कर देंगे। शुरुआतके लिए सिर्फ इस बातकी जरूरत है कि ऐसा उपयुक्त वातावरण बन जाये जिससे जाँचका काम ठीकसे चल सके। इसलिए हमारा कहना यह है कि गांधीजी को बीदरके उपद्रवके सम्बन्धमें जितने भी मामले अदालतमें पेश हैं उन सबके वापस ले लिये जाने की माँग करने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। बेशक, हमारा कहना यह नहीं है कि गम्भीर किस्मके मामलोंके — जैसे हत्याके मामले — या जिन मामलोंका इस उपद्रवसे कोई सम्बन्ध नहीं है उनके भी वापस ले लिये जाने की माँग की जाये।**

गांधीजी की राय यह भी है कि नुकसान उठानेवाले लोगोंको मुआवजा दिया जाये।[1] इसके पीछे कौन-सा तर्क है, यह हमारी समझमें नहीं आता है। अगर साम्प्रदायिक झगड़ोंके लिए मुआवजे दिये जाने लगें तो सोचिए कि राज-कोषपर कितना बड़ा बोझ पड़ेगा? फिर क्या सरकारको आर्थिक दृष्टिसे तबाह करने के लिए दंगोंका उपयोग नहीं किया जाने लगेगा? यह दंगोंका इलाज है या उन्हें बढ़ावा देना? यह तो बिलकुल अनोखी माँग ही है। आशा है, गांधीजी हमारे प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे।

मैं इस प्रस्तावको बेझिझक स्वीकार करता हूँ। अगर मुझे लिखनेवाले सज्जनोंने निजाम साहबकी सरकारको भी यह प्रस्ताव स्वीकार करने पर राजी कर लिया तो वे एक ऐसी नजीर कायम करेंगे जिसकी नकल आगे इस तरहके सभी मामलोंमें की जा सकती है। कहने की जरूरत नहीं कि उन्होंने जिस न्यायाधिकरणका सुझाव दिया है, अगर उसकी नियुक्ति हुई तो उसमें कौन-से लोग रखे जाये और उसके विचारार्थ कौन-सी बातें सौंपी जायें, यह सब सम्बन्धित पक्षोंकी सहमतिसे तय करना होगा।

मुझसे यह कहा गया है कि जिन लोगोंका इस उपद्रवमें हाथ होने का शक है मैं उनके खिलाफ दायर किये गये मुकदमे वापस ले लिये जाने की माँग करूँ। ये मामले मेरे कहने पर तो दायर नहीं किये गये और मेरा खयाल है, मेरे कहने से वे वापस भी नहीं लिये जायेंगे। लेकिन अगर जाँच-अदालतकी नियुक्ति कर दी जाती है तो मुझे इस प्रकारके सभी मामलोंके वापस ले लिये जाने की माँगसे अपनी सहमति जाहिर करने मे कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं इन मित्रोंको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी रुचि दोषीको सजा दिलाने के बजाय सत्यके उजागर किये जाने में है।

लेकिन खेद है कि मैं अपना मुआवजा-सम्बन्धी सुझाव वापस नहीं ले सकता। मुआवजेकी माँग इसलिए की गई है कि ऐसा आरोप है कि अधिकारीगण अपना कर्त्तव्य पूरा करने मे विफल रहे। मुआवजेका सवाल भी स्वभावतः उस प्रस्तावित न्यायाधिकरणको ही सौंपना होगा। पत्र-लेखकोंने मुझे भरोसा दिलाया है कि अपना प्रस्ताव उन्होंने पूरी ईमानदारीके साथ रखा है। मैं उसमें सन्देह भी नहीं करता। राज्यको प्रस्ताव स्वीकार करने पर राजी करने के उनके प्रयत्नके परिणामोंकी मैं राह देखूँगा। मैं उनकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ।

सेवाग्राम, २८ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-६-१९४०

१. देखिए "बीदरमें विनाश-लीला", पृ० ३५-३६।

१३६. अस्पृश्यताका अभिशाप

विभाजनके पक्षमे दी जानेवाली दलीलोके सम्बन्धमे मैंने जो-कुछ लिखा उसका कई पत्र-लेखकोने विरोध किया है। उनका कहना है कि इस्लाम ऐकान्तिक धर्म नही है और उसमे सार्वभौमिक भ्रातृत्व और सहिष्णुताकी शिक्षा दी गई है। इस दावेको मैंने कभी अस्वीकार नही किया है। इस्लामके अपने ज्ञानके कारण ही मुझे वे दलीले देखकर दु ख हुआ जिनसे इस दावेके प्रतिकूल बात सिद्ध होती है। आजकल मैं मुसलमानोकी लिखी जो भी चीज पढ़ने को उठाता हूँ, उनमे से प्राय प्रत्येकमे हिन्दुओ और हिन्दू-धर्मकी निन्दा देखने को मिलती है। यदि विभाजनके पक्षका समर्थन करना है तो वे अन्यथा कुछ कर भी नही सकते। लेकिन जब मैं इस असगतिकी ओर ध्यान दिलाता हूँ तो मेरे पत्र-लेखक बन्धु मुझपर नाराज होते है। उनका कहना है कि महत्त्वहीन मुसलमानोके इक्के-दुक्के लेखोके आधारपर मैंने जल्दबाजीमे एक निष्कर्ष निकाल लिया है। किन्तु, दुर्भाग्यकी बात है कि जिन दलीलोंकी मैंने चर्चा की है वे दलीले महत्त्वपूर्ण मुसलमान भाइयो द्वारा दी गई हैं।

लेकिन पत्र-लेखक एक बातके सम्बन्धमे मुझे मात दे जाते है। वह बात है हिन्दुओकी अस्पृश्यता। उनके कहने का आशय निम्न प्रकार है .

> आपको मुस्लिम लीगपर अस्पृश्यताका आरोप लगाते हुए लज्जित होना चाहिए। पहले आप हिन्दुओकी आँखका टेटर तो दूर कीजिए, फिर मुसलमानो की आँखके मस्सेकी बात कीजिएगा। क्या हिन्दू हजारो सालसे मुसलमानोका पूरा बहिष्कार नही करते आये है? वे किसी मुसलमानके साथ खाने-पीनेको बिलकुल तैयार नही। वे उसके यहाँ विवाह-सम्बन्ध नही करेंगे—यहाँतक कि उन्हे अपना मकान भी किरायेपर नही देंगे। एक पूरी कौमके इससे अधिक व्यापक बहिष्कारकी कल्पना क्या आप कर सकते है? अब अगर मुसलमान आपकी ईंटका जवाब पत्थरसे देते है तो यह क्या सर्वथा उचित प्रतिशोध ही नही माना जायेगा?

मैंने यह सब स्वीकार किया है। मुसलमान प्रतिशोधकी भावनासे जो-कुछ करे, हिन्दू उसीके पात्र हैं। मेरा प्रश्न तो यह था और है कि क्या उन्हे ऐसा करना चाहिए? क्या किसी बड़े राजनीतिक दलके लिए यह शोभनीय है कि वह धार्मिक पूर्वग्रहोका ऐसा दुरुपयोग करे?

मुस्लिम लीग चाहे जो करे या न करे, लेकिन विचारशील हिन्दुओका यह कर्त्तव्य है कि वे इस सर्वथा योग्य व्यग्यकी ओर ध्यान दे और हिन्दू-धर्मको उसकी ऐकान्तिकतासे मुक्त करे। हिन्दू-धर्मकी रक्षा उसके चारो ओर ऐसी नकली दीवारे

खड़ी करने से नहीं होगी जिनका कोई आधार न तो प्राचीन हिन्दू-धर्ममें मिलता है और न बुद्धिके धरातलपर। अभी पिछले दिनों मौलाना अबुल कलाम आजादने कितना ठीक कहा था कि रेलवे स्टेशनोंपर 'हिन्दू चाय, मुसलमान चाय, हिन्दू पानी, मुसलमान पानी' की आवाजें सुनते-सुनते उनके कान पक गये हैं। मैं जानता हूँ कि आज हिन्दू-धर्मका जो व्यावहारिक रूप है उसमें छुई-मुईकी प्रवृत्तिकी जड़ बहुत गहरी जमी हुई है। लेकिन इसे कांग्रेसी भी सहन करें, इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता। अगर वे अपना व्यवहार ठीक कर लें तो इस तरह वे हिन्दू समाजके कायाकल्पके लिए मार्ग प्रशस्त करेंगे। अस्पृश्यता-निवारणके सन्देशका अर्थ केवल तथाकथित अस्पृश्योंका स्पर्श करना ही नहीं है। इसका इससे बहुत गहरा अर्थ है।

सेवाग्राम, २८ मई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-६-१९४०

१३७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२८ मई, १९४०

चि० अमृत,

अमतुस्सलामसे यह जानकर मैं सकते में आ गया कि संलग्न पत्र भेजना याद नहीं रहा। यानी चार दिन फिर तुम्हें मेरे पत्रके बिना रहना होगा। मुझे इस बातका खेद है। वह बीमार रहती है और बहुत चिड़चिड़ी हो गई है। अपनी हठ या मूर्खता या दोनोंका फल तो भोगना ही है।

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले — एक करीब-करीब पूरा हिन्दीमें। अच्छा है। मेरे लेखोंकी प्रतिलिपियाँ अब गुरुवारके पहले नहीं भेजी जा सकतीं। क्योंकि इसी दिन लेख सुरक्षित रूपसे भेजे जा सकते हैं। जबतक भेजे गये लेख अपने गन्तव्य स्थानतक नहीं पहुँच जाते, कार्यालय-प्रतियोंका यहाँ होना जरूरी रहता है। और अब तुम्हें कार्यालय-प्रतियाँ ही भेजी जा रही हैं।

तुम्हारे आजके पत्रमें एक अंग्रेजकी समस्या है। उसके बारेमें शायद अगले हफ्ते लिखूँ। लेकिन ऐसे लोगोंका अहंकार और अज्ञान आश्चर्यजनक होता है। वे सामान्य न्याय भी नहीं करना चाहते और फिर भी सहानुभूतिकी आशा रखते हैं। लेकिन जब क्षोभका कारण अधिकसे-अधिक हो तभी तो हमारी अहिंसाको अपना रंग दिखाने का अवसर मिलता है।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७०)से, सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ७२७९ से भी

१३८. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
२८ मई, १९४०

चि० मीरा,

मै नही समझता कि तुम्हारा ओएल-प्रवास व्यर्थ था।[1] तुम बहुमूल्य अनुभव प्राप्त कर रही हो और शरीर और मनसे ठीक हो। खर्चकी मै परवाह नही करता। जैसी अन्तःप्रेरणा हो, वैसा करो। अगर पण्डितजी को अपने पास आने के लिए राजी कर सको तो अच्छी बात होगी। पश्चिममे तो बड़ी भयकर बातें हो रही है। जैसी ईश्वरकी इच्छा।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५४)से, सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० १००४९ से भी

१३९. पुर्जा : मोहन परीखको

२८ मई, १९४०

तू मुझसे बुलवाकर[2] क्या करेगा? मुझे जो मालूम करना था, मैंने मालूम कर लिया। तुझे जो पूछना हो, वह पूछ ले। मेरा मौन मुझे शान्ति देता है। इससे मेरी साधनामें मदद मिलती है। यदि तुझे खुश करने के लिए मै अपना मौन तोड़ूँ, तो दूसरोंके लिए भी तोड़ना पड़ेगा। इसलिए तू समझसे काम ले और मुझसे बुलवाने का आग्रह छोड दे।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१८७)से

१. देखिए "पत्र: मीराबहनको", पृ० ८७-८८।

२. मोहन परीख एक लम्बे अर्सेके बाद गांधीजी से मिलने आये थे, इसलिए वे उनकी आवाज सुनना चाहते थे।

१४०. पत्र : पुरातन बुचको

२८ मई, १९४०

चि० पुरातन,

इसकी जाँच करना जरूरी है। जाँच करके मुझे लिखना। हाँ, भंगियोंके बारेमें भी एक टिप्पणी लिख भेजना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१७६)से

१४१. पत्र : भारतन् कुमारप्पाको

२९ मई, १९४०

प्रिय भारतन्;

हालाँकि मैंने इस पत्रके साथ सलग्न योजनाको[1] वर्त्तमान उथल-पुथलके कारण खारिज ही कर दिया है, फिर भी मैं इसपर विचार करना चाहूँगा। क्या इसमें सुझाये गये तरीकेसे काम किया जा सकता है? क्या कहीं इस तरहसे काम किया जाता है?

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

१. उड़ीसामें अ० भा० ग्रामोद्योग संघके कार्यसे सम्बन्धित

१४२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
२९ मई, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा और उसके साथ सलग्न श्री स्पॉल्डिंगका पत्र मिला। उसमे टॉमसन का पत्र नही था। मोटे तौरपर तुम्हारे उत्तरका अनुमोदन करते हुए मै स्पॉल्डिंग को पत्र[1] लिख रहा हूँ। इससे मेरा समय बचेगा।

तुम्हारा वह पत्र भी मिला जिसके साथ तुमने सर सिकन्दरको दिया गया अपना जवाब और मौलाना साहबको लिखा अपना पत्र भेजा है। तुम्हारे वक्तव्य अच्छे और सर्वांगपूर्ण हैं। मै जान-बूझकर कोई वक्तव्य नही देता। लेकिन जब जरूरी लगेगा, दूंगा।

आशा है, कश्मीरमे तुम्हारा समय मजेमे कट रहा होगा।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०। सौजन्य नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

१४३. पत्र : कैलाशनाथ काटजूको

२९ मई, १९४०

तुम जो-कुछ कहते हो; मै समझता हूँ। लेकिन घबराहट तो किसी भी हालतमें नही फैलने देनी चाहिए। तुम्हारा यह कहना बिलकुल ठीक है कि देश अहिंसाके लिए तैयार नही है। इसलिए करना यही है कि व्यक्तियो और समूहोंको अपने-अपने बल-बुद्धिके भरोसे छोड़ दिया जाये। बुरेसे-बुरा यही हो सकता है कि कांग्रेसके मंचसे हट जाने पर—और वह मंचसे बखूबी हट सकती है—कोई केन्द्रीय नेतृत्व नही रह जाये। वह कांग्रेसके लिए परीक्षाकी घड़ी होगी। मेरी अपनी स्थिति तो यह है कि मै अहिंसक ढगसे शान्तिकी रक्षा करने मे अपने प्राणोकी बलि चढ़ा दूंगा। हो सकता है, मै अपने निकट-परिवेशके अतिरिक्त और किसीको प्रभावित

१. स्पॉल्डिंगको लिखा यह पत्र प्राप्त नहीं हो सका।

न कर पाऊँ। मै भविष्यकी नही सोच रहा हूँ। मै तो वर्तमानको ही सँभालने की कोशिश कर रहा हूँ। तुमको भी मेरी सलाह यही होगी कि चिन्ता न करो और आसपासके लोगोको, उनसे जितना करते बने, उतना करने को तैयार करो। अगर अराजकता फैल जाये तो वर्तमान सरकारसे किसीकी रक्षा करने की आशा हमे नही रखनी चाहिए। लेकिन हमे अपने अन्दर यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि अगर हम इतने वर्षोसे ईमानदारीसे काम करते आये है तो हमारी मेहनत बेकार नही जायेगी और ईश्वर हमारा बेड़ा पार लगायेगा। मै तो अपने मनमे भारतकी कोई निराशा-जनक तसवीर नही खीचता। देशी रियासतोके प्रश्नपर मै तुम्हारे विचारोकी राह देखूंगा।

मुझे विश्वास है कि जयपुरमे तुम्हारी उपस्थितिसे जमनालालजी और उनके कार्यकर्त्ताओंके दलको बडी राहत मिली होगी।[1]

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

१४४. पत्र: आर्थर मुअरको[2]

२९ मई, १९४०

मै जानता हूँ, इधर मै आपको निराश करता रहा हूँ। इस पत्रसे निराशा और भी बढेगी। कारण, आपने वायु-सेनाके लिए जो एक करोड़ रुपया एकत्र करने का सुझाव रखा है, उसका मै अनुकूल उत्तर नही दे सकता। आप जानते ही है कि मै पूर्ण रूपसे अहिंसासे प्रतिबद्ध हूँ। मेरी जीवन-योजनामें ऐसी सेनाके लिए कोई स्थान नही है। इस दृष्टिसे मै शायद सारे भारतमे अकेला ही हूँ। लेकिन मुझे अपनी राह चलते रहना है। अलबत्ता, मै आपकी योजनाके सम्बन्धमें कुछ नही कहूँगा। इसलिए मै जवाहरलालको नही लिख रहा हूँ।

मुझे विश्वास है, आप मेरी बातोका बुरा नही मानेंगे।

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

१. देखिए "पत्र: जमनालाल बजाजको", पृ० ९७.
२. स्टेट्समेनके सम्पादक

१४५. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

सेवाग्राम, वर्धा
२९ मई, १९४०

चि० शान्तिकुमार,

मेरे आशीर्वाद तो सदा तुम्हारे साथ है। भगवान् तुम्हारा भला ही करेगा। जूनके महीनेमे आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७३२)से। सौजन्य : शान्तिकुमार एन० मोरारजी

१४६. पत्र : मीर मुश्ताक अहमदको

[२९ मई, १९४० के पश्चात्][1]

भाई मीर अहमद,

तुमने हो सके तबतक अंग्रेजीमें लिखना-बोलना छोडा है, वह अच्छी बात है।

तुमारे सवालका जवाब तो मैंने मेरी राय बता दी है उसमें आ गया है। मेरी रायमे जबतक कांग्रेस कानूनके बाहर है चोअनी लेना ठीक न माना जाय। कांग्रेस असेंबली अलग बात है। उसमें हरेक सुबा अपनी रायके मुताबीक चले।

प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य . प्यारेलाल

१. यह पत्र मीर मुश्ताक अहमदके २९ मई, १९४० के पत्रके जवाबमें था।

१४७. पत्र : कार्ल हीथको

सेवाग्राम, वर्धा
३० मई, १९४०

प्रिय मित्र,

आपका कृपा-पत्र मिल गया था। तबसे तो ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि मैं अवाक् रह गया हूँ। प्रभु हम सबकी रक्षा करे।

आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

आपका दूसरा पत्र भी अब मिल गया है। लेकिन मैं अब भी उसी मन:स्थितिमें हूँ।

मो० क० गां०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८)से

१४८. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
३० मई, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला।

क्या तू काफी दूध लेती है? तूने कौन-सा काम हाथमें लिया? आजकल यहाँ काफी भीड़ है। सरलादेवी चौधरानी आ गई हैं। ललिताकुमारी तो है ही। तुझे मालूम होगा वे रामगढ़में थीं। और भी लोग हैं, कृष्णाकुमारी कुछ दिनके लिए यहाँ आई हैं। राधा तो है ही। रा० कु० [राजकुमारी] शिमलामें ही है। यहाँ हवा अब कुछ ठंडी हो गई है। मेरी तबीयत अच्छी है। बा का स्वास्थ्य भी अच्छा ही कहना चाहिए। अ० स० [अमतुस्सलाम] थोड़ी बीमार है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४२)से

१४९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
३० मई, १९४०

भाई वल्लभभाई,

मुझे नही मालूम, सुरेशके[1] मिलने आने के बारेमे महादेवने तुम्हे लिखा है या नही। खुद सुरेशका झुकाव इस बीच हमारी तरफ ज्यादा बढा है। उसकी इच्छा सुभाषको भी खीचनेकी है, लेकिन वह सफल नही होगा। मैंने कह दिया है कि वह [सुभाप] जब मिलने आना चाहता हो, आ सकता है। मेरी स्थिति वह जानता है। उसके द्वारा व्यक्त किये गये विचारोसे साफ मालूम होता है कि वह आ नही सकेगा। वह [सुरेश] समझता है कि उसके विचार बदल गये है। मुझे इन तिलोमे तेल नही दिखाई देता।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृष्ठ २४०

१५०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेवाग्राम, वर्धा
३० मई, १९४०

भाई घनश्यामदास,

यह खत बालका है।[2] उसने इरादा किया था ऐसे ही भेजनेका। मैंने कहा अगर भेजना ही चाहता है तो मै ही भेज दूं। लेकिन मेरे भेजनेका कोई विशेष अर्थ न किया जाय।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०३७)से। सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. सुरेश बनर्जी
२. देखिए "पत्र : बाल कालेलकरको", पृ० ५६।

१५१. पत्र : गोरूर रामस्वामी अय्यंगारको

सेवाग्राम, वर्धा
३१ मई, १९४०

प्रिय मित्र,

आपके स्वीकृति देने में मुझे तो कोई आपत्ति नही दिखाई देती।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री गोरूर रामस्वामी अय्यगार
गोरूर, जिला हासन
मैसूर

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०१५९)से। सौजन्य गोरूर रामस्वामी अय्यगार

१५२. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

सेवाग्राम, वर्धा
३१ मई, १९४०

चि० व्रजकृष्ण,

हां, नरेलामें कैम्प खोलो। नायरजी को एक या दूसरे निमित्तसे वहा रखना अच्छा नही है। फिर तो जैसा उचित मानो ऐसे ही करो। लोगोमें डर-सा फैला है उसके वारेमें जो करना चाहिये सो करना ही है।

वापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४८०) से

१. गोरूर रामस्वामी अय्यंगारको मैसूर सरकारकी ओरसे जिला बोर्डका सदस्य मनोनीत किया गया था।

१५३. पत्र : शोभालाल गुप्तको

सेवाग्राम, वर्धा
३१ मई, १९४०

भाई शोभालाल,[1]

मेरा कुछ खयाल है कि कविताके[2] बारेमे मैंने दुर्गाप्रसादको लिखा था। आदमीको बहकानेवाली तो है। हा, यह बात सही है कि ऐसा तो सब लिखते है। जहा अमलदार दबाना चाहता है वहा ऐसे ही करेगा।

बापुके आशीर्वाद

गांधीजी और राजस्थान, पृष्ठ १६८

१५४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
३१ मई, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

महेमानोको अवश्य कह सकते हो कि ज्यादा दुध नहिं दिया जाता है। जिनको देते है उनको डाक्तरके कहने से।

भारतानंदके[3] साथ बात करो अप्पुके बारेमे और उनके बारेमें भी। . . .की[4] कर सकते हो। इतना निश्चय करना कि अप्पुके दिलपर क्या असर है। अप्पु अगर उनको पिता समजकर साथमें रहता है और काम करता है तो कुछ कहने का नही रहता।

सुरेन्द्रने इनकार किया उसमे कुछ तथ्य है और नहीं भी है। सरलादेवीका आदमी है वह कपडे उनके नही धोता है? उनसे पूछना। पारनेरकरजी को अब छोड़ दो। लडकिया तो काम करती है ना?

सब काममें अहिंसा होनी चाहिये। जिनसे बात करो प्रेमसे करो। मैं कर्त्तव्य बताऊंगा। उसके मुताबिक हल करना तुमारा काम है। कानून मुझको पूछो। कानून

१. साप्ताहिक नवज्योतिके सम्पादक

२. नटवरलाल चतुर्वेदीकी कविता। इस कविताके प्रकाशनपर भारत रक्षा अधिनियमके अन्तर्गत कार्रवाई की गई थी।

३. मॉरिस फ्रिडमैन, पोलैंडवासी इंजीनियर जो गांधीजी के अनुयायी बन गये थे।

४. साधन-सूत्रमें नाम छोड दिया गया है।

नये मेरेसे वनवा लो। वाकीमें से मुझको मुक्त करो। मेरी साधना भंग हो जायगी, अगर मैं व्यवस्थामें पड़ूगा।

यह सब कहकर भी व्यवस्थामें मी मुसीवत होगी। वहा तो मैं हूं ही। बच सकता हू वहांतक बचूगा। जिनको अधिक दूध मिलता है उनको डाक्तर सम्मतिसे ना?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४४) से

१५५. पत्र : सम्पूर्णानन्दको

सेवाग्राम
३१ मई, १९४०

भाई सपूर्णानंदजी,

आपका पत्र मिला। मुझे वड़ा डर है कि अगर अराजकता चली तो मैं शायद निकम्मा सिध्ध हूगा। क्योकि मेरी कोई मानेगे नही। जो मुझे पूछते हैं उनको मैं कहता हूँ कि हरेक अपने-अपने स्थानको सभाले—भले लाठीसे तो लाठीसे, अगर विश्वास है तो अहिसा से।

जो कुछ भी हो मैं निश्चित बैठा हूं। हम प्रयत्न करके तो कह सकते है—'अतमें तो परमेश्वर करेगा वही सही।'

ओफिस यो तो नही ले सकते है। अराजकता हुई तो ओफिस भी क्या काम देगी? तदपि कोई रास्ता मिला तो निकालुंगा।

गीमलेसे कुछ इशारा नही है।

आपका,
मो० क० गाधी

मूल पत्रसे. सम्पूर्णानन्द पेपर्स। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१५६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१ जून, १९४०

चि० अमृत,

इस सप्ताहके लेख और तुम्हारे तीन अनुवाद जाँचकर मैं बुक पोस्टसे भेज रहा हूँ।

लेख मेरी ही वजहसे देरसे जा रहे हैं। मुझे जल्दी नहीं थी।

जाँचे हुए अनुवादमें तुमको एक-दो बेढब किस्मकी गलतियाँ मिलेंगी। तुमने स्पष्ट प्रगति की है।

तुम अबतक लेखनीपर पूरा अधिकार नहीं कर पाई हो। तुमको पूरी लगन और निष्ठाके साथ अनुवाद करने चाहिए, हालाँकि अभी प्रकाशनके लिए उनकी जरूरत नहीं है।

'हरिजनसेवक' के चालू अंकोंमें आनेवाले अनुवाद भी तुम्हें पढ़ने चाहिए और मेरी जानकारीके लिए टिप्पणियाँ तैयार करनी चाहिए।

ललिताकुमारी ३० तारीखको चली गईं। असाधारण महिला हैं। मुझे खूब पसन्द आईं। उन्होंने बड़ी बहादुरीसे गरमी बरदाश्त की।

वे गईं और सरलादेवी चौधरानी आ गईं। मेरा खयाल है, वे यहाँ एक-दो दिन और रुकेंगी। कहाँ जायेंगी -- इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं।

यह युद्ध काफी बड़े-बड़े परिवर्तन लायेगा -- कमसे-कम मैं तो यही आशा करता हूँ। मैं तो इसके बारेमें बस सोचना ही नहीं चाहता। यह वैज्ञानिक क्षमताओं की टक्कर है। आज जर्मन विज्ञानका पलड़ा भारी है।

तुमने कनुको आर० के पत्रकी नकल भेजने के लिए कहा था। उसे पत्र मिला ही नहीं। लेकिन मैं पत्रकी नकल नहीं भेजना चाहता। पत्र आश्रमसे बाहर नहीं जाना चाहिए। यही ठीक है, पत्रमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। कारण तुम्हारी समझमें आ गया न? लौटकर आने पर तुम्हें सब-कुछ देखने को मिल जायेगा।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७१) से; सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ७२८० से भी

१५७. पत्र : जमनालाल बजाजको

१ जून, १९४०

चि० जमनालाल,

तुमारा खत मिला। काटजूजी ने मुझे लिखा था। जयपुरका तो अच्छा हो गया माना जाय। हमारे कोई कार्यकर्ता जलदबाजी न करे। भाषण देना ही पडे तो खादी इ० पर दे। आर्थिक व सामाजिक सुधारके लिये काफी अवकाश है।

तुमारी तबीयत बिल्कुल अच्छी मानी जाय? जानकीदेवी कैसे है? क्या डा० पुरुषोत्तम पटेलका देहात हुआ? उनकी पत्नीका नाम क्या है? अब सुना हुआ है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च]

डॉ० पटेलकी पत्नीका पत्र संलग्न है।[1]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०१२)से

१५८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१ जून, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

भारतानंदको मैं लिखुगा। देखे क्या होता है। उनका लिखना बिलकुल निकम्मा है। हा, उनसे मैंने यह कहा है सही कि ११ नियम उनको लागु नही होता है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

अपुको सोचना होगा।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४५)से

१. यह वाक्य गुजरातीमें है। पत्र उपलब्ध नहीं है।

१५९. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम
२ जून, १९४०

प्रिय मलकानी,

तेजूरामजी कुछ समयतक हमारे पास रहे हैं। मैंने पाया कि वे एक श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता हैं? सरल तथा शान्तचित्त हैं। उनकी आकांक्षा थी कि एक आश्रम स्थापित करें। मैंने कहा कि वैसा न करके वे किसी सस्थासे सम्बद्ध हो जायें और उसके अधीन काम करें। ये पंक्तियाँ तुमको इसीलिए लिखी हैं। यदि वे तुम्हारे किसी काम आ सकते हो तो उन्हे शामिल कर लो। वे ईमानदार तथा मेहनती आदमी हैं।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

इन्होंने धुनाई काफी अच्छी सीख ली है।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५)से

१६०. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम
२ जून, १९४०

प्रिय मलकानी,

पत्रवाहक सज्जनके लिए मैंने पहले जो पुर्जा[1] लिखा था, वह भूलसे डाकमें डाल दिया गया। इसलिए अब तेजूरामजी को यह दूसरा पत्र दिया जा रहा है। ये एक अच्छे तथा मेहनती कार्यकर्त्ता हैं। इनकी आकांक्षा थी कि एक आश्रम स्थापित करें। मैंने इनको किसी सस्थामे शामिल हो जाने की सलाह दी है। यदि तुम इन्हे किसी काममें लगा सकते हो, तो ये काफी उपयोगी कार्यकर्त्ता सिद्ध होंगे।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४)से

१. देखिए पिछला शीर्षक।

१६१. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

२ जून, १९४०

भा[रतानन्द]से मेरी बात हुई। अपुको हमारे साथ ले लो। सब काम करे। हिंदी सीख लेवे। भा[रतानन्द] कोई मदद चाहिये सो दे दो — उनके कपडे वि०का।

आज जो नये भाई[1] आये हैं वह बहूत नम्र और महेनती है। उनको जगह दे दो। अपना लो। नियम बता दो। सब काममें लेना।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४६)से

१६२. पुर्जा : अमतुस्सलामको

[२ जून, १९४०][2]

आज जो चोरी हुई उस बारेमें तू ही जो लड़कियां बा के कमरेमें जाती हैं उनको बता देगी। जिसने किया है, बुरा किया है। छुपाने से और भी बुराई आ जायेगी। अगर सब चीज मेरे पास कबूल नहीं करेगी, तो मुझे उपवास करना होगा। सबको, जो जानेवाली हैं, उनको शांतिसे इतना बता देना।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०८)से

१६३. असममें मिशनरी शिक्षा[3]

श्री ठक्कर बापा लिखते हैं[4]

मैंने ९ मार्च और १८ मईके 'हरिजन' में सेंग खासी स्कूल, शिलांग, के मन्त्रीकी शिकायतपर आपकी टिप्पणियाँ[5] देखी हैं। मन्त्री बड़े उत्साहके साथ और बिना सरकारी अनुदानके स्कूलको चलाते रहे हैं। असममें ईसाई मिशन सरकारी अनुदानोंके बलपर वहाँकी पहाड़ी जन-जातियोंको ईसाई

१. चन्देल, जो कृष्णचन्द्रकी बहनके साथ काम करते थे

२. २ जूनको हुई चोरीके उल्लेखसे। देखिए "सेगाँवके कार्यकर्त्ताओंसे", पृ० १४२-४३।

३. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

४. यहाँ केवल कुछ अंश दिये जा रहे हैं।

५ देखिए "पक्षपात", पृ० ७४, तथा खण्ड ७१, पृ० २५३-५४ भी।

बनाने के एकमात्र उद्देश्यसे ही काम करते रहे हैं। यह बात असम सरकारकी १९३२-३७ की शिक्षा-सम्बन्धी पंचवर्षीय रिपोर्टसे, जिसे कि लोक-शिक्षा निदेशक श्री जी० ए० स्मॉलने पेश किया था, स्पष्ट हो जाती है। अप्रैल, १९३८ में रिपोर्टकी अपनी समीक्षामें ६३ वें पृष्ठपर उन्होंने कहा था: "इस समय आम नीति यह है कि सरकार, जितनी जल्दी हो सके, शिक्षाकी जिम्मेवारी मिशनोंसे अपने ऊपर ले ले। शिक्षाके क्षेत्रमें मिशनोंने अग्रणीके रूपमें जो काम किया, उसके लिए जहाँ एक ओर उनके प्रति आभार प्रकट करना जरूरी है, वहाँ दूसरी ओर यह समझ लेना भी जरूरी है कि मिशनोंने बच्चोंको ईसाई बनाने के उद्देश्यसे ही शिक्षा-कार्यमें रुचि ली है।... पहलेकी सरकारें पहाड़ी इलाकोंकी सचमुच उपेक्षा करती रही हैं, और इस विषयमें अपनी जिम्मेवारीको उसने अभी हालमें ही महसूस किया है।... लुशाई पहाड़ियोंमें क्या नीति अपनाई जाये, यह प्रश्न अभी विचाराधीन है। मिकिर पहाड़ियोंमें सरकारी स्कूल खोले जा रहे हैं और असमिया लिपिमें मिकिर पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित करवाने का प्रबन्ध किया जा रहा है।

इससे उसी बातकी पुष्टि होती है जो मैं इन स्तम्भोमे पहले ही लिख चुका हूँ। अब यही आशा की जा सकती है कि आगेसे सब व्यवस्था ठीक हो जायेगी।

सेवाग्राम, ३ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-६-१९४०

१६४. सेगाँवके कार्यकर्त्ताओंसे

३ जून, १९४०

आज सबको बुलाकर बोलने की कोशीश की। लेकिन मनने टाला —— लिखकर हो सके तो काम कर लु। राधाबहिनके[1] कुछ कागजात और पेनकी परसु रातको या कल सवेरे चोरी हुई। इसकी मुझको सख्त चोट लगी। यो तो पेन और कागज की चोरी हो सकती है। लेकिन उस चोरीमे कुछ विशेषता रही है। कैसे भी हो, इस चोरीसे मैंने यह नतीजा निकाला है कि मैं निकम्मा मनुष्य हू। मेरी ही हाजरीमें इस तरह कि बिना[2] बने इसका अर्थ यह है कि मेरा व्रतपालन बहूत ही कच्चा होना चाहिये। व्रतपालनका सच्चा आधार शुद्ध दिल है। कहा है कि अहिंसाके सामने हिंसा शात होनी है, सत्यके सामने असत्य, अस्तेयके सामने स्तेय (चोरी) इ०। मेरे सामने झूठ चल सकता है, हिंसा हो सकती है, चोरी हो सकती है तो

१. मगनलाल गाधीकी पुत्री

२. घटना

मेरी किम्मत क्या? मैं किस तरह लड़ाई लडु? यह सब प्रश्न खडे होने हैं। लेकिन छोडना भी कायरपण होगा। तब क्या किया जाय? उत्तरमे मुझे यह मिलता है कि यदि यह चोरीका पता न चले तो मुझे उपवास करना चाहिये। चोरी बा के कमरेमें हुई है। पेन हाथ आई है। इस्पीतालकी फाटकके नजदीक कल करीब १० बजे बुधुके हाथमे आई। बादमें कागजके टुकड़े भी मिले। मेरा शक है यह काम किसी नौकरका नही है। बा के कमरेमे आने-जानेवालो मे से किसीने किया है। ऐसे तो थोडे ही है तो मैं आश्रमके सबके प्रति यह क्यो लिखता हु? सबब यह है कि आप लोग एक-दूसरोको अच्छी तरह पहचानते है इसलिये चोरीकी जाच-पडताल करने में मदद हो सके तो करे। मुझे उपवास लेना पडे तब तो सब जानेंगे ही। अच्छा है कि तब मुझे कुछ कहना न पडे। अगर लेना ही पडा तो इसे सब समझोगे और शात रहोगे। मेरा विश्वास है कि अगर चोरी प्रगट न हुई तो मुझे उपवास करना ही चाहिये। इसमे किसीको न साथ देना है, न दखल। मैं जिसे धर्म समझु मुझे पालन करना ही है। कितने उपवास होंगे, मैं नहिं जानता। यदि शुक्रवार तक पता नहिं चले तो शनिश्चरसे उपवास शरु होंगे। मेरी आशा है कि जिससे यह दोष हुआ है वह निखालसता [ईमानदारी]से स्वीकार कर मुझको शाति देंगे और इस आपत्ति-कालमें उपवाससे मुझे मुक्त रखेंगे। दोष सब करते है लेकिन उसका स्वीकार करना उस दोषका सच्चा धुअन [परिमार्जन] है। चोरी मैंने तो की थी। उसका स्वीकार करके मैं हमेशाके लिये चोरीसे शुद्ध रहा। बा ने भी की थी। औरोका क्या लिखु? मुझे पता नहिं है। हम दोनोका नमुना सबके लिये दोष धोने में मदद-रुप बनना चाहिये।

बापु

[पुनश्च :]

जो आश्रममें स्थिर रहते है उनको पढाना काफी होगा। एक बार बुलाकर अब या कल पढाया जाय। जो हाजर न रहे वह इस नोध पढ ले।

निवेदनकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६६) से। सी० डब्ल्यू० ४६७४ मे भी

१६५. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्][1]

तू इतना कबूल करती है कि किया है हममें से किसीने। तो पीछे मेहनत करके ढूढ। मेरी ताकतमें हो तो मै अभी ढूढ लू।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३२) से

१६६. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

तू कुछ बता सकती है? पेन कौन ले सकता है? साथमे कागद भी थे।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३०) से

१६७. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

इस तरह मेरा समय क्या लेना? तु जाय पीछे मैं क्या करु उससे तुझे क्या वास्ता? उसके साथ अगर कुछ तालुक है तो मत जाओ। अब तो मेरी नजरमे नही आता है। इतना कबूल करती है कि नही कि ये काम नोकरोका नही है। तूने कबूल कि, वह गुन्हा नही है वह सच्ची बात है। मैं तो तेरे तरफसे इतना समझा कि नोकरोने नहि किया। दूसरे भी तो यह बात वहा खतम हुई। मेरा तो निश्चय है कि यह काम नोकरोंका नही। मैं तो मेरी और तेरी बात करता हू। जब मैं मानु कि नोकरोंने नही कि। जिंदगी-भरमें कभी झूट बोली है या किया है? अरे, मैंने तो सेकडो मुसलमानोको कुरानशरीफ उठाते और उन्होने झूठ लेकिन ऐसे ही गीता उठानेवाले पडे है, और अगर कोई काजीने कहा तूने चोर की है तू कबूल करेगी? तो पीछे जजकी बात खामखा क्यों उठाती है? तेरी दलील तो रास्तेमें सुनी। तो जबान मत रोक और जो सुनाना चाहती है सुना। मैंने तो एक

१. चोरीके स्पष्ट उल्लेखसे; देखिए पिछला शीर्षक। आगेके पुर्जोंकी तिथि भी इसी आधारपर तय की गई है।

छोटी बात की है। नोकरोने नही किया है और बाकी रहती है बा, झोहरा, आभा, लीलावती, तू। तेरा सबुत मेरा शक। इतना[1]

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०६) से

१६८. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

कलकी बात तूने उडा दी। मै तो कहता हू कि तुझे इसकी जड ढूढना है। मेरा विश्वास है कि नौकरोका यह काम नही है। मेरेपर असर ऐसा हुआ है कि मैं बेचैन हू। एक-दो दिनमें बात खुलेगी नही, तो सिवाय उपवासके मेरे पास शान्तिका इलाज नही है।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०७) से

१६९. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

मेरी अक्ल ही काम नही करती। सबपर शक आता है और किसीपर नहीं। खुद बा ने किया है तो?

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६९२) से

१७०. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

ऐसा नही है। उपवास तो तब नही हो सकता जब मेरा शक दूर हो जाय या शक सही साबित। मेरा खुदाके साथ झगडा तो यह है कि ऐसा क्यो होने देता है? मेरे मनमें शक क्यो आने देता है?

परवाह न करने का तो यो है। अगर तूने नही किया है तो क्या होता है, क्या-क्या नही, उसकी परवाह क्यो करे? हा, इस चोरीका पता लगानेमें मदद दे सकती है। तूने ही कबूल किया है कि नौकरोका यह काम नही है।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५०) से

१. साधन-सूत्रमें अधूरा है

१७१. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

मै तो चाहता हू कि तू काम किया कर। खुश रह और मजेसे खा। तू जानती है कि शकके मारे बा से मैंने इतना भारी झगडा किया था कि एक वर्ष तक मेरेसे दूर रही। और क्या-क्या किया, मै क्या बताऊ? लेकिन बा ने बहादुरी बताई। आखिरमे चार या ज्यादा बरसोके बाद मेरा शक दूर हुआ। यह चोरीकी बात नही थी। उससे भी बुरी। तू मुझे जानती नही है। इतनी बात कहासे दे सकता था? इसके पीछे शेख महेताब था। शेख महेताबने मुझको अपने कब्जेमे करीब १० बरस या उससे अधिक रखा। उसके कहने पर मैंने बा की चालपर शक किया। उसकी बगडिया फोडी, मेरे पाससे हटाया, उसके मा-बापके यहा भेज दी। मै इग्लैंडसे वापिस आया तब झगडा शान्त हुआ। वही शेख महेताबकी बुराइया बरसोके बाद मेरे जाणमे आई। उसने काफी धमकिया दी। आखरमे शान्त हुआ। दूरसे मुझको पूजता रहा। यह किस्सा लम्बा है, रसिक है, करुण भी है।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६४१ ए तथा ६४८) से

१७२. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

चिमनलाल भाईको कहो कि तेरे और मेरे खत सबको बता सकते है। वह तो तू चाहती है ना? मै तो नही चाहता हू। मुझे क्या दरकार, मेरा वास्ता तेरे साथ। मेरा शक बताने से क्या फायदा? लेकिन मै तुझको थोडे ही रोक सकता हू? न रोकना चाहता हू। किसने बताया तो लो खतम हुआ। तो तू कैसे कहती है उनको किसने बताया? तो यह खत तूने चिमनलालभाईको बताया, तेरा फर्ज हो चुका, हुआ। क्योकि वह मेनेजर है।

अरे तुने पुछा उसपर से लिखा।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२१) से

१७३. एक पुर्जा

[३ जून, १९४० के पश्चात्]

तूने कापी रख दी है। अब इसमे मेरा समय नही लेना चाहीये। जितना तू जाहर करना चाहती है वह कर। क्यो वापस लू? मै तो नही चाहता कि इसकी ज्यादा चर्चा होवे लेकिन निजी सतोषके लिये सबको बताना चाहती है तो बता।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२२) से

१७४. टिप्पणियाँ

सिरोहीमें शान्ति

कुछ दिन पहले मुझे दु खपूर्वक सिरोहीकी घटनाओपर टीका करनी पडी थी।[1] इसलिए यह लिखते हुए मुझे खुशी होती है कि अब रियासत और प्रजाके बीच सुलह हो गई है। रियासत और सत्याग्रहियो, दोनोको समान रूपसे इसका श्रेय दिया जा सकता है। आचार्य गोकुलभाईने, जिनकी सत्याग्रहके सिद्धान्तोमें दृढ आस्था हे, वडी सुयोग्य रीतिसे सत्याग्रहियोका नेतृत्व किया। मुझे आशा है कि दोनोके वीचका सम्बन्ध दिन-दिन अधिकाधिक प्रेमपूर्ण होता जायेगा और रियासत तथा प्रजाके बीच कभी झगडेका कोई कारण उपस्थित नही होगा।

अस्पृश्यता

जिला लोकल बोर्ड, शोलापुरके अध्यक्ष श्री टी० एस० जाधव लिखते है [2]

> हरिजनोको — विशेषकर उनकी पानी, शिक्षा इत्यादिकी तात्कालिक आवश्यकताओकी पूर्तिके सम्बन्धमें — सुविधाएँ देनेका मैं निरन्तर प्रयत्न करता रहा हूँ। कांग्रेसी बोर्डने हरिजनोके लिए खासी अच्छी तादादमें कुएँ खोले हैं और इन कुओंपर इस आशयके नोटिस लगवा देनेका भी इन्तजाम किया है। लेकिन दुःखकी बात है कि सवर्णों द्वारा तंग किये जानेके डरसे हरिजन भाई इस सुविधाका लाभ नहीं उठा रहे हैं। जिलेमें दौरा करते वक्त मैं सवर्णोंसे अनुरोध करता रहा हूँ कि वे . . . हरिजनोको अपने इस उचित

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० १९८-९९।

२. यहाँ पत्रके केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

अधिकारका उपयोग करने दें।... गाँवमें सार्वजनिक सभाके बाद मैं खुद कुछ हरिजनों, 'सवर्ण' कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं और चन्द प्रमुख ग्रामवासियोंको लेकर सार्वजनिक कुएँपर जाता हूँ, एक हरिजन भाई पानी निकालता है और हम सब पानी पीते हैं। पर पता लगा है कि जो 'सवर्ण' हिन्दू इसमें शामिल नहीं होते वे इसमें शरीक होनेवाले 'सवर्णों' का अक्सर बहिष्कार करते हैं और हरिजनोंके लिए तरह-तरहकी मुसीबतें खड़ी करते हैं।... क्या आप इस विषयमें कुछ और सुझा सकते हैं?

निश्चय ही यह अच्छा काम है। अस्पृश्यता-निवारण दोहरे शिक्षणका —'सवर्णों' और तथाकथित 'अस्पृश्यों' दोनोंके शिक्षणका —काम है। धीरजके साथ समझाकर और आचरण द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करके 'सवर्णों' को सिखाना है कि अस्पृश्यता ईश्वर और मानवताके खिलाफ एक पाप है और 'अस्पृश्यों' को सिखाना है कि वे 'सवर्णों' के भयका त्याग कर दें और अपने बीचकी अस्पृश्यताको मिटा दें। मैं जानता हूँ कि कहने मे यह बड़ा आसान है। लेकिन इसके अलावा दूसरा कोई उपाय मुझे नही सूझ रहा है। दोनोंके बीच रहते हुए मैं जान सका हूँ कि दोनोंके बीच काम करना कितना मुश्किल है। पर अगर हिन्दू धर्मको जीवित रखना है, तो यह काम चाहे कितना ही कठिन और असाध्य प्रतीत हो, इसे करना ही पड़ेगा।

हाथका बना कागज

श्री जाधव आगे और लिखते हैं

दूसरे, जबसे हमारे लोकल बोर्डमें कांग्रेस दल पदारूढ़ हुआ है, तभीसे मैं कार्यालयके लिए हाथके बने कागजका उपयोग करता रहा हूँ। मिलके बने या विदेशी कागजका उपयोग कतई बन्द कर दिया गया है और जहाँतक मुझे पता है, महाराष्ट्रमें एक हमारा ही बोर्ड ऐसा है जो अपने कार्यालयके कामोंमें और सब तरहके कागजका पूरा बहिष्कार करके सिर्फ हाथके बने कागजका ही इस्तेमाल करता रहा है। मैंने महाराष्ट्रके अन्य बोर्डोंके अध्यक्षों के पास एक गश्ती चिट्ठी भेजकर अनुरोध किया था कि वे भी हमारे बोर्डके इस कामका अनुकरण करें और मुझे खुशी है कि उनमें से कुछ ऐसा करने को राजी हो गये हैं। लेकिन मैं समझता हूँ, ज्यादा अच्छा यह होगा कि आप खुद देशके कांग्रेसी बोर्डोंके अध्यक्षोंसे कार्यालयके कामोंमें हाथके कागजका उपयोग करने का अनुरोध करें। 'हरिजन' के माध्यमसे यह काम अच्छी तरह किया जा सकता है और मुझे भरोसा है कि जहाँतक लिखने के कागजका सम्बन्ध है, इससे आपके ग्रामोद्योगोंके पुनरुद्धारके स्वप्नके साकार होने में बहुत मदद मिलेगी।

मै खुशीके साथ इस बातका समर्थन करता हूँ। सच तो यह है कि इन पृष्ठोमें अनेक बार मै खुद यही बाते कह चुका हूँ। न सिर्फ हाथके बने कागजके मामलेमे, बल्कि गाँवकी बनी सभी चीजोंके मामलेमें तमाम लोकल बोर्डोको श्री जाधवके उदाहरणका अनुकरण करना चाहिए। जरा-सी सावधानी बरतकर बोर्ड अपने बजटके अन्दर ही ये काम कर सकते हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि जहाँतक मुमकिन हो, बोर्डोको अपने क्षेत्रके गाँवोमें ही ये चीजें बनवानी चाहिए। अगर इस मुख्य तथ्यको ध्यानमें नही रखा गया तो ग्रामोद्धार आन्दोलनका प्रयोजन ही विफल हो जायेगा। विकेन्द्रीकरण ही इस आन्दोलनकी खूबी है और वही इसकी सफलता की कुजी भी है।

रेड क्रॉस कोष

इसी पत्रमे यह भी लिखा है

> **अब रेड क्रॉस कोषके बारेमें। लाटरीके टिकटोंकी बिक्रीके जरिये इस कोषके लिए बहुत बडे पैमानेपर पैसा इकट्ठा करने की कोशिश की जा रही है। ग्रामवासियोको उनकी इच्छाके विरुद्ध और उनकी असमर्थताके बावजूद ये टिकट बेचे जाते हैं। यह सब उनपर बेजा प्रभाव डालकर इस तरह किया जा रहा है कि इन बातोंका कोई प्रमाण पीछे न छूट जाये। कुछ स्थानोंमें तो पाटिल-कुलकर्णी लोग तबतक जमीनका लगान स्वीकार नहीं करते जबतक कि किसान इन टिकटोको खरीद नहीं लेता। हालमें जिलेका दौरा करते समय मुझे इस तरहकी अनेक लिखित शिकायतें प्राप्त हुई हैं। मै इन शिकायतोको सही सरकारी अधिकारियोंके पास भेज रहा हूँ।**

इस विषयपर भी मैं पहले लिख चुका हूँ। मैंने बता दिया है कि ऐसे मामलोमे किसी तरहकी जबरदस्ती नही होनी चाहिए। जरूरतसे ज्यादा उत्साही अधिकारी लगभग जबरदस्तीकी श्रेणीमें आनेवाले अनुचित उपायोका भी अवलम्ब ले सकते हैं। ऐसे कोषोमे चन्दा देने की कोई कानूनी जिम्मेदारी नही है। जिनकी इच्छा नही है, वे निश्चय ही चन्दा नही देगे। गैर-कानूनी ढगसे चन्दे वसूल करने के ये प्रयत्न अकसर दुःखदायी होते है, और जहाँ भी पता चले अधिकारियोको चाहिए कि उन्हें बन्द करा दे।

कोमिल्ला नगरपालिका और हरिजन

कोमिल्ला नगरपालिकाने हरिजनोंके लिए क्या किया और क्या करने की सोच रही है, इसका श्री ठक्कर बापाने निम्नलिखित दिलचस्प विवरण भेजा है

> **१. एक वर्षमें पूरे वेतनके साथ १५ दिनकी छुट्टियाँ और मेहतरानियोंको प्रसूति-कालमें अवकाश।**
>
> **२. उनकी बस्तीमें एक निःशुल्क प्राथमिक शाला।**

३. (क) नागा मेहतरोंके लिए नालीदार लोहेकी चादरोंकी १,५०० रुपयेकी कीमतकी झोंपड़ियाँ, और (ख) अन्य मेहतरोंके लिए ३,००० रुपयेकी लागतकी ऐसी ही झोंपड़ियाँ। पूर्वी बंगाल और सूरमा घाटीके कुछ नागाओंने झाड़ू लगानेका काम अपना लिया है।

४. मेहतरोंको उनके सारे कर्जसे, जो लगभग ३,००० का था और जिसपर वे महीनेमें तीन आने रुपया अथवा २२५ प्रतिशत ब्याज दे रहे थे, छुटकारा दिला दिया गया है।

कमिश्नरोंका उनके लिए निम्न व्यवस्था और कर देनेका विचार है:

१. एक सहकारी दुकान चालू करनेकी व्यवस्था, जिसका प्रस्ताव सहकारी समितियोंके रजिस्ट्रारको पंजीकरणके लिए भेज दिया गया है।

२. मेहतरोंकी शराब पीनेकी आदत छुड़ानी है, जो — जैसा कि विदित है — एक कठिन कार्य है।

३. मेहतरोंकी बस्तीके पीछे गन्दे नालेको पक्का बनवानेकी जरूरत है।

४. मेहतरोंके घरोंमें रसोईघर बनवाने हैं, क्योंकि अभी वे एक ही कमरेमें सोते और खाना बनाते हैं।

इसे पढ़कर इस दिशामें अहमदाबाद नगरपालिका द्वारा किये गये कार्यकी याद आ जाती है। उसने सम्भवतः अधिक सम्यक् रीतिसे काम किया है। लेकिन उससे कोमिल्ला नगरपालिका द्वारा किये गये कार्यका महत्त्व कुछ कम नहीं हो जाता। वह हार्दिक बधाईकी पात्र है। आशा है, सम्भाव्य सुधार ठीक समयपर सम्पन्न कर दिये जायेंगे।

सेवाग्राम, ४ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-६-१९४०

१७५. हिन्दू-मुसलमान

दिल्लीसे एक खानबहादुर लिखते हैं

यह पत्र 'हरिजन'में प्रश्नोत्तर स्तम्भके लिए है।

६ अप्रैलके 'हरिजन' के अपने लेखमें[1] आपने लिखा है:

"यदि मैं भारतके मुसलमानोंको उनके बीच आज जिस झूठका प्रचार किया जा रहा है, उसके खिलाफ सावधान न करूँ तो मैं अपने कर्त्तव्यसे च्युत होऊँगा। यह चेतावनी देना मेरा कर्त्तव्य इसलिए है कि उनकी मुसीबतकी घड़ीमें मैंने निष्ठापूर्वक उनकी सेवा की है और इसलिए भी कि हिन्दू-मुस्लिम एकता मेरे जीवनका लक्ष्य रहा है और है।"

मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर हमारे दृष्टिकोणसे विचार करें। साम्प्रदायिक सवालके निबटारेके लिए होनेवाली वार्त्ताओंमें मुख्य बाधा यही रही है कि कांग्रेस अखिल भारतीय मुस्लिम लीग को हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी अधिकृत और एकमात्र प्रातिनिधिक संस्था मानने को तैयार नहीं है। कांग्रेसका दावा है कि वह सारे हिन्दुस्तानके लिए बोलती है और उसके अन्दर मुसलमान काफी तादादमें हैं। लेकिन कांग्रेसने जनाब जिन्नासे समझौता करने की कई बार कोशिश की, इसी बातसे जाहिर होता है कि जहाँतक मुसलमानोंका सम्बन्ध है, उसे अपने प्रातिनिधिक रूप पर पूरा भरोसा नहीं है। पर क्या आप ईमानदारीके साथ यह नहीं महसूस करते कि कांग्रेसी मुसलमान ही हिन्दू-मुस्लिम एकताके रास्तेमें असली रोड़े हैं और उन्हीं की खातिर कांग्रेस इस समस्याको हल करने की संजीदा कोशिश नहीं कर रही है? सच मानिए, ये काहिल लोग हैं, और सिर्फ कांग्रेसमें होने की वजहसे वे आज ऐसी स्थितिका उपभोग कर रहे हैं।

आपको यह तो मालूम ही है कि आम मुसलमानोंने कलकत्तामें, जहाँ आपके अध्यक्ष[2] वर्षोंसे ईदकी नमाज पढ़ाते आ रहे थे, उनकी कैसी खातिर-दारी की। आप यह भी जानते हैं कि मुसलमानोंको अपने दृष्टिकोणका कायल करने के लिए किसी मुस्लिम जलसेमें बोलने की हिम्मत इन कांग्रेसी मुसलमानोंमें नहीं है। आप अंग्रेजोंको दोष देते हैं कि उन्होंने रजवाड़े, संविधानवादी नरम-पथी (मॉडरेट) और मुझ-जैसे खानबहादुर पैदा किये। आप अंग्रेजोंपर इल्जाम

१. देखिए खण्ड ७१, पृ० ४३९।

२. अबुल कलाम आजाद

लगाते हैं कि वे हिन्दुस्तानमें दूसरा 'अल्स्टर' बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। पर क्या कांग्रेसने मुसलमानोंके बीच आजाद, आसफ अली और किदवई-जैसोंके रूपमें नरमपंथी और खानबहादुर ही तैयार नहीं किये हैं? क्या कांग्रेसका काम एक मुस्लिम 'अलस्टर' बनानेके बराबर नही है?

आप दिल्लीके नगरपालिका चुनावोंमें जनाब आसफ अलीकी कामयाबी का हवाला दे सकते हैं। मैं आपको बता सकता हूँ कि अगर सूबेकी लीगमें नाइत्तिफाकी न होती और स्थितिको सँभालने में गलत तरीकेसे काम न लिया गया होता तो जनाब आसफ अली चुनावमें हर्गिज न जीतते। मैं आपको यह भी बता दूँ कि ऐसी हालतमें भी जब दिल्लीकी कांग्रेसने एक पार्टीकी हैसियतसे नगरपालिकाका चुनाव लड़नेका फैसला किया तब जनाब आसफ अलीने, जो इस समय कांग्रेस कार्य-समितिके एक सदस्य हैं, कांग्रेसके टिकटपर खड़ा होने से इनकार कर दिया था। इसलिए जनाब आसफ अलीके चुनावको कसौटी नहीं माना जा सकता, और अगर बुरा न मानें तो कहूँ कि अब भी जनाब आसफ अली कांग्रेस टिकटपर फिरसे चुनावके लिए खड़े हों तो मुझे यकीन है कि लीगका कोई भी उम्मीदवार उन्हे हरा देगा। इस तरह आपको समझ लेना चाहिए कि जब हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेके आपके जीवनके लक्ष्यमें मुसलमानोंको विश्वास ही नहीं रह गया है तब लीगके लाहौरवाले प्रस्तावसे[1] आपका परेशान होना वाजिब नहीं है। आपके इस उद्देश्यमें विश्वास रखनेके विपरीत मुसलमानोंको पक्का यकीन है कि कमसे-कम पिछले दस सालोंसे कांग्रेसका एकमात्र उद्देश्य मुसलमानोंमें फूट डालना और उनपर हुकूमत करना रहा है। मैं आपसे विनती करूँगा कि लीगके प्रति आपका जो रुख है उसपर फिरसे गौर कीजिए। मेहरबानी करके कांग्रेसी मुसलमानोंपर भरोसा न कीजिए, क्योंकि वे न सिर्फ हम लोगोंके बीचके 'मीर जाफर' हैं, बल्कि हिन्दू-मुसलमानोंके मेल-जोल और हिन्दुस्तानकी आजादीके भी दुश्मन हैं।

इन दिनों मुझपर मुसलमान भाइयोंके विरोध-पत्रोंकी बौछार-सी हो रही है। अधिकतर पत्र-लेखक कोई दलील नहीं देते। वे गालियाँ देकर ही खुश हो लेते हैं। रोजकी डाक खोलने और निबटानेका काम प्यारेलाल करते हैं। वे मुझे वही पत्र देते हैं जो उनकी समझसे मुझे देखने चाहिए। इनमें से भी जिनपर ध्यान देना मुझे अनिवार्य लगता है उन्हींपर मैं ध्यान देता हूँ। ऐसे कुछ पत्रोंके उत्तर मैं निजी तौरपर देता हूँ। इसलिए जिन पत्र-लेखकोंको न तो डाकसे और न 'हरिजन' के स्तम्भोंकी मारफत अपने पत्रोंके उत्तर मिलते हैं वे कारण जान लें।

१. जिसमें एक अलग मुस्लिम राज्यकी माँग की गई थी

कुछ मुसलमान भाई सहानुभूतिके पत्र भी लिखते हैं। ऐसे ही एक भाई कहते है कि उन्हे अपने घरमें मेरी हर तरहकी ऊल-जलूल आलोचनाएँ सुनने को मिलती हैं। वे जानते हैं कि इनमें से अधिकतर आलोचनाएँ निराधार होती हैं। पूछते है, ऐसी हालतमें उन्हे क्या करना चाहिए। क्या उन्हे अपना घर छोड़ देना चाहिए, या अन्तहीन बहसोमे पड़कर घरको मछली-बाजार बना देना चाहिए ? इन मित्रको मैंने सलाह दी है कि वे न तो अपना घर छोडें और न बहसमे पड़ें। जब उन्हे निश्चय हो कि लोग सरासर झूठ बोल और मान रहे है तब उनसे बने तो एक-दो नरम शब्दोमें प्रतिवाद कर दे।

मेरे पास जो पत्र है उनसे, तथा उर्दू समाचार-पत्रों और जिनके मालिक मुसलमान है ऐसे कुछ अग्रेजी समाचार-पत्रोंकी भी कतरनोसे, प्रकट होता है कि मै इस्लाम और भारतीय मुसलमानोका कट्टरतम शत्रु हूँ। अगर किसी समय मुझे उनका सबसे बडा मित्र माना जाता था और उनकी प्रशसाका बोझ सहना पड़ता था, यदि आज वे मुझे अपना शत्रु कहे तो इसे भी मुझे बरदाश्त करना ही पडेगा। सत्य क्या है, यह तो सिर्फ ईश्वर ही जानता है। मुझे पूरा यकीन है कि अपने किसी भी कर्म, वाणी या विचारमें मै शत्रु नही हूँ। वे मेरे सगे भाई है और रहेगे, फिर वे मुझे चाहे जितना नकारे।

अब खानबहादुरके पत्रको ले। काग्रेस अखिल भारतीय मुस्लिम लीगको एकमात्र और अधिकृत मुस्लिम सगठन मान ले, इस माँगके पीछे कौन-सा कारण है, यह मेरी समझमें कभी नही आया है। इस तरहकी मान्यताकी माँग या इसकी अपेक्षा क्यो की जानी चाहिए ? सुलह और समझौतेकी सच्ची आकाक्षाके साथ इस तरहकी माँगका मेल कैसे बैठता है ?

काग्रेस सबका प्रतिनिधित्व करने की कोशिश करती है। लेकिन उसने किसीसे कभी यह माँग नही की है कि उसे इस रूपमें स्वीकार किया जाये। अखिल भारतीय दर्जेकी पात्रता तो होनी चाहिए, लेकिन उसकी पात्रता हो या न हो, उसकी स्वीकृति एक फालतू चीज है। काग्रेसने कभी दावा नही किया कि वह सारे हिन्दुस्तानी मुसलमानोका प्रतिनिधित्व करती है। उसने किसी भी एक कौमका पूरा प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं किया है। लेकिन बगैर वर्ग, जाति, रग या धर्मका खयाल किये वह हरएक राष्ट्रीय हितका प्रतिनिधित्व करनेका दावा अवश्य करती है। जो लोग काग्रेससे किसी तरहका व्यवहार रखते है उनके लिए इस दावेको भी मजूर करने की जरूरत नही है। दोनोमे से प्रत्येक पक्षके लिए यह बात पर्याप्त सान्त्वनाका कारण होनी चाहिए कि दूसरा पक्ष उसे इतना महत्त्वपूर्ण समझता है कि उससे मित्रता करने को उत्सुक है।

काग्रेसने तो हमेशा स्पष्ट शब्दोमे इस बातको मजूर किया है कि उसके रजिस्टर पर मुसलमानोकी उतनी ज्यादा तादाद नही है जितनी वह चाहती है। लेकिन उसे इस बातका गर्व रहा है कि उसे अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानोका समर्थन मिलता रहा

है। हकीम साहब अजमलखाँ इनमें सबसे ऊँचे थे। स्वयं कायदेआजम कभी प्रमुख कांग्रेसी थे। असहयोगके बाद ही, कई जातियोंके बहुतेरे अन्य कांग्रेसी लोगोंके साथ, वे भी इससे अलग हुए। पर कांग्रेससे उनका अलग होना बिलकुल राजनीतिक था। सीधी कार्रवाई उन्हें पसन्द नहीं थी।

राष्ट्रीय मुसलमानोंको केवल इसलिए गालियाँ देना गलत है कि वे कांग्रेसमें जुड़े हुए हैं। अगर वे लीगके सदस्य हो जायें तो लायक मुसलमान बन जायेंगे!!! मेरे पत्र-लेखकको इस बातकी जानकारी ही नहीं है कि कांग्रेसी मुसलमान एकता कायम करने के लिए कितनी कोशिश कर रहे हैं। मुझे सन्देह नहीं कि जब एकता फिरसे स्थापित हो जायेगी, और होगी तो वह जरूर, तब राष्ट्रीय मुसलमानोंको हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंकी ओरसे उचित श्रेय मिलेगा।

इन सबको मीरजाफर कहना सत्यका गला घोंटना है। वे न तो इस्लामको और न हिन्दुस्तानको ही धोखा दे रहे हैं। अपनी समझके अनुसार वे उतने ही सच्चे मुसलमान हैं जितने सच्चे मुसलमान होने का दावा लीगके सदस्य करते हैं। यह कहना भी सत्यकी वैसी ही विडम्बना है कि कांग्रेस अंग्रेजोंके फूट डालकर शासन करने के मार्गका अनुसरण कर रही है। कांग्रेस तो एक ही लक्ष्य सामने रखनेवाला एक राजनीतिक दल है। अगर यह सिद्ध हो जाये कि कांग्रेसके मन्तव्य बुरे हैं तो यह हिन्दुस्तानके लिए बड़े दुर्भाग्यकी बात होगी। शुद्धतम उपायोंसे मुसलमान लोकमतको अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना क्या नीचता है? सही हो या गलत, कांग्रेस साम्प्रदायिक आधारपर कायम की गई खानेबन्दीमें विश्वास नहीं करती। धर्म तो एक निजी मामला तथा ईश्वर और मनुष्यके बीचकी चीज है और यदि इसे इसी रूपमें रहने दिया जाये तो ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण उभयनिष्ठ तत्त्व हैं जो दोनोंको मिल-जुलकर जीने और काम करने के लिए विवश कर देंगे। धर्म मनुष्यको मनुष्यसे अलग करने के लिए नहीं, उनको आपसमें जोड़ने के लिए हैं। यह तो बदकिस्मतीकी बात है कि आज उनका रूप कुछ ऐसा बिगाड़ दिया गया है कि झगड़े और एक-दूसरेका गला काटने का प्रबल कारण बन गये हैं।

अब शायद स्पष्ट हो जायेगा कि आसफ अली साहबके उदाहरणसे मेरा कोई वास्ता क्यों नहीं हो सकता। मैं यह मान लूँगा कि उनके और किसी लीगीके बीच मुकाबला हुआ तो वे हार जायेंगे। मैं यह भी मान लूँगा कि ऐसे अधिकतर मामलों में परिणाम यही होगा। लेकिन उससे मेरी स्थिति किसी तरह कमजोर नहीं होगी। अलबत्ता उससे लीगकी उच्चतर संगठन-क्षमता और मुसलमानोंके बीच उसकी लोकप्रियता अवश्य सिद्ध होगी। मैंने इनमें से किसी भी बातमें सन्देह नहीं किया है। मेरी स्थिति तो बिलकुल सीधी है। लीगकी मारफत हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने की बात सोचने से पूर्व मुझसे उसके दर्जेके बारेमें कुछ स्वीकार करने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। राष्ट्रवादी मुसलमान चाहे जितने नाचीज समझे जायें, मुझे उनके साथ गैर-वफादारी नहीं करनी चाहिए। इस विचाराधीन पत्रके लेखक खान-

बहादुरसे मेरा निवेदन है कि वे दोनो समुदायोको एक करने में अपने प्रभावका उपयोग करे।

सेवाग्राम, ४ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-६-१९४०

१७६. घबराहट

आजकल अखबारोमें यत्र-तत्र घबराहटके समाचार पढने को मिलते है, और उनसे भी ज्यादा ऐसी खबरे सुनने को मिलती है। एक भाई लिखते है

> **वहाँ सेवाग्रामके एकान्तमें बैठे-बैठे आपको व्यस्त नगरोमें चलनेवाली चर्चा और कानाफूसीका कोई अन्दाजा नहीं हो सकता। वे लोग बुरी तरह घबराये हुए हैं।**

घबराहट मनुष्यको सबसे ज्यादा पस्त करनेवाली चीज है। किसी भी वजहसे मनुष्यको घबराहट तो होनी ही नही चाहिए। चाहे जो हो, हिम्मत नही हारनी चाहिए। युद्ध एक विशुद्ध बुराई है। लेकिन इसका एक शुभ परिणाम जरूर होता है — यह भयको भगाता है और मनुष्यमे छिपी शूरताको उभारता है। मित्र-राष्ट्रो और जर्मनोको मिलाकर अबतक लाखो जानें जा चुकी होगी। वे खूनको पानीकी तरह बहा रहे है। ब्रिटेन और फ्रान्समें बूढे आदमी, बूढी-जवान औरतें और बच्चे सब आसन्न मृत्युकी छायामें जी रहे है। लेकिन वहाँ घबराहट नही है। अगर वे घबराहटके वशीभूत हो जायें तो यह उनके लिए जर्मनोकी गोलियो, बमो और जहरीली गैसोसे भी अधिक भयानक शत्रु साबित होगा। पश्चिमके इन विपद्ग्रस्त राष्ट्रोसे शिक्षा लेकर हमें अपने बीचसे घबराहटको दूर भगा देना चाहिए। और भारतमे तो घबराहटका कोई कारण ही नही है। ब्रिटेनको मिटना भी हुआ तो अन्ततक लडता हुआ बहादुरीके साथ मिटेगा। यहाँ-वहाँ उसके हारने के समाचार मिल सकते है। लेकिन उसमें पस्ती आने की खबर कभी नही मिल सकती। जो-कुछ भी होगा, व्यवस्थित रीतिसे ही होगा।

इसलिए मेरी बातोपर कान देनेवालो से मै कहूँगा अपने काम-काजमे आप सामान्य रीतिसे लगे रहे। बैंकोमे जमा रकमे मत निकालिए, न अपने नोटोको नकदी मे बदलने के लिए अफरा-तफरी कीजिए। अगर आप सावधान है तो आपको कोई खतरा नही उठाना पड़ेगा। अगर अराजकता फैल ही जायेगी तो आपका जमीनमें गडा या तिजोरियोमें बन्द द्रव्य आपकी बैंकमे जमा रकमो या आपके नोटोसे कुछ ज्यादा सुरक्षित रहेगा, ऐसा मत समझिए। अभी तो हर बातमें खतरा है। उत्तम यही है कि ऐसी हालतमें भी आप जैसे है वैसे ही बने रहे। आप स्थिर रहे और

आपकी स्थिरताका दूसरे लोग अनुकरण करें तो उससे बाजारमे स्थिरता आयेगी। यह अराजकताको रोकने का सर्वोत्तम उपाय होगा। ऐसे समयमें गुडागिरीका भय तो होता ही है। आपको उसका मुकाबला खुद ही करने को तैयार रहना चाहिए। गुडोका बोलबाला डरपोक लोगोके बीच ही होता है। जो लोग हिंसक अथवा अहिंसक रीतिसे अपना बचाव कर सकते है उनके बीच गुडोंके लिए कोई स्थान नही होता। अपने जान-मालके प्रति पूरी लापरवाहीका रुख अहिंसक प्रतिरक्षाकी शर्त है। अगर इस रुखपर दृढ रहा जाये तो यह गुडागिरीका शर्तिया इलाज है। लेकिन अहिंसा बात-की-बातमें नही सीखी जा सकती। इसके लिए अभ्यासकी जरूरत होती है। आप आजसे ही उसे सीखना शुरू कर सकते है। आपको अपनी जान और माल या दोनो गँवाने के लिए तैयार रहना चाहिए। लेकिन अहिंसाकी कलामे तो यह चीज सहज समाहित है। अगर आप दोमे से किसी भी रीतिसे अपनी रक्षा आप करना नही जानते तो सरकार अपने समस्त प्रयत्नोके बावजूद आपकी रक्षा न कर पायेगी। कोई सरकार चाहे जितनी शक्तिशाली हो, जनताके सक्रिय सहयोगके बिना वह उसकी हिफाजत नही कर सकती। यदि ईश्वर भी अपनी सहायता आप करनेवाले की ही मदद करता है तो सोचिए कि नश्वर सरकारोके सन्दर्भमे यह बात कितनी ज्यादा सच है। हिम्मत न हारिए और ऐसा न सोचिए कि कल तो कोई सरकार नही, सिर्फ अराजकता ही होगी। आप आज ही स्वय ही सरकार बन सकते है और जिस विपद्वेलाकी आप कल्पना करते है उसमें तो अवश्य ही आपको बनना पड़ेगा, *अन्यथा* आप मिट जायेंगे।

सेवाग्राम, ४ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-६-१९४०

१७७. प्रश्नोत्तर

यदि आपमें साहस है

प्र० : पिछले महीने मेरी माँका देहान्त हो गया। एक अर्सेसे मैं हरिजनों द्वारा पकाया गया भोजन करता रहा हूँ। सनातनी लोग इसे पसन्द तो नहीं करते थे, पर वे मेरे इस आचरणको बरदाश्त करते रहे। तीन साल पहलेकी बात है कि एक मुसलमान दोस्तने अपनी माँकी मृत्युके अवसरपर मृत्यु-भोज दिया और मैंने उसमें शामिल होने का निमन्त्रण मंजूर कर लिया। अब मेरी माँका देहान्त हो गया है। मेरी जातिवालों ने मेरी माँके अन्तिम संस्कार-सम्बन्धी सब कृत्योंका बहिष्कार कर दिया है। मुझे क्या करना चाहिए?

उ० अगर आपमे साहस है, तो अपनी जातिवालोको, जो उनके जी में आये, करने दीजिए, लेकिन हर कीमतपर अपने मुसलमान दोस्तकी दोस्ती कायम रखिए और जितनी बार जरूरत पड़े उसके साथ खाइए-पीजिए। ऐसे बहिष्कारोकी जरा भी परवाह नही करनी चाहिए।

उदार तानाशाही

प्र० : जब धनवान कठोर और स्वार्थी हो जाते हैं और बुराई बेरोक-टोक जारी रहती है तो लाजिमी तौरपर अपनी तमाम भयंकरताके साथ सर्वसाधारणकी क्रान्ति पैदा होती है। जब जीवनका अर्थ, जैसा कि आपने कहा है, अक्सर छोटी-बड़ी बुराइयोंके बीच चुनाव ही है, तब क्रान्तियोंके इतिहाससे मिलनेवाली शिक्षाको मद्देनजर रखते हुए क्या आप ऐसी उदार तानाशाहीके उदयका स्वागत नहीं करेंगे जो कमसे-कम जबरदस्तीके साथ "धनिकोका शोषण" करे, गरीबोंके साथ इन्साफ करे और यों दोनोंकी सेवा करे?

उ०. मैं उदार अथवा किसी भी तरहकी तानाशाहीको मजूर नही कर सकता। उसमें न तो धनिकोका लोप होगा और न गरीबोकी हिफाजत। कुछ धनी लोग अवश्य मिट जायेंगे और कुछ गरीब सरकारी दानपर पलेंगे। एक वर्गके रूपमें धनिकोंका अस्तित्व कायम रहेगा और तानाशाहीके 'उदार' विशेषणसे विभूपित होने के बावजूद गरीबोका वर्ग भी बना रहेगा। असली इलाज अहिंसात्मक लोकतन्त्र है, जिसे दूसरे शब्दोमें सबका सच्चा शिक्षण कह सकते है। धनिकोको सेवाके और गरीबोंको स्वावलम्बनके सिद्धान्तकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

एक सामाजिक व्याधि

प्र० : भिखारियोंकी समस्याने सब जगह, खासकर शहरोंमें, एक सामाजिक व्याधिका रूप धारण कर लिया है। हिन्दुस्तानके लिए इन काहिलोंकी फौजका बोझ उठाना मुश्किल है। हमारे सीधे-सादे लोगोकी सहानुभूति और भयकी भावना जगा-कर उन्हें भीख देने पर मजबूर करने के लिए ये आत्म-पीड़न और कभी-कभी तो धौंस-धमकियोसे भी काम लेते हैं। इस तरह इनमें से कइयोने गुप्त रूपसे काफी पैसा जमा कर लिया है और ये पाप तथा व्यभिचारका जीवन बिताते हैं। इस समस्याके लिए आप क्या हल सुझायेंगे?

उ० भिक्षा-वृत्ति हिन्दुस्तानमें युगों पुरानी प्रथा है। यह हमेशा व्याधि-रूप ही नही होती थी। इसका रूप हमेशा पेशेका भी नही रहा। अब जरूर इसने ठगो द्वारा अपनाये पेशेका रूप ले लिया है। काम करके अपनी जीविका कमाने लायक किसी भी आदमीको भीख नही माँगने दिया जाना चाहिए। इस समस्याको सुलझाने का ढग यह है कि जो लोग पेशेवर भिखारियोको भीख देते है उन्हे सजा दी जानी चाहिए। समर्थ लोगोंको तो भीख माँगने पर दण्ड देना ही चाहिए। लेकिन यह सुधार तभी सम्भव है जब नगरपालिकाएँ ऐसे उद्योगगृहोका सचालन करे जहाँ लोगो

से काम लेकर उन्हे खाना दिया जाये। इस तरहके काममें सालवेशन आर्मीके[1] लोग विशेष रूपसे निष्णात हैं या थे। उन्होंने लन्दनमें दियासलाईका एक कारखाना खोला था, जिसमें जानेवाले हरएक आदमीको काम और खाना मिलता था। लेकिन मैंने जो-कुछ सुझाया है वह तो रोगका तात्कालिक उपशमन करनेवाला उपचार है। सच्चा उपचार तो इसके मूल कारणको खोज निकालने और उसका निवारण करने मे है। इसका मतलब यह है कि जनताकी आर्थिक स्थितिमें समानता पैदा की जाये। आजकी परस्पर-विरोधी चरम-स्थितियोको एक गहरी सामाजिक बुराई समझकर उसका उपाय किया जाना चाहिए। किसी भी स्वस्थ समाजके अन्दर चन्द आदमियोंके हाथोमें धनका केन्द्रित हो जाना और लाखोका बेकार होना एक महान् सामाजिक अपराध या रोग है, जिसका उपचार अवश्य होना चाहिए।

स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रता

प्र० : सम्पत्तिपर विवाहित स्त्रियोंके अधिकार-सम्बन्धी कानूनोंके सुधारका चन्द लोग इस बिनापर विरोध करते हैं कि स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रतासे उनमें दुराचार फैलेगा और गृहस्थ-जीवन टूटकर बिखर जायेगा। इस सवालके सम्बन्धमें आपका क्या रुख है?

उ० मै इस प्रश्नके उत्तरमें एक प्रति-प्रश्न करूँगा क्या पुरुषकी स्वतन्त्रतासे और सम्पत्तिपर उसका स्वामित्व होने से पुरुषोमें दुराचार नही फैला है? अगर आपका उत्तर 'हाँ' में है, तो फिर स्त्रियोंके साथ भी वही होने दीजिए। और जब स्त्रियोको सम्पत्तिके स्वामित्वके अधिकार तथा और बातोमे भी पुरुषो-जैसे हक मिल जायेंगे, तब पता चल जायेगा कि ऐसे अधिकारोका उपभोग उनके पाप-पुण्यके लिए जिम्मेदार नही है। जो सदाचरण व्यक्तिकी, चाहे पुरुष हो या स्त्री, निस्सहायता पर निर्भर है उसमें प्रशसाके योग्य कोई बात नही है। सदाचरणका मूल तो हमारे हृदयोकी शुद्धतामे होता है।

एक मन्दिरके न्यासीका कठिन प्रश्न

प्र० : मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका सदस्य हूँ। व्यक्तिगत तौरपर छूआछूत-सम्बन्धी प्रतिबन्धोंमें न तो मेरा विश्वास है, न मैं उनका पालन ही करता हूँ। पर मैं अपने पुरखोंके बनवाये हुए एक मन्दिरका न्यासी हूँ। उनका धार्मिक दृष्टिकोण पूर्णतः सनातनी था। मैं महसूस करता हूँ कि इसे हरिजनोंके लिए खोल देना विश्वासघात होगा। क्या यह बात सत्याग्रहके प्रतिज्ञा-पत्रपर मेरे हस्ताक्षर करने में बाधक होगी?

उ० यह आपके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करने में जरूर बाधक होगी। अगर कानून आपको मन्दिर खोलने की इजाजत देता है, तो यह विश्वासघात नही होगा।

१. एक ईसाई संगठन

जैसा कि हम लोगोंने अब समझा है, यह शर्त अनैतिक थी, और इसलिए यह अमान्य है।

अप्रमाणित खादी

प्र० : आप कहते हैं कि मिलका कपड़ा खरीदने या इस्तेमाल करनेवाला व्यक्ति सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा नहीं ले सकता। क्या अप्रमाणित खादी इस्तेमाल करने, खरीदने या बेचनेवाला प्रतिज्ञा ले सकता है, अथवा कांग्रेस कमेटियोंमें पदाधिकारी रह सकता है? क्या अखिल भारतीय चरखा संघके अलावा कोई दूसरी संस्था या व्यक्ति खादी बेचनेवालों को प्रमाणपत्र देने का अधिकार रखता है?

उ० हर्गिज नहीं। मैंने बार-बार कहा है कि जो आदमी अप्रमाणित खादी का इस्तेमाल करता है अथवा उसका रोजगार करता है वह खादीको नुकसान पहुँचाता है और उन कत्तिनों और बुनकरोंका सीधा शोषण करता है जिनकी हालत सुधारने की कोशिश अखिल भारतीय चरखा संघ कर रहा है। ऐसे आदमी न तो प्रतिज्ञा ले सकते हैं, न किसी कांग्रेस-संगठनमें कोई पद ग्रहण कर सकते हैं। अ० भा० चरखा संघके अलावा कोई भी संस्था या व्यक्ति आवश्यक प्रमाणपत्र नहीं दे सकता।

छात्रोंकी कठिनाई

प्र० : हम पूनाके छात्र हैं और निरक्षरता दूर करने के आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं। अब बात यह है कि जिन इलाकोंमें हम काम कर रहे हैं वहाँ कुछ पियक्कड़ लोग हैं, जो लोगोंको पढ़ाने जाने पर हमें धमकी देते हैं। हम हरिजनोंके बीच काम कर रहे हैं। वे डर जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इन पियक्कड़ोंके खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनी चाहिए। कुछ कहते हैं कि हमें उन लोगोंको प्रेमसे समझा-बुझाकर राजी करने के लिए आपके मार्गका अनुसरण करना चाहिए। क्या आप कुछ सलाह देंगे?

उ० : आप लोग अच्छा काम कर रहे हैं। साक्षरता अभियान तथा इस तरह के बहुतेरे काम आधुनिक कालके इस महान्, संभवतः महानतम, सुधारके आनुषंगिक परिणाम हैं। जहाँतक पियक्कड़ोंकी बात है उनके साथ रोगी आदमियोंकी तरह बरताव किया जाना चाहिए, जो हमारी सहानुभूति और सेवाके पात्र हैं। इसलिए जब वे सामान्य अवस्थामें हों तब आप लोगोंको उन्हें समझाना चाहिए और वे मार-पीट तो उसे भी शालीनतापूर्वक सहन करना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि कानूनी कार्रवाई किसी भी स्थितिमें की ही नहीं जानी चाहिए, पर वैसा करना इस बातका प्रमाण होगा कि आपमें पर्याप्त अहिंसा नहीं है। लेकिन मनुष्य अपनी प्रकृतिके विरुद्ध नहीं जा सकता। अगर प्रेमपूर्वक समझाने पर भी उनके रुखमें कोई अनुकूलता नहीं आती, तो फिर आपने ऊपर जो बाधा बताई है उसके कारण आपका काम बन्द तो नहीं ही होना चाहिए। उस अवस्थामें कानूनी कार्रवाईका सहारा लिया जा सकता

है। लेकिन कानूनकी मदद लेने से पहले आप लोगोंको ईमानदारीके साथ सब तरहसे कोशिश करके देख लेना चाहिए।

सेवाग्राम, ४ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-६-१९४०

१७८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
४ जून, १९४०

चि० अमृत,

मैं भी हिंदीमें लिखु? थोडा तो सहन किया जाय। इरादा तो था और है लंबा खत लिखने का लेकिन रह जाता है। एक पीछे एक काम निकलता है और ऐसे खत रह जाते हैं।[1]

तुम्हारे उठाये मुद्दोंपर तुम्हे थोड़ा-बहुत सन्तोष देने का मेरा इरादा तो है, लेकिन अभीतक वैसा कर नही सका। मैंने अभी-अभी (शामके ४ वजे) 'हरिजन' के लिए आखिरी लेख समाप्त किया है और तुम्हें अपनी विवशता बताने के लिए अब यह लिखने बैठा हूँ।

बेचारी लीलावती! कल रात और फिर सुबह भी उसे बिच्छूने डंक मार दिया। सौभाग्यसे दोनों बार दर्द बरदाश्त करने लायक था। भली-चंगी है। इस तरह सेवाग्रामका चरखा तो चलता जा रहा है।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

अपना चन्दा शान्तिनिकेतनके कोषाध्यक्षको इस निर्देशके साथ भेज दो कि यह राशि पाश्चात्य संस्कृति-सम्बन्धी एन्ड्रयूज कक्षके लिए है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२३७)से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७८७० से भी

१. यहाँतक हिन्दीमें है, शेष अंग्रेजीमें है।

१७९. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
४ जून, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम तीनोका वहाँ[1] होना तो मुझे भी खटकता है। लेकिन तुम और कंचन मिलकर एक बीमार माने जा सकते हो, इसलिए तुम तीन बीमार हुए और तीन तुम्हारी देख-भाल करनेवाले। इस तरह मैंने अपने मनको समझा लिया है। कैसे भी हो, तुम दोनोको शान्ति मिलनी चाहिए।

मेरा अभिप्राय यह तो है ही कि बालकृष्ण और कुँवरजी[2] वहाँ चौमासा बितायें। इस बारे समय तुम दोनोको वहाँ रहना चाहिए या केवल एकको, यह सोचकर तय कर लेना चाहिए। यदि कुँवरजीका स्वास्थ्य ठीक हो तो वे शायद कोई स्थानीय नौकर रखकर भी काम चला सकते है। लेकिन सोचकर देख लेना। दोनोको वहाँ रहना चाहिए, यह मेरा निर्णय है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

आज और किसीको अलगसे नही लिखता।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३६)से। सी० डब्ल्यू० ७०९३ से भी, सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

१८०. पुर्जा : अमतुस्सलामको

४ जून, १९४०

तो क्यो चुप नही बैठती है? खामखा इसमें वहम क्या करना था?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

तो माफ कर। मैं खामोश हू।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६२)से

१. पंचगनीमें, जहाँ मुन्नालाल शाह इलाजके लिए गये थे।
२. कुँवरजी पारेख, हरिलाल गांधीकी पुत्री रामीके पति

१८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेवाग्राम, वर्धा
४ जून, १९४०

भाई घनश्यामदास,

बालके बारेमें समझा।

जब चाहे तब बालकोंको लेकर आ जाईये। हवामें दिनमें तो गरमी है, रात्रि अच्छी हो गई है।

बापुके आशीर्वाद

सेठ घनश्यामदास बिडला
बिडला हाउस
माउण्ट प्लेजेन्ट रोड
बम्बई

सी० डब्ल्यू० ८०३८ से। सौजन्य घनश्यामदास बिडला

१८२. टिप्पणी

एक सच्चा सेवक नहीं रहा

भाई फूलचन्द बढवाणसे इस प्रकार लिखते हे :[1]

इस हृदय-विदारक चित्रमे और अधिक रग भरनेकी जरूरत नही है। वैष्णव सच्चे वैष्णव थ। उनका सर्वोत्तम स्मारक तो यही हो सकता है कि उनके किसी भी कामको धीमा न पडने दिया जाये और सब उन-जैसे बनने का प्रयत्न करें।

सेवाग्राम, ५ जून, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ९-६-१९४०

१. यहाँ पत्रका अनुवाद नही दिया गया है। उसमें क्षयसे चमनभाई वैष्णवकी मृत्युका वर्णन था। चमनभाई १९३२ में गाधीजी के साथ परवडा जेलमें थे।

१८३. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
५ जून, १९४०

भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारे पत्र बराबर मिलते रहते हैं। तुम आओगे, तब चर्चा करके भविष्यके लिए निर्णय करेंगे। अभी तो तुम घूम-फिरकर खासा अनुभव प्राप्त कर रहे हो।

बापूके आशीर्वाद

श्री स्वामी राव व्यायाम मन्दिर
भावनगर
काठियावाड़

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९५१)से। सौजन्य पृथ्वीसिंह

१८४. सेगाँवके कार्यकर्त्ताओंसे

५ जून, १९४०

मैंने सुना है कि पेन कागजकी चोरीके बारेमें नौकरोंको पूछा जाता है। मैंने लिखा है कि मेरा शक उनपर बिलकुल नहिं है, उनको जरा भी न सताये जाय। चोरी हमारेमें से किसीने की है इसीलिये तो मुझे दुःख हुआ है और हो रहा है। मेरा निश्चय बदल जाता है कि हममें से किसीने किया है। भगवान उनको सद्बुद्धि देवे कि यह अपराध कबूल कर लेवे।

बापु

निवेदनकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६६)से; सी० डब्ल्यू० ४६७४ से भी

१८५. पत्र : बलवन्तसिंहको

[६ जून, १९४० के पूर्व][1]

चि० बलवंतसिंह,

समझना सुगम है। जब पिताको घरमें किसी लड़केपर शक आता है, लेकिन कौन है उसका पता नहीं लगता, तब वह उपवास करके शांति पाता है। अगर लड़कोमें प्रेम है तो लड़के कबूल कर लेते हैं। ठीक है कि मेरा अनुमान ही है, लेकिन हम सर्वज्ञाता नहीं है।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें, पृ० २७५

१८६. एक पत्र

[६ जून, १९४० या उनके पूर्व][2]

बेटी,

ऐसा खत लिखते दिल कांपता है। लेकिन अगर मेरा प्रेम तेरे लिए सच्चा है, तो लिखना ही चाहिये। बहुत विचार करने के बाद मेरा सारा शक तेरे पर जाता है। सही है या नहीं? तू वह खत ले सकती थी या बा। बा ने तो नहीं किया है, ऐसा मेरा निश्चय है। बा ने चोरी नहीं की है, ऐसा नहीं। की है। उसे मैंने सारे आश्रमके सामने जाहिर किया है। तुझपर शक जाता है वह क्यों? इसमें जाने में कुछ फायदा नहीं हो सकता है। या तो तूने किया है तो तू जानती है नहीं किया है तो मेरे शकके कारण जानने से कुछ नहीं हो सकता है।

तेरा एक ऐब है। तू अपने दोष कम देखती है, देखती है उन्हें कम कबूल करती है। तूने यह काम किया है तो तू दूसरी नहीं होगी। दूसरोंने भी किया है। मणीलालने घोर पाप किया, जिनके लिए मैंने सात दिनका फाका और एक बरस तक एक ही वक्त खाना खाया। जेकीबहनने किया इसके लिए १४ दिनका फाका करना पड़ा। सब कागजकी चोरीकी बात नहीं थी। लेकिन झूठ बोलने की थी।

१. लगता है यह अगले शीर्षकसे पहले लिखा गया था।

२. देखिए "पुर्जा : महादेव देसाईको", पृ० १६६।

छगनलालने चोरी ही की थी। मैंने तो की ही थी। सब गुनाह करते हैं। लेकिन सब कबूल नही करते हैं। तूने किया है तो मुझे कह देगी। नही किया है तो मैं जो-कुछ भी करू, उसकी परवा नही करना। यही मेरा शिक्षण है।

महा दुखके साथ यह लिखता हू। कल्पात [रोना-धोना] नही करेगी। गुनाह हुआ है तो फिकर नही। नही हुआ है तो तो कहना ही क्या?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७११)से

१८७. पत्र: अमृतकौरको

सेवाग्राम
६ जून, १९४०

चि० अमृत,

तुमारा खत मिला। और 'नोट यट'का अनुवाद।[1] 'नोट यट' अभी नही अच्छा नही है। 'देर है' होना चाहीये। मैंने दुरस्त करना शुरू तो किया है।[2]

खेद है कि पिछली बार तुमको लेख भेजनेमे मैंने देर कर दी थी। कसूर सर्वथा मेरा ही था। इस सप्ताहके लेख साथमे हैं। आशा है, तुम्हे वह बुकपोस्ट मिल गया होगा जिसमे लेख और मेरे जाँचे हुए कुछ अनुवाद थे।[3]

गत रात जोरकी बारिश हुई। निश्चय ही मौसम कलकी अपेक्षा बहुत कम गरम है। गरमीका ध्यान रखते हुए तुम १५ तारीखके बाद नीचे आ सकती हो।

तुम्हारे किये हुए सशोधन अच्छे हैं।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२३८)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७८७१ भी

१ देखिए पृ० ११९।
२. यहाँतक मूल हिन्दीमें, और इसके बादका अंश अंग्रेजीमें है।
३. देखिए "पत्र: अमृतकौरको", पृ० १३८।

१८८. पुर्जा : महादेव देसाईको

६ जून, १९४०

मैंने अपना शक अ० स० पर प्रकट किया है। उसने उत्तर भी लिख भेजा है। अब आगे क्या करती है, यह देखना है। इस पत्रको प्रकाशित कर दीजिए, वगैरह कहती रहती है। समझमें नही आता, इसे धमकी माना जाये या क्रोधमें कही हुई बात। अनुभव मुझे खासे हो रहे हैं।

बापू

[गुजरातीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

१८९. पुर्जा : महादेव देसाईको

६ जून, १९४०

तुम सरासर भूल कर रहे हो। जबतक मेरे मनमें धुंधला-सा शक था, तबतक मैं कैसे कहता लेकिन जब मेरे मनमें शक लगातार मजबूत ही होता जाये, तब मेरा कर्त्तव्य हो जाता है कि उसे अपने प्रिय जनोंपर प्रकट करूँ। मैंने तो यहाँतक देखा है कि जिनके सम्बन्धमें कभी कोई शक हो ही नही सकता था, वे भी अन्तमें शकके योग्य साबित हुए हैं। अब मुझे सब पता लग जायेगा। मैंने अन्याय किया होगा, तो वह भी मालूम हो जायेगा। अपना शक उसपर प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य था।[1]

[गुजरातीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य : नारायण देसाई

१. महादेव देसाईने पिछले पुर्जेका जो उत्तर दिया था उसके उत्तरमें यह पुर्जा लिखा गया था।

१९०. पत्र : सरस्वती गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
६ जून, १९४०

चि० मरू,

तेरा खत मिला। बार-बार माफी क्या मांगना? गलती तो सब करते हैं। तुम दोनोंने भी की। मैं तो कबसे भूल ही गया हूं। मां-बाप बच्चोंके दोषका संग्रह थोड़े ही करते हैं? कोई रोज अवश्य यहां भी आवेगी। तेरा और कांतिका बहिष्कार तो नहीं किया है। दुखी नहीं होना। बा को तो कुछ था ही नहीं।

वर्षा जल्दी शरू होगी तो तो अच्छा है। यहां कल रातको ठीक पानी आया।

बापुके आशीर्वाद

चि० सरस्वती गांधी
बोरा हरिदास वखतचन्दका घर
हाईस्कूलके पीछे
राजकोट (काठियावाड)

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७९)से। सी० डब्ल्यू० ३४५३ में भी, सौजन्य : कान्तिलाल गांधी

१९१. पत्र : कन्हैयालालको

सेवाग्राम, वर्धा
६ जून, १९४०

भाई कन्हैयालाल,

तुम्हारी हुंडी मिली। हरिजन फंडमें लगाता हूं। मीराबहन ठीक आ गई।

बापुका आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १००५०)से। सी० डब्ल्यू० ६४५५ से भी

१९२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
६ जून, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

बा ने टीका की उसको इतना महत्व क्या? अ० स० को पूछा वह ठीक ही किया। न पूछते तो भी ठीक करते। दोनो बात सहज है। ऐसी वातोका विचार ही न करना सबसे अच्छी बात है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४८) से। एस० जी० ८२ से भी

१९३. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

[६ जून, १९४०][1]

लीलावतीबहन कहती थी, खजूर टेप[नल]के पानीसे धोई जाती है। पानीका बरतन जो जमीनपर पडा रहता है वह डुवोया जाता है वगैरा। सव चीजमें शास्त्रीय स्वच्छता होनी चाहीये। उस बारेमे नियम बना लेना और बोर्डपर रखना। उसका पालन होना चाहीये। सु० बहेनसे[2] मिलकर बनाये जाय।

पुर्जेकी फोटो-नकल-(जी० एन० ४३४७) से

१. तारीख गांधीजीके स्वाक्षरोंमें न होकर किसी अन्यकी लिखावटमें है।
२. सुशीला नैयर

१९४. एक पुर्जा

[६ जून, १९४० के पश्चात्][1]

उसपर मैंने तवज्जो ही नहीं दी है। जब उसने कहा तब मैंने उड़ाया। मैं उस बारेमें कुछ नहीं जानता। उसका मुझको कुछ सदमा नहीं पहुंचा। हां, अगर मेरा शक इस बारेमें पक्का साबित हुआ, तो लीलावतीके कागजकी बात पैदा हो सकती है। लेकिन मेरी भावना ही दूसरी है। राधाका खत या उसके पेनकी क्या कीमत है? लेकिन चार दिनके झगड़ेके बाद मेरेमें यह भूत घूस गया है कि तूने किया है। मुझे बेचैन करती है। अब क्या लिखूं? मुझे छोड़।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०५) से

१९५. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

व्यक्तिगत

सेवाग्राम, वर्धा
७ जून, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

३ तारीखके आपके दो पत्रोंके लिए धन्यवाद।

मेरा खयाल है, युद्ध-परिस्थितिके[2] बारेमें आपने जो पत्र लिखा है उसका मर्म मैं समझ गया हूं। सर्वशक्तिमान् प्रभुसे मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि इस घोर सन्तापका शीघ्र अन्त हो।

जहांतक कुमारी शेरिडन द्वारा बनाई गई आवक्ष मूर्ति (बस्ट)का सम्बन्ध है, सोचता हूं, क्या आपने बर्रेके छत्तेको नहीं छेड़ दिया है।[3] निश्चित मानिए कि आपकी स्वीकृतिके खिलाफ बहुत चीख-पुकार मचेगी। और जैसा कि मुझे लगता

१. यह महादेव देसाईको लिखे गये ६ जून, १९४०के पुर्जेके बाद लिखा गया लगता है।

२. देखिए पृ० ११५, पा० टि० २।

३. वाइसराय द्वारा गांधीजीको दी गई सूचनाके अनुसार, महाराजा दरभंगाने उन्हें क्लेयर शेरिडन द्वारा बनाई गई गांधीजीकी एक आवक्ष मूर्ति दी थी और उनका इरादा था कि पहले तो उसे बम्बईमें प्रदर्शित किया जाये और उसके बाद "उसे अन्ततः स्थायी तौरपर देशकी राजधानीमें कहीं रखने के सुझावके साथ भारत सरकारको सौंप दिया जाये।"

है, जो करने की आप सोच रहे हैं उससे कोई लाभ नहीं होनेवाला है। व्यक्तिगत स्नेहके प्रतीकके रूपमे स्वभावत मैं आपकी कार्रवाईकी बहुत कद्र करता हूँ। मैंने यहाँ जो-कुछ कहा है वह तो आपकी इस कृपाके प्रति मात्र अपना वस्तुपरक दृष्टिकोण बताने के लिए कहा है।

इस पत्रके उत्तरकी अपेक्षा नही रखूंगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे। लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार

१९६. पत्र : भाष्यम्को[1]

७ जून, १९४०

मेरे दिमागमे तो यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि तुमको प्रत्येक आदेशका — यहाँतक कि सभा आदि न करने के आदेशका भी — पालन करना चाहिए। आदेशो का — वे अनुचित हो तब भी — इस तरह स्वेच्छासे पालन करने से अहिंसक प्रतिरोधकी एक ऐसी सामर्थ्य पैदा होती है जो अजेय बन जाती है। वह सन्देहको निरस्त कर देती है। यदि तुम जान-बूझकर ऐसा आचरण करो और जनता भी जान-बूझकर तुम्हारा अनुसरण करे तो तुम लोग अपने अन्दर एक ऐसी नई शक्ति महसूस करने लगोगे जिसका तुमको पहले कभी आभास तक नही हुआ। बाधाएँ तो सामने आयेंगी ही। उनसे बुद्धिपूर्वक पार पाना पडेगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य . नारायण देसाई

१. शायद बंगलोर-निवासी के० टी० भाष्यम्

१९७. पत्र : अकबर हैदरीको

सेवाग्राम, वर्धा
७ जून, १९४०

प्रिय सर अकबर,

पिछले महीनेकी २८ तारीखके आपके बेरहम खतपर[2] इतने दिनोसे सोचता ही रहा हूँ। देखता हूँ आपकी निगाहमे अब मैं पहले-जैसा नही रह गया हूँ। मैं तो मानता था कि आप मेरी इस बातपर यकीन करेंगे कि मुजफ्फरपुरमे हिन्दुओ द्वारा की गई मार-काटके बारेमें मुझे कोई जानकारी नही थी।[1] अब मैं पता लगानेकी कोशिश कर रहा हूँ कि क्या हुआ था। वैसे तो बीदरके बारेमें भी जब-तक वहाँके लोगोने मुझे नही लिखा और तत्सम्बन्धी कागज-पत्र नही भेजे तबतक मुझे उसकी भी कोई जानकारी नही थी।

मुझे उम्मीद थी कि आप मुझे इतनी अच्छी तरह जानते है कि यह भी जानते होंगे कि मौका पडने पर मैंने हिन्दुओको कभी बख्शा नही है। हैदराबादके मामलेमें मैंने खास सावधानी बरती है और जहाँतक मुझसे बन पडा मैं उसकी सार्वजनिक चर्चासे अपनेको बचाता रहा हूँ। मेरा खयाल था कि आपने मुझे वाक्-सयमका भी श्रेय दिया है। अब भी स्थिति यह है कि मैं हैदराबाद कांग्रेस (जो अब अस्तित्वमें नही है)की रहनुमाई कर रहा हूँ और लोगोको सयत रख रहा हूँ। लेकिन मुझे अपनी पैरवी खुद नही करनी चाहिए। मुझे तो दु ख इस बातका है कि आप मेरे बारेमें इतनी बेरहमीसे भी सोच सकते हैं कि अपने खतका वह आखिरी जुमला अपने हाथो लिख सके।

उम्मीद करता हूँ कि लेडी हैदरीकी सेहतमे सुधार जारी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८४५) से। महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे भी, सौजन्य नारायण देसाई

१. अकबर हैदरीने अपने पत्रमें बीदर और हैदराबादके साम्प्रदायिक दगोंके बारेमें गांधीजी द्वारा व्यक्त की गई चिन्ताका उल्लेख करते हुए पूछा था कि मुजफ्फरपुर, बिहारमें हुए उसी तरहके उन दगोंकी बात गांधीजीके ध्यानमें क्यो नहीं आई जिनमें मुसलमानोंको नुकसान उठाना पड़ा था। देखिए "प्रश्नोत्तर", पृ० ४७-४८ भी।

२. देखिए "पत्र: अकबर हैदरीको", पृ० ६३।

१९८. पत्र : हृदयनाथ कुँजरूको

७ जून, १९४०

मुझे खुशी है कि वक्तव्य मुझे मिल गया। इस वक्तव्यके कारण मेरी नजरोंमें पी०की कद्र एक तरहसे बढ गई है। उन्होंने अपने दृष्टिकोणको अधिक स्पष्ट किया है। परन्तु खाई स्पष्ट है। उन्होंने समाजका[1] नाम इसमें व्यर्थ ही घसीटा है। मुझे आशा है, आपका मार्ग सुगम रहेगा। पर सुगम रहे या दुर्गम, जो मार्ग आपको अपनाना है वह तो स्पष्ट ही है। उसमें समझौतेकी गुंजाइश नही। आप नगण्य अल्पमतमें हो तो भी आप सत्याग्रह [2] क्योंकि ईश्वरका आशीर्वाद आपके साथ रहेगा। आशा है, इस उथल-पुथलके बीच आपका स्वास्थ्य ठीक चल रहा होगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

१९९. पत्र : शिवरावको

७ जून, १९४०

आप भी खूब हैं। महादेवको लिखा आपका पत्र मैंने पढा है। मसौदेमें[3] बहुत ज्यादा संशोधनकी जरूरत है। बहरहाल, मैं तो संशोधन नही करूँगा। मेरी सलाह है कि आप उसे मौलाना साहब और जवाहरलालको भेज दें। मेरी अपनी राय यह है कि समझौतेका समय अभी नही आया है। आयेगा तो, लेकिन हमारे व्यथा के एक दौरसे गुजरने के बाद। मैंने आशाका दामन नही छोडा है, लेकिन बुरीसे-बुरी स्थितिके लिए भी मैं तैयार हूँ।

लेकिन आप धैर्यपूर्वक अपने ढंगसे प्रयास करते रहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

१. भारत सेवक समाज

२. मूलमें अर्थ स्पष्ट नही है।

३. कांग्रेस-लीग समझौतेके सूत्रका मसौदा, जो शिवारावने गांधीजी को भेजा था।

२००. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
७ जून, १९४०

चि० नारणदास,

अकाल सेवा-कार्य करने के लिए भगवान् तुम्हें आवश्यक शक्ति दे।

नानालालको लिखा, सो अच्छा किया। शामलदासके[1] बारेमें क्या कहूँ? वह मुझे भी जवाब नहीं देता। लेकिन प्रयत्न तो करना ही।[2] काकूको लिखा या नहीं?

बापूके आशीर्वाद

श्री नारणदास गांधी
राष्ट्रीय शाला
नवुं परुं
राजकोट, काठियावाड़

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७५ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

२०१. पत्र : कृष्णचन्द्रको

७ जून, १९४०

चि० कृष्णचंद्र,

हां, अगर प्रियजनके बारेमें शक आवे तो उसे कह देना धर्म हो जाता है। शक हवाई होता है। वह निजी दुष्टताका सूचक है। उसे दबाना धर्म है। जब वह दृढ़ होता जाता है और उसका परिणाम भी आने का अवसर आ सकता है तो उसे प्रगट करना आवश्यक है। मुझे दुःख ही मुझमें शक पैदा होने का है। मेरे जीवनमें ऐसा बना है और मेरा शक ठीक साबित हुआ है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३४९) से। एस० जी० ८४ से भी

१. शामलदास गांधी, लक्ष्मीदास गांधीके पुत्र

२. प्रसंग गांधीजी की बहन गोकीबहनकी इस शिकायतका है कि शामलदास उन्हें नियमित रूपसे पैसा नहीं भेजते थे।

२०२. सेवाग्रामके कार्यकर्त्ताओंसे

सेवाग्राम
७ जून, १९४०

मुझे बडे दु:खसे कहना पड़ता है कि मेरा शक अमतुलबहन पर जाता है। नौकरोमें से किसीने यह काम नही किया है, ऐसा मेरा विश्वास है। तब रहे हमारे लोग। उसमे से छानबीन करता हूं तो अमतुलबहन ही रह जाती है। मैं उसको बेटीसे अधिक समझता आया हू। उसकी सेवा तो अनन्य रही है। उसका अविश्वास करना कोई छोटी बात नही है। लेकिन मेरे सामने दूसरा रास्ता नजरमे नही आता। वह इतनी ही मक्कम [दृढ] है कि उसने यह काम नही किया है। उस हालतमें मेरे सामने उपवास ही एक आसान उपाय रहा है। यह उपवास केवल मेरी आत्म-शुद्धिके लिए समझा जाय। तेरेमे यह शक क्यो पैदा हुआ? अगर वह निर्दोष है तो शकका आना मेरे प्रेममे अशुद्धि बताता है। प्रेम कभी शक नही करता है। प्रेमके पास दोष छिप नही सकता है। क्योकि प्रियजन सुरक्षित है। अहिंसा-धर्म यह कहता है कि कोई अमतुलबहनके प्रति घृणासे न देखे, उसपर महोबत ही करे। वह झूठी है और मेरा शक सही है, ऐसा मानकर भी न बैठ जाय। वह निर्दोष साबित होगी तो मुझे बुरा नही लगेगा। मैं तो नाचुगा।

मेरे उपवास कलसे शुरू होते है। कहांतक करूगा उसका मुझे पता नही है। ईश्वर मुझे बुद्धि और शक्ति देगा ऐसे मैं चलुंगा। कोई चिंता न करे।

बापु

निवेदनकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६६) से। सी० डब्ल्यू० ४६७४ से भी

२०३. पुर्जा: प्यारेलाल और महादेव देसाईको

७ जून, १९४०

तुम मेरे साथ जरा धीरजसे काम लो। यह ऐसी बात है जिससे शे० मे०[1] का किस्सा याद आता है। उसके साथ मेरी जो बातें हुई है, उन्हे याद कर मै काँप उठता हूँ। वह सब आज नही बताऊँगा, कभी बताऊँगा। इसमें से अनेक तथ्य प्रकाशमें आयेंगे। लगता है, यह उपवास भगवान्ने ठीक मौका देखकर ही भेजा है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

२०४. पुर्जा: महादेव देसाईको

७ जून, १९४०

घनश्यामदास अथवा अन्य लोग भी आज तो यहाँ आने का विचार छोड दें। अन्तरात्मा क्या कहती है, आज यह मालूम हो जायेगा। इस बारके उपवासमें शरीर-क्लेश भोगने का प्रश्न बिलकुल नही है। मुझे १७ के[2] लिए और दूसरे कामके लिए भी तैयार रहना है, इसलिए जितना आरामसे सहन हो जाये, उतना ही करना है।

इसे लिखकर भेजने की तैयारी कर रहा था कि तुम्हारी चिट्ठी आई। उस का बहुत-कुछ जवाब इसमें आ जाता है। बाकीका इसके बाद कभी। आज मुझे पूरी शान्ति चाहिए। तुम्हारे मनमें जो विचार उठें, लिख भेजा करो। जवाब आज नही दूंगा।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य. नारायण देसाई

१. शेख मेहताब-सम्बन्धी घटना; देखिए "एक पुर्जा", पृ० १४६।

२. इस तारीखको वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक होनेवाली थी।

२०५. एक पुर्जा

[८ जून, १९४० के पूर्व][1]

अब यह फिजूल बात चलती है। देखती नहीं है कि मैं तुझे किसी चीजमें दोरनेके[2] लायक नही रहा। जिसको मैंने मेरी सगी बेटीसे अधिक माना, उसपर शक क्यों? शक मैं मजबूरीसे[3] तो रफा नही कर सकता हू। इसलिए मुझे तू इस वक्त छोड दे। खुदा जो रास्ता तुझे वताये सो ले। मुझे शाति दे। अगर मेरा शक सावित होगा या दूर होगा, तो मुझे रास्ता ठीक नजर आयेगा। इस वक्त सब अंधेरा ही है। मेरे साथ तू फाका करना चाहती है, यह मैं समझा ही नही हू। करेगी तो मेरे पर जबरदस्ती होगी। आजके लिए मैं तो समझा था। उसमें भी मेरी तो इजाजत नही।

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८२) से

२०६. अहिंसा और खादी

कुछ दिन पहले मैंने श्री रिचर्ड ग्रेगका एक पत्र उद्धृत किया था। अब उन्होने एक और पत्र भेजा है। उसे भी मैं पाठकोके समक्ष रख रहा हूँ[4]

> पिछला पत्र लिखने के बादसे इन तमाम महीनोंके दौरान मेरे अन्दर इस सम्बन्धमें जबरदस्त बौद्धिक ऊहापोह चलता रहा है कि अहिंसाके लिए किस प्रकारका अनुशासन चाहिए, अहिंसक रीतिसे समझा-बुझाकर हृदय-परिवर्तन करने का क्या उपाय है, और इन प्रश्नों तथा इनके समाधानोंको पाश्चात्य संसारके लिए बोधगम्य ढंगसे कैसे प्रस्तुत किया जाये। मेरा खयाल है, मैं आपको लिख चुका हूँ कि अपनी पहली रचना 'पावर ऑफ नॉन-वायलेंस' [अहिंसाकी शक्ति]के अनुपूरकके रूपमें मैं सत्याग्रहके उपर्युक्त दो पहलुओंके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखने की तैयारी कर रहा हूँ।... मैं पाश्चात्य संसारको

१. गाधीजी द्वारा ८ तारीखको शुरू किये जानेवाले उपवासके उल्लेखसे।

२. मार्ग-दर्शन करने के लायक

३. जबरदस्ती

४. यहाँ पत्रके कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

आपके सम्पूर्ण कार्यक्रमके औचित्य और व्यावहारिकताकी प्रतीति करा दूं, यही मेरा प्रयत्न है।

यह देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई है कि पिछले कुछ महीनोसे आप इस बातपर इतना अधिक जोर देते रहे हैं कि पहले कांग्रेस पूरी उत्कटता और निष्ठाके साथ खादी-कार्यक्रमको अपनाये, उसके बाद ही आप सरकारके विरुद्ध उसके किसी सत्याग्रह-संघर्षका नेतृत्व कर सकते हैं। इसकी आवश्यकता मुझे दिनके उजालेके समान साफ दिखाई देती है। आप बिलकुल सही हैं।...

युद्ध तथा उसकी तमाम विभीषिकाके बावजूद अहिंसाके भविष्यके सम्बन्ध में मैं आशान्वित हूँ। चाहे कुल संख्याकी दृष्टिसे देखें या शेष आबादीके अनुपातकी दृष्टिसे, आज अहिंसामें विश्वास रखनेवाले जितने अधिक लोग हैं उतने विश्वके इतिहासमें पहले कभी नहीं रहे। आजकी तरह सभी समूहों, वर्गों, धर्मो और पेशोंके लोगोंको अहिंसामें विश्वास रखते पहले कभी नहीं देखा गया। पहले कभी भी इतने सारे प्रसिद्ध राजनेताओने युद्ध तथा हिंसामें समाई मूर्खता तथा भयानकता और उनके भयावह परिणामोका वर्णन ईमानदारीके साथ और स्पष्ट तथा सार्वजनिक रूपसे नहीं किया। इतने अधिक सैनिक लोगोमें युद्धकी पद्धतिके औचित्य तथा अन्तिम प्रभावकारिताके प्रति इतना ज्यादा सन्देह पहले कभी नहीं देखा गया।

पिछले दो वर्षोसे -- और युद्ध छिड़नेके बाद काफी तेजीसे -- ब्रिटेन तथा अमेरिकामें संगठित शान्ति-आन्दोलनका जोर बढ़ता ही गया है।...

ग्रेट ब्रिटेनमें ९ मार्चतक अनिवार्य भरतीके तहत जितने लोग सेनामें लिये गये उनमें से २६,६८१ के नाम सरकारी रजिस्टरोमें युद्धके प्रति अन्तःकरण-प्रेरित आपत्ति रखनेवालो के रूपमें दर्ज किये गये। इसके विपरीत, १९१४-१८ के युद्धके पूरे चार वर्षोंके दौरान केवल लगभग १६,००० ऐसे आदमी सामने आये थे।... गत वर्षके जून महीनेसे लेकर इस साल मार्चतक अनिवार्य भरतीके लिए जो पाँच-छह माँगें जारी की गईं उनमें अन्तःकरण-प्रेरित आपत्तिकर्त्ताओका प्रतिशत १.६ से लेकर २.२ तक रहा। इस प्रतिशतका महत्त्व तब समझमें आता है जब हम इसे इस तथ्यको ध्यानमें रखकर देखते हैं कि अनुमानतः सभी देशोकी आबादीका मात्र २ प्रतिशत हिस्सा ही सरकारका प्रभावकारी और निर्णायक काम-काज चलाता है।...

अगर यह सच है कि मनुष्यकी जीवनमें व्यवस्था लाने और उसे सार्थक बनाने की आकांक्षा उसकी भय और विद्वेषकी भावनाओसे प्रबलतर है तो ऐसी व्यवस्था और सार्थकताको सिद्ध करनेवाला कार्यक्रम वही हो सकता है जिसका मेरुदण्ड अहिंसा हो। इस कारण अहिंसामें विश्वास रखनेवालों पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। यह चीज उनसे महान् चिन्तन, अनु-

शासन तथा सामाजिक आविष्कारकी अपेक्षा रखेगी। आपके खादी-कार्यक्रमको मैं एक ऐसा ही महान् सामाजिक आविष्कार मानता हूँ। ऐसा दूसरा आविष्कार वर्धा शिक्षा-योजना है।

मैं जे० सी० कुमारप्पाको कुछ ऐसी बातोंके बारेमें पत्र लिख रहा हूँ जिनपर अर्सेसे उनके साथ चर्चा करने की मेरी इच्छा रही है। इसमें चन्द सुझाव दे रहा हूँ, जिन्हें अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ आजमाकर देख सकता है। एक सुझाव तो यह है कि नेप्थलीनकी कृमिनाशक गोलियोंसे भरी हुई मसहरीकी जालीकी छोटी-छोटी थैलियाँ गाँवके कुओंमें लटकाई जायें। ये थैलियाँ पानीकी सतहसे गज-भर या उससे ज्यादा ऊपर रहें। इन गोलियोंकी गन्धको मच्छर बहुत नापसन्द करते हैं, और चूँकि यह गंध गंधहीन वायुसे कुछ भारी होती है, इसलिए पानीके तलपर एक परतकी तरह फैली रहेगी और जलको दूषित किये या मच्छरोंको मारे बिना ही वह मच्छरोंको पानीमें अण्डे देने से दूर रखेगी।...

इसीका एक दूसरा प्रयोग यह होगा कि गाँवके तालाबों या नदियोंके तटोंपर तीव्र गन्धवाली कुछ विशेष जलप्रिय वनस्पतियाँ लगा दी जायें। ये वनस्पतियाँ पानीके बिलकुल पास होंगी। मच्छर छिछले पानीमें अण्डे देना पसन्द करते हैं, जिससे डिम्भ (लार्वा) छोटी मछलियोंका खाद्य बनने से बच सकें। अगर सही किस्मकी वनस्पतियाँ, जिनकी गंध मच्छरोंको दूर भगानेवाली होती है, इन स्थानोंमें लगा दी जायें और उन्हें पोषित-संवर्धित किया जाता रहे तो सम्भवतः इस तरकीबसे मलेरियाका विनाश किया जा सकता है। जो भी हो, मैं इन दोनो तरीकोंको प्रयोग करने योग्य समझता हूँ। हमारी जानकारीके अनुसार 'मिण्ट' जातिकी बूटियाँ मच्छरोंको भगाती हैं।

श्री ग्रेग एक सावधान विचारक हैं। वे किसी चीजको परखे बिना उसे मानकर नहीं चलते। उनके पत्रके अन्तिम अनुच्छेदसे उनकी व्यावहारिक बुद्धि प्रकट होती है। लेकिन मैं जानता हूँ कि चाहे जितना भी तर्कयुक्त चिन्तन किया जाये, उससे धरतीपर अहिंसाकी श्रेष्ठता स्थापित नहीं होगी। उसे तो एक ही चीज स्थापित कर सकती है और वह है राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी प्राप्ति और उसकी रक्षामें अहिंसाकी शक्तिको असन्दिग्ध रूपसे प्रदर्शित कर सकने की भारतकी योग्यता।

सेवाग्राम, ८ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-६-१९४०

२०७. पत्र : रिचर्ड बी० ग्रेगको

सेवाग्राम, वर्धा
८ जून, १९४०

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा १६ अप्रैलका पत्र मिला। इसे भी 'हरिजन' में दिया जा रहा है।[1] तुमने जो पैरा निकाल देने को कहा है, वह निकाल दिया गया है।

पत्र अच्छा है। लेकिन सारा दारोमदार इसपर है कि हम यहाँ क्या-कुछ कर पाते हैं।

हालाँकि तुम जहाँ हो, वहाँ काफी अच्छा काम कर रहे हो, पर मुझे उम्मीद है कि इधर किसी दिन तुम और राधा[2] दोनो यहाँ आओगे।

इस बीच तुम्हे और राधाको मेरा स्नेह।

बापू

श्री रिचर्ड बी० ग्रेग
इलियट सेट
साउथ नैटिक मेसा०, स० रा० अ०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४५२१) से। सौजन्य रिचर्ड बी० ग्रेग

२०८. सेवाग्रामके कार्यकर्त्ताओंसे

८ जून, १९४०

मैं देखता हूँ कि मेरे उपवासमें मुझे किसीका साथ नहि है, इतना हि नही, विरोध है। इस हालतमें मैं मेरी शाति नही रख सकता हू। इसलिए मैंने उपवास छोड़ देने का निश्चय किया है। खाने के समय खाऊगा। इसका मतलब यह नही है कि मेरा शक रफा हो गया। उसे रफा करना ईश्वराधीन है। न मै मानता हू कि उपवासमें कुछ दोष था। लेकिन ऐसा भी अवसर आता है जब मनुष्य अपने साथीओंके लिये भी कुछ छोड देता है। ऐसा अवसर यह है। इसे वह किताबमें कृष्णचद्र लिख लेवे।

बापु

निवेदनकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८६६) से, सी० डब्ल्यू० ४६७४ से भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. रिचर्ड बी० ग्रेगकी पत्नी

२०९. पुर्जा : महादेव देसाईको

[८ जून, १९४०][1]

मैंने नहीं पूछा।[2] कारण यह है कि मेरे पास कोई प्रमाण नहीं था, और अब भी नहीं है। इसमें अनुमानपर आधारित प्रमाण मेरी समझसे बहुत है। उसे मैं शेख मेहतावके अवतारके रूपमें देखता हूँ। तुम सारे मामलेको समाप्त हो गया मान सकते हो। उपवास तो जो मैंने लिखा है[3] उसी कारणसे छोड़ा है। लेकिन मेरे लिए यह प्रकरण अभी समाप्त नहीं हुआ है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

२१०. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

८ जून, १९४०

चि० चिमनलाल,

आभाके बारेमें लिखना मैं भूल जाता हूँ। तुम्हें महिला आश्रमको लिख देना चाहिए कि उसका खर्च यहाँसे नहीं दिया जायेगा। उसे फीस-माफ छात्राके रूपमें भरती करना है। अगर फीस माफ करने का रिवाज ही बन्द हो गया हो, तो दूसरी बात है। आजकल निर्णय किसके हाथमें है?

बापू

[पुनश्च :]

जो कपड़े वह यहाँ पहनती है, वही वहाँ पहन सकेगी न?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०२) से

१. यह उस दिन लिखा गया प्रतीत होता है जिस दिन गांधीजी ने उपवासका इरादा छोड़ दिया था।

२. महादेव देसाईने गांधीजी को लिखा था कि जो पत्र लीलावतीने खो दिया था, वे उसके बारेमें जानना चाहते थे।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

२११. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
८ जून, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी सलाह है कि अभी तुम्हे वही रहना चाहिए। तुम्हारा स्वास्थ्य भी अच्छा हो जाये तो ठीक। हाँ, तुम खुद जब वहाँसे ऊब जाओ तब तो भागोगे ही। तुम दोनो बीमार हो, यानी मनसे बीमार हो। मानसिक रोगकी भी उपेक्षा नही की जा सकती।

बापूके आशीर्वाद

श्री मुन्नालाल शाह
वाडीलाल आरोग्य भवन
पंचगनी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३५) से। सी० डब्ल्यू० ७०९४ से भी, सौजन्य: मुन्नालाल ग० शाह

२१२. एक पुर्जा

८ जून, १९४०

सेवा ही लूगा। रसोईघरमे भी बीमारीकी हालतमे कमसे-कम जाना। खाना-पीना खुश होकर करना ही है। अगर यह नही होगा तो सब सेवा वृथा।

सबसे अच्छा तो यह होगा कि तू झोहराके पास जा। वहा उसको रास्तेपर चढा और वहा बैठी-बैठी चर्खा वगैराका काम भी कर। बिलकुल शात होने के बाद आवेगी। लेकिन यह तेरी मुनसफी [विवेक] पर है। मुझे लगता है कि झोहराके अलीगढ जाने से न अकबरका भला होगा न झोहराका। इसमें मेरी गलती हो सकती है।

बापुकी दुआ

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१७)से

२१३. एक पुर्जा

[८ जून, १९४० के पश्चात्][1]

तूने जो फजरमें कहा, ये दो चीजें तो चोरीकी बातके पहलेकी थी, इसलिए वह तो करती रहू, यह कहना बिच्छूके डक-सा लगा। जो मेरे स्वावमे नही था वह मुझे कहती है। अब मेरा फैसला यह है कि वह दो चीजें भी छोड़ना है। जूते और पाखाना। तुझे मोह तो है नही, इसलिए कोई कष्टकी बात नही है। और हमारा हिसाब साफ हो जायगा।

उसका क्या लिखू। वक्त बतायेगा। भूतकालका मेरा अनुभव।

बापु

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३८)से

२१४. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
९ जून, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारे दो पत्र एक साथ आये। पता ठीक होने पर भी पहला पत्र सेगाँव पहुँच गया था। विचित्र बात है कि यह गलती होती ही जा रही है। लगता है, हमें इसे बरदाश्त ही करना पडेगा। मैं शिकायतके लिए लिफाफा भेज रहा हूँ।

तुम्हारी गुजराती बिलकुल ठीक है। इससे पता चलता है कि कैसे तुमने उसे आसपासके वातावरणसे ही सीख लिया है। वैसे, यह भी है कि पजाबी जाननेवालो के लिए गुजराती सीखना आसान पड़ता है।

हाँ, मैंने तुम्हारा 'आवर ड्यूटी'[2] का अनुवाद देखना शुरू कर दिया है, और कुछ दूसरे लेखोका भी। सारे समाप्त करके ही छोड़ूँगा।

तुम्हे अपनी बाँह या हथेलीमे चोट नही लगने देनी चाहिए। मेरी तरह दायें हाथसे सूत निकालना सीख लेना चाहिए।

हाँ, याद आया — तुम्हारी घडी मेरे हाथों चलती ही नही। दो दिन बाद मैंने उसमे चाबी देना ही बन्द कर दिया।

१. चोरीकी घटनाके उल्लेखसे

२. देखिए पृ० ९३-९५।

मुझे खुशी है कि तुमने अन्दरूनी झगड़ेमें [सुलहका] पैवन्द लगा दिया है। लेकिन पैवन्द कबतक टिकेंगे?

तुम मुझसे पूछती हो, मौन क्यों रखा है। झल्लाहटसे बचने और अपनी शक्ति संचित रखने के लिए। मेरे कामकी मात्रा दूनी तो हो ही गई है। झल्लाहट करीब-करीब बिलकुल नहीं रह गई है। अब तो बोलने के लिए जोर लगाना पड़ेगा। मुझे अपना मौन प्रिय है। आशा है, म०[1] तुमको इस तरहकी सारी चटपटी बातें सुनाता रहता होगा, अ० स०[2] भी।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७२)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२८१ से भी

२१५. पत्र : भोलानाथको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा
९ जून, १९४०

भाई भोलानाथ,

तुमारा पत्र मिला। मैं पाता हूं कि दिवानकी इच्छा ही प्रजामंडलकी बातको टालने की है। कहीं तो हमारे दृढ रहना ही है। झंडाका आग्रह छोड़ना है तो छोडो। रिस्पोनसिबल गवरमेंटको गोल [उद्देश्य] कबूल करे। अखिल भारत कोन्फरेन्सके साथ संबंधके बारेमें क्या नीति अखत्यार करनी, वह निर्णय जवाहरलालजी से करवा लो। मैं कुछ दुविधामें हूं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १३७८)से

१. महादेव देसाई
२. अमतुस्सलाम

२१६. प्रश्नोत्तर

गिरफ्तारियाँ

प्र० : आपको मालूम ही होगा कि भारत रक्षा अधिनियमके अधीन गिरफ्तारियों-पर-गिरफ्तारियाँ हो रही हैं। अब तो आपके चहेते डॉ० लोहिया भी पकड़ लिये गये हैं। मैं समझता हूँ, आपको तो अब भी इन गिरफ्तारियोंके प्रति विरोध-प्रदर्शनके रूपमें भी सविनय अवज्ञा आरम्भ करने की जरूरत क्या दिखाई देगी! या शायद आप इन गिरफ्तारियोंको उचित ही मानते हों।

उ० प्रश्न सगत है। हाँ, डॉ० लोहिया किसी अन्य काग्रेसजनकी अपेक्षा मेरे कुछ ज्यादा चहेते नही है। यह सच है कि वे पहलेसे मेरे अधिक निकट आ गये है। हर गिरफ्तारी मुझमे मानसिक विरोधकी भावना पैदा करती है। किन्तु मुझे अपने सभी विचारोंको लिपिबद्ध करने की आदत नही है। मैं मानता हूँ, हमारे विचारोका भी प्रभाव अवश्य पडता है, हालाँकि हमे या दुनियाको उसका भान नही होता। मैंने सोचा कि मेरा कोई सार्वजनिक विरोध करना निष्फल होगा। युद्ध-कालमे तो सब-कुछ उचित होता है या सब-कुछ अनुचित। मैं तो खुद युद्धको ही अनुचित मानता हूँ। इसलिए मेरे दृष्टिकोणसे दमन-मात्र बुरा है। लेकिन अबतक मुझे युद्धका कोई कारगर इलाज नही मिल पाया है। अत जिस प्रकार मैं युद्धको सहन करता हूँ उसी प्रकार युद्ध करनेवालो के दमनात्मक कार्यो को भी सहन करता हूँ। भारतके बारेमे एक विचित्र बात यह है कि जहाँतक मैं जानता हूँ, अकुश उन लोगो पर नही रखा जा रहा है जो नाजियोकी मदद कर सकते है, बल्कि उन देशभक्तो पर रखा जा रहा है जो अपने देशकी आजादीके भूखे है। किसी स्वतन्त्र देशमे ऐसे लोग अपने देशपर बुरी निगाह डालनेवालो के खिलाफ लडते देखे जायेंगे, लेकिन यहाँ तो उनका मुख्य दोष ही यह है कि उन्हे अपने देश और उसकी स्वतन्त्रतासे प्रेम है। अगर अधिकारियोंके पास इनके खिलाफ कोई और बात है तो उन्हे उसे प्रकाशित करना चाहिए। दमन बढता जा रहा है। उन्हे मालूम है कि काग्रेस हिंसाको रोकने का सबसे शक्तिशाली साधन है। काग्रेसने ऐसा कोई भी कदम नही उठाया है जिससे हिंसाको रोकने के उसके प्रयत्नोके बावजूद हिंसा भडक उठे। इसलिए इन दमनात्मक कार्योको समझना मुश्किल है। ये किसी सगठित योजनाके अग प्रतीत होते है, क्योकि ये लगभग सभी प्रान्तोमे चल रहे है। काग्रेसजनोंके सामने मैं एक विचार रखता हूँ, वह चाहे जिस लायक भी हो। कैदका उन्हे कोई भय नही है। सविनय अवज्ञा की जाये तो कैद होना तो निश्चित ही है। फर्क इतना ही है कि एक प्रसगमे कैद आमन्त्रित की जाती है और दूसरेमें यह अनाहूत

ही आती है। इसलिए कांग्रेस जो भी कदम उठा सकती है वह गिरफ्तार लोगोकी रिहाईके लिए नही होगा, बल्कि उसका उद्देश्य तो जितनोको सरकार गिरफ्तार कर सकती है उससे अधिक लोगोको गिरफ्तारीके लिए पेश करके उसकी योजनाको निरस्त कर देना ही होगा। इसलिए सवाल यह है कि कांग्रेसको अभी वह कदम उठाना चाहिए या नही।

असंगति

प्र० : हालमें ही आपने लिखा था: "मौजूदा वातावरण ऐसा नहीं है कि अंग्रेजोंको सविनय अवज्ञा द्वारा सही दिशा की ओर प्रेरित किया जा सके।" और उसी लेखमें[1] आपने कहा था: "अगर देश स्पष्ट रूपसे अहिंसक और अनुशासित होता तो मैं बेझिझक सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देता।" अब सवाल यह उठता है कि अगर कुछ समय बाद देश इतना अहिंसक हो जाये कि उसकी अहिंसा स्पष्ट दिखे और लड़ाई लम्बे अर्से तक चले तो क्या आप सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देंगे? और अगर कर देंगे तो क्या उससे अंग्रेजोंको परेशानी नहीं होगी? अगर कांग्रेसके बाहरके संगठन अहिंसक न हुए तो क्या आप सविनय अवज्ञा आरम्भ करने में झिझकेंगे?

उ० . यदि आप मेरे लेखमें अव्याहरणीय वाक्योंको जोडकर उसे पढ़ेंगे तो आपको कोई असंगति नही दिखाई देगी। "मौजूदा वातावरण"का अर्थ यह है कि अपने घर-बार की सुरक्षाके खतरेमें रहते अंग्रेज और किसी चीजको सहन करने की स्थितिमे नहीं है। इसका मतलब यह भी है कि हमारी अहिंसा नितान्त अपूर्ण है। अगर हम पूर्ण और इसलिए स्पष्ट दिखने लायक अहिंसक हो तो उसका मतलब यह होगा कि अंग्रेज स्वय ही हमारी अहिंसाको स्वीकार करेंगे। किसी भी विशुद्ध अहिंसा-त्मक कदमसे उन्हे कोई परेशानी नही हो सकती। सच तो यह है कि यदि हमारी अहिंसा पूर्ण हो तो हमारे बीच आन्तरिक मतभेद न हो, कांग्रेस दलके अन्दर कलह न हो और न गैर-कांग्रेसियोंके साथ कोई झगडा हो। उस हालतमें सविनय अवज्ञाकी जरूरत ही न पड़े। इन स्तम्भोमे हालमें ही मैंने ऐसी ही बात कही है। आपके द्वारा उद्धृत वाक्योमें मैंने वही बात दूसरे ढगसे कही है। कारण, किसी ऐक्यबद्ध राष्ट्र द्वारा उठाये गये अहिंसात्मक कदमका तो यह अन्तर्भूत गुण है कि कोई कटुता पैदा किये बिना वह सफल होगा। इसलिए जिस क्षण मेरे सपनेकी अहिंसा स्थापित हो जायेगी उसी क्षण मुझे कार्रवाई करने के लिए तैयार समझिए, फिर अंग्रेज चाहे जैसी भी मुसीबतोंसे घिरे हुए हो, उससे कोई फर्क नही पडेगा। वस्तुत जब वैसी अहिंसा आयेगी तो वह न केवल भारतको, बल्कि ब्रिटेन और फ्रान्सको भी उबार लेगी। अलबत्ता, आपका यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि मैंने यह बेकारकी ही

१. देखिए पृ० ११९-२०।

बात लिखी, क्योंकि मैं जानता था कि जिस कोटिकी अहिंसा मैं चाहता हूँ वह मेरे जीवन-कालमें तो नहीं आनेवाली है। मैं अदम्य आशावादी हूँ। कोई भी वैज्ञानिक अपना प्रयोग शंकाकुल मनसे आरम्भ नहीं करता। मैं कोलम्बस और स्टीवेन्सनकी परम्पराका आदमी हूँ। घोरतम कठिनाइयोंके बीच भी उन्होंने कभी आशाका दामन नहीं छोड़ा था। चमत्कारोंका युग बीत नहीं गया है। जबतक ईश्वर है, चमत्कार भी होते रहेंगे। आपके दूसरे प्रश्नका उत्तर ऊपर कही गई बातोंमें आ गया है। कहने की जरूरत नहीं कि जो चित्र मैंने यहाँ उपस्थित किया है उसमें गैर-कांग्रेसी संगठनों द्वारा भी अहिंसाके ग्रहण कर लिये जाने की कल्पना शामिल है। लेकिन पहले करने का काम पहले करना है। कांग्रेस पहले अपना घर तो व्यवस्थित कर ले।

एक विधवाकी कठिनाई

प्र० : मैं एक बंगाली ब्राह्मण विधवा हूँ। वैधव्य-प्राप्तिके दिनसे इन २४ सालोंके दौरान अपने भोजनके बारेमें कठोर नियमोंका पालन करती आई हूँ। अपने ही कुटुम्बके बीच भी मुझ विधवाका अपना अलग चौका है और मेरे बर्तन भी अलग हैं। मैं आपके सत्य और अहिंसाके आदर्शमें विश्वास रखती हूँ। १९३० से मैं आदतन खादी पहनती हूँ और नियमित रूपसे कातती हूँ। ढाकाके एक हरिजन गाँवमें हमारे महिला-समाजने एक हरिजन स्कूल खोल रखा है। मैं वहाँ जाती हूँ और हरिजनोंमें शरीक होती हूँ; मैं अपनी मुसलमान बहनोंसे भी मुक्त भावसे मिलती-जुलती हूँ, और उनके लिए मेरे हृदयमें शुभेच्छा-ही-शुभेच्छा है। लेकिन मैं हरिजनों या दूसरी अ-ब्राह्मण जातियोंके साथ खा-पी नहीं सकती। क्या मुझ-जैसी सनातनी विधवाएँ सक्रिय या निष्क्रिय सत्याग्रहियोंके दलमें भरती नहीं हो सकतीं?

उ० कांग्रेस-विधानकी दृष्टिसे आपको भरती होने का पूरा अधिकार है, और आप अपने अधिकारका उपयोग भी बखूबी कर सकती हैं। किन्तु जब आपने मुझसे पूछा ही है तो मैं आपको भरती होने से मना करूँगा। मैं जानता हूँ कि बंगाली विधवाएँ कितनी बारीकीसे उन नियमोंका पालन करती हैं जो परम्परासे उनके लिए नियत हो चुके हैं। लेकिन जिन विधवाओंने अपनेको देशके कामके लिए समर्पित कर दिया है — और वह भी अहिंसक रीतिसे काम करने के लिए — उन्हें किसीके साथ खाने-पीनेमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। मैं इस बातमें विश्वास नहीं करता कि लोगोंके साथ खाने से, फिर चाहे वे कोई भी क्यों न हों, आध्यात्मिक उन्नतिमें कोई बाधा पड़ती है। निर्णायक तत्त्व तो किसी कार्यके पीछे विद्यमान हेतु है। अगर कोई विधवा प्रत्येक कामको सेवाकी भावनासे करती है, तो उसका कल्याण ही है। कोई विधवा खान-पान तथा अन्य नियमोंका बड़ी सावधानीसे पालन करती है फिर भी यदि वह पवित्र हृदयकी नहीं है, तो वह सच्ची विधवा नहीं है। इसे आप भी जानती हैं और मैं भी कि किसी समाजका नियमन

करने के लिए जो नियम होते है उनका दिखावेके तौरपर पालन करके कितने ही पाखण्डी अपनेको छिपा लेते है। इसलिए मै आपको सलाह दूँगा कि अन्तर्जातीय भोज तथा ऐसी ही अन्य वातोमे जो विधि-निषेध है उन्हे आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय प्रगतिमें वाधक समझकर उनकी उपेक्षा कीजिए और हृदयसे सस्कारपर ही ध्यान दीजिए। सत्याग्रह दलमे मै आत्मतुष्ट लोगोको नही, वल्कि उनको लेना पसन्द करूँगा जिन्होने अपने विवेकसे काम लिया है और जीवनका एक ऐसा मार्ग चुन लिया है जो उनके मस्तिष्क और हृदय दोनोको श्रेयस्कर प्रतीत हुआ है।

सेवाग्राम, १० जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-६-१९४०

२१७. टिप्पणियाँ

स्वत्वाधिकार

श्री सतीश कालेलकर लिखते है

विचारोसे आधुनिक और स्वभावसे किसी हदतक भौतिकवादी होने के कारण स्वत्वाधिकार (कॉपीराइट)के प्रश्नपर आपके विचारोको मैने हमेशा शंका की दृष्टिसे देखा है। यदि मुझे ठीक याद है तो अपने मित्रोंके समझाने-बुझाने पर ही आप अपनी 'आत्मकथा'का स्वत्वाधिकार अपने पास रखकर उसके मुनाफेको अ० भा० च० संघकी खातिर वचाने को राजी हुए थे। मै यह स्वीकार करता हूँ कि सत्यके अन्वेषकको उसके प्रसारका स्वागत करना चाहिए और स्वत्वाधिकारपर आग्रह रखकर उसके प्रसारके मार्गमें वाधाएँ नहीं डालनी चाहिए। लेकिन इस उदारताकी भी एक हद है, और उचित-अनुचितका विचार किये विना उसका नाजायज फायदा उठानेवालो को रोकना जरूरी है।

शायद आपको मालूम हो कि शनिवारकी शाम और रविवारकी सुवह प्रकाशित होनेवाले अखवारोंके लिए 'हरिजन'की सामग्रीका उपयोग वड़ा सुविधाजनक रहता है। कुछ सम्पादक तो "शनिवार और रविवारकी छुट्टी" के दौरान ही इसका उपयोग करके सन्तुष्ट नहीं होते, वल्कि सोमवारकी सुवह भी उदारतापूर्वक इसकी सामग्रीका इस्तेमाल करते हैं।

यहाँ मै अन्य अखवारोमें 'हरिजन'के लेखोका उद्धृत किया जाना वन्द करवाकर उसकी विक्रीको, जो अव भी काफी अच्छी है, वढ़ाने की सम्भावना की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, और न मै आपके इस विचारके विरुद्ध हूँ कि सत्यका व्यापक प्रसार होना चाहिए। लेकिन इसके कुछ और परिणाम

भी निकलते हैं, जिन्हें नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। कभी-कभी ऐसा देखने में आता है कि भारतमें प्रकाशित होनेवाले अंग्रेज मालिकोंके कुछ अखबार, जिन्हे राष्ट्रीय आन्दोलनसे कुछ खास प्रेम नहीं है, 'हरिजन' में धारावाहिक रूपसे चर्चित प्रश्नोंसे सम्बन्धित अपने मतलबके अंश और कभी-कभी तो उनके एक ही पहलूको उद्धृत कर देते हैं। उदाहरणके लिए, अजमेरके मामलेको लें। अंग्रेज मालिकोंके जिन भारतीय अखबारोंने उस घटनाका विवरण तथा अजमेरके कार्यकर्त्ताओंको संयमसे काम लेने की आपके द्वारा दी गई सावधानी-भरी सलाहको प्रकाशित किया उन्होंने उस मामलेके सम्बन्धमें कमिश्नरके "स्पष्टीकरण"[1] को छापने का तो खास खयाल रखा, लेकिन 'हरिजन' के लेखोंको निर्बाध रूपसे उद्धृत करने के सन्दर्भमें उन्होंने 'शालीनताके इस तकाजे' को पूरा करने का कोई ध्यान नहीं रखा कि वे आपके अन्तिम और अकाट्य उत्तरको[2] भी प्रकाशित कर दें। सभी तथ्योंको जाने बिना कोई आरोप लगाने की आपकी अनिच्छा और अपने लेखनमें आपके द्वारा विचारपूर्वक बरते जानेवाले संयम तथा निष्कपटताको उन्होंने "गांधीकी स्वीकारोक्तियाँ" बताकर पेश किया। 'हरिजन' में प्रकाशित "नामुआफिक" लेखोंको बेखटके नजर-अन्दाज कर दिया जाता है।

शायद आप कहे कि सत्यके लिए डोंडी पीटने की जरूरत नहीं होती, और अखबारोंकी चुप्पीकी साजिशके बावजूद उसे कभी दबाया नहीं जा सकता। लेकिन प्रकारान्तरसे अर्ध-सत्योंके प्रकाशनकी अनुमति देकर असत्यके प्रचारमें शरीक होना तो उचित नहीं है। क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि आपको अपनी निर्बन्ध अनुमतिपर इतना बन्धन लगा देना चाहिए जिससे अन्य अखबार केवल छिट-पुट भ्रामक अंशों और पूरीकी-पूरी लेखमालामें से इक्के-दुक्के लेखोंको उद्धृत न कर सकें?

युवक कालेलकरकी बातोमे काफी तत्त्व है। मै यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे लेखोको अक्सर संक्षिप्तिसे होनेवाला नुकसान उठाना पडता है। उन्हे ऐसे अर्थ देने-वाले रूपमे पेश किया जाता है जिनका कोई विचार मेरे मनमे कभी रहा ही नही। पत्र-लेखक द्वारा दिया गया अजमेरका उदाहरण निर्णायक है। स्वत्वाधिकारका यह सवाल मेरे सामने अक्सर उठाया गया है। लेकिन अपने लेखोंका स्वत्वाधिकार रखना मेरे मनको किसी भी तरह मंजूर नही है। मै जानता हूँ कि इसमे आर्थिक नुकसान भी होता है। लेकिन 'हरिजन' मुनाफेके लिए नही प्रकाशित किया जाता, इसलिए जबतक उसमे घाटा नही लगता, मै सन्तुष्ट हूँ। मै तो यही मानूंगा कि मेरे इस त्यागसे अन्तमे सत्यकी सेवा ही होगी।

१. देखिए "अजमेर-काण्ड", पृ० ३९-४१।

२. देखिए "अजमेर", पृ० ४८-५०।

मुझे बख्शें

मेरे बार-बार विनती करने पर भी मित्रगण मुझसे सन्देशोंकी माँग करते ही रहते हैं। मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि ऐसी बातोंके लिए मैं निकम्मा हूँ। जहाँ भेजे बिना नहीं चल सकता वहाँ मैं सन्देश जरूर भेजता हूँ — जैसे उन सभाओंको जो मेरी प्रेरणापर बुलाई गई हो या जिनकी ओर ध्यान देने के अन्य महत्त्वपूर्ण कारण मौजूद हो। ऐसे अवसरोंके अलावा तो मुझे सन्देश भेजने या पत्रोंके उत्तर देने के आनन्दसे स्वयको आग्रहपूर्वक वचित ही रखना चाहिए। मैंने अनिश्चित कालका मौन ले रखा है, जिसका एक कारण यह है कि मुझे जो बहुत सारे काम करने पडते हैं उन्हे निबटा सकूँ, फिर भी हर दिन मेरा काम पिछड़ता ही जाता है। इस परिस्थितिमें उत्साही भाइयोसे कहूँगा कि अगर मैं उन्हे कोई सन्देश न भेज पाऊँ, और न उनके पत्रोकी प्राप्ति ही सूचित कर पाऊँ तो वे मुझे माफ करेंगे।

एन्ड्रयूज-स्मारक

किसी भी कोषके लिए चन्दा स्वत नही आता, उसी तरह इस कोषके लिए भी नही आयेगा। चन्देकी उगाहीके लिए सगठनकी जरूरत पड़ेगी। आशा करनी चाहिए कि दीनबन्धुके बहुत-से भक्त इस कामको स्वेच्छासे अपने हाथोमें ले लेगे। इसलिए मुझे यह घोषणा करते हुए बडी प्रसन्नता हो रही है कि आगरामे यह काम विद्यार्थीगण करने जा रहे हैं। इससे उपयुक्त और क्या हो सकता है कि वे सर्वत्र इस राशिकी — जो आखिरकार बहुत मामूली है — उगाहीकी व्यवस्था करे। चार्ली एन्ड्रयूज सबसे बढ़कर तो एक उच्च कोटिके शिक्षा-शास्त्री थे। वे अपने मित्र और प्रमुख, आचार्य रुद्रकी सहायता करने के लिए एक शिक्षा-शास्त्रीकी हैसियतसे अपने देशसे आये थे। अन्तमे उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिकी शिक्षण-सस्थाको अपना गेह बनाया। उसके निर्माणमे उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया। शान्तिनिकेतनसे एन्ड्रयूजके घनिष्ठ सम्बन्धको अलग करके उसे देखे तो भी यह सस्था विद्यार्थी-जगत्की श्रद्धाकी पात्र है। इसलिए मै आशा करता हूँ कि भारतके विद्यार्थी चन्दा इकट्ठा करने के काममे प्रमुख रूपसे भाग लेगे। फिर आते हैं वे दीनजन जिन्हे उनके श्रमका विशेष लाभ मिला है। जो चन्द धनाढ्य मित्र दीनबन्धुके निकट-सम्पर्कमें आये और जिन्होने उनकी कीमत ठीकसे पहचानी उनके बजाय यदि हजारो विद्यार्थियो तथा दीनजनोके छोटे-छोटे दानोसे यह पाँच लाखकी राशि इकट्ठी हो जाये तो यह बहुत बड़ी बात होगी, उपयुक्त चीज होगी।[1]

दक्षिण आफ्रिकासे श्रद्धांजलि

नेटाल भारतीय सघके सयुक्त अवैतनिक मन्त्रियोने मुझे निम्न सन्देश[2] भेजा है :

१. गाधीजी तथा कुछ अन्य लोगोंके हस्ताक्षरोंसे दीनबन्धु स्मारक कोषके लिए निकाली गई अपीलके लिए देखिए परिशिष्ट २।

२. यहाँ सन्देशके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

पूज्यपाद सी० एफ० एन्ड्रयूजकी मृत्युपर इस संघके तत्त्वावधानमें आयोजित भारतीय समुदायकी एक सभाने सर्वसम्मतिसे निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया :

"नेटाल भारतीय संघ . . . के तत्त्वावधानमें आयोजित भारतीय समुदायकी यह सभा पूज्यपाद सी० एफ० एन्ड्रयूजके निधनपर गहरा शोक प्रकट करती है। दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी उन्होंने असाधारण सेवा की, और मानवताके नामपर प्रवासी भारतीयोंके साथ बेहतर व्यवहार करने के उनके अनुरोधोपर सरकार तथा जिम्मेदार यूरोपीय लोकमत हमेशा कान देता था। . . ."

सभामें . . . परम पूज्य आर्चडीकन हैरिस-सहित अनेक प्रमुख यूरोपीय भी शामिल थे . . . । . . .

हम आदरपूर्वक आपके प्रति अपनी सम्वेदना प्रकट करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि श्री एन्ड्रयूजके निधनसे आपने अपना एक विश्वस्त मित्र खो दिया है।

ग्वालियर और खादी

अ० भा० च० सघको जानकारी मिली है कि ग्वालियर रियासतने खादीके सम्बन्धमें निम्नलिखित विभागीय आदेश जारी किया है। मूल आदेश हिन्दुस्तानीमे है[1]

ग्वालियरके अधिकारी अपनी सतर्कताके लिए प्रशसाके पात्र हैं। अगला कदम वहाँकी खादी-प्रवृत्तिके लिए रियासतकी ओरसे अनुदान दिया जाना और ग्वालियरके भद्रजनो द्वारा खादीका उपयोग होना चाहिए।

गढ़वालके हरिजन

अभी कुछ ही दिन पहले मुझे यह बताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि गढवालमे एक हरिजन नववधू कैसे बिना किसी रोक-टोकके पालकी या डाँडीमे ले जाई गई। लेकिन हरिजन सेवक सघके श्री श्यामलाल मुझे सूचित करते है कि वह मामला एक अपवाद सिद्ध हुआ है, और हरिजनो द्वारा डाँडीके प्रयोगके मामलेमे लगभग पहलेकी ही तरह रुकावट चली आ रही है। अभी हालमे ऐसे दो मामले उनकी निगाहमे आये है। जिन हरिजनोने डाँडीका इस्तेमाल करने की जुर्रत की थी उन्हे "बेरहमीसे पीटा गया।" हरिजनोमे जागृति आ रही है। उन्होने सरक्षणके लिए

१. यहाँ नही दिया जा रहा है। आदेशमें कहा गया था कि रियासतने हाथसे कते और बुने सभी प्रकारके कपड़ोंपर आय-कर माफ कर दिया था, लेकिन देखने में आया है कि मिलके सूतके बने कपड़ेको भी खादी बताकर बिना आय-कर दिये उसका व्यापार चलाया जा रहा है। इससे एक ओर तो राजस्वकी हानि होती है और दूसरी ओर इस रियासतका प्रयोजन भी विफल हो जाता है। इसलिए अ० भा० च० संघ द्वारा प्रमाणित खादीको ही इस रियायतका लाभ दिया जाये।

कमिश्नर (आयुक्त) ने प्रार्थना की है। कमिश्नरने वादा किया है कि अगर १५ दिन पूर्व उन्हें सूचना दे दी जाये तो वे संरक्षण दे सकेंगे। लेकिन इनसे कटुता और बढ़ेगी। असली जरूरत तो सवर्ण हिन्दुओंके हृदय-परिवर्तनकी है। मुझे पता लगा है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस मामलेमें खास तौरपर दिलचस्पी ले रहे हैं। संयुक्त प्रान्तकी कांग्रेस कमेटी कार्रवाई कर रही है। ये सब सही दिशामें उठाये गये कदम हैं। आशा रखनी चाहिए कि सुधारकोंका परिश्रम सफल होगा और हरिजनोंको आगे पुलिसके संरक्षणकी जरूरत नहीं रहेगी। लेकिन उन्हें सुधारकोंके परिश्रमकी सफलताका इंतजार करते हुए बैठे नहीं रहना चाहिए। उन्हें अपने अधिकारका आग्रह करना चाहिए, भले ही वैसा पुलिस-संरक्षण माँगकर ही क्यों न हो। यह याद रखना चाहिए कि गढ़वाल बहुत अच्छे सिपाही पैदा करता है। भारतका यह हिस्सा अपने सौंदर्यके लिए विख्यात है। तब क्या केवल सवर्ण हिन्दू ही हीन बने रहेंगे?

पद-यात्रा

मद्रासकी गोकुलम् हरिजन बस्तीकी श्रीमती जी० विशालाक्षी लिखती हैं

> गोकुलम् हरिजन बस्तीके नौ हरिजन छात्र, जो ग्राम-सेवा-कार्यका प्रशिक्षण ले रहे हैं, पड़ोसके चिंगलपेट जिलेके गाँवोंकी पद-यात्रा करना चाहते हैं। आश्रममें अपने प्रशिक्षणके दौरान वे अपने पिछड़ेपनके कारणकी जानकारी हासिल करते हैं और स्वावलम्बी बनकर उसे दूर करने का उपाय सीखते हैं। वे इस यात्रामें ग्रामवासियोंकी आर्थिक स्थितिका प्रत्यक्ष अध्ययन करेंगे और इस बातका भी पता लगायेंगे कि ग्राम-विशेषमें किस प्रकारके गृह-उद्योग शुरू किये जा सकते हैं। वे लोगोंको सिखायेंगे कि किस तरह मितव्ययिताकी आदतें डाली जा सकती हैं, कैसे लोग आपसमें मिलकर बचतकी राशियोंको इकट्ठा कर सकते हैं और बेहतर जीवन-स्तर, खेती-बाड़ी, ऋण-व्यवस्था, तथा चटाई बनाने और हाथ-करघे पर बुनाई करने-जैसे उद्योगोंके लिए अपनी सहकारी समितियाँ बनाकर किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं। जो छात्र ग्राम-कल्याण-कार्यके लिए प्रशिक्षित हैं उनसे आशा की जाती है कि वे गाँवोंमें बस जायेंगे और सरकार या सार्वजनिक संस्थाओंसे किसी तरहकी सहायताकी उम्मीद किये बिना कल्याण-कार्य करेंगे। कताई, बुनाई, चटाई और कागज बनाना तथा मधुमक्खी पालना आदि जो उद्योग उन्होंने सीखे हैं उन्हींसे वे अपनी रोजी कमा लेंगे। गाँवोंमें यात्रा करते समय वे ग्रामवासियोंसे इन गृह-उद्योगोंके बारेमें भी बातचीत करेंगे और बतायेंगे कि वे अपने खाली वक्तमें ये काम कर सकते हैं। पहली जूनको मद्राससे रवाना होकर ३० जूनको यह दल अपनी यात्रा खत्म करेगा। चूंकि सब छात्र हरिजन हैं, इसलिए वे केवल चेरियोंमें ही जायेंगे। यदि सवर्ण हिन्दू स्वयं उन्हें अपने यहाँ आनेको निम-

न्त्रित करेंगे तो बात और है। अपनी यात्राकी अवधिमें अपने दैनिक भोजनके लिए वे उन चेरियोंके आतिथ्यपर निर्भर करेंगे जिनमें वे जायेंगे।

आशा है, यात्रियोंने पहली जूनसे अपनी यात्रा शुरू कर दी होगी। यह एक अच्छी योजना है। अगर यात्रा सफल हुई तो वह अनुकरणीय उदाहरण होगी। अगर यात्री सही ढंगके होंगे, तो उन्हें जरूर सफलता मिलेगी। वे गाँववालों पर भार-रूप न होंगे, क्योंकि ग्रामवासियोंकी ओरसे मिलनेवाले आतिथ्यका वे पर्याप्त प्रतिदान देंगे।

सेवाग्राम, १० जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-६-१९४०

२१८. पत्र : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणीको

सेवाग्राम
१० जून, १९४०

भाई काकूभाई,

अ० भा० च० संघके प्रस्तावपर हस्ताक्षर करके इसके साथ भेज रहा हूँ। इसे बैंकमें देना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४५)से। सौजन्य पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणी

२१९. पत्र : द० बा० कालेलकरको

सेवाग्राम
१० जून, १९४०

चि० काका,

लगता है, टंडनजी[1] को तार भेजनेके बारेमें कुछ गोलमाल हुआ है। मैंने तो ठीक लिखकर दिया था। अमृतलालने समझा कि तार तुम्हें भेजा जाना है। प्रश्न यह है कि अब क्या किया जाये। तारीख कौन-सी हो, यह तुम्हीं निश्चित कर सकोगे। सभा १४ के बदले अब १९ को होगी। फिर भी उन्हें १४ को बुलाया जाये

१. पुरुषोत्तमदास टंडन

या १८ को यह मेरी समझमें नही आता। यह पत्र तुम्हे कल मिलेगा। अत जैसा उचित समझो वैसा तार करना। मैं उससे सहमत हो जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९२४)से

२२०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेवाग्राम, वर्धा
१० जून, १९४०

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। सब-कुछ गडबडीमें पड़ गया है। इसमें से मार्ग निकालना पड़ेगा। हम दैवाधीन है। उसे जो करना होगा, करेगा।

सगठनके[1] बारेमे जैसा तेरी आत्मा कहे वैसा करना। मेरा कोई विरोध नही है, किन्तु प्रोत्साहन भी मैं नही दूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०७)से। सी० डब्ल्यू० ६८४६ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

२२१. दो दल

मुझसे निजी तौरपर और सार्वजनिक रूपसे यह अनुरोध किया जा रहा है कि मैं सभी दलोको इकट्ठा करके उनके बीच कोई सर्वसम्मत समझौता करवाऊँ। उनका कहना है कि फिर तो हम ग्रेट ब्रिटेनसे जो-कुछ चाहते है वह हमें मिल कर रहेगा। ये नेक मित्र एक मुख्य बात भूल जाते है। काग्रेस पूरे हिन्दुस्तानके लिए बोलने का दावा करती है और विशुद्ध स्वतन्त्रता चाहती है। फिर वह उन दलोके साथ सर्वसम्मत समझौता कैसे कर सकती है जिनकी ऐसी कोई भूमिका ही नही है? उसके वैसा करने का मतलब उस विश्वासको भग करना होगा जो उसे प्राप्त है। इसलिए वस्तुस्थिति ऐसी है कि जबतक सबका एक समान उद्देश्य न हो तबतक कोई "सर्वदलीय सम्मेलन" नही हो सकता।

अगर ब्रिटिश सरकार यह मान ले कि कोई भी एक दल ऐसा है जो सत्ता सँभाल सकता है तो वह सर्वसम्मत समझौतेकी माँग नही करेगी। मानना होगा कि आज काग्रेसमें वह शक्ति नही है। वह विरोधोका तूफान झेलते हुए अपनी वर्त्तमान स्थिति तक

१. प्रेमाबहन कंटकसे काग्रेसमें महिलाओंकी शाखाका सगठन करनेको कहा गया था, और उन्होंने गांधीजी से मार्ग-दर्शन माँगा था।

पहुँच पाई है। अगर वह कमजोर नही हो जाती और उसमें काफी धैर्य हो तो वह सत्ता हाथमे लेने योग्य शक्ति विकसित कर लेगी। यह तो स्वय हमारा उत्पन्न किया हुआ भ्रम है कि सभी दलोके बीच समझौता हो जाने के बाद ही हम कोई प्रगति कर सकते हैं।

लोकतान्त्रिक, लोक-निर्वाचित दल केवल एक ही है — अर्थात् काग्रेस। शेष सब या तो स्वय-नियुक्त है या वर्गगत आधारपर निर्वाचित। मुस्लिम लीग काग्रेस की ही तरह लोक-निर्वाचित सस्था है, लेकिन वह खुल्लमखुल्ला साम्प्रदायिक है और भारतको दो भागोमे बाँटना चाहती है — एक हिन्दू और दूसरा मुस्लिम। मैंने एक मुस्लिम लीगोकी अपील पढी थी, जिसमे कहा गया था कि ब्रिटिश सरकारको मुसलमानोके साथ समझौता करके उनकी सहायतापर भरोसा रखना चाहिए। यह समस्याके समाधानका — लेकिन साथ ही ब्रिटिश हुकूमतको स्थायी बना देने का भी — एक तरीका होगा। कहने की जरूरत नही कि हिन्दू महासभा चाहेगी कि हिन्दुओके प्रति, जिनमे हिन्दू रियासते भी शामिल हैं, विशेष कृपापूर्ण व्यवहार किया जाये।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रसगमे तो केवल दो ही दल है — एक ओर काग्रेस और वे दल जो उसके साथ है और दूसरी ओर वे दल जो उसके साथ नही है। जबतक इन दोनोंमें से कोई एक अपने ध्येयका त्याग न कर दे तबतक दोनोंके बीच मेल-मिलाप की कोई गुजाइश नही है। मानना होगा कि अपने ध्येयपर जैसा आग्रह रखने का दावा काग्रेस करती है, अपने-अपने ध्येयोपर दूसरे दलोका भी वैसा ही आग्रह होगा। इसीलिए यह गतिरोध है। लेकिन गतिरोध ऊपरी है। सर्वसम्मत माँग तैयार करने की बात अलग रखकर काग्रेसको सबके बीच सहमति स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए और वह हमेशा ऐसा करती भी रही है। यह हृदय-परिवर्तनकी प्रक्रिया है। काग्रेसकी अहिंसा उसे इस बातकी इजाजत नही देती कि वह सबसे अलग-थलग अपनी ही शानमे रहे, जैसा कि उसके विरोधी कहते है। इसके विपरीत उसे सबको प्रेमपूर्वक समझाना-मनाना है, दूसरोके सन्देहोका निवारण करना है और अपनी प्रामाणिकतामे सबका विश्वास जगाना है। ऐसा वह तभी कर सकती है जब खुद अपना घर दुरुस्त कर ले। इस प्रक्रियाके सम्पन्न होने मे समय लग सकता है। समय लगने देना चाहिए। वह कभी बेकार नही जायेगा। लेकिन अगर काग्रेस आशा और आस्था छोडकर इस निष्कर्षपर पहुँचे कि सर्वसम्मत समझौतेका लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उसे अपनी मूल स्थितिसे हट जाना चाहिए तो वह अपनी उस शक्तिसे वचित हो जायेगी जिससे आज वह सम्पन्न है। आज वह भारतकी आशा और आस्थाका मूलाधार है। चाहे काग्रेस अल्पमतमे हो या बहुमतमे, लेकिन अगर वह अपने उस मूलाधारसे हटने से इनकार करती है तो इसमे उसका मगल ही है।

सेवाग्राम, ११ जून, १९४०

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १५-६-१९४०

२२२. पत्र : रामीबहन कुँ० पारेखको

सेवाग्राम, वर्धा
११ जून, १९४०

चि० रामी,[1]

तेरा पत्र मिला। पत्र आज ही मिला और मैं उसका तुरन्त जवाब लिख रहा हूँ। डाक भेज देने के बाद यह मुझे मिला। तुझे खासी तकलीफ हो रही है। टॉन्सिल्स तो निकलवा ही डालना। बच्चोंके खानपानमें खूब सावधानी रखनी चाहिए। कुँवरजी[2] का पत्र हफ्तेमें एक बार तो मिल ही जाता है। उसका स्वास्थ्य ठीक है। उसकी चिन्ता करने की तो बिलकुल जरूरत नहीं है। हाँ, तू उसे चिन्तामें न डाले तो काफी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७३९) से। सी० डब्ल्यू० ७१९ से भी, सौजन्य : नवजीवन ट्रस्ट

२२३. पत्र : बलीबहन अडालजाको

सेवाग्राम, वर्धा
११ जून, १९४०

चि० बली,[3]

तेरा पत्र मिला। तूने जन्म ही कुटुम्बके लिए खपने को लिया है, इसलिए तू व्यर्थके बोझ भी ढोती रहती है। लेकिन जिसकी जैसी भावना होती है, उसीके अनुसार भगवान् उसे पूरी भी करते हैं। इसलिए मुझे तुझपर दया नहीं आती। बस, दूर बैठा तेरी प्रशंसा किया करता हूँ।

सरस्वतीको[4] तू ठीक तैयार करेगी ही, यह मैं जानता हूँ। तूने उसके टॉन्सिल्स निकलवा दिये होंगे। अब तो वहाँ बरसात शुरू हो जाये तो अच्छा हो। तूने ऐसे

१. हरिलाल गांधीकी पुत्री

२. रामीके पति

३. हरिलाल गांधीकी साली

४. हरिलाल गांधीके पुत्र कान्तिलालकी पत्नी

समयमें वहाँ इतनी भीड इकट्ठी करके वडा जोखिम उठाया है। कुँवरजी चौमासा तो शायद पचगनीमे ही वितायेगा। उसकी हालत अच्छी है। कुमी[1] मजेमें होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एम० एन० ९७३८) से। सी० डब्ल्यू० ७१८ से भी; सौजन्य . नवजीवन ट्रस्ट

२२४. पत्र : के० एफ० नरीमानको

[१२ जून, १९४० के पूर्व][2]

अवश्य आओ।[3] जो-कुछ हुआ[4] उससे तुम्हारे प्रति मेरे स्नेहमे कोई अन्तर नही आया हे और तुम देखोगे कि मैं वही हूँ जिसकी तुम प्रशसा किया करते थे।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य : नारायण देसाई

२२५. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जून, १९४०

चि० अमृत,

काफी दिनो वाद तुम्हारे लिए एक पत्र आया है। साथमे भेज रहा हूँ।[5] लीलावतीने[6] परीक्षा पास कर ली है। वह खुशीसे झूम उठी है। अपने लिए कालेजकी

१. वलीकी बहन

२. साधन-सूत्र में यह १२ जूनके पत्रसे पहले दिया गया है।

३. मूलमें ये शब्द गुजरातीमें हैं। के० एफ० नरीमानने लिखा था : "मैं गाधीवादको समझने के लिए आपके पास आना चाहता हूँ। एक समय ऐसा था जब मैं आपकी पूजा करता था।"

४. तात्पर्य शायद वल्लभभाई पटेलपर के० एफ० नरीमान द्वारा लगाये गये इस आरोपसे है कि १९३७ के बम्बई विधान-सभाके नेताके चुनावमें वल्लभभाईने उन्हें हराने के लिए अपने प्रभावका उपयोग किया था। उस प्रसंगपर गाधीजी ने जाँच-पडतालके बाद वल्लभभाईको निर्दोष पाया था और के० एफ० नरीमानसे अपने आरोप वापस ले लेनेको कहा था। अन्तमें पंचोंने भी इन आरोपोंको निराधार बताया था। देखिए खण्ड ६५ और ६६।

५. यह पत्र सोशल सर्विस क्वार्टर्ली के सम्पादक-मण्डलकी ओरसे आया था, जिसमें अमृतकौरसे लेख भेजनेका अनुरोध किया गया था।

६. लीलावती आसर

पढाईका प्रबन्ध करने वह शायद आज बम्बई जाये। वालजीभाईके बेटे मनुने[1] प्रथम स्थान प्राप्त किया है और कई इनाम पाये हैं। वह विलक्षण लड़का है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि बदन पिघल जाये।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७३) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२८२ से भी

२२६. पत्र : सर सैम्युअल होरको[2]

१२ जून, १९४०

आपका अप्रत्याशित पत्र[3] पाकर प्रसन्नता हुई। तदर्थ धन्यवाद। आपके पत्रसे हमारे बीच जो खुले दिलसे और मैत्रीपूर्ण वार्तालाप हुआ करते थे उनकी याद ताजा हो आई है। आप लोग कठिन समयसे गुजर रहे हैं। मैं निरन्तर प्रार्थना करता रहता हूँ कि संघर्षके स्थानपर शान्ति स्थापित हो।

सर सैम्युअल होर
२ चेस्टर प्लेस
रीजेन्ट्स पार्क
एन० डब्ल्यू० आई० लन्दन

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य : नारायण देसाई

१. महेन्द्र वा० देसाई

२. तत्कालीन लॉर्ड प्रिवी सील

३. पत्रमें उन्होंने लिखा था : "हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, यहाँतक कि हमारा जीवन भी संकटसे घिर गया है। जो समय मैंने आपके संविधानपर काम करनेमें लगाया उसका स्मरण मैं बहुत उपयोगी लगते बिताये गये समयके रूपमें करता हूँ। आपको वह पसन्द नहीं आया, लेकिन आपको मेरी ईमानदारीमें तनिक भी सन्देह नहीं था और इसी तरह मुझे आपकी ईमानदारीमें।"

२२७. पत्र : के० एफ० नरीमानको

१२ जून, १९४०

मै काग्रेसकी सेवा इसलिए कर रहा हूँ कि वह ईश्वरकी सेवासे असंगत नही है। मै तुम्हे भरोसा दिलाता हूँ कि मै अपने तई कुछ भी उठा नही रख रहा हूँ।

[अग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य : नारायण देसाई

२२८. पत्र : द० बा० कालेलकरको

वर्धा

१२ जून, १९४०

चि० काका,

हिन्दुस्तानीके बारेमे तुमने जो भेजा है वह विवादास्पद है। मेरा खयाल यह है कि अभी कुछ भी नही छापना चाहिए। जो करना हो, चुपचाप करते जाओ। जब यहाँ आना हो तो मेरे साथ थोड़ी चर्चा कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९८८) से

२२९. पत्र : विजयाबहन म० पंचोलीको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जून, १९४०

चि० विजया,

आखिर तू वापस अम्बाला पहुँच गई। जाते हुए यहाँ झाँक भी नहीं सकी। मैंने तुझे रमालोकी पहुँच बेशक लिख भेजी थी। वे ही आजकल काममें आ रहे हैं। बा के क्या समाचार दूँ? बीमार हो तब न? जब कोई समाचार न दूँ तो समझना चाहिए, सब कुशल है। लीलावती पास होकर खुशीसे पागल हो गई है। अब आगेके अध्ययनके लिए बम्बई जायेगी।

तुम दोनोंको बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१२९) से। सी० डब्ल्यू० ४६२१ से भी, सौजन्य : विजयाबहन म० पंचोली

२३०. पत्र : मणिबहन पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ जून, १९४०

चि० मणि,

जब तू यहाँ आये, तो बलवन्तसिंहके लिए एक अलार्मवाली घड़ी लेती आना।

बापूके आशीर्वाद

श्री मणिबहन पटेल
मारफत सरदार पटेल
६८, मैरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने, पृ० १२६

२३१. पत्र : विद्यावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ जून, १९४०

चि० विद्या,

तुमारा पत्र मिला। चि० वीरेन्द्र अच्छा हो गया, यह ईश्वरकी कृपा। तुमने ठीक धीरज रखी है।

बापुके आशीर्वाद

राणी विद्यावतीजी
कोरोकला
वेनीगज
हरदोई, यू० पी०

मूल पत्रसे. रानी विद्यावती पेपर्स। सौजन्य: राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२३२. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१४ जून, १९४०

चि० अमृत,

मौसम एकाएक अच्छा हो गया है।

मेरी बेवकूफी देखो, कल तुमको लेख भेजना भूल ही गया। अब आज उन्हे नही भेजूंगा। क्योकि उन्हे भेजना बेकार होगा। तुमको 'हरिजन' की अपनी प्रति मिल जायेगी।

बापाका[1] एक पत्र भेज रहा हूँ। तुम उनका प्रस्ताव स्वीकार कर ही लोगी।

जाँचे हुए कुछ अनुवाद बुक-पोस्टसे भेजे जा रहे हैं। तुम्हे बता दूं कि मुझे इनपर डेढ़ घंटा लगाना पड़ा। इतने ही निबटाने को पड़े है, तब जाकर हिसाब बराबर होगा।

१. अमृतलाल वि० ठक्कर

मैंने पत्र-व्यवहारका शेष सारा काम कल निवटा दिया। मौनका ही चमत्कार है। अब तो बोलने को जी ही नही चाहता। कल रात टडनजी के लिए मौन तोड़ना पड़ा था। उनके जाते ही मैंने फिर मौन धारण कर लिया।

स्नेह।

वापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७४) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२८३ से भी

२३३. पत्र: कंचन मु० शाहको

सेवाग्राम, वर्धा
१४ जून, १९४०

चि० कंचन,

'लोकवाणी' और 'प्रताप'के बारेमे मैंने कह तो दिया था। फिर भी न पहुँचें, तो क्या किया जाये? पुराने कुछ अक हाथ लगे है, सो भेज रहा हूँ। लगता है, नये अक आने वन्द हो गये हैं। लेकिन इनके सिवाय और कुछ पढने को ही नही मिलता क्या? वालोडसे पत्र आया था कि तू अथवा मुन्नालाल आजकल वहाँ पत्र लिखते ही नही। यह कैसा आलस्य, और कैसी शर्मकी बात है!

वापूके आशीर्वाद

श्री कचनवहन शाह
वाडीलाल आरोग्य भवन
पचगनी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२८१) से। सी० डब्ल्यू० ७०९५ से भी; सौजन्य, मुन्नालाल ग० शाह

२३४ पत्र : कृष्णचन्द्रको

१४ जून, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

ब्रह्मचर्य और अहिंसाका सबध शरीरके साथ है, इसलिये उनको शारीरिक तप कहा है। मुझे भी 'शारीरिक' विशेषण चुभा। अब नहिं। इसका मतलब यह नहिं है कि मानसिक व्यभिचार क्षतव्य है या कम है।

नामस्मरण यज्ञोका राजा एक हि दृष्टिसे है। कष्ट (शारीरिक) नहिंवत् और परिणाम सबसे अधिक।

पेन-खतके बारेमे समाधान नहि हुआ है। लेकिन उसकी खोजमे ज्यादा पडना अच्छा नहिं लगता। इसलिए ईश्वरपर हि छोडा है।

उपवास लेने के समय हि मैंने अवधिका निश्चय ही नहिं किया था, इसलिये छोडने मे कष्ट नहिं था अर्थात् नैतिक दोष कुछ भी नहिं था। साथीयोके अभिप्रायको मान देना बाझ दफा धर्म होता है। उपवास मेरे सतोष, मेरी शुद्धिके लिये था। लेकिन साथीयोका विरोध मुझको कष्टदायी था। इसलिये उपवास छोडा। उपवासकी आवश्यकता तो थी। यहा दो धर्मकी तुलना थी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५१)से

२३५. तार : अबुल कलाम आजादको

[१५ जून, १९४० के पूर्व][1]

मौलाना अबुल कलाम आजाद
महल नैनीताल

आपका तार और पत्र मिले। आपके स्वास्थ्यको ध्यानमे रखते हुए तारीख कायम रह सकती है। मध्य जूनके बाद यहाँ मौसम काफी ठण्डा। मेरे लिए अनिश्चित काल तक बाहर रहना कठिन।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. मध्य जूनके बाद मौसममें सुधार होने के उल्लेखके आधारपर

२३६. पत्र: अमृतकौरको

सेवाग्राम
१५ जून, १९४०

चि० अमृत,

तुम जिस पत्रके लिफाफेके पीछे अपना नाम-पता लिखना भूल गई थी, वह सेंसर किया गया और एक दिन बाद मिला।

सी० पी०[1] आये ही नहीं, न पत्र लिखा।[2] आखिर कल रामचन्द्रन् चला गया।

'हरिजनसेवक' के अनुवाद बुरे हैं। मैं वियोगी हरिको लिख रहा हूँ।

तुम्हारी गुजराती पहलेसे बेहतर है।

तुम दिनमें आराम न करके ठीक नहीं कर रही हो।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७५) से, सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ७२८४ से भी

२३७. पत्र: द० बा० कालेलकरको

सेवाग्राम
१५ जून, १९४०

चि० काका,

टण्डनजी का तुमपर प्रेम है। उन्हें तुम्हारा साथ अच्छा लगता है। पूनामें वे अकेले पड़ जायेंगे, इसलिए तुम्हें साथ ले जाना चाहते हैं। जाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम उनके निवास आदिकी व्यवस्था करोगे। उनके कामके साक्षी रहोगे। वे जहाँ मदद माँगे, वहाँ मदद करना। तुमने अपना आमन्त्रण वापस ले लिया है, इसलिए अब तुमपर कोई जिम्मेदारी तो रह नहीं जाती। एक मूक सदस्य तथा सेवकके रूपमें जो बन सके सो करना। तुम्हारा पूना जाना व्यर्थ नहीं जायेगा।

१. सी० पी० रामस्वामी अय्यर
२. देखिए "त्रावणकोर", १७-७-१९४०।

प्रचार समितिका काम जल्दीमे नही होगा। जब लौटकर आओगे, तब हम उसके बारेमे विचार करेगे। मुझे उसमें गहराईमे उतरना पड़ेगा। लेकिन उसके बारेमे चिन्ता करने-जैसा तो कुछ नही है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

सारी प्रवृत्तियोसे छूट जाने का मतलब तो देहमुक्ति हुआ। यह, मैं देहधारी, भला तुम्हे कैसे सिखा सकता हूँ?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९३१) से

२३८. पत्र: चिमनलाल न० शाहको

सेवाग्राम
१५ जून, १९४०

चि० चिमनलाल,

बलवन्तसिंह खेतीके काम के लिए अपूकी माँग कर रहा है। मुझे लगता है, उसकी माँग ठीक है। अपू मजबूत है। रसोईमे उसका उपयोग करना ठीक नही, यद्यपि मै यह भी मानता हूँ कि रसोई किसी पुरुषके हाथमे जानी चाहिए। तो, बात ऐसी है, कि यदि तुम राजी होओ तो अपू को उसे सौप दिया जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०३)से

२३९. प्रवासी भारतीयोंका कर्त्तव्य

पिछले सप्ताह मैंने दीनबन्धु-स्मारकके लिए चन्दा उगाहने के बारेमे विद्यार्थियोके कर्त्तव्यका जिक्र किया था।[1] डॉ० ब्रुक्सके पत्रसे,[2] जो इसी अकमे अन्यत्र दिया गया है, प्रवासी भारतीयोको अपने विशेष कर्त्तव्यका भान होना चाहिए। उनके लिए इतने परिश्रम, ईमानदारी या प्रभावकारी ढगसे और किसी ने काम नही किया। भारतीय प्रवासियोकी स्थितिका खुद अध्ययन करने के लिए उन्होने दूर-दूरके देशोंकी यात्राएँ की। मुझे आशा है कि ये प्रवासी भाई चन्दा इकट्ठा करके अपना हिस्सा दीनबन्धु-स्मारक कोषके लिए भेज देगे।

सेवाग्राम, १६ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-६-१९४०

१. देखिए पृ० १८९।

२. देखिए अगला शीर्षक।

२४०. टिप्पणियाँ

सवर्ण हिन्दूका हरिजन लड़कीसे विवाह

श्री हरेकृष्ण मेहतावने उडीसामे एक हरिजन लड़कीके साथ सवर्ण हिन्दूके विवाहके वारेमें एक पत्र लिखा है। उसका कुछ अश नीचे दे रहा हूँ।[1]

जात-पाँत-सम्वन्धी अन्धविश्वासोंके वन्धनको तोडने का साहस दिखाने के लिए मैं श्री राधामाधवको ववाई देता हूँ। आशा है, अन्य नौजवान भी उनके उदाहरणका अनुकरण करेगे। यह विवाह सुखद हो, यही मेरी कामना है। श्री राधामाधवको मेरी सलाह है कि वे अपनी पत्नीकी उचित शिक्षाकी व्यवस्था करे, क्योकि मुझे मालूम हुआ है कि लड़कीको कोई किताबी शिक्षा नही मिली है।

एक और श्रद्धांजलि

डॉ० एडगर ब्रुक्सने दीनवन्धुसे अपने सम्पर्कके वारेमे मेरे लडकेकी मारफत मुझे एक पत्र भेजा है। मेरे लडकेका कहना है कि डॉ० ब्रुक्स बड़े विद्वान् और धर्मिष्ठ व्यक्ति हैं। वे दक्षिण आफ्रिकाकी सीनेटके सदस्य तो हैं ही, लेकिन अन्य प्रकारसे भी वे वहाँ काफी विख्यात है। नीचे मेरे नाम लिखा डॉ० ब्रुक्सका पत्र दे रहा हूँ:

> आपके लिए मैं विलकुल अजनवी होते हुए भी आपको इस तरह पत्र लिख रहा हूँ, इसके लिए मुझे क्षमा करे। मैं सीनेटका निर्वाचित सदस्य हूँ और संघ संसदमें नेटाल तथा जूलूलैण्डके वन्टू वतनियोंका प्रतिनिधित्व करता हूँ। इस हैसियतसे मुझे दक्षिण आफ्रिकामें विभिन्न प्रकारके प्रतिवन्धों और वाधाओके वीच जीनेवाले भारतीय समुदायोकी ओरसे अनेक वार वोलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह पत्र लिखनेकी प्रेरणा मुझे इसलिए हुई कि पिछले कुछ हफ्तोंसे मैं सी० एफ० एन्ड्रयूजकी 'क्राइस्ट इन द साइलेन्स' पुस्तक पढ़ रहा हूँ और अपने उस प्रिय मित्रको जिसने पूर्णतर जीवनमें प्रवेश किया है — 'मृत्यु हो गई' शब्दोका प्रयोग तो मैं नहीं करूँगा, क्योकि जितने जीवन्त वे मुझे आज लगते हैं उतने तो पहले भी कभी नहीं लगे — वहुत स्मरण कर रहा हूँ। आपकी मैत्रीका उनके लिए और (मैं समझता हूँ) उनकी मैत्रीका आपके लिए क्या महत्त्व था, इससे किसी हदतक अवगत होने के कारण मुझे लगा कि उनके साथ अपने सम्पर्कके वारेमें मैं आपको कुछ

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें वताया गया था कि किस प्रकार एक सवर्ण हिन्दू युवकने अपने तथा लड़कीके कुटुम्बियोके भी विरोधका सामना करते हुए एक हरिजन लड़कीसे विवाह कर लिया था।

> बताऊँ। मैं उनसे केवल यहाँ दक्षिण आफ्रिकामें ही नहीं, बल्कि इंग्लैण्ड और फ्रान्समें भी मिला था, जहाँ हम दोनों ऑक्सफर्ड मण्डल आन्दोलनपर बोले थे। मेरे सबसे छोटे लड़केका नाम उन्हींके नामपर रखा गया। श्री एन्ड्र्यूज के पास विश्वकी सबसे महान् सम्पदा थी — अर्थात् प्रेम। अपनी कमजोरीके बावजूद यह संसारकी सबसे सबल वस्तु है — 'सशस्त्र सेनाकी ही तरह विक्रान्त'। आपने ही हमें यह पाठ पढ़ाया है। किसी बड़े देशका प्रधान मन्त्री बनने की अपेक्षा श्री एन्ड्र्यूज-जैसा बनना मैं ज्यादा पसन्द करूँगा। ईसा मसीह कैसे रहे होंगे, इसके सम्बन्धमें मेरी जो कल्पना है उसके निकट जितने श्री एन्ड्र्यूज थे उतना मेरी जानकारीमें और कोई नहीं है। उन्होंने भारतसे और आपसे बहुत-कुछ सीखा था। उनके सम्पर्कसे जो लोग मेरी तरह विनम्र बने और ऊपर उठे वे श्री एन्ड्र्यूजको, जैसे वे थे, वैसा बनने में मदद देने के लिए आपको धन्यवाद देना चाहेंगे।

इस पत्रसे प्रकट होता है कि अपने सम्पर्कमें आनेवालों पर दीनबन्धुका कितना प्रभाव पड़ता था।

प्रौढ़ शिक्षा

तिरुवेन्नैनल्लूरकी गांधी मिशन सोसाइटीने मुझे अपने प्रौढ़ शिक्षा कार्यका अर्ध-वार्षिक विवरण भेजा है। इस अवधिमें कुल १९७ प्रौढ़ोंको शिक्षित किया गया। लेकिन सोसाइटीके सामने असली समस्या यह है कि 'इस तरह प्रौढ़ोंने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उन्हें उसको बरकरार रखने में कैसे सहायता दी जाये।'

> जिन्होंने प्रथम सत्रके दौरान शिक्षा प्राप्त की उनमें से आधे लोगोंने इस कामके लिए जिम्मेदार कार्यकर्त्ताओंसे पाठोंको दुहराने का अनुरोध किया। दरअसल वे लोग फिर निरक्षरताकी स्थितिमें पहुँच गये थे। कार्यकर्त्तागण इस स्थितिको रोकने का उपाय ढूँढ़ने के लिए माथापच्ची कर रहे हैं।

कार्यकर्त्ताओंको माथापच्ची करने की कोई जरूरत नहीं है। जितनी अल्प अवधिके पाठ्यक्रम होते हैं, उनको देखते हुए शिक्षार्थियोंका उन्हें भूल जाना स्वाभाविक है। इस चीजको तभी रोका जा सकता है जब अध्यापनको ग्रामवासियोंकी दैनिक आवश्यकताओंसे जोड़ दिया जाये। पढ़ने-लिखने और मामूली हिसाब जोड़ने का नीरस ज्ञान ग्रामवासियोंके जीवनका स्थायी अंग आज भी नहीं है और न कभी हो सकता है। उन्हें ऐसा ज्ञान दिया जाना चाहिए जिसका वे प्रतिदिन इस्तेमाल कर सकें। उनके मस्तिष्कमें ज्ञान जबरदस्ती ठूँसा न जाये। उनमें उसे प्राप्त करने की भूख होनी चाहिए। आज उन्हें जो-कुछ मिल रहा है, वह कुछ ऐसा है जिसे न वे चाहते हैं और न समझते हैं। ग्रामवासियोंको ग्रामीण गणित, ग्रामीण भूगोल और ग्रामीण इतिहासका ज्ञान कराइए और उन्हें किताबी शिक्षा ऐसी दीजिए जिसका वे दैनिक जीवनमें उपयोग कर सकें — जैसे पत्र लिखना-पढ़ना आदि। ऐसे ज्ञानकी वे

बड़े जतनसे सजोकर रखेंगे और तब वे सहज ही आगेकी अवस्थाओंकी ओर बढ़ते चले जायेंगे। जिन किताबोंमे उनके दैनिक उपयोगकी कोई चीज नहीं है वे उनके लिए किसी कामकी नहीं है।

सेवाग्राम, १६ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-६-१९४०

२४१. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम
१६ जून, १९४०

चि० मणिलाल,

कहा जा सकता है कि इस बार तूने खासा लम्बा पत्र लिखा है। तेरा लम्बा पत्र पढ़ने से मुझे थकावट होगी, ऐसा डर मत रखना। ऐसी कोई बात नहीं है।

सोराबजी[1]-सम्बन्धी बात दुःखदायी है। अब तो क्रिस्टोफरने[2] भी तेरा साथ छोड़ दिया, यह आश्चर्यकी बात है। लेकिन तू अकेला पड़ जाये, इसकी मुझे फिक्र नहीं है। जिसे तू सत्य मानता है, उस मामलेमें यदि तू अकेला पड़ जाये, तो भी कोई हर्ज नहीं।

मेढके[3] बारेमे मैं तुझे लिख चुका हूँ। वह लौटकर आयेगा।

मुझे कोई एकाएक गिरफ्तार कर लेगा, ऐसी बात नहीं है। मैं युद्ध शुरू करने की उतावलीमें नहीं हूँ। उसके लिए मेरी तैयारी रहे, यही मेरे लिए काफी है। लेकिन यह तो आजकी बात है, कलकी भगवान् जाने।

बा का स्वास्थ्य ठीक है। कृष्णदास[4] और मनोज्ञा[5] नासिकसे लौट आये हैं। रामदास घूमता रहता है और साबुन बेचता है। उसके मालिक उसपर मेहरबानीकी नजर रखते हैं, इसलिए ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१४) से

१. सोराबजी शापुरजी अडाजानिया, देखिए खण्ड ११, पृ० ६।
२. फीनिक्स आश्रमके एक अन्तेवासी
३. सुरेन्द्रराय बापूभाई मेढ, दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजी के सहयोगी। देखिए खण्ड ११, पृ० ४३।
४. छगनलाल गांधीके पुत्र
५. कृष्णदासकी पत्नी

२४२. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

सेवाग्राम, वर्धा
१६ जून, १९४०

भाई वल्लभराम,

बम्बईमें बसोगे, इसका अर्थ यही है न कि अहमदाबादमे खर्च नही निकलता। अगर ऐसा हो, तो यह कैसी दयनीय स्थिति हुई!

पूना जाकर वालजीभाईको देख आये होगे। मैंने उन्हे सलाह दी है कि जब तुम उन्हे बम्बई बुलाने की हालतमे होओ, तब वे वहाँ जाये।

बापूके आशीर्वाद

श्री वल्लभराम वैद्य
१७५६ जुगल भुवन
गाधी रोड
अहमदाबाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९१०)से, सौजन्य . वल्लभराम वैद्य

२४३. पत्र : एगथा हैरिसनको

[१६ जून, १९४० के पश्चात्][1]

मै इस गतिरोधसे निकलने का रास्ता ढूंढने को कृतसकल्प हूँ।

तुम्हारा २८ मईका पत्र मुझे अभी-अभी मिला है। काफी जल्दी मिला न? श्री एमरीका सन्देश अच्छा है। मै आशामे जीऊँगा, जल्दबाजी नही करूँगा। पर मै जानता हूँ कि कार्य-समिति कोई भी लचर चीज स्वीकार नही करेगी। यदि तुम्हारे यहाँके लोग उस दिनके इन्तजारमे हो जब राजाओ समेत सभी दल किसी सर्व-सम्मत समझौतेपर पहुँच जायेगे, तो उनको अभी इन्तजार करना पड़ेगा और हम भी करेगे।

१. पत्रमें उल्लिखित एल० एस० एमरीका सन्देश 'मैग्ना कार्टा' (इंग्लैंडकी जनताके अधिकार-पत्र) पर हस्ताक्षर होनेकी वार्षिकीके दिन १६ जूनको प्रसारित किया गया था। उसमें एमरीके ब्रिटिश लोकतान्त्रिक आदर्शोंने विकास एव प्रसारकी रूप-रेखा बतलाते हुए कहा था: "भारतके मामलेमें हमने अपनी यह हार्दिक इच्छा व्यक्त कर दी है कि उसे *ब्रिटिश* राष्ट्रकुलमें एक इच्छुक साझेदारके रूपमें, वही दर्जा दिया जायेगा जो औपनिवेशिक राज्योंको या यों कहिए कि हमें स्वयं ही प्राप्त है।" **इंडियन एनुअल रजिस्टर**, १९४०, खण्ड १, पृ० ७९।

यह बात समझ ली जानी चाहिए कि कांग्रेस एक दल है और दूसरे दल इस मानी मे कांग्रेस-विरोधी हैं कि वे कुछ कमपर ही मान जायेंगे। कांग्रेस और इन्तजार तो कर सकती है, लेकिन कुछ कमपर मान जाने का अर्थ अगर देशकी आजादीका सौदा करना है तो वह ऐसा नही कर सकती। वहाँकी स्थिति भयकर है। तुम खूनकी होलीके बीच रह रही हो। और हममे से जो जानकार लोग हैं, उनके लिए यहाँकी स्थिति एक तरहसे खूनकी होलीसे भी बुरी है। यहाँ वैसी खूनकी होली न होने पाये, इसीमे मैं अपनी सारी शक्ति लगा रहा हूँ। कह नही सकता कि मैं परिस्थितिको कबतक काबूमे रख पाऊँगा। इस प्रयत्नमे मैं झुकूँगा नही, टूट भले ही जाऊँ।

स्नेह।

बापू

[अंग्रेजीसे]
महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे। सौजन्य नारायण देसाई

२४४. रामगढ़में कताई-प्रतियोगिता

कांग्रेस-सप्ताहके दौरान हमेशाकी तरह इस बार भी प्रदर्शनीमे कताई-प्रतियोगिता आयोजित की गई। छह प्रकारकी प्रतियोगिताएँ रखी गई थी — १० अक तक के मोटे सूतकी, १८ अकतक के मध्यम दर्जेके सूतकी, ३० अकतक के बारीक सूतकी, ४४ से १५८ अकतक के बहुत बारीक सूतकी, और मगन चरखेपर कताई की, तथा अतमे तकलीपर कताई की। परीक्षक थे — बिहार-निवासी रामदेव बाबू, अहमदाबादके खादी-कार्यालयवाले श्री नन्दलाल पटेल तथा स्वय प्रतियोगिताके सयोजक प्रभुदास गाधी। मेरे सामने जो तालिका है उससे प्रकट होता है कि परीक्षा जितनी चाहिए थी उतनी ही कडाईसे सागोपाग रीतिसे ली गई। मेरी रायमे प्रतियोगियोकी सख्या उतनी नही थी जितनी होनी चाहिए थी और न इसमे बहुत-से प्रान्तोके प्रतियोगी ही शामिल थे। वे मुख्यत बिहार और गुजरातसे आये थे, और कुछ महाराष्ट्र तथा सयुक्त प्रान्तसे भी। नकद पुरस्कारोकी व्यवस्था थी, जिनमे से सबसे बडा १५ रुपयेका था। इसके अलावा विजेता सस्थाओके लिए कुछ ट्राफियाँ भी रखी गई थी। ध्यातव्य है कि बहुत बारीक सूत कातने की प्रतियोगितामें बहुत-सी स्त्रियाँ भी शामिल हुई थी। सबसे अच्छी कत्तिन मधुबनीकी देवसुन्दरीदेवी साबित हुईं। उन्होने १५८ अकका सूत निकाला। चरखेपर सबसे अच्छी गति थी — १० अकका प्रति घण्टा ६१८ गज सूत। मगन चरखेपर सबसे अच्छी गति १५ अकका प्रति घण्टा ९२५ गज सूतकी रही और तकलीपर १२ अकका प्रति घण्टा ३०३ गज सूत। यह सब काफी सन्तोपजनक है। मगन चरखेको अलग रखे तो अबतक जितने सुधार हुए हैं उनको देखते हुए चरखेपर कताईकी गतिमें और

वृद्धि होने की बहुत गुंजाइश नहीं है। मगन चरखेपर अभी पर्याप्त प्रयोग नहीं किये गये हैं। लेकिन जितना-कुछ मालूम हुआ है उससे प्रकट होता है कि उसमें और भी सम्भावनाएँ हैं। साथ ले जाने की सुगमता, सादगी और कीमतकी दृष्टिसे देखें तो तकली सहज ही कताई-उपकरणोंकी रानी है। कुल मिलाकर देखें तो यह सबसे तेज गतिवाला उपकरण भी साबित हो सकती है। चरखा तो बिगड़ भी सकता है, लेकिन तकली कभी नहीं। तकलीको चरखेकी रीतिसे चलाने के प्रयोग किये जा रहे हैं।

विजेताओंको मैं बधाई देता हूँ। मैं तो यही आशा रखता हूँ कि ऐसी प्रतियोगिताओंमें लोग पहलेकी अपेक्षा अधिक रुचि लेंगे। कताई-प्रतियोगिताओंका राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे बहुत अधिक महत्त्व है। यहाँ यह भी बता दूँ कि पुरस्कार-वितरण मौलाना साहब करनेवाले थे। लेकिन सर्वथा अप्रत्याशित रूपसे भारी वर्षा हो जाने के कारण ऐसा करना बिलकुल असम्भव हो गया।

सेवाग्राम, १७ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-६-१९४०

२४५. प्रश्नोत्तर

कताई-प्रवृत्तिका अर्थ

प्र० : यह एक निर्विवाद तथ्य है कि रचनात्मक प्रवृत्ति राजनीतिक वातावरणको शुद्ध और अहिंसक रखती है। आपने सक्रिय सत्याग्रहियोंको इसे अपनाने की सलाह दी है। यह प्रवृत्ति किसी केन्द्रमें कांग्रेसजनोंके बीच भी चलाई जा सकती है और — जैसा कि अ० भा० च० संघके उत्पादन-केन्द्रोंमें होता है — आम ग्रामवासियोंके बीच भी, जिनमें बेरोजगारीके निराकरणके लिए कताईको अपनानेवाली बूढ़ी स्त्रियाँ आदि भी शामिल हो सकती हैं। आपके लेखोंसे ऐसा मालूम होता है कि आप चाहते हैं, सक्रिय सत्याग्रही रचनात्मक प्रवृत्तिको कांग्रेसजनों तक ही सीमित रखें और खास तौरसे उन्हें खुद कातनेवाले और अपने ही काते सूतकी खादी पहननेवाले बनाने की कोशिश करें; और जबतक कांग्रेसजन अपनी जरूरतका सूत खुद न कातने लगें तबतक आरम्भमें वे अ० भा० च० संघके भण्डारोंसे ही खादी खरीदें। मजदूरीके लिए कताईका आम खादी-केन्द्र खोलने की अपेक्षा कांग्रेसजनों या राजनीतिक कांग्रेसजनों तक ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना अधिक व्यावहारिक जान पड़ता है। क्या यह आपके लेखका सही अर्थ है?

उ० : आपने जो अर्थ लगाया है वह अपनी हदतक ठीक है। मैं नहीं चाहता कि कांग्रेस-संगठन चरखा संघकी तुच्छ या भव्य नकल बन जाये। उसे वह काम

करना है जो चरखा संघ नहीं करता। काग्रेसका हेतु मुख्य रूपमें राजनीतिक होगा, किन्तु चरखा संघका — बावजूद इसके कि वह काग्रेसकी ही सृष्टि है — हेतु विशुद्ध रूपमें पारमार्थिक और आर्थिक है। काग्रेस-संगठनका लक्ष्य देशकी स्वतन्त्रताके लिए अहिंसक सिपाहियोंकी फौज — अगर सैनिक शब्दावलीका प्रयोग न करना चाहे तो कहे — अहिंसक कार्यकर्ताओंका एक दल खड़ा करना है। कताईका काम तथा उससे जुड़ी दूसरी तमाम क्रियाएँ काग्रेसजनों को व्यस्त और शरारतसे दूर रखती है। यह काम उन्हे भ्रातृत्वके सूत्रमे बाँधेगा, ग्रामीण जीवनको समझने की अन्तर्दृष्टि देगा, उन्हे ग्रामवासियोंके निकट सम्पर्कमे लायेगा, जनसाधारणकी आर्थिक स्थितिपर उन्हे ऐसा नियन्त्रण प्रदान करेगा जैसा और कोई चीज नही कर सकती, उन्हे गाँवोकी विराट् समस्याका सम्पूर्ण रूपमें अध्ययन करने में प्रवृत्त करेगा, और अपने छोटे-बड़े झगडे मिटा देने तथा वर्ग, जाति या धर्म-सम्बन्धी भेद-भावोको भुला देने की प्रेरणा देगा। चरखेमे यह सारी शक्ति सहज समाहित हो या न हो, लेकिन मै चाहता हूँ कि काग्रेसजन उसमें इन तमाम फलितार्थोका आरोपण करे।

परख-नली शिशु

प्र० : आप कहते है, मातृत्व बड़ी उदात्त किन्तु विषय बहुत बुरी वस्तु है। आध्यात्मिक तथा स्वस्थ प्रजोत्पत्तिकी दृष्टिसे भी क्या आप यह स्वीकार नहीं करते कि शिशु उत्पन्न करने की परख-नलीवाली विधि आदर्श है, क्योंकि उसमें प्रजोत्पत्तिके लिए विषय-वासनाका कोई स्थान ही नहीं है?

उ० : यदि आपकी सुझाई रीतिसे विषय-वासनाको ही निर्मूल किया जा सके तो उसे मैं मान लूंगा। जबतक मैं यह मान रहा हूँ कि विषय-वासना पुरुष या स्त्रीको अपनी पूरी सम्भावित ऊँचाईतक उठने से रोकती है तबतक प्रजोत्पत्तिकी इन कृत्रिम विधियोंके खिलाफ मेरे मनमे जुगुप्सा कायम रहेगी। जहाँतक मैं समझता हूँ, आपकी पद्धतिका परिणाम मनुष्य नहीं, बल्कि जिस विकार-सागरको अपने वसमें करने मे मनुष्यका गौरव है उसमें डूबते-उतराते विवेकशून्य मूढ प्राणी और दानव पैदा करना होगा। लेकिन मैं यह कबूल करता हूँ कि मैं ऐसे युगका मनुष्य हूँ जो शायद अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा है। जो नया युग आनेवाला है उसमें स्त्री-पुरुष यदि पैदल चलेगे तो सिर्फ तफरीहके लिए किन्तु अपने कामपर या तो गाड़ी या विमानमें बैठ-कर जायेंगे, और विवाहकी संस्था तथा उसके सारे फलितार्थ समाप्त हो जायेगे। किन्तु उस युगकी कल्पनासे मेरे मनमें किसी प्रकारके उत्साहका संचार नहीं होता।

झूठका मुकाबला कैसे करें

प्र० : ब्रिटेन और फ्रान्स अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए जो संघर्ष चला रहे है उसमें जब आप उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते है तो लोग यह मान लेते है कि आपकी सहानुभूतिके पीछे पूरी ईमानदारी है, लेकिन हममें से कुछ लोगोंको ऐसा खतरा दिखाई देता है कि भारतीय पूंजीपति भारतको शान्त रखने के लिए आपका उपयोग मात्र एक साधनकी तरह करते रह सकते है, ताकि इस बीच वे खुद युद्धके

फलस्वरूप भारी मुनाफे बटोरते रह सकें। इस शंकाके निवारणके लिए आप कौन-सा कदम उठा रहे हैं?

उ० : जब मुझपर यह आरोप लगाया गया था कि बैंक ऑफ इंग्लैण्डमे मेरा एक करोड रुपया जमा है, उस समय जैसे मैंने कोई कदम नही उठाया था वैसे ही इस बार भी मेरा इरादा कोई कदम उठाने का नही है। झूठका कोई जवाब न देना ही सबसे अच्छा रास्ता है। इस तरह खुराक न मिलने पर वह खुद मर जाता है। झूठमे कोई अपनी जीवनी-शक्ति नही होती। वह तो विरोधपर ही पनपता है। जिस झूठका आपने उल्लेख किया है, अगर मेरा सम्पूर्ण जीवन उसका पर्याप्त उत्तर नही है तो उस झूठसे लोगोके मनपर जो छाप पड़ी है उसे मेरे द्वारा उठाया गया कोई भी कदम मिटा नही सकता। याद रखिए, मैं इस बातसे इन-कार नही करता कि मेरी निष्क्रियतासे उत्पन्न शान्तिपूर्ण वातावरणसे पूंजीपतियोको लाभ हो रहा है, लेकिन वास्तवमे उससे पूंजीपतियोकी अपेक्षा जनसाधारणको अधिक लाभ पहुँचता है, क्योकि इस निष्क्रियताके फलस्वरूप जनसाधारण अहिंसक शक्तिका सचय कर पा रहा है और यह शक्ति उसे पूंजीपतियो तथा उन्हे संरक्षण देनेवाले साम्राज्यवादियोसे कारगर ढगसे निबटने की सामर्थ्य प्रदान करेगी।

सेवाग्राम, १७ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-६-१९४०

२४६. एक पुर्जा

[१७ जून, १९४०][1]

फिलहाल कुछ भी करने की जरूरत नही है। क्या हुआ जो तुम्हे [भार] सौपा गया है तो? तुम्हे सब आश्रमवासियोसे कह देना चाहिए कि कोई इसे आघात न पहुँचाये। ढिंढोरा पीटने की जरूरत नही है। टिप्पणीके तौरपर मैं कल कुछ लिखूंगा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६४७) से

१. तिथि-निर्धारण इस पुर्जेके अन्तिम वाक्यके आधारपर किया गया है। "टिप्पणीके तौरपर मैं कल कुछ लिखूँगा" — इस वाक्यसे तात्पर्य अनुमानतः "टिप्पणी: आश्रमवासियोंके लिए", पृ० २१६ से है।

२४७. पुर्जा : अमतुस्सलामको

[१८ जून, १९४० के पूर्व][1]

मैंने भूल की ही नहीं है। तूने जो किया है, उसीको ठीक समझना चाहिए। मेरे गुस्सेका सवाल ही नहीं है। मैं तो अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा हूँ। तू अपना पालन कर। मुझसे पूछने मे कोई सार नहीं है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६५५) से

२४८. पुर्जा : अमतुस्सलामको

[१८ जून, १९४० के पूर्व][2]

मेरी कुछ समझमें नही आता। जोहराको जैसी सलाह देनी हो, दे। अगर वह तेरे कहने मे न हो, तो मुझपर छोड देना। जोहरा मेरे साथ पूरी बात कर ले। बाकी की बात तू जान। जैसा पुरी कहे वैसा कर। खान साहबकी बात सुन। मैं कोई सलाह नही दे सकता।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७२३) से

२४९. हिटलरशाहीका मुकाबला कैसे करें

अन्तमें हिटलर चाहे जैसे साबित हो, लेकिन आज हिटलरशाहीका जो अर्थ सामने आया है, वह हमें मालूम है। उसका अर्थ है नग्न और नृशंस पशुबल, जिसे विशुद्ध विज्ञानका रूप दे दिया गया है और जिसका प्रयोग भी वैज्ञानिक परि-शुद्धताके साथ किया जा रहा है। उसका प्रभाव प्राय दुर्निवार है।

दक्षिण आफ्रिकामें जब सत्याग्रहका प्रारम्भिक दौर चल रहा था और जब वह अनाक्रामक प्रतिरोधके नाम-से-ही जाना जाता था उन दिनों जोहानिसबर्गके पत्र 'स्टार' ने सर्वथा निःशस्त्र और चाहने के बावजूद सगठित हिंसाका सहारा लेने में असमर्थ मुट्ठी-भर भारतीयोंको प्रचुर शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित सरकारके मुकाबले खड़े देखकर एक व्यंग्यचित्र प्रकाशित किया था, जिसमें सरकारको दुर्निवार शक्तिके प्रतीक

१ और २. ये पुर्जे स्पष्ट ही "टिप्पणी : आश्रमवासियोंके लिए", पृ० २१६ से पहले लिखे गये होंगे।

स्टीम रॉलरके रूपमें और अनाक्रामक प्रतिरोधको ऐसे हाथीके रूपमे चित्रित किया गया था जो अपनी जगह बड़े आरामसे अविचलित बैठा हुआ था।[1] उस हाथीको अचल शक्ति बताया गया था। व्यंग्य-चित्रकारको दुर्निवार और अचल शक्तियोंके उस द्वन्द्व-युद्धके मर्मकी पहचान थी। वह जिचकी स्थिति थी। आगे जो-कुछ हुआ, वह हमे मालूम ही है। जिस चीज को दुर्निवार चित्रित किया गया था और जो वैसी प्रतीत भी होती थी, उसका सत्याग्रहकी — हम चाहें तो कह सकते है, प्रतिकारमें अपना हाथ उठाये बिना कष्ट-सहनकी — अचल शक्तिने सफल प्रतिरोध किया था।

जो बात तब सच सिद्ध हुई वह आज भी उतनी ही सच साबित हो सकती है। हिटलरशाहीके मुकाबले हिटलरशाहीको खड़ा करने से वह कभी हार नही सकती। वैसा करने से तो उलटे मौजूदा हिटलरशाहीसे बढ़ी-चढी और असीम उग्रता-वाली नई हिटलरशाहीका जन्म होगा। आज हमारी आँखोके सामने जो-कुछ हो रहा है वह हिंसा और उसी प्रकार हिटलरशाहीकी विफलताका प्रमाण है।

मै स्पष्ट कर दूँ कि हिटलरशाहीकी विफलतासे मेरा तात्पर्य क्या है। उसने छोटे राष्ट्रोकी स्वतन्त्रताका अपहरण किया है। उसने फ्रान्सको शान्तिकी याचना करने पर विवश किया है।[2] शायद इसके छपते-छपते ब्रिटेन भी अपना रास्ता चुन चुका होगा। मेरी दलीलके लिए तो फ्रान्सका पतन ही काफी है। मेरी रायमे, अनिवार्य को शिरोधार्य करके तथा मूर्खतापूर्ण पारस्परिक सहारमे भागीदार बनने से इनकार करके फ्रान्सके राजनेताओंने विरल साहसका परिचय दिया है। जो चीज दाँवपर लगी हुई है, यदि सचमुच वही नष्ट हो जाती है तो फ्रान्सके इस सघर्षसे विजयी होकर निकलने का कोई मतलब नही रह जायेगा। यदि स्वतन्त्रताकी कीमत उसका उपभोग करनेवालो के सामूहिक विनाशके रूपमे चुकानी पड़े तो उस स्वतन्त्रताके लिए सघर्ष करना हास्यास्पद ही होगा। उस स्थितिमे तो वह महत्त्वाकांक्षाकी तुच्छ तृप्ति-भर बनकर रह जायेगी। फ्रान्सीसी सिपाहियोकी वीरता विश्व-विश्रुत है। लेकिन अब दुनिया फ्रान्सीसी राजनेताओकी उस श्रेष्ठतर बहादुरीको भी जान ले जिसका परिचय उन्होने शान्तिकी याचना करके दिया है। मैने ऐसा माना है कि फ्रान्सीसी राजनेताओ ने यह कदम सच्चे सिपाहियोको शोभा देनेवाली सर्वथा सम्मानजनक रीतिसे उठाया है। मै आशा करता हूँ कि श्री हिटलर फ्रान्सीसियोपर अपमानजनक शर्ते नही लादेगे, बल्कि दिखा देगे कि यद्यपि वे लड़ाई बिना करुणा-दयाके कर सकते है, लेकिन शान्ति-स्थापनामे उसका सहारा लिये बिना नही रह सकते।

लेकिन अब हम फिर असली बातपर आये। हिटलर विजय लेकर करेगे क्या? क्या वे इतनी शक्तिको हजम कर सकेगे? वे खुद उसी तरह खाली हाथ जायेगे जैसे कुछ सदियो पहले सिकन्दर गया था। जर्मनोके लिए वे एक विशाल साम्राज्यका स्वामी

१. देखिए खण्ड ८, पृ० ३२ के सामने।

२. युद्ध-विरामके लिए फ्रान्सीसियोकी प्रार्थना हिटलरको १६ जूनको भेजी गई थी। युद्ध-विरामके लिए हिटलरकी शर्तें उन्हें २० जूनको सूचित की गई। २२ जूनको उन्होंने जर्मनोंकी शर्तें मान ली और २५ जूनको युद्ध-विराम लागू हो गया।

होने का सुख नही बल्कि उनके सिर उसे सँभालने का कमरतोड बोझ छोड जायेंगे। कारण, विजित राष्ट्रोको वे सदा अपने अधीन नही रख पायेंगे। और मुझे तो नही लगता कि जर्मनोकी भावी पीढियाँ उन कृतित्वोपर विशुद्ध गर्वका ही अनुभव करेंगी जिनके लिए हिटलरशाहीको जिम्मेदार ठहराया जायेगा। वे एक मेधावी और बहादुर व्यक्तिके रूपमें, अद्वितीय सगठन-कर्त्ता तथा और भी बहुत-से गुणोमे युक्त पुरुषके रूपमें श्री हिटलरका सम्मान करेंगी। लेकिन मै तो यही आशा करूँगा कि जर्मनोकी भावी पीढियाँ अपने वीर पुरुषोंके सम्बन्धमें भी गुण-दोषके आधार-पर निर्णय करने की कला सीख चुकी होंगी। जो भी हो, मै समझता हूँ, हिटलर द्वारा जितना खून बहाया गया उसके अनुपातमे विश्वकी नैतिक ऊँचाईमें रच-मात्र वृद्धि नही हुई है।

इसके विपरीत, कल्पना कीजिए कि आज यूरोपकी स्थिति क्या होती, यदि चेको, पोलैण्डवासियो, नॉर्वेवासियो, फ्रान्सीसियो और अग्रेजो — सबने हिटलरसे कहा होता 'विनाशके लिए ये तमाम वैज्ञानिक तैयारियाँ करने की तुम्हे कोई जरूरत नही है। हम तुम्हारी हिंसाका मुकाबला अहिंसासे करेंगे। इसलिए हमारी अहिंसक सेनाको तुम टैको, युद्ध-पोतो और युद्धक विमानोंके बिना भी नष्ट कर सकते हो।' इसके जवाबमे कहा जा सकता है कि उस हालतमे फर्क सिर्फ इतना होता कि जो चीज हिटलर ने रक्तरजित युद्धसे प्राप्त की उसे वे बिना युद्धके प्राप्त कर लेते। बात बिलकुल ठीक है। किन्तु तब यूरोपका इतिहास कुछ और ढगसे लिखा जाता। शायद (लेकिन शायद ही) अहिंसक प्रतिरोधके मुकाबले भी हिटलरने उसी प्रकार सभी देशोपर कब्जा कर लिया होता जिस प्रकार अकथ्य बर्बरता मचाने के बाद किया है। अहिंसक प्रतिरोधमे मृत्युके ग्रास केवल वही लोग बनते जिन्होने जरूरत पडने पर, किसीको मारे बिना और किसीके प्रति अपने मनमे दुर्भावनाको स्थान दिये बिना, मृत्युका वरण करने के लिए अपनेको प्रशिक्षित किया होता। मै यह कहने की धृष्टता करूँगा कि उस हालतमे यूरोपने अपनी नैतिक ऊँचाईकी अच्छी-खासी अभिवृद्धि की होती। और मै मानता हूँ कि अन्तत महत्त्वकी चीज नैतिक मूल्य ही है। बाकी सब तो निरर्थक वस्तु है।

ये पक्तियाँ मैने यूरोपीय राष्ट्रोंके लिए लिखी है। लेकिन ये है स्वय हमारे लिए। यदि मेरी दलील ठीक लगी हो तो क्या आज वह समय नही है जब हमे सबलकी अहिंसामे अपनी अविचल आस्थाकी घोषणा करनी चाहिए और कहना चाहिए कि हम अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा शस्त्रबलसे नही करना चाहते, बल्कि हम उसका बचाव अहिंसक शक्तिसे करेंगे?

सेवाग्राम, १८ जून, १९४०

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २२-६-१९४०

२५०. टिप्पणी : आश्रमवासियोंके लिए

[१८ जून, १९४०][1]

अब तुमने स्वयं अनुभवसे जान लिया कि आज अ० स० ऐसी स्थितिमें नही है कि उसकी किसी भी बातपर विश्वास किया जाये। यह भी उसकी बीमारीका एक हिस्सा है। इसलिए अब उसकी इच्छा जाननेकी बिलकुल जरूरत नही है। मैंने कल रातको ही कह दिया है कि रसोईघरमे अब उसका प्रवेश नही हो सकता। आजके दिन कुछ बताने-भरके लिए जाये तो जाये, लेकिन काम कुछ न करे। इसलिए अब उसके बिना अपनी इच्छासे हमको प्रबन्ध करना है। अपू खेतमे [काम करने] न जाना चाहे, तो उसे जबरदस्ती न भेजा जाये और तब वह रसोईघर सँभाले। यदि उसे कुछ पूछना हो तो कृष्णचन्द्रसे पूछे। कृष्णचन्द्रकी समझमे न आये, तो मुझसे पूछे, किन्तु अमतुस्सलामसे नही। उसके शरीर अथवा मनके ऊपर कोई बोझ डाला ही न जाये। वह हठपूर्वक काम करती है। आजतक मैंने उसका हठ सहन किया है। किन्तु अब देखता हूँ कि और ज्यादा सहन करूँ तो वह पाप होगा, उसका बुरा करूँगा, और अपना भी बुरा करूँगा। अब तो हम उसकी सेवा इसी तरह कर सकते है कि वह चाहे जितनी नाराज हो, उसे रसोईघरमें काम न करने दिया जाये और मेरा काम भी उससे न कराया जाये। जब उसका शरीर और मन नीरोग हो जायेगा, तब उससे रसोईका, मेरा और अन्य जो वह सकेगी, सो काम लेंगे।

यदि ब्रह्मदत्तके कपड़े कृष्णचन्द्रके पास हो तो इन भाइयोकी मारफत भेज दे या मुझे दे दे तो मैं भेज दूंगा।

यह चिट्ठी सब पढे, और फिर मुझे वापस कर दे।

चिमनलालभाईने ही कहा था, "अब अ० स० बहन मान गई है [वह] रसोड़ा छोड देगी।" [अब] कहते है वह छोडना नही चाहती।[2]

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४५६३) से

---

१. यह टिप्पणी कृष्णचन्द्रके कागजोंमें पाई गई थी और तारीख सम्भवतः उन्हीं की डाली हुई है।

२. यह अनुच्छेद हिन्दीमें है और हाशियेपर लिखा हुआ है।

२५१. पत्र : हीरालाल शर्माको

सेवाग्राम, वर्धा
२० जून, १९४०

चि० शर्मा,

तुमारा खत मिला। किताव भी मिल गई। मैंने पहोच भेजने का सु० [शीला] वहनको कह तो दिया था। किताव चाहिये थी शकरनके लिये जो डिस्पेन्सरीमें काम कर रहा है। प्रति मास एक खतकी इतेजारीमे रहुगा।

वापुके आशीर्वाद

वापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २८६

२५२. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
२१ जून, १९४०

चि० अमृत,

तरह-तरह की परेशानियोके वीच स्नेहकी वस एक पक्ति लिखूंगा। मेरा खयाल है, तुमने इस वीच इसीलिए नही लिखा कि तुम जानती थी कि मुझे डाक देखने का समय मुश्किलसे ही मिल पायेगा। यदि ऐसा है, तो तुम्हारा अनुमान ठीक ही था।

तो जो हुआ है वह तुमने देख ही लिया। मै गमगीन भी हूँ और खुश भी।[1]

स्नेह।

वापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७६)से। सौजन्य अमृतकौर, जी० एन० ७२८५ से भी

१. देखिए पृ० २२२-२५

२५३. पत्र : भगवानदीनको

सेवाग्राम, वर्धा
२२ जून, १९४०

भाई भगवानदिन,

मुझको जो कहा गया है सो तो कोई मस्लीम देहातमे मस्लीम घरमे रहने का कुछ निर्णय हूआ नहि है।

मो० क० गांधी

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७३७) से

२५४. भाषण : गांधी सेवा संघ तथा चरखा संघकी बैठकमें[1]

वर्धा
[२२ जून, १९४०][2]

यह आपकी परीक्षाकी घडी है। हम कह सकते है कि कार्य-समितिको परखा गया तो उसमे कमी पाई गई। क्या गांधी सेवा संघ उस कमीको पूरा करने के लिए कुछ कर सकता है? कार्य-समितिके प्रस्तावका मतलब यह नही है कि आप जनतासे अहिंसामे अपनी आस्था घोषित करने का अनुरोध न करे। आप बेशक ऐसा कर सकते है और उसके बाद कार्य-समितिके सदस्योंसे कह सकते है, 'आपने हमारी आस्थाका मूल्य घटाकर आँका है। हम तो अपने सिद्धान्तपर दृढ रहेगे। सच मानिए, कार्य-समितिके सदस्य इसका बुरा तो कदापि नही मानेगे बल्कि खुशीसे नाच उठेगे। आपमे से कुछ लोग कांग्रेसके सदस्य हैं। जो लोग सदस्य है और जिनकी अहिंसामे आस्था है उनका यह कर्त्तव्य है कि कार्य-समितिके सदस्योको पुन: आश्वस्त करे, अ० भा०

१. यह भाषण महादेव देसाईके लिखे "सम मिसकन्सेप्शन्स" (कुछ गलतफहमियाँ) शीर्षक लेखसे लिया गया है। भाषणकी पृष्ठभूमि समझाते हुए महादेव देसाईने बताया है कि गांधीजी की राय थी कि कांग्रेसजनोंकी अहिंसा-वृत्तिमें शंका करते हुए कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया वह यदि निर्मूल हो तो कांग्रेसजनोंका कर्तव्य है कि वे कांग्रेसको ऐसा बतायें। इसी बातको गांधीजी ने गांधी सेवा संघ और चरखा संघकी संयुक्त बैठकमें अधिक विस्तारसे समझाया था।

२. २६-६-१९४० के हितवादसे

का० कमेटीके समक्ष और समय आने पर कांग्रेसके खुले अधिवेशनमे भी अपनी आस्थाकी घोषणा करे। लेकिन कांग्रेसजन तथा साधारण मनुष्यकी हैसियतसे आपके सिद्धान्त अलग-अलग नही होने चाहिए, कांग्रेससे सम्बद्ध मामलो और उससे असम्बद्ध मामलोमें आपके व्यवहारमे अन्तर नही होना चाहिए। आपकी अहिंसा अगर सच्ची है तो उसे आपके सामान्य जीवनका अग होना चाहिए, आपके मन, वचन और कर्ममे उसका निवास होना चाहिए, और आपका समस्त आचरण उसीके रगमें रँगा हुआ होना चाहिए। तब और केवल तभी आप कार्य-समितिको उपर्युक्त आश्वासन दे सकते है और उसे अपना प्रस्ताव बदलने को विवश कर सकते है।

लेकिन इस बातको मै जरा और स्पष्ट कर दूँ। आप अपने हर कार्यको इसी सिद्धान्तकी कसौटीपर परखेगे। इसका मतलब यह नही कि आप भावुक बन जाये और बालकी खाल निकालते रहे। आपका आचरण स्वाभाविक होना चाहिए। जब मैंने मौन रखना आरम्भ किया तो पहले मुझे उसके लिए खास प्रयास करना पडता था। अब वह मेरे स्वभावका अग बन चुका है और स्थिति यह है कि आज मुझे मौन तोडने के लिए प्रयास करना पडता है। इसी प्रकार अहिंसक आचरण आपके स्वभावका अग बन जाना चाहिए। सम्भव है कि आपका हर चीजको अहिंसासे जोडना तार्किक दृष्टिसे गलत हो, लेकिन आपके लिए वह गलत नही है। हो सकता है, मेरा यह मानना कि मेरे द्वारा निकाला गया सूतका हर तार स्वराज्यको निकट ला रहा है, लोगोको गलत लगे, लेकिन मेरे लिए यह विश्वास उतना ही सच्चा है जितना सच्चा स्वय मेरा अस्तित्व। यही विश्वास मुझे अपना विवेक खोने से बचाता है। यह चरखा मेरे लिए अहिंसाका प्रतीक है। चरखा अपने-आपमे निष्प्राण है, लेकिन जब मै उसमें प्रतीकत्वका आधान करता हूँ तब वह मेरे लिए सजीव बन जाता है। उसकी ध्वनि यदि सुरीली हो तो वह अहिंसाके सुरके साथ मेल खाती है। अगर वह बेसुरी हो तो इसका मतलब है कि वह उससे मेल नही खाती, क्योकि तब वह मेरी लापरवाहीका सकेत देती है। इस्पातके तकुएका उपयोग घातक हथियारके रूपमें भी किया जा सकता है, लेकिन हमने उसका यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा नियोजन किया है। इसलिए हमे चरखेके हर हिस्सेके सम्बन्धमे अत्यधिक सावधानीसे काम लेना है। तब और केवल तभी वह मधुर सगीत उत्पन्न करेगा और कातने का काम सच्चा यज्ञ-रूप होगा।

इसपर आप कह सकते है कि ऐसी साधनामें तो हजारो वर्ष लग सकते है। सचाई यह है कि कुछ लोगोको इसमे हजारो वर्ष भी लग सकते है और कुछको मात्र एक वर्ष ही। यह मत सोचिए कि यदि मै पचास वर्षकी साधनाके बाद भी इसमे सिद्ध नही हो पाया हूँ तो आपको इसमे और भी अधिक वर्ष लगेंगे। नही, त्रैराशिका नियम यहाँ लागू नही होगा। आप मुझसे जल्दी भी सफल हो सकते है। मैंने पृथ्वीसिहसे कहा था . 'तुममे कमसे-कम वीरोकी हिंसा तो थी। मुझमें ऐसा कुछ नही था। अब अगर तुम यह मानते हो कि तुम्हे अपने अन्दर वीरोकी अहिंसाका विकास करना चाहिए तो तुम यह काम मेरी अपेक्षा बहुत शीघ्रतासे कर सकोगे

और मुझे पीछे छोड दोगे।' जब मैने यह बात कही थी तब मेरा आशय भी बिलकुल यही था। यह बात आपमे से हरएक पर लागू होती है। दक्षिण आफ्रिकामें चूँकि सबसे पहले मैंने ही जूते गाँठना सीखा था, इसलिए दूसरोको भी मैंने ही सिखाया। लेकिन मुझसे सीखनेवाले शीघ्र ही मुझसे आगे निकल गये। इसका कारण यह था कि मै एक सच्चा शिक्षक था। अब अगर मै अहिसाका सच्चा शिक्षक हूँ तो मुझे यकीन है कि जल्दी ही आप अपने शिक्षकको पीछे छोड़ देगे। अगर ऐसा नही होगा तो उसका मतलब यही होगा कि मै अयोग्य शिक्षक था। लेकिन मेरा शिक्षण प्रतिफलित होता है तो हर घरमे अहिसाके शिक्षक होगे।

मै यह जानना चाहता हूँ कि आपमे से कितने लोग मेरे साथ है। यदि कोई भी मेरा साथ नही देता तो मै अपनी राह अकेले चलनेको तैयार हूँ। कारण, मै जानता हूँ कि मै कदापि 'अकेला' नही हो सकता, क्योकि ईश्वर हमेशा मेरे साथ है। आप सब लोग मेरे सह-साधक है। मै वृद्ध हूँ, लेकिन आपके सामने अभी बहुत वर्ष पडे हुए है। तथापि मै आपको बता दूँ कि मै उम्रके बोझको महसूस नही करता। मै नही समझता कि मेरी विकासकी शक्ति या शोधकी क्षमता चुक गई है।

इसलिए अब जाकर आपको यह पता लगाना है कि काग्रेसजनोमे कितने लोग है जिनकी सचमुच अहिसामे श्रद्धा है। कार्य-समितिके सदस्य आपके प्रतिनिधि है। यदि आपकी श्रद्धाको आँकने मे उनसे भूल हुई है तो उनके निर्णयको आपको सुधारना है। मेरी स्थिति उनसे भिन्न थी। मै अपनेको अहिसाका पक्का प्रतिनिधि मानता हूँ, और इसलिए मैने १९३४ मे काग्रेससे अपना नाता तोड़ लिया। इसके सिवा मेरे सामने कोई चारा नही था। यदि मै ऐसा न करता तो अपने सिद्धान्तके साथ दगा करता।

मेरी कमियोको मुझसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नही जानता, लेकिन मुझमे जो थोडी-बहुत शक्ति है उसका स्रोत अहिसा है। मेरी अहिसाके सिवा और कौन-सी चीज है जिसके कारण हजारो स्त्रियाँ निर्भीकतापूर्वक और आत्मविश्वासके साथ मेरी ओर खिची चली आती है? लेकिन अपनी सचित पूंजीके बलपर न तो मै अपना काम चलाता रह सकता हूँ, न आप। हमे अपने जीवनके हर क्षण सजग रहकर कर्म करते रहना है और अपनी साधनाके मार्गपर आगे बढते रहना है। जिस प्रकार हिटलरका जीवन, उनकी प्रवृत्ति और उनका अस्तित्व हिसामय है उसी तरह हमारे जीवन, हमारी प्रवृत्ति और हमारे अस्तित्वको अहिसामय होना है। उन्होने जिस श्रद्धा, अध्यवसाय तथा चित्तकी एकाग्रताके साथ विनाशके शस्त्रोको पूर्णता प्रदान की है, उसका मै प्रशसक हूँ। वे इन गुणोंका उपयोग दानवकी तरह करते है, इस बातका हमारे प्रयोजनके लिए महत्त्व नही है। हमे अपनी अहिसाका विकास करनेके लिए चित्तकी ऐसी ही एकाग्रता और इसी प्रकारके अध्यवसायसे काम लेना है। हिटलर अपनी साधना पूरी करनेके लिए चौबीसो घटे जाग्रत रहते है। उन्हे विजय इसलिए मिलती है कि वे इसकी कीमत चुकाते है। उनके आविष्कारोसे उनके शत्रु चकित रह जाते है। लेकिन हमारी प्रशसाकी चीज तो अपने उद्देश्यके प्रति उनकी

एकाग्र निष्ठा है और हमारे लिए अनुकरणीय भी यही चीज है। यद्यपि वे अपनी जागृतिके हर क्षण काम ही करते रहते हैं तब भी उनकी बुद्धि न तो कुण्ठित होती है, न उसमें कोई त्रुटि आती है। क्या हमारी बुद्धि अकुण्ठित और अचूक है? अहिंसा या चरखेमें विश्वास-भर करने से हमारा काम नहीं चलनेवाला है। उस विश्वासके पीछे तेजस्वी बुद्धि और रचनात्मक वृत्ति होनी चाहिए। यदि बुद्धि हिंसाके क्षेत्रमे बड़ी भूमिका निभाती है तो मैं मानता हूँ कि अहिंसाके क्षेत्रमें उसकी भूमिका उससे भी बड़ी है।

इसके बाद गांधीजी ने इस दिशामें रिचर्ड ग्रेगके कार्यका उल्लेख करते हुए बताया कि किस प्रकार वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि अहिंसाके प्रतीकके रूपमें चरखेकी उपयोगिता केवल भारतके लिए ही नहीं अपितु सारी दुनियाके लिए है। उन्होंने आगे कहा:

कार्य-समितिका निर्णय उसके आसपासके वातावरणकी प्रतिध्वनि-मात्र था। मेरा निर्णय उसकी प्रतिध्वनि नहीं हो सकता था। कारण, अहिंसा कांग्रेसकी नहीं, मेरी विशेष साधना है। मैं सदस्योंको उनकी ईमानदारी और साहसपर बधाई देता हूँ, यद्यपि खुद अपने बारेमें मुझे इस बातका अफसोस है कि मैं उनमें हमारे सिद्धान्त और नेतृत्वके प्रति विश्वासका संचार नहीं कर सका। अब हमें यह दिखाना है कि सबल की अहिंसामें हमारी आस्था है। इसका मतलब जेल जाने की क्षमताका विकास करना नहीं है। इसका मतलब तो स्वराज्य-प्राप्तिके साधनके रूपमें रचनात्मक कार्यकी शक्ति तथा रचनात्मक कार्यके अहिंसा-कार्यक्रमका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग होने में अधिकाधिक आस्था है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-७-१९४०

२५५. खुश भी, गमगीन भी

१८ तारीखको मैंने 'हरिजन' मे यह आशा प्रकट की थी[1]

> **यदि मेरी दलील ठीक लगी हो तो क्या आज वह समय नहीं है जब हमें सबलकी अहिंसामें अपनी अविचल आस्थाकी घोषणा करनी चाहिए और कहना चाहिए कि हम अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा शस्त्रबलसे नहीं करना चाहते, बल्कि हम उसका बचाव अहिंसाकी शक्तिसे करेंगे?**

२१ तारीखको कार्य-समितिने अवसर आने पर इस श्रद्धाके अनुरूप आचरण करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी।[2] कारण, समितिके समक्ष अपनी श्रद्धाकी कसौटी करने का प्रसंग इससे पहले कभी आया ही नही था। पिछली बैठकमे उसे आसन्न आन्तरिक अराजकता और बाह्य आक्रमणके खतरेका सामना करने के लिए अपनी कार्य-दिशा निर्धारित करनी थी।

मैंने समितिको बडी आजिजीसे समझाया "यदि सबलकी अहिंसामे आपकी श्रद्धा है तो यही तदनुरूप आचरण करने का अवसर है। बहुत-से दल सबल या निर्बल किसीकी भी अहिंसामे विश्वास नही करते, इससे कोई अन्तर नही पडता। शायद इस कारणसे तो और भी जरूरी हो जाता है कि कांग्रेसजन इस आपात् स्थितिका सामना अहिंसक कार्योंसे करे। कारण, यदि सभी अहिंसक हो तो अराजकता नही हो सकती और बाहरी आक्रमणका सामना करने के लिए किसीके शस्त्र-सज्जित होने का भी कोई प्रश्न नही हो सकता। चूंकि अहिंसामे विश्वास न रखने-वाले दलोंके बीच केवल कांग्रेसजन ही अहिंसक पक्षका प्रतिनिधित्व करते है, इसीलिए आज उनका फर्ज हो जाता है कि वे अपनी श्रद्धाके अनुरूप आचरण करने की अपनी सामर्थ्य दिखा दे।"

१. देखिए "हिटलरशाहीका मुकाबला कैसे करें", पृ० २१३-१५।

२. पाँच दिनके विचार-विमर्शके बाद कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया उसमें अन्य बातोंके अलावा यह भी कहा गया था: "यद्यपि कार्य-समिति यह मानती है कि कांग्रेसको अपने स्वातन्त्र्य-संघर्षमें अहिंसाके सिद्धान्तका दृढ़तासे पालन करते रहना चाहिए, किन्तु इस सम्बन्धमें... जिन मानवीय तत्वोंसे उसका वास्ता पड़ता है उनकी अपूर्णता और त्रुटियोंकी वह उपेक्षा नहीं कर सकती...। इस प्रकार जो समस्या सामने आई है उसपर पूरा विचार करके समिति इस निष्कर्षपर पहुँची है कि वह गांधीजीके साथ अन्ततक नहीं चल सकती। लेकिन समिति स्वीकार करती है कि उन्हें अपने महान् आदर्शके मार्गपर अपनी रीतिसे चलनेकी स्वतन्त्रता है, और इसलिए बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक अराजकताको लेकर भारत और विश्वमें जो स्थिति विद्यमान है उसमें कांग्रेसको जिस कार्यक्रम और जिन प्रवृत्तियोंको चलाना है उनकी जिम्मेदारीसे वह उन्हें मुक्त करती है।"

किन्तु कार्य-समितिके सदस्योको लगा कि काग्रेसजन इस श्रद्धाके अनुरूप आचरण नही कर पायेगे। यह उनके लिए एक नया अनुभव होगा। इससे पहले उनके सामने ऐसे सकटमे निवटने का प्रसग कभी नही आया। साम्प्रदायिक दगो आदिसे निवटने के लिए शान्ति-सेना खडी करने की मेरी कोशिश विलकुल नाकाम रही थी। इसलिए जिस प्रकारकी कार्रवाईकी तजवीज थी उस प्रकारकी कार्रवाई करने की आशा समितिको नही थी।

मेरी स्थिति भिन्न थी। काग्रेस अहिंसाको हमेशा एक नीतिकी ही तरह स्वीकार करती आई है। उसके निष्फल होने पर उसका त्याग कर देने का मार्ग उसके लिए खुला रहा है। यदि वह राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता नही दिला सकती तो काग्रेसके लिए वह निकम्मी चीज है। लेकिन मेरे लिए अहिंसा धर्म-रूप है। मैं अकेला होऊँ या मेरे साथ और भी लोग हो, मुझे तो उसपर आचरण करना ही है। चूँकि अहिंसाका प्रचार मेरा जीवन-कार्य है, इसलिए मुझे तो हर परिस्थितिमें उसी राह चलना है। मुझे लगा कि यही वह घड़ी है जब मैं ईश्वर और मनुष्यके समक्ष अपनी श्रद्धाको सिद्ध कर सकता हूँ। और इसलिए मैंने काग्रेसके कार्योके दायित्वसे मुक्तिकी माँग की। अबतक मैं काग्रेसकी आम नीतिके निर्धारणके लिए जिम्मेदार रहा हूँ। मेरे और उसके बीच बुनियादी मतभेदोके सामने आ जाने पर अब मैं उसका नीति-निर्धारण नही कर सकता था। समितिको यह समझने मे देर नही लगी कि मेरा यह रुख सही है, और उसने मुझे मुक्त कर दिया। ऐसा करके उसने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि उसे लोगोने जो विश्वास दिया है वह उसकी उपयुक्त पात्र है। उसने स्वय अपने प्रति भी ईमानदारीका परिचय दिया है। उसे न अपने बारेमें और न उनके बारेमें ही जिनका वह प्रतिनिधित्व करती है, यह भरोसा था कि वे लोग अपने आचरणमें अपेक्षित अहिंसाका परिचय दे पायेंगे। और इसलिए समिति ईमानदारीके साथ जो एकमात्र रास्ता चुन सकती थी वही उसने चुना। उसने बहुत बड़ी कुर्बानी की। काग्रेसने अपनी विशुद्ध अहिंसाके लिए विश्वमे जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, समितिने उसकी कुर्बानी दी, उसने उस अलिखित और अनुच्चरित सम्बन्धका विसर्जन किया जो मेरे और उसके बीच चला आ रहा था। किन्तु यद्यपि एक समान आदर्श या नीतिके आचरणके मामलेमें हम दोनोका सम्बन्ध टूट गया है, हमारी बीस वर्षसे अधिक कालकी मैत्री नही टूटी है।

मैं इस परिणाममे खुश भी हूँ और गमगीन भी। खुश इसलिए हूँ कि मैं इस टूटने की व्यथाको बर्दाश्त कर पाया हूँ और मुझे अकेले खड़े रहने की शक्ति प्राप्त हुई है। गमगीन इसलिए हूँ कि मुझे लगा, जिन लोगोको इतने वर्षोमे—जो अभी कलकी तरह ताजा प्रतीत होते हैं—अपने साथ लेकर चलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त था, अब उन्हे अपने साथ ले चलने की शक्ति मेरे शब्द खो बैठे है। लेकिन मैं जानता हूँ कि यदि ईश्वरने मुझे सबलकी अहिंसाकी शक्तिको प्रदर्शित करने का रास्ता दिखा दिया तो यह सम्बन्ध-विच्छेद अस्थायी ही सिद्ध होगा। अगर उसका कोई रास्ता नही सूझता तो माना जायेगा कि मुझे अपने रास्ते अकेले जाने देने का दर्द सहकर

उन्होने बुद्धिमानीका ही काम किया। अगर मेरे भाग्यमे अन्तत अपनी असमर्थता का दु खद भान ही लिखा हुआ है तो भी मै आशा करता हूँ कि जिस श्रद्धाके बल पर मै इतने वर्षोसे टिका रहा हूँ उसे अब भी कायम रख सकूँगा और मुझमे इतनी विनम्रता होगी कि महसूस कर सकूँ कि मै अहिंसाकी मशालको लेकर और आगे बढने लायक नही था।

लेकिन यह दलील और शका इस मान्यतापर आधारित है कि कार्य-समितिके सदस्य काग्रेसजनोके बहुत बडे हिस्सेकी भावनाका प्रतिनिधित्व करते है। उनकी कामना और आशा तो यही होगी कि काग्रेसजनोके बहुत बडे हिस्सेके मनमे सबलकी अहिंसाका निवास हो। अगर उन्हे यह पता चले कि उन्होने काग्रेसजनोकी शक्तिको घटाकर आँका है तो उनसे ज्यादा खुशी किसीको नही होगी। लेकिन सम्भावना यही है कि सबलकी अहिंसाका प्रतिनिधित्व करनेवाले काग्रेसजन बहुमतमे नही, बल्कि केवल अच्छे-खासे अल्पमतमे है। यह बात भी याद रखनी चाहिए कि यह मुद्दा ऐसा नही है जिसे दलीलसे सिद्ध किया जा सके। कार्य-समितिके सदस्योके सामने दलीले तो बहुत-सी पेश की गई थी। लेकिन अहिंसा तो हृदयकी विशेषता है, इसलिए वह बुद्धिपूर्वक समझाने-बुझाने से पैदा नही हो सकती। इसलिए आवश्यकता शान्त किन्तु सकल्पयुक्त रीतिसे अहिंसक शक्तिका परिचय देने की है। इसका अवसर हर व्यक्तिके सामने प्राय प्रति-दिन आता है। आये दिन साम्प्रदायिक दगे होते है, डाके पड़ते है और वाग्युद्ध चलते है। जो लोग सच्चे अर्थोमे अहिंसक है वे इन तमाम प्रसगो-पर अहिंसाका परिचय दे सकते है और देगे। यदि उसका परिचय पर्याप्त रूपसे दिया जायेगा तो ऐसा नही हो सकता कि उनके परिवेशमे इस शक्तिका प्रसार न हो। मुझे पूरा यकीन है कि ऐसा कोई काग्रेसजन नही है जो सिर्फ जिद्द कर अहिंसाकी शक्तिमे अविश्वास करता हो। जो काग्रेसजन मानते है कि आन्तरिक अराजकता और बाहरी आक्रमणका मुकाबला करने मे काग्रेसको अहिंसापर दृढ रहना है, वे अब अपने दैनिक जीवनमे इस विश्वासको आचरित करके दिखाये। सबलकी अहिंसा मात्र एक कार्य-साधक नीति नही हो सकती। उसे तो धर्म-रूप होना चाहिए, या अगर किसीको 'धर्म' शब्दपर आपत्ति हो तो कह लीजिए, व्यक्तिको उसकी सच्ची लगन होनी चाहिए। लगनवाला आदमी अपनी लगन की अपने हर छोटे-मोटे काममे भी अभिव्यक्त करता है। इसलिए जिसमे अहिंसाकी लगन है वह अपने परिवारके दायरेमे, पड़ोसियोके प्रति अपने व्यवहारमे, अपने काम-काजमे, काग्रेसकी सभाओमे, सार्वजनिक सभाओमे तथा विरोधीके प्रति अपने व्यवहारमे भी उसकी अभिव्यक्ति करेगा। चूँकि काग्रेसजनोके बीच अहिंसाकी लगनकी ऐसी अभिव्यक्ति नही हुई है, इसलिए कार्य-समितिके सदस्य सर्वथा औचित्यपूर्वक, इस निष्कर्षपर पहुँचे कि काग्रेसजन आन्तरिक अव्यवस्था और बाहरी आक्रमणके अहिंसक उपचारके लिए तैयार नही है। स्थापित सत्ता अहिंसक कार्रवाईसे होनेवाली परेशानीके कारण जनेच्छाके आगे झुक जायेगी, यह सही है। लेकिन स्पष्ट ही अव्यवस्थाके बीच ऐसी कार्रवाईके लिए अपना ठीक प्रभाव दिखाने की गुजाइश नही होती। हमें प्रतिशोधमे

अपना हाथ उठाये बिना और अव्यवस्था फैलानेवालोंके प्रति मनमें कोई द्वेष या क्रोध रखे बिना मृत्युका वरण करना है। यह तो सहज ही देखा जा सकता है कि इस प्रसंगमें जैसी अहिंसाकी आवश्यकता है वह उस अहिंसासे सर्वथा भिन्न प्रकारकी है जिसे कांग्रेसने अबतक जाना है। लेकिन सच्ची अहिंसा केवल यही है और यही विश्वको आत्म-विनाशसे बचा सकती है। और युद्धके अभिशापसे मुक्ति पाने को इच्छुक किन्तु उस मुक्तिके मार्गसे अनभिज्ञ विश्वको यदि भारत सच्ची अहिंसाका सन्देश नहीं दे सका तो देर-सबेर — बल्कि देरके बजाय सबेर ही — संसारका आत्म-विनाश निश्चित है।

सेवाग्राम, २४ जून, १९४०

पुनश्च .

ऊपरका लेख लिखने और टाइप करवाने के बाद मैंने जवाहरलालका वक्तव्य[1] देखा। इस वक्तव्यमें मुझे उद्दिष्ट करके लिखे गये हर वाक्यमें मेरे प्रति उनका स्नेह और विश्वास टपकता है। ऊपरके लेखमें किसी संशोधनकी जरूरत नहीं है। बेहतर है कि पाठकोंको हम दोनोंकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र प्रतिक्रियाओंकी जानकारी मिल जाये। इस अलगावका परिणाम शुभ ही होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २९-६-१९४०

२५६. 'मसनवी'[2] क्या कहती है

बम्बई-निवासी वकील श्री रुस्तमजी अन्ध्यारुजीनाने मुझे एक पत्र भेजा है। मैं उसे खुशीसे नीचे छापता हूँ:

> 'हरिजन'के पिछले अंकमें दिल्लीके एक खान बहादुरके पत्रका उत्तर देते हुए आपने शाश्वत सत्ययुक्त यह वाक्य[3] लिखा है:
>
> "धर्म मनुष्यको मनुष्यसे अलग करने के लिए नहीं, उनको आपसमें जोड़ने के लिए है।" (पृष्ठ १५७, दूसरा अनुच्छेद)

१. २३ जूनको बम्बईसे जारी किये गये अपने वक्तव्यमें जवाहरलाल नेहरूने कहा था: "... गांधीजी और कार्य-समितिके दृष्टिकोणोंके अन्तरको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और उससे लोगोंको ऐसा नहीं मान बैठना चाहिए कि कांग्रेस और उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है। पिछले बीस वर्षोंकी कांग्रेस उन्हींकी सृष्टि, उन्हींकी सन्तति है और इस नातेको कोई चीज तोड़ नहीं सकती। मुझे विश्वास है कि कांग्रेसको उनकी सलाह और मार्ग दर्शन सदा सुलभ रहेगा।"

२. फारसके रहस्यवादी कवि जलालुद्दीन रूमी (१२०७-७३) की लिखी कविता

३. देखिए पृ० १५४।

इस वाक्यसे मुझे फारसीके एक प्रसिद्ध कविके उन अमर शब्दोंका स्मरण हो आता है जो उन्होंने अपनी कविताके चौदहवें छन्दमें ईश्वर द्वारा हजरत मूसासे कहलाये हैं:

"तू इस दुनियामें ऐक्य स्थापित करने आया है, न कि जुदाई।"

मूल:

"तो बराय वस्ल करदन आमदी,
न बराय फस्ल करदन आमदी।"

इस छन्दमें निहित सत्यके सौन्दर्य और भव्यताका दर्शन कराने के लिए मैं सारी-की-सारी कविताका अविकल अनुवाद नीचे देता हूँ:

"हजरत मूसाने एक बार सड़कपर एक गड़रियेको पुकारते हुए देखा कि 'सर्वशक्तिमान् ईश्वर! मुझे वता, तू कहाँ है, ताकि मैं तेरा सेवक बन सकूँ, तेरे भारी-भारी जूते सीऊँ और तेरे बालोंको कंघी करूँ।

तेरे हाथको चूमूँ, तेरे चरण दबाऊँ और तेरे सोने के लिए फर्शपर झाड़ू लगाऊँ।

अगर भविष्यमें तू कभी बीमार पड़े, तो तेरे सगे-सम्बन्धियोंकी तरह मैं तेरे लिए दुःखी होऊँ।

हे ईश्वर, मैं अपना जीवन, अपने बाल-बच्चे और अपनी जायदाद तेरे लिए कुर्बान करता हूँ।

हाँ, मेरी सब भेड़ें तुझपर कुर्बान हैं। हर बार जब मैं अपनी किसी गुमराह भेड़को पुकारता हूँ तो वह तुझे याद करने के लिए ही होता है।"

जब गड़रिया इस तरह बोल रहा था, हजरत मूसाने उससे कहा, "तू किससे बातें कर रहा है?"

उसने उत्तर दिया, "मैं उससे बातें कर रहा हूँ, जिसने हमें पैदा किया है और जिसने यह जमीन और आसमान बनाया है।"

हजरत मूसा बोल उठे, "अफसोस! तू इतना मगरूर और बेअदब हो गया है। तू अब मुसलमान नहीं रहा, काफिर हो गया है।

अगर तू चुप नहीं हुआ, तो दोजखकी आग सारी दुनियाको भस्म कर डालेगी।"

बेचारा गड़रिया दुःखी होकर बोला, "हे मूसा, आपने मेरा मुँह सी दिया है। पश्चात्ताप मेरी आत्माको जलाये डालता है।"

उसने अपने कपड़े फाड़कर चिथड़े कर डाले, और आह भरते हुए जंगलकी तरफ चला गया और उसमें गायब हो गया।

मूसाको गैबी आवाज आई, "तूने मेरे दासको मुझसे जुदा क्यों किया? तू इस दुनियामें ऐक्य स्थापित करने को आया है, न कि जुदाई।

तू जान ले कि हम बाहरी स्वरूप या शब्दोंको नहीं देखते। हम अन्दरूनी और असली चीजको ही देखते हैं।"

ज्यों ही हजरत मूसाने सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी यह फटकार सुनी, वे घने जंगलमें गड़रियेके पीछे भागे।

आखिर मूसाने उसे बियाबानमें ढूँढ़ निकाला। पैगम्बर गड़रियेसे बोले, "मैं तेरे लिए एक खुशखबरी लाया हूँ। ईश्वरने मुझे तुझे यह कहनेका हुक्म दिया है कि उसे पुकारते हुए रीति-रिवाज और तकल्लुफकी फिक्र करनेकी जरूरत नहीं। जो तेरे छोटे-से हृदयसे निकलता है, वही कहना।"

('मसनवी-ए-मौलवी' से)

काश कि इस काव्यका रहस्य हम सबको हृदयगत हो जाये! क्या पाकिस्तान-की हलचल इस प्रत्यक्ष सत्यकी अस्वीकृति नहीं है?

सेवाग्राम, २४ जून, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २९-६-१९४०

२५७. प्रश्नोत्तर

व्रत और इच्छाशक्ति

प्र०: मैं ब्रह्मचर्यका एक सच्चा शोधक हूँ। मगर अपने तमाम प्रार्थनामय प्रयत्नके बावजूद, मैं विषयमें अधिकाधिक डूबता जा रहा हूँ। इसके लिए मैं अपनी सहधर्मिणीको दोष नहीं दे सकता। मेरी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि अलग रहनेके नियमपर अमल नहीं कर सकता।

आप व्रतोंकी शक्तिकी हिमायत करते हैं और उसमें आपका विश्वास है। 'हरिजन' में आपने कहा है कि "जिनका मन और आत्मा दुर्बल हैं उनके लिए व्रत बलवर्धक ओषधिका काम देते हैं।" लेकिन अपने लिये हुए व्रतके पालनकी इच्छाशक्तिसे रहित मुझ-जैसे लोगोंको आप वह ओषधि कैसे देंगे? मुझमें वह प्रबल इच्छाशक्ति होती, तो व्रत लेनेकी कोई जरूरत ही न पड़ती।

उ०: मैं आपको साफ-साफ बता दूँ कि मैं आपकी सचाईमें विश्वास नहीं करता, हालाँकि इसका मतलब यह नहीं कि आप इरादतन झूठ बोल रहे हैं। आप अनजाने ही झूठका आचरण कर रहे हैं। अगर आप सच्चे हैं तो कमसे-कम साधनाके नियमोंका तो पालन करेंगे। यह कहकर तो आप अपना पक्ष ही गँवा बैठते हैं कि जगहकी कमीके कारण आप अपनी पत्नीसे अलग नहीं रह सकते। ऐसा बहाना तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया। अगर आप कोई व्रत लेते हैं तो कमसे-कम अपने

चारो ओर ऐसा वातावरण आपको पैदा करना ही होगा जो उसके पालनके लिए आवश्यक हो। जिस-किसीने भी व्रतको सफलतापूर्वक निभाया है उसने इस पहली शर्तको पूरा किया ही है। अगर आपके पास रहने के लिए सिर्फ एक ही कमरा है, तो या तो आपको ही किसी दूसरी जगह चले जाना चाहिए या अपनी पत्नीको कही भेज देना चाहिए अथवा अपने किसी रिश्तेदारको उसी कमरेमे सुलाना चाहिए। प्रश्न असलमे यह है कि आप कहाँतक कृतसकल्प है। हो सकता है, ब्रह्मचर्यका पालन आप महज इसलिए करना चाहते हो कि आपने उसके विषयमे बहुत-कुछ पढा है और आपकी यह इच्छा हो कि ब्रह्मचारियोमे आपकी भी गणना होने लगे। ऐसे बहुत-से नवयुवकोको मै जानता हूँ। अगर ऐसी बात है तो आपको यह प्रयत्न नही करना चाहिए। ब्रह्मचर्यका जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्यके हृदयमे उत्कट इच्छा होनी चाहिए। अगर वैसी इच्छा है तो आपको वे सब उपाय करने ही होगे जो सभी मुमुक्षुओने किये है। तब निश्चित रूपसे आपको अपने प्रयत्नमे सफलता मिलेगी। अगर आपने अभी तक मेरी 'सेल्फ-रेस्ट्रेंट वर्सेज सेल्फ इडलजेस'[1] नामक पुस्तक नही पढ़ी है, तो उसे पढना चाहिए।

क्या किया जाये ?

प्र० : देशकी हालत दिन-ब-दिन गम्भीर होती जा रही है। सब जगह घबराहट बढ़ती जा रही है। कहीं-कहीं तो बदमाशोंने हथियारबन्द गिरोह बनाने भी शुरू कर दिये हैं, ताकि यदि केन्द्रीय सरकार बिखर जाये या कमजोर पड़ जाये, तो उससे पैदा होनेवाली अराजकताका ये लोग फायदा उठा सकें। भले ही यह खतरा आज निकट न हो, पर इसकी सम्भावनापर ध्यान न देना मूर्खता होगी। आप यह तो स्वीकार करेंगे कि पिछले बीस वर्षोंमें अहिंसाकी जितनी भी तालीम देशको मिली है, उससे ऐसी अहिंसक शक्ति पैदा नही हुई है कि अराजकता और गुंडागिरीका सफलतासे सामना किया जा सके। सरकार नागरिकोंको आत्म-रक्षार्थ संगठित करने के लिए कदम उठा रही है। जो लोग नेतृत्व तथा पथ-प्रदर्शनके लिए आपकी ओर आँख लगाये बैठे है, उनका क्या कर्त्तव्य है? क्या वे लोग सरकारकी प्रवृत्तियोंमें हिस्सा लें? अगर नहीं तो और क्या करे? निश्चय ही वे लोग हाथ-पर-हाथ रखकर निश्चेष्ट तो नहीं बैठ सकते।

उ० : मै नही कह सकता कि कार्य-समितिके हालके बयानके बाद काग्रेस सचमुच क्या करेगी। अगर आप अराजकता आदिके अहिंसक उपचारमे विश्वास रखते है तो स्वभावत आप अपने-आपको, अपने पडोसियो और ऐसे लोगोको, जिनपर आप असर डाल सकते है, अहिंसक आत्मरक्षाके लिए तैयार करेंगे। आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि कोई भी जिम्मेदार आदमी आज हाथ-पर-हाथ धरे बैठा नही रह सकता। हिंसक तैयारीके लिए यह जरूरी है कि काफी पहलेसे

१. इस पुस्तकका हिन्दी संस्करण सयम और सन्तति-नियमन शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

उसका प्रशिक्षण लिया गया हो। अहिंसाकी तैयारीमे मनको तैयार करने का सवाल है। इसमे शक नही कि अराजकताकी सम्भावना है, मगर आप अहिंसक है, तो आप भयभीत नही होगे। एक-न-एक दिन मृत्युका आना निश्चित है, यह जानते हुए भी जिस प्रकार आप ऐसा व्यवहार नही करते मानो वह तो आ ही गई है उसी प्रकार आप अराजकताको भी आई हुई मानकर न चले। अगर आप अहिंसक है तो यही मानेगे कि अराजकता नही आयेगी। अगर बदकिस्मतीसे वह आ ही गई तो आप, आपके साथी और आपके अनुयायी उसे रोकने के लिए अपने प्राणोकी आहुति दे देंगे। जो लोग ऐसे लोगोको, जिन्हे वे डाकू या बदमाश मानते है, मारने की कोशिश में अपनी जान दे देते है, वे इससे कुछ ज्यादा बेहतर काम नही करते बल्कि शायद कुछ बदतर ही करते है। वे अपनी जान खतरेमें डालते है और उनकी मृत्युके बाद अधेरा-ही-अधेरा रह जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि प्रतिहिंसासे हिंसाकी ज्वालाको और भडकाकर वे अपने पीछे शायद और बदतर स्थिति छोड जायें। जो लोग प्रतिरोध किये बिना मर जाते है, सम्भव है, वे अपने सर्वथा निर्दोष बलिदानसे हिंसाकी ज्वालाको शमित कर जायें। मगर यह सच्ची अहिंसक कार्रवाई तभी सम्भव है, जब आपमें यह हार्दिक विश्वास हो कि जिससे आप डरते है और जिसे चोर-डाकू और इससे भी बुरा व्यक्ति मानते है वह और आप एक ही है और इसलिए आपका वह अज्ञानी भाई आपके हाथो मरे, इससे बेहतर यह है कि आप ही उसके हाथो मारे जाये।

पाकिस्तान और संविधान-सभा

प्र० : हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र है, यह सिद्धान्त कांग्रेसकी संविधान-सभाकी माँगका मुँहतोड़ जवाब है। ये दोनो माँगें लगभग एक-सी बेतुकी है। मेरी समझमें संविधान-सभाकी कल्पना वर्तमान परिस्थितियोकी उपेक्षा करती है। हमारी ९५ फी-सदी जनता निरक्षर है। धार्मिक पूर्वग्रहोका आधिपत्य तो लगभग सभीपर है। इसके अलावा, भ्रष्टाचार तो है ही। और संविधान-सभाके खिलाफ सबसे गम्भीर आपत्ति यह है कि जबतक बहुमतके मनमें अल्पमतके संरक्षणकी शर्तोको पूरा करने की सच्ची इच्छा न हो, तबतक संरक्षणकी अच्छीसे-अच्छी शर्तें भी हवाई ही सिद्ध होने-वाली है।

उ० पाकिस्तान और संविधान-सभाकी चर्चा साथ-साथ करना तो जरा भी मुनासिब नही है। पाकिस्तानकी योजना, मेरी समझमे, हर तरहसे गलत है। पर संविधान-सभाकी कल्पनामे कोई बुराई नही है। उसका बडेसे-बड़ा दोष यही हो सकता है कि उसकी रचनाका सवाल खतरोसे भरा हुआ हो। मगर खतरे तो हर-एक महान् प्रयोगमें रहते ही है। ये खतरे उठाने ही चाहिए। खतरोको कम करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। मगर हम सबके समान ध्येयको प्राप्त करने के लिए मुझे संविधान-सभा-जैसा कोई दूसरा रास्ता दिखाई नही देता। मैं मानता हूँ कि निरक्षरताकी कठिनाई है। सच तो यह है कि वयस्क मताधिकार राष्ट्रवादी मुसल-

मानोके कहने पर दाखिल किया गया था। इनमे स्वर्गीय अली-बन्धु भी थे। भ्रष्टाचारका खतरा भी है। मगर सस्था जितनी वडी होती है, उतना ही भ्रष्टाचारका असर कम महसूस होता है, क्योकि वह वहुतोमे बँट जाता है। काग्रेसमे काफी भ्रष्टाचार और द्वेष है, पर वह चन्द कर्त्ता-धर्त्ता लोगोतक ही सीमित है। काग्रेस-जनोका विशाल समुदाय इन दोषोसे अछूता है, हालाँकि काग्रेसके अच्छे कामोसे वह लाभान्वित होता है। सरक्षणोके वारेमे जिस खतरेका आप जिक्र करते है वह खतरा नही के वरावर रह जायेगा, वशर्ते कि संरक्षण सविधान-सभाकी मारफत दिये जाये। कारण, जिन सरक्षणोकी व्यवस्था वयस्क मताधिकारसे चुने हुए मुसलमान प्रतिनिधियो द्वारा की जायेगी वे अपनी हिफाजतके लिए वहुमतकी ईमानदारी या नेकनीयतीपर नही, वल्कि जाग्रत मुसलमान जनताकी शक्तिपर निर्भर रहेगे। और जिस गम्भीर आपत्तिकी वात आप करते है उसका सम्बन्ध वस्तुत सविधान-सभासे नही, आपकी वहुमतकी गलत कल्पनासे है। इसमे सन्देह नही कि हिन्दुओका बहुमत है, मगर हम देखते है कि लोकतान्त्रिक राजनीतिक सस्थाओमे दल कठोर रूपसे धार्मिक मतोके अनुसार नही, बल्कि राजनीतिक और दूसरे मतोके अनुसार बने हुए होते है। पृथक् निर्वाचिक-मण्डल बनाये जाने से साम्प्रदायिकताका अभिशाप और भी वढा है। हिन्दुस्तानके टुकडे करने की पुकार पृथक् निर्वाचक-मण्डलका लाजिमी नतीजा तो है ही, साथ ही यह उस पद्धतिकी बुराईका सबसे प्रबल प्रमाण भी है। जव हममे समझ आयेगी तो हम पृथक् निर्वाचक-मण्डल और दो राष्ट्रोकी वात सोचना छोड देंगे। मै मानता हूँ कि मानव-स्वभाव मूलत अच्छा है। इसीलिए सविधान-सभामे मेरा पक्का विश्वास है। जहाँतक मुसलमानोंके खास हकोका वास्ता है, उनका फैसला मुसलमानोंकी रायसे ही होगा। इसलिए साम्प्रदायिक दृष्टिसे दलील की जाये तो सविधान-सभाके बारेमे अगर किसीको डर हो सकता है तो हिन्दुओको हो सकता है, क्योकि अगर मुसलमानोका मत हिन्दुस्तानके विभाजनके पक्षमें गया तो हिन्दुओको या तो हिन्दुस्तानके एक नही, अनेक विभाजन स्वीकार करने पडेगे, या गृह-युद्धका सामना करना पडेगा। आज वस्तु-स्थिति यह है कि सब लोग प्रस्ताव पास करके, और अपना नाम अखबारोमे छपा देखकर ही सन्तोष कर लेते है। असलमे तो हम जहाँ थे वही है, यानी गुलामीकी जजीरोमे जकड़े हुए है। सविधान-सभा एक वास्तविकता है। यह कोई सिर्फ वहस करनेवाली या कानून वनानेवाली गैरजिम्मेदार सस्था नही होगी। उसके अन्तिम निर्णयसे करोडोकी किस्मतका फैसला होगा। आप उसका विरोध करना चाहते है तो भले करे। आपका विरोध सफल हुआ, तो हमारे सामने व्यवस्थित गृह-युद्धका भी नही, अराजकताका भयानक खतरा होगा। मुझे तो इस दुखद गतिरोधका सविधान-सभाके अलावा और कोई समाधान दिखाई नही देता।

सेवाग्राम, २४ जून, १९४०

[अग्रजीसे]

हरिजन, २९-६-१९४०

२५८. तार : लॉर्ड लिनलिथगोको

[२४ जून, १९४०][1]

वाइसराय महोदय
शिमला

तार के लिए धन्यवाद। बुधवारतक व्यस्त हूँ। गुरुवारको रवाना हो सकता हूँ। शनिवारको पहुँचूंगा। लेकिन आप चाहे तो कल भी निकल सकता हूँ।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

२५९. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२४ जून, १९४०

चि० काका,

तुम्हारे पत्रसे काम नहीं चलेगा। कतरन तुम्हारी बातका समर्थन नहीं करती। अभी तो मैं 'हरिजन' के काममें व्यस्त हूँ। तुम्हारी भेजी सामग्री पढ़ने के लिए भी समय अनिच्छासे निकाला। 'हरिजन' के कामसे निबटकर एक पत्र तैयार करके भेजूंगा। मेरा पत्र तो तुम देखोगे ही। अण्णाको जाने दो। वे बिलकुल मुक्त होकर जायें। उनके भतीजेका बोझ तुमसे नहीं उठेगा। यह स्पष्ट कह सको, तो अच्छा हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९३२) से

१. डाककी मुहरसे

२६०. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
२५ जून, १९४०

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविल
शिमला

शनिवारको वहाँ पहुँचूंगा। यहाँसे गुरुवारको चलूँगा। मैनरविलमे असुविधा हो तो मुझे और कही ठहराना। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७७) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२८६ से भी

२६१. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेवाग्राम
२५ जून, १९४०

चि० प्रेमा,

घबराती क्यो है? ऐसा तो होता ही रहता है। इसमे मेरी परीक्षा है।[1] "अपूर्व अवसर" [वालाभजन] याद है? "एकाकी विचरतो वली स्मशानमां . "[2] इन पंक्तियोपर विचार करना। समिति और कुछ कर भी नही सकती थी। प्रश्न तो सबके सामने उपस्थित है। तुम सब भी क्या करोगे, अगर मै खोटा सिक्का निकल गया तो? वीरोकी अहिंसा हमने आजमाई ही नही है। अब समय आया है। "मामलामा उभे ते माटी"[3], यह कहावत मेरे मैमन मुवक्किल मुझे सुनाया करते थे। सावधान हो जा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०८) से। सी० डब्ल्यू० ६८४७ से भी; सौजन्य प्रेमाबहन कंटक

१. तात्पर्य कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावसे है; देखिए पृ० २२२ की पा० टि० २।
२. अर्थात् "वह स्मशानमें एकाकी विचरता है।"
३. अर्थात् "संकट-कालमें अटल रहे वही सच्चा वीर है।"

२६२. पत्र : जेठालाल गोविन्दजी सम्पतको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ जून, १९४०

चि० जेठालाल,

जाजूजी से तो मैंने बात कर भी ली, क्योंकि आज तुम्हारा कार्ड मिला और उसी समय वे भी आ गये थे। 'सर्वोदय' मैं पढ़ूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८७०) से। सौजन्य नारायण जेठालाल सम्पत

२६३. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

२५ जून, १९४०

शकरनजी को अगर किसीने नही कहा है तो रसोई घरमें कहो चार नये महेमान आज जमेगे [जीमेंगे]।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५३) से

२६४. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
२६ जून, १९४०

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविल
शिमला वेस्ट

हम चार होंगे। एक कारसे काम चल जायेगा। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७८) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२८७ से भी

२६५. भेंट: देशी रियासतोंके मुलाकातियोंको[1]

[२७ जून, १९४० के पूर्व]

उन्हे नरेश न रहकर जनताके सेवक बन जाना चाहिए।

उन्हे अपने ऊँचे आसनसे उतर आना होगा और अपनी प्रजाका सहयोग प्राप्त करने का यत्न करना होगा। अगर वे ऐसा करेंगे तो अराजकता फैलानेवाली ताकतोको दबाने के लिए उन्हे बल-प्रयोग करने की जरूरत नही होगी। कांग्रेस नरेशो को खत्म करना नही चाहती, और वे अपनी रियासतोमे शान्ति और सन्तोषका वातावरण कायम करने के लिए उसका सहयोग पाने का प्रयत्न कर सकते है।

उन्हे जनताके सच्चे सेवक बनना पड़ेगा। जब वे सच्चे सेवक बन जायेंगे तो कोई उन्हे खत्म करने की नही सोचेगा। अगर वे सेवक हो और जनता स्वामी, तो स्वामी अपने सेवकोको क्यो हटायेगे? आप कहते है कि आज कई ऐसे छोटे-मोटे नरेश है जो काग्रेसके साथ समझौता करना चाहते है। यदि ऐसी बात है तो उन्हे बिलकुल बुनियादी काम करने से कौन रोकता है?

मुलाकाती: वे कई काम करना चाहते हैं, परन्तु एक ओर तो वे अधीश्वरी सत्तासे डरते है और दूसरी ओर जनतासे। लगता है, उनके दिलमें यह डर बैठ गया है कि लोग उनसे पुरानी बातोंका बदला लेना चाहेंगे।

गाधीजी उनके ये दोनो डर निराधार है। यदि वे न्याय करने लगे तो मै यह सोच नही सकता कि लोग उनसे पुरानी बातोका बदला लेना चाहेगे। हमारी जनताका स्वभाव बदला लेने का नही है। क्या औंध-नरेशको अपनी रियासतमे विद्रोह होने का कोई डर है? उन्हे डर नही है, क्योकि लोग जब यह जानते है कि उन्होने लगभग सभी अधिकार त्याग दिये है, तो वे किसके खिलाफ विद्रोह करेगे? यदि वे विद्रोह करना चाहे तो मै समझता हूँ, औध-नरेश उनसे कह सकते है, "आओ, मेरे महलपर अधिकार कर लो, मैं तो यहाँसे जाकर सबसे गरीब लोगोंके बीच भी सन्तोषपूर्वक रह लूँगा।" औंध-नरेशके पुत्र अप्पासाहब जनताके लिए जैसा घोर परिश्रम कर रहे है वैसा कोई भी राज्य-कर्मचारी नही करता।

परन्तु बात यह है कि जनताको उनकी नेकनीयतीका विश्वास दिलाया जाना जरूरी है। उन्हे दो बाते करनी चाहिए। एक यह कि वे सदाचारी बने और अत्यन्त सादा जीवन बिताये। उनका अपने ऊपर इस तरह अपार धनराशि खर्च

१. महादेव देसाई द्वारा २७-६-१९४० को लिखे "अकेजनल नोट्स" (प्रासंगिक टिप्पणियाँ) शीर्षक लेखसे उद्धृत। मुलाकातियोंने गाधीजीसे पूछा था कि राज्योंमें घबराहट, असुरक्षा और आसन्न अराजकताको देखते हुए नरेशोंको क्या करना चाहिए।

करना बिलकुल अनुचित है। समझमें नहीं आता कि जब उनके हजारों प्रजाजनोंको दिनमें एक बार भी भर-पेट खाना नहीं मिलता, तो उनका मन विलासिताका जीवन बितानेके लिए प्रजाका धन लुटानेको कैसे करता है। दो-तीन सौ रुपये माहवार-पर उन्हें क्यों नहीं सन्तोष करना चाहिए? परन्तु मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह है। उन्हें उतना ही लेना चाहिए जितना लोग उन्हें देनेको तैयार हों। उनका निजी खर्च जन-प्रतिनिधियोंके वोटके अधीन होना चाहिए। किसी सुधार या बजटका तबतक कोई महत्त्व नहीं जबतक कि लोगोंको यह निर्णय करनेका पूरा अधिकार न हो कि उनका शासक अपने खर्चके लिए कितनी धन-राशि ले। एक नया युग शुरू हो चुका है, और किसी भी ऐसे शासकको बर्दाश्त नहीं किया जा सकता जिसका जीवन अपनी जनताके जीवनसे बहुत हदतक मेल न खाता हो और जो अपने-आपको जनतासे अभिन्न न मानता हो।

यह हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि उनका न्याय-विभाग खरा होना चाहिए, शंकासे परे और इसलिए उनसे स्वतन्त्र होना चाहिए। आज मैं विश्वासके साथ यह नहीं कह सकता कि किसी भी रियासतमें न्याय-विभाग वस्तुतः स्वतन्त्र है। इसके अलावा, पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

तो ये हैं सुधारकी दिशामें पहले कदम। अधीश्वरी सत्तासे उनका डर निरा-धार है। वह सत्ता सच्चे सुधारके काममें हस्तक्षेप करनेके लिए प्रकट रूपसे कुछ कहने या करनेका साहस नहीं कर सकती। उस सत्ताने जब भी हस्तक्षेप किया है, तो नरेश-विशेषके आचरणकी किसी त्रुटिको बहाना बनाकर ही ऐसा किया है। निष्कर्ष यह है कि नरेशोंको सीजरकी पत्नीकी भाँति सन्देहसे परे होना चाहिए। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, नरेशोंको मालूम होना चाहिए कि वह उनके साथ समझौता करनेके लिए हर दम तैयार है। कांग्रेस तत्त्वतः एक अहिंसावादी संगठन है। अगर नरेश स्वेच्छासे अपनी जनताके वशवर्त्ती हो जायें, तो कांग्रेस उनके साथ मित्रताका व्यवहार करने लगेगी। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो समझ लें कि आगे भयंकर मुसीबतें उनका इन्तजार कर रही हैं। मैं फिर कहता हूँ कि कांग्रेस नरेशोंको खत्म करने पर तुली हुई है, ऐसी कोई बात नहीं है। हाँ, यदि वे अपना आचरण न सुधारें और स्वयं अपना खात्मा कर लें तो बात दूसरी है। यदि एक भी ऐसा नरेश है जो जनताका सेवक बननेमें सन्तोष मानेगा, तो कांग्रेस उसका साथ अवश्य देगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

२६६. भेंट: एक अमेरिकी मुलाकातीको[1]

सेवाग्राम
[२७ जून, १९४० के पूर्व]

प्र० : अमेरिकामें भारतीयों और अमेरिकियोंके बीच परस्पर बेहतर समझ पैदा करनेमें सहायता दे सकूँ, इस दृष्टिसे अपने भारत-प्रवासके दौरान मैं सबसे अच्छी तैयारी किस प्रकार कर सकती हूँ? . . . अमेरिकामें इस ध्येयकी प्राप्तिमें मैं कैसे योगदान कर सकती हूँ?

उत्तर दूसरे देशके लोगोंमे अपने देशके प्रति बेहतर समझ पैदा करनेका तरीका यह है कि हम अपने जीवनमे अपने देशके श्रेष्ठतम गुणोको प्रतिबिम्बित करे। अपने भारत-प्रवासके दौरान यदि आप अपने श्रेष्ठतम गुणोका परिचय नही देती तो अमेरिकाके बारेमे गलतफहमी पैदा हो सकती है। अमेरिकामे रहनेवाले भारतीयोके बारेमें भी मै यही बात कहूँगा। यदि कोई एक देशकी विशेषताएँ दूसरे देशको समझाना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह उस देशके श्रेष्ठतम गुणोंको उद्घाटित करके दूसरे देशके समक्ष प्रस्तुत करे। उदाहरणके लिए, अगर आपको यहाँके जीवनमे कोई अच्छाई दिखाई नही देती तो समझ लीजिए कि भारतकी विशेषताएँ अमेरिकाको समझानेके लिए आप उपयुक्त व्यक्ति नही है। भारतकी नालियोसे तमाम गन्दगी निकालकर [उसीको भारतके नमूनेके तौरपर] पेश करनेवाली कुमारी मेयो-जैसे[2] लोग भी तो अमेरिकामे है। आपको उनका प्रत्याख्यान करना होगा और किसी जल्दबाज, या धनलोलुप अथवा पक्षपातग्रस्त पर्यवेक्षक द्वारा लगाये गये किसी लाछनके उत्तरमे अपनी सहानुभूति-भरी समझके सहारे अनेक प्रमाण एकत्र करके उस लाछनको बेबुनियाद साबित करना होगा।

प्र० : दुनियाकी आजकी परिस्थितिमें सुधार लानेमें अमेरिकाके शान्तिवादी क्या सहायता दे सकते है?

उ० यह प्रश्न कठिन है। अगर आपका तात्पर्य भारतमे रहनेवाले शान्तिवादी अमेरिकियोसे है तो कहूँगा कि वे कुछ खास नही कर सकते। लेकिन मै समझता हूँ, अमेरिकामें वे काफी-कुछ कर सकते है। मगर सच पूछिए तो इस सवालका जवाब देना मेरी सामर्थ्यसे बाहर है, और इसलिए इसके सम्बन्धमे मुझे इसके आगे कुछ नही कहना चाहिए।

१. महादेव देसाईके २७-६-१९४० को लिखे "अकेजनल नोट्स" (प्रासंगिक टिप्पणियाँ) शीर्षक लेखसे उद्धृत। मुलाकाती महिला एक शान्तिवादी और कई महिला-संस्थाओंकी प्रतिनिधि थी।

२. देखिए खण्ड ३४, "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट", पृ० ५८४-९४।

प्र० : मैं काफी लिखती और बोलती हूँ — खासकर अमेरिकी महिलाओंके लिए और उनके बीच। क्या आपको अमेरिकी महिलाओंको कोई सन्देश देना है?

उ० : सन्देशकी तरह तो कोई सन्देश नहीं देना है। हाँ, एक सुझाव दे सकता हूँ, और अगर वह आपको ठीक लगे तो आप उसे पल्लवित कर सकती हैं। शान्ति-स्थापनाके कार्यमें महिलाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। उन्हें प्रवाहमें नहीं बह जाना चाहिए और पुरुषकी भाषाका अनुकरण नहीं करना चाहिए। उन्हें लड़ाईसे सम्बन्धित किसी भी बातसे न खुद सम्बन्ध रखना चाहिए और न अपने लोगोंको सम्बन्ध रखने देना चाहिए। कारण, उन्हें समझ लेना चाहिए कि वे युद्धकी अपेक्षा शान्तिकी अधिक समर्थ प्रतिनिधि बन सकती हैं। उनका सृजन ही उस मूक शक्तिकी अभिव्यक्ति और प्रदर्शनके लिए किया गया है जो मूक होने के कारण कुछ कम नहीं, बल्कि और भी अधिक प्रभावकारी है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-७-१९४०

२६७. पत्र : विशननाथको

दिल्ली

२८ जून, १९४०

प्रिय लाला विशननाथ,

आपका ११ तारीखका पत्र मिल गया था। जो भी कर सकता हूँ, करूँगा।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

लाला विशननाथ

एडवोकेट

अनारकली

लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९४३) से

२६८. तार: लॉर्ड लिनलिथगोको

[२९ जून, १९४० के पूर्व][1]

वाइसराय महोदय
शिमला

तारके लिए अनेक धन्यवाद। शुक्रवारको पहुँचने की उम्मीद।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२६९. बातचीत: प्यारेलाल और महादेव देसाईसे[2]

[२९ जून, १९४०][3]

प्यारेलाल: यह बात हमारी समझमें नहीं आती।[4] इस पत्रमें व्यक्तिगत-जैसा क्या है? किन्तु इस भाईमें अपनेको दूसरोंसे अलग बताने की आदत है — एक प्रकार की अहंमन्यता है और यह सबको खटकती है।

गांधीजी: तुमने इस एक घटनासे अपने साथीके स्वभावके विषयमें एक राय बना ली, यह ठीक नहीं है। तर्ककी दृष्टिसे तो यह अनुचित है ही, अहिंसाकी दृष्टि से और भी ज्यादा अनुचित है। डार्विनने मनुष्य जातिके जन्मके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है। उसमें वह जिस निष्कर्षपर पहुँचा, उसका आधार कोई एक तथ्य नहीं है। अपने निष्कर्षको सिद्ध करने के लिए वह तथ्योंके ढेर लगाता चला गया, थका ही नहीं; अपनी एक बात सिद्ध करने के लिए उसने पूरी पुस्तक तथ्योंसे भर दी है। और बिलकुल अन्तमें अपना सिद्धान्त थोड़े-से शब्दोंमें पेश कर दिया है। कल्पना करो वह सत्यकी कितनी कीमत करता रहा होगा। तथापि मुझे उसके सिद्धान्त में दोष दिखाई देता है; कारण, जैन-दर्शनका स्याद्वाद यह शिक्षा देता है कि इतने

१. गांधीजी २९ जून, १९४० को शिमला पहुँच गये थे।
२ और ३. महादेव देसाईके लिखे "ए स्पीकिंग डॉयलॉग" (एक मर्मस्पर्शी संवाद) शीर्षक लेखसे उद्धृत। इस विषयपर हरिजन, ६-७-१९४० में प्यारेलाल द्वारा लिखित एक संक्षिप्त विवरण "ऑन द रोड टु शिमला" (शिमलाकी ओर) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।
४. एक कार्यकर्ताने गांधीजी के नाम अपने पत्रपर "व्यक्तिगत" लिख दिया था। प्यारेलाल उसीके बारेमें बोल रहे थे।

सारे तथ्योंके होते हुए भी यह सम्भावना तो रहती ही है कि हमारे हाथ ऐसे कुछ तथ्य आ जाये जिनसे उक्त सिद्धान्त दूषित ठहरे। एक पत्रपर तुमने 'व्यक्तिगत' शब्द लिखा देखा और उसके आधारपर यह राय बनाई कि उसका लेखक अहमन्य है—अपनेको दूसरोसे कुछ अलग दिखाना चाहता है। अब मैं तुम्हे एक उदाहरण देता हूँ। कई लोग एक-दूसरेकी जूठी थालियोमे से खा लेते हैं और ऐसा मानते है कि इससे उनका मित्र-भाव प्रकट होता है। हिन्दू पत्नियाँ तो अपने पतिकी जूठी थालीमे खाना पुण्य भी मानती हैं। बा भी शायद इसमे पुण्य मानती होगी। किन्तु मै किसी दूसरेकी थालीमे से खाने की तो बात ही क्या, बा की थालीमे से भी नही खा सकता। अब यदि कोई मुझे बा की थालीमे से खाने से इनकार करता हुआ देखे और उससे यह निष्कर्ष निकाले कि मै अहमन्य हूँ, या नखरे करता हूँ तो वह मेरे प्रति कितना अन्याय करेगा? यह एक चीज मुझे भले ही नापसन्द हो किन्तु मेरा स्वभाव ऐसा नही है कि मै अपनेको दूसरोसे अलग दिखाऊँ या छोटी-छोटी चीजोपर नखरे करूँ। और यह दोष मेरे स्वभावमे नही है, इसे सिद्ध करने के लिए सैकड़ो उदाहरण दिये जा सकते है। इसी प्रकार तुम जिस साथीकी शिकायत कर रहे हो उसके स्वभावमे भी ये दोष नही है, यह सिद्ध करनेवाले अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। किसी भी विधानको अन्वय और व्यतिरेक, दोनोकी कसौटियोंपर कसे बिना अबाध नही कहा जा सकता। हम जानते है कि पानीमे हाइड्रोजनके दो भाग और आक्सीजनका एक भाग है, किन्तु हमे इसकी जाँच पृथक्करण और एकीकरण, दोनो रीतियोंसे करनी चाहिए। पानीका पृथक्करण करने पर हम देखेंगे कि उसमे दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन है। किन्तु इसके बाद हमे दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन लेकर उनका एकीकरण करके भी देख लेना चाहिए। और उनके मेलसे पानी उत्पन्न हो जाये तभी अपने निष्कर्षको सिद्ध हुआ मानना चाहिए। व्यवहारमे भी यही नियम है। कोई चीज बाहरसे प्रकाशकी भाँति स्पष्ट दीखती हो, किन्तु उसे असत्य ठहरानेवाले कितने ही तथ्य हो सकते है, और जबतक हमने उनकी जाँच नही कर ली है, तबतक हम किसी निष्कर्षपर नही पहुँच सकते। उसमे सत्यका भग तो होता ही है, इसके सिवा किसीके विषयमें अनुदार राय बनाने मे अहिंसाका भी भग होता है। हम अहिंसाके मार्गके यात्री है, इसलिए हमे तो खासकर अपना हरएक कदम बहुत सावधानीसे ही उठाना होगा।

उसके स्वभावके दोप मेरे लिए अपरिचित नही हैं। इस एक बातमे उसने अपने को दूसरोसे कुछ अलग और विशेष दिखाने की कोशिश की है, यह शायद तुम कह सकते हो, किन्तु इस उदाहरणके आधारपर उसके स्वभावको वैसा मानने मे अनुदारता है। यह साथी कैसी परिस्थितियोमे बडा हुआ है, उसने कैसी-कैसी कठिनाइयाँ झेली है, और इन कठिनाइयोको पार करके आज वह किस कक्षामें पहुँचा है—क्या हमने यह सब देखा है? हमने तो उसका ऊपरसे दिखनेवाला एक दोप ही देखा। प्रेमके लिए अग्रेजीमे 'चैरिटी' बहुत ही सुन्दर शब्द है, इस शब्दमे दयाका अर्थ भी आ जाता है। हमारी अहिंसामे भी दया पूरी-पूरी होनी चाहिए।

म० दे० : "दया" और "चैरिटी" इन दोनो शब्दोंका धात्वर्थ एक ही है।

गां० : इन दोनो शब्दोंका धात्वर्थ एक ही है, यह मैं नही जानता था, किन्तु इससे यह सिद्ध होता है कि हमे जब भी दूसरोके स्वभावकी कमियाँ दिखाई दें, तब हमेशा उन कमियोको नगण्य मानकर हमे अपना ध्यान उनकी खूबियोपर ही केन्द्रित करना चाहिए। दूसरोंके गुण परमाणु-जैसे हो तो भी उन्हे पर्वत-जैसा बताने मे ही दया और प्रेमकी कला है। इसके सिवा अपनी मूक सेवाके द्वारा उनके हृदयको जीतने का मार्ग तो है ही।

प्या० : यह सब मै मानता हूँ, किन्तु सेवा और प्रेमके लिए अवकाश हो तब न? मैंने उनके प्रति सेवाभाव और प्रेमभाव दिखाने का प्रयत्न कई बार किया, किन्तु मेरा प्रयत्न निष्फल रहा। आप शायद नहीं जानते, मेरे प्रति उनके मनमें कितना तिरस्कार है।

गां० : तुम मेरी बात नही समझे। तुम्हारे इन शब्दोमे भी मैं सूक्ष्म अभिमान देखता हूँ। उसके मनमे तुम्हारे लिए तिरस्कार है तथापि तुम उन्हे अपनाने का प्रयत्न करते रहे हो—तुम्हारे इन शब्दोंके पीछे तुम्हारा वह अभिमान ही बोल रहा है। उसकी ओरसे तुम्हारे प्रति जो अन्याय हो रहा है, इसकी याद तो तुम हमेशा रखते हो। किन्तु तुमने कभी इस बातका विचार नही किया दिखता कि जान-बूझकर या अनजाने भी वह तुम्हारे प्रति यह अन्याय क्यों कर रहा है। उसके दोष या त्रुटियाँ क्या मैं नही जानता? तुम्हे पता नही है, लेकिन मैंने कितनी ही बार उसे उसके ये सारे दोष बताये हैं और उसे रुलाया है। कई बार तो अनेक लोगोंकी उपस्थितिमें भी मैंने नि.सकोच उसके इन दोषोंका उद्घाटन किया है। लेकिन तुम उसका व्यवहार देखो। वह इन सब दोषों और त्रुटियोसे लगातार लड़ रहा है, चौबीस घटे उन्हे जीतने की कोशिश कर रहा है। और उसे अपने इस प्रयत्नमे सफलता भी काफी मिली है। किन्तु अपने जन्म और अपने पालन-पोषणकी परिस्थितियोसे प्राप्त संस्कारोको मनुष्य कहाँतक जीते? यह चीज हमे याद रहे तभी हम दूसरोंके प्रति अन्याय करने से हिचकेंगे। राजाओ और महाराजाओंके दोष मुझसे ज्यादा कौन जानता होगा? किन्तु इन लोगोंके लिए मेरे मनमे सहानुभूति क्यों है? उसका कारण यह है कि मैं जानता हूँ कि उनका स्वभाव, उनका मिजाज उनकी परिस्थितियोका परिणाम है। इसीलिए मैं उन्हे समझ पाता हूँ। और वे भी जानते हैं कि मैं उनका मित्र हूँ।

रही तिरस्कारकी बात तो उसके विषयमे हमे एन्ड्रयूजका स्मरण करना चाहिए। एन्ड्रयूजके लिए कितने ही सरकारी अधिकारियोंके मनमे निरा तिरस्कारका भाव था और एन्ड्रयूज इस बातको जानते थे। फिर भी वे उन लोगोंके पास जाने मे संकोच नही करते थे। वे यह देखने की कोशिश करते थे कि तिरस्कारका भाव उनके मनमें क्यो है, और उसे दूर करने का प्रयत्न करते थे। इसके परिणामस्वरूप मैं मानता हूँ कि उन तिरस्कार करनेवालों मे से कई लोगोको पश्चात्ताप हुआ होगा और इस बातकी प्रतीति हुई होगी कि उन्होने एन्ड्रयूजके प्रति अकारण कितना बड़ा अन्याय किया।

ऐसा तिरस्कार तो प्रेमके लिए अवसर उपस्थित करता है। जो हमारे प्रति प्रेम रखता है उसके प्रति प्रेम रखने मे क्या विशेषता है? विशेषता तो तब है जब कोई हमारा तिरस्कार करे और हम उसके प्रति प्रेम और दयासे द्रवित हों।

प्या० : मै समझता हूँ, सब समझता हूँ। उनकी विषम स्थितिका खयाल मुझे कई बार आया भी है, और तब उनके प्रति मित्र-भावसे प्रेरित होकर मेरा मन उनके पास जाने को हुआ है। किन्तु मुझे हमेशा यह भय रहा है कि वे उसका अनर्थ तो नहीं करेंगे।

गा० इस भयमे भी हिंसाका तत्त्व है, जहाँ प्रेम होता है, वहाँ भय नही होता, तुम्हारे इस भयमे अभिमान भी है। लेकिन इस सारी परिस्थितिमे दोष मेरा है। मेरी अहिंसा अधूरी होगी। इसीलिए मेरे आसपास जितनी अहिंसा दिखनी चाहिए उतनी नही दीखती। सेवाग्राम मेरे लिए अहिंसाकी प्रयोगशाला है।[1] यदि यहाँ मेरा प्रयोग सफल हो जाता है और जो छोटी-मोटी समस्याएँ मेरे सामने यहाँ है उनका समाधान अगर मुझे मिल जाता है तो मुझे विश्वास है कि वही सूत्र मुझे देशके सन्दर्भमे हमारे समक्ष उपस्थित बडी-बडी समस्याओका समाधान भी उपलब्ध करा देगा। इसीलिए मै सेगाँव छोडने को इतना अनिच्छुक हूँ। यह मेरी सत्याग्रहकी प्रयोगशाला है। मुझे भारतकी आजादीकी कुजी शिमला या दिल्लीमे नही, बल्कि यही पाने की उम्मीद है। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैं भाग चलूँ—लेकिन एकान्तसे प्राप्त होनेवाली शान्तिकी तलाशमे नही, बल्कि सम्पूर्ण अकेलेपनकी शान्तिमे अपनेको पहचानने के लिए, अपनी वास्तविक स्थितिको जानने के लिए और उस 'शान्त-मन्द स्वर' को अधिक अच्छी तरह सुनने के लिए। तभी मेरा अहिंसाका प्रयोग पूर्ण होगा।

म० दे० : आपके आसपास रहनेवाले हम लोगोंमें अहिंसाकी इतनी कमी है कि मुझे लगता है कि आपका बोझ कम करने के लिए हम लोगोंको ही यहाँसे चले जाना चाहिए।

गा० : ऐसे कुछ लोग तो हो ही सकते है जो अपने विचार-मात्रसे जगत्‌को प्रभावित करने की शक्ति रखते हो। इसलिए गुफामे जाकर रहना हो तो उसमे भी उद्देश्य एकान्तमे अपने कल्याणके साधनका नही, बल्कि विचारकी ऐसी सहज सिद्धि प्राप्त करने का होना चाहिए कि हमारे मनमे प्रतिक्षण जगत्‌के कल्याणका ही विचार चलता रहे।

म० दे० : किन्तु भगवान् बुद्ध सिद्धि प्राप्त करने के बाद पुनः जगत्‌में आकर रहे, हजारों-लाखों लोगोंको उन्होने उपदेश दिया और उन्हे अपना शिष्य बनाया।

गा० यह ठीक है, किन्तु सम्पूर्ण वैराग्यका आकर्षण मुझे कभी नही रहा।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

१. इस अनुच्छेदकी अगली पंक्तियाँ ६-७-१९४० के **हरिजन** में प्रकाशित प्यारेलालके "ऑन द रोड टु शिमला" (शिमलाकी ओर) शीर्षक लेखसे ली गई है।

२७०. भेंट : 'हिन्दू' के सम्वाददाताको

शिमला
२९ जून, १९४०

मुझे आमन्त्रित किया गया है, इसलिए मैं आ गया हूँ, और यदि यहाँ रुके रहने की जरूरत न हुई तो आज शाम वर्धा लौट जाऊँगा।

मेरी आशाका बैरोमीटर ऊपर ही चढता जा रहा है, यद्यपि आकाश मेघाच्छन्न है।[1]

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २-६-१९४०

२७१. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

बिडला भवन, अलबुकर्क रोड,
नई दिल्ली
३० जून, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

कल मैंने आपके व्यक्तिगत मित्र तथा ब्रिटेनकी जनताके मित्रके नाते आपको जो सलाह दी[2] उसके सारको अगर मैं लिपिबद्ध कर लूँ तो मैं समझता हूँ, यह हम दोनोंके लिए अच्छा रहेगा।

मैंने आरम्भमे ही यह स्पष्ट कर दिया था कि मेरी कोई प्रातिनिधिक हैसियत नही है और कार्य-समितिके पिछले प्रस्तावके बादसे तो मैं केवल व्यक्तिगत हैसियतसे ही बोल सकता हूँ।[3]

आपका पहला सुझाव सम्राट्की सरकारको यह सलाह देने का था कि वह आपको यह घोषणा करने की इजाजत दे कि युद्धकी समाप्तिके एक सालके अन्दर भारतको इस शर्तके साथ स्वशासी उपनिवेशोकी बराबरीका दर्जा प्रदान किया जायेगा कि ब्रिटिश व्यापारिक हितों, प्रतिरक्षा, वैदेशिक सम्बन्धो, अल्पसंख्यकोंके अधिकारो तथा नरेशोंकी स्थितिके बारेमें सम्बन्धित पक्षोंकी सहमतिसे आवश्यक समझौता किया

१. बाद में, दोपहर बाद गांधीजी वाइसरायसे मिलने गये।

२. गांधीजी वाइसरायके आमन्त्रणपर २९ जूनको उनसे शिमलामें मिले थे।

३. कांग्रेस कार्य-समितिने २१ जूनकी अपनी वर्धाकी बैठकमें गांधीजी के अहिंसाके सिद्धान्तको राष्ट्की रक्षाके क्षेत्रमें लागू करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया था; देखिए "खुश भी, गमगीन भी", पृ० २२२-२५।

जायेगा, जिसमें नरेशोंके साथ की गई सन्धियोंसे प्रतिफलित दायित्वोंका ध्यान रखा जायेगा।[1] इन आरक्षणोंका खयाल रखते हुए एक संविधान-सभा[2] संविधान तैयार कर सकेगी, जिसे यदि उसमें कोई अस्वीकार्य धारा न होगी तो सम्राट्की सरकार मंजूर कर लेगी और पार्लियामेंटके समक्ष उसके स्वीकारार्थ पेश करेगी।

इसके सम्बन्धमें मैंने कहा कि खुद मैं इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता और जहाँतक मैं जानता हूँ, कांग्रेस भी इसे कभी पसन्द नहीं करेगी। मेरी आग्रह-पूर्ण सलाह थी कि इस चीजको भारत-मन्त्री या भारतके समक्ष नहीं रखना चाहिए। ऐसी किसी भी घोषणासे सम्राट्की सरकार और भारतके आपसी सम्बन्धोंमें और भी कटुता आयेगी। मैंने इस बातपर जोर दिया कि ब्रिटिश सरकारके हर प्रकारके नियन्त्रणसे मुक्त स्वतन्त्रताकी अविलम्ब और स्पष्ट घोषणासे कम कोई भी चीज कांग्रेस स्वीकार नहीं करेगी। (स्वतन्त्र भारतको ग्रेट ब्रिटेनके साथ सन्धि — और मुझे आशा है, साझेदारीकी सन्धि — करने के लिए वार्त्ता चलानी पड़ेगी, न्यायोचित विदेशी हितोंकी रक्षाके लिए व्यवस्था करनी पड़ेगी, अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंको पूरी-पूरी सुरक्षा देनी पड़ेगी, और देशी नरेशोंकी रियासतोंमें रहनेवाले लोगोंके उचित संरक्षणका खयाल रखते हुए नरेशोंके साथ ठीक व्यवस्था करनी पड़ेगी। यह सब कांग्रेसकी अहिंसक नीतिमें सहज समाहित है। कारण, उसकी शक्तिका मुख्य स्रोत शस्त्र-बल नहीं, बल्कि उसकी औचित्य और पूर्ण न्यायकी भावना होगी। इन दोनों चीजोंके बिना तो स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही हाथसे निकल जायेगी। इस तरह कोष्ठकमें मैंने जो विचार व्यक्त किया वह मैंने आपके समक्ष अपनी सलाहके तौरपर नहीं रखा था। यह पत्र लिखते हुए मुझे महसूस हो रहा है कि इसके बिना मेरी बात अपूर्ण थी।) किसी संविधान-सभा द्वारा एक संविधान तैयार किये जाने के सवालको उसके लिए कोई उपयुक्त तिथि आने तक स्थगित रखा जा सकता है। मैंने यह भी कहा था कि स्वतन्त्रताकी उपर्युक्त स्पष्ट घोषणा न करने का मतलब भारी अनर्थ होगा, क्योंकि कांग्रेस तो इसके लिए खुल्लमखुल्ला प्रतिबद्ध है ही और इसके लिए वह दीर्घ-कालसे दृढ़तापूर्वक सतत प्रयत्नशील रही है, लेकिन स्वतन्त्रता मिल जाये तो दूसरे पक्ष भी — चाहे वह मुस्लिम लीग हो या हिन्दू महासभा, बल्कि देशी नरेश भी — उसे बड़ी ललकसे ग्रहण करेंगे। इसलिए समझमें नहीं आता कि यह घोषणा करने के बारेमें इतना बखेड़ा क्यों किया जा रहा है कि भारत समस्त बाहरी नियन्त्रणसे मुक्त है। दरअसल तो यह घोषणा बहुत पहले कर दी जानी चाहिए थी।

१. १ जुलाईको लिखे अपने पत्रमें वाइसरायने इस बातचीतका जो विवरण दिया उसके अनुसार उन्होंने वार्त्ताके दौरान यह कहा था कि सम्राट्की सरकार "युद्धकी समाप्तिके एक सालके अन्दर औपनिवेशिक दर्जा कायम करने और सम्बन्धित पक्ष नये संविधानकी रचनाके लिए जिस तन्त्रपर भी राजी हो जायें उस तन्त्रको स्थापित करने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखेगी।"

२. वाइसरायके विवरणमें इस प्रकार कहा गया था: ". . . आप संविधान-सभाके बारेमें सोचते हैं, . . . लेकिन हममें से कुछ लोग उससे किसी छोटी और भिन्न समितिके बारेमें सोच रहे हैं। लेकिन . . . वह समिति ऐसी होनी चाहिए जिसपर विभिन्न राजनीतिक दल सहमत हों।"

आपका दूसरा सुझाव यह था कि यदि सम्राट्की सरकार आपकी प्रस्तावित घोषणापर स्वीकृति दे दे तो जबतक युद्ध चल रहा है तबतक के लिए आप अपनी कार्यकारिणीके सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि करना चाहेंगे, ताकि उसमें विभिन्न पक्षोंके प्रतिनिधियोंको स्थान दिया जा सके। इसके सम्बन्धमें मैंने यह निवेदन किया था कि स्वतन्त्रताकी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घोषणाके बिना कांग्रेसके आपकी कार्यकारिणीमें शामिल होने की सम्भावना नहीं है। मैंने यह भी कहा था कि मैं 'हरिजन' के हालके अंकमें लिखे अपने "दो दल" शीर्षक लेखमें व्यक्त विचारपर अब भी कायम हूँ। जबतक अविलम्ब स्वराज्य-प्राप्तिके लिए संघर्ष करने के प्रश्नपर और उस संघर्षके तरीकेपर इन पक्षोंमें मतैक्य नहीं होता तबतक संयुक्त प्रयास सम्भव नहीं है।

आपके मनमें विभिन्न पक्षों, वर्गों और हितोंके प्रतिनिधियोंकी एक लघु गोलमेज परिषद् बुलाने का भी विचार था।[1] मैंने आपसे जोरदार अनुरोध किया कि आप अपने मनमें ऐसा कोई विचार न रखें, क्योंकि उसका विफल होना निश्चित है।

इसके बाद मैंने अपनी इस पक्की रायका स्पष्टीकरण किया कि वह समय आ गया है जब ब्रिटेनको अपनी युद्ध-नीतिमें समुचित परिवर्तन करना चाहिए। संगठन और कौशलकी दृष्टिसे जर्मनीकी श्रेष्ठताकी स्पष्ट स्वीकृतिसे ब्रिटेनके शौर्यको कोई आँच नहीं आयेगी, बल्कि उससे उसकी अभिवृद्धि ही होगी, क्योंकि वह स्वीकृति सत्यके अनुरूप होगी। अगर बात ऐसी न हो और ब्रिटेन — यदि इसके लिए उसे पर्याप्त समय मिले तो — हर क्षेत्रमें जर्मनोंके मुकाबले अपनी श्रेष्ठता दिखा सके तथा उन्हें पराजित कर सके तो भी मेरी बात सही सिद्ध होगी। उसके औचित्यको सिद्ध करने के लिए जर्मनोंकी श्रेष्ठताको स्वीकार करना जरूरी नहीं है। आपको मालूम है कि यह सुझाव मैंने फ्रान्सके पतनके पूर्व ही दिया था। मेरी मान्यताकी बुनियाद विशुद्ध मानव-दया थी। वर्तमान समयको मैंने इस बातका आग्रह करने के लिए उपयुक्त अवसर माना। अगर मान लिया जाये कि नाजी उतने ही बुरे हैं जितना उन्हें बताया जाता है तो नतीजा यह निकलता है कि उनके तरीकोंकी नकल किये बिना विजय पाना असम्भव है। इसका मतलब यह होगा कि नाजीवादसे मुक्ति नहीं मिलनेवाली है। छोटे राष्ट्रोंमें चाहे जितनी शूरता हो, उनकी सुरक्षाके लिए शस्त्र-बलकी निरर्थकता सिद्ध करने के लिए बहुत-कुछ घटित हो चुका है। विजय प्राप्त करने के लिए ब्रिटेनको निश्चय ही भीषण नर-संहार और क्रूरताके दौरसे गुजरना पड़ेगा। इसलिए उस विजयके बाद न तो यह दुनिया लोकतन्त्रके लिए निरापद बनेगी और न उससे शान्ति ही स्थापित होगी। ऐसी विजयका मतलब तो अवश्यम्भावी रूपसे अगले युद्धकी तैयारी होगा, और जिस प्रकार यह युद्ध पिछले युद्धके मुकाबले अधिक नृशंसतापूर्ण साबित हुआ है उसी प्रकार वह अगला युद्ध इससे अधिक क्रूरतापूर्ण सिद्ध

१. वाइसरायका कहना था कि "मुझे याद नहीं आता कि मैंने किसी लघु गोलमेज परिषद्की बात की थी।... दरअसल मेरे मनमें ऐसे लोगोंकी एक प्रारम्भिक तहकीकाती मण्डली बनाने की बात थी... जो अपने नियोक्ताओंको सलाह और मार्ग-दर्शन तो देंगे... लेकिन जिनके निष्कर्ष सम्बन्धित पक्षोंपर किसी तरह बन्धनकारी नहीं होंगे।"

होगा। इस और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे मैंने अपनी शक्ति-भर पूरी उत्कटता और जोरसे यह कहा कि यदि ब्रिटेन अहिंसक तरीकेको स्वीकार कर ले तो उससे उसकी शाश्वत महिमामें चार चाँद लग जायेंगे और उसे युद्ध-क्षेत्रमें उसकी लोक-प्रसिद्ध बहादुरीसे भी बड़ी बहादुरीके रूपमें लेखा जायेगा।

मैंने यह आशा भी व्यक्त की थी कि इसके उत्तरमें यह नहीं कहा जायेगा कि जब अहिंसक तरीकेको पूरे तौरपर अंजाम देने का समय आने पर आप अपने सहयोगियों और साथी कार्यकर्त्ताओंको ही उसे स्वीकार करने पर राजी नहीं कर पाये तब अचानक ब्रिटेनसे ही उसे स्वीकार करने का अनुरोध आप कैसे कर सकते हैं? ऐसा उत्तर दिया जा सकता है, इसी सम्भावनाको ध्यानमें रखकर मैंने कहा कि मैं और मेरे सहयोगी एक ऐसी कमजोर और पराधीन जातिका प्रतिनिधित्व करते हैं जो सर्वथा निःशस्त्र है और जिसे शस्त्र-विद्याका कोई प्रशिक्षण नहीं मिला है। मेरी कल्पनाकी अहिंसा आवश्यक रूपसे उन लोगोंके लिए है जिन्हें शस्त्रास्त्रोंके प्रयोगकी अपनी क्षमताका पूरा भान है। इसलिए मैंने कहा कि अगर ब्रिटेनको हिंसाके मुकाबले अहिंसाकी श्रेष्ठता समझाई जा सके तो मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यही वह उपयुक्त क्षण है जब अहिंसक तरीकेको अपनाया जा सकता है। अपने तमाम इरादोंके बावजूद ब्रिटेन अबीसीनिया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, फिनलैण्ड, नॉर्वे, डेनमार्क, हॉलैण्ड, बेल्जियम और फ्रान्सकी रक्षा नहीं कर पाया। यदि ब्रिटेन मेरे सुझाये तरीकेको स्वीकार कर सके तो उससे इन तमाम देशोंको मुक्तिके मार्गका संकेत मिलेगा और यह स्वीकृति विश्वमें शान्तिको इस तरह सुनिश्चित कर देगी जैसा कोई भी अन्य तरीका नहीं करेगा और न कर सकता है। यह नाजियोंकी बुद्धिको निरस्त कर देगी और उनके सभी शस्त्रास्त्रोंको व्यर्थ बना देगी।

अन्तमें मैंने कहा कि मेरा सुझाव सतत प्रयत्न, प्रयोग, शोध और प्रार्थनासे युक्त आधी सदीमें अधिक कालके अहिंसाके व्यावहारिक अनुभवपर आधारित है। इसलिए मैंने आपसे अनुरोध किया कि आप मेरे सुझावको एक ऐसे व्यक्तिके सुझावके रूपमें सम्राट्‌की सरकारके स्वीकारार्थ प्रस्तुत करें जो जीवन-भर ब्रिटेनकी जनताका मित्र और शुभेच्छु रहा है।

आपने कृपापूर्वक मुझसे यह भी कहा कि मैं अपनी बातचीतका सार कार्य-समितिके सदस्योंको बता सकता हूँ। इस प्रयोजनसे मैं उन्हें इस पत्रकी एक नकल दिखाना चाहता हूँ। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं ब्रिटेनकी जनतासे, उसके तथा सम्पूर्ण मानव-जातिके जीवनके इस नाजुक क्षणमें, अहिंसक तरीकेको अपनाने के लिए एक सार्वजनिक अपील[1] जारी करना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स, सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. देखिए पृ० २६१-६४।

२७२. भेंट : 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाताको[1]

दिल्ली
३० जून, १९४०

आज भी परिस्थिति वैसी ही है जैसी कल थी।

यह पूछे जाने पर कि वाइसरायसे मुलाकात करने के बाद शिमलासे उनके एकाएक चल पड़ने का क्या यह अर्थ लगाया जाये कि वाइसरायके साथ उनकी वार्ता अब आगे नहीं चलेगी, महात्माजी ने कहा कि यह तो स्पष्ट ही है कि यदि चर्चाके लिए कुछ और शेष रहा होता तो वे शिमलामें ही रुके रहते।

गांधीजी . . . मोटरगाड़ीसे स्टेशनसे माल रोड पहुँचे, जहाँसे वे अपनी टोली के साथ पैदल चलकर हरिजन बस्ती गये। हरिजन उद्योगशालाके विद्यार्थियोंने बस्तीमें पधारने पर महात्माजी का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। गांधीजी ने कहा:

मुझे यहाँ लानेका श्रेय जोहरा[2] को है। अगर उन्होंने मुझे अपने यहाँ ठहरने की दावत न दी होती, तो मैं शायद हरिजन बस्ती आ ही न पाता।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दुस्तान टाइम्स, १-७-१९४०

२७३. बातचीत : कताई-क्लबके सदस्योंके साथ[3]

दिल्ली
[३० जून, १९४०][4]

प्रश्न : अब सविनय अवज्ञा छेड़े जाने के बारेमें कुछ निश्चित तो है नहीं, तब फिर हम क्यों कातें? वास्तवमें कुछ सत्याग्रहियोंने तो कातना छोड़ भी दिया है, क्योंकि सविनय अवज्ञाकी सम्भावना क्षीण हो गई है।

१. हिन्दुस्तान टाइम्सके संवाददाताने गांधीजी के शिमलासे लौटने पर रेलवे स्टेशनपर उनसे भेंट की थी।

२. बेगम जोहरा अन्सारी

३. प्यारेलालके "द जर्नी बैक" (वापसी यात्रा) शीर्षक लेखसे उद्धृत। क्लब ब्रजकृष्ण चाँदीवालाने संगठित किया था।

४. हिन्दुस्तान टाइम्स, १-७-१९४० में प्रकाशित एक रिपोर्टके अनुसार।

गांधीजी : मेरी दृष्टिमें तो इससे यही प्रकट होता है कि वे लोग बहुत ही घटिया सत्याग्रही बनते और अच्छा ही हुआ कि वे अलग हो गये। मुझे सन्देह है कि ये मुझके साथी किसी कामके साबित हो सकते थे। सही-गलत, जैसा भी हो, हमने चरखेको अपने अहिंसात्मक संघर्षका हथियार बनाया है। जो सिपाही लड़ाईको सिरपर आया देखकर ही शस्त्राभ्यास करेगा, वह परीक्षाके समय अवश्य ही असफल रहेगा। सत्याग्रही सैनिक दूरदर्शी होता है और आगेकी योजना पहलेसे ही बनाकर रखता है। जो हथियार हमने चुना है उसकी शक्तिमें अगर हमारा विश्वास है तो हम कभी उसका त्याग नहीं करेंगे, उसे अलग नहीं रखेंगे, बल्कि उसे हमेशा तेज और तैयार रखेंगे। आज हमारी अहिंसाकी कसौटी हो रही है। कार्य-समितिका प्रस्ताव इस कल्पना पर आधारित है कि आज देश शुद्ध अहिंसाका पालन करने के लिए तैयार नहीं है। यदि कार्य-समितिके सदस्योंको यह पता चले कि उनकी कल्पना गलत है, तो उन्हें बहुत खुशी होगी और वे अपने फैसलेको तदनुसार बदल डालेंगे। अहिंसामें जिनकी जीवन्त आस्था है उनका कर्त्तव्य है कि जरा-सा बहाना पाते ही अपनी आस्थाको तिलांजलिके बजाय उसका सच्चा प्रमाण दें और कार्य-समितिको अपने विचारोंसे सहमत करें। क्लबके रजिस्टर में नामांकित बावन सदस्य यदि सच्ची आस्था रखते हैं, तो उनकी संख्या जल्दी ही बढ़कर बावन सौ हो जायेगी। परन्तु केवल अगर-मगर करने से कोई लाभ नहीं होगा। 'यदि नमक ही अपना खारापन छोड़ दे तो कौन-सी चीज उसे नमकीन बना सकती है?'

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि चरखेके द्वारा हम उस वीरोचित अहिंसाका विकास कर सकते हैं, जो भारीसे-भारी कठिनाइयोंकी भी परवाह नहीं करती और हारना जानती ही नहीं। लोहे और इस्पातके हथियारोंमें मेरी रुचि नहीं है। सम्भव है, ऐसे हथियारोंसे आप शत्रु-दलपर मौत बरसा कर दें और आज आपपर उसकी जो सत्ता है उसे उससे कुछ हदतक छीन लें। परन्तु इससे आम लोगोंकी हालत तनिक भी नहीं सुधरेगी। वे शक्तिशाली और जबरदस्त लोगोंकी गुलामीमें पिसते ही रहेंगे। मुझे ऐसी व्यवस्थामें रुचि नहीं है जिसमें निर्बलसे-निर्बल लोगोंके लिए — अन्धों और लूलो-लँगड़ोंके लिए भी — जगह न हो। मेरी कल्पनाका स्वराज्य देशके मामूलीसे-मामूली आदमीके लिए भी होगा। और वह केवल अहिंसासे ही मिल सकता है।

निर्बलकी अहिंसा बुरी चीज है। मगर नामर्दकी हिंसा — नामर्दी-भरी अहिंसा — उससे भी बुरी है। यही चीज आज वातावरणको दूषित कर रही है। वातावरणका यह जहर महज फैशनके तौरपर की जानेवाली कताईसे दूर नहीं होगा।

क्लबके एक और सदस्यने कहा कि हम चरखेमें गांधीजी-जैसी आस्था रखने का तो दावा नहीं कर सकते, परन्तु अनुशासनकी खातिर कताई करने को तैयार हैं, जो बिलकुल ईमानदारीकी बात है।

गांधीजी ने यह मानते हुए कि किसी समय अनुशासनार्थ कताईकी उपयोगिता थी, कहा कि आपकी जरूरतोंको देखते हुए वह बिलकुल नाकाफी है। देशमें सच्चा अहिंसक वातावरण पैदा करने के लिए आस्थापूर्वक कताई जरूरी है। मान लीजिए,

दंगे होते हैं और हजारों बेगुनाह औरतों और बच्चोंका जीवन संकटमें पड़ जाता है और इस आगके देश-भरमें फैल जाने का खतरा पैदा हो जाता है — ऐसी स्थितिमें अहिंसामें सच्ची आस्था रखनेवालो का कर्त्तव्य होगा कि वे आवेशोन्मत्त दंगाइयोंके सामने खड़े हो जायें और अपने जीवनकी बलि देकर उनका क्रोध शान्त करें। अनुशासनार्थ कताईसे उनमें ऐसी आस्था पैदा नहीं होगी। बातको जारी रखते हुए उन्होंने कहा :

अहिंसात्मक रण-नीतिमे अनुशासनका महत्त्व है, परन्तु उसके अतिरिक्त भी बहुत-कुछ चाहिए। सत्याग्रही सेनामे हर व्यक्तिसिपाही और सेवक होता है। परन्तु किसी कठिन क्षणमे हर सत्याग्रही सिपाहीको अपना सेनापति और नेता भी बनना पडता है। केवल अनुशासनका पालन करने से कोई नेता नही बन सकता। नेता बनने के लिए आस्था और अपने ध्येयका एक स्पष्ट बोध जरूरी है। इसीलिए मैंने कहा है कि अनुशासनार्थं कताई चाहे और कुछ ही क्यो न कर दिखाये, वह हमे सत्याग्रहके संघर्षमे विजय नहीं दिला सकती, क्योकि उसके लिए वीरोचित अहिंसा की आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

२७४. प्रश्नका उत्तर[1]

[१ जुलाई, १९४० के पूर्व][2]

प्रश्न : आप समझते है कि हममें सबलकी अहिंसा नही है। अच्छा, तो मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि आपको आज आजादी भेंट की जाये तो आप क्या करेंगे? क्या आप उसे ठुकरा देंगे?

उत्तर: मैं ठुकरा दूंगा। मैं बेमानी सवालका बेमानी जवाब दे रहा हूँ। सवाल बेमानी है, क्योकि कोई आजादी भेंट नही करेगा। कारण, हम उसके लिए तैयार नहीं है। अगर हम तैयार हो तो वह हमारे माँगे बिना ही मिल जाये।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

१ और २. प्यारेलालके लिखे "ह्वाट लेड टु द डिसीजन" (फैसला कैसे हुआ) शीर्षक लेखसे उद्धृत। इस लेखकी लेखन-तिथि १ जुलाई, १९४० दी गई है।

२७५. कार्य-समितिके निर्णयके बारेमें

मुझे कांग्रेसियो और पश्चिमी दुनियाके अपने मित्रो-सहित गैर-कांग्रेसियोके भी बहुत-से पत्र मिल रहे है, जिनमें कार्य-समितिके हालके निर्णयपर[1] दुःख प्रकट किया गया है। सदस्योने जिसे अपना कर्त्तव्य — हालाँकि दुःखद कर्त्तव्य — समझा उसे करके उन्होने जिस साहसका परिचय दिया उसके लिए पत्र-लेखकोंके मनमें विशुद्ध प्रशसाका ही भाव है, लेकिन इस निर्णयपर सभी दुःखी है और यदि कार्य-समिति उसपर पुनर्विचार करे तो उन्हे प्रसन्नता होगी। इनमे से एक पत्र ऐसा है जिसमे आन्तरिक अव्यवस्था या बाहरी आक्रमणोंके मुकाबलेके लिए अहिंसाका त्याग न करने के पक्षमें बुद्धिपूर्वक दलील पेश की गई है। इन पत्र-लेखक भाईने सत्याग्रहके तरीकेकी खिल्ली उड़ानेवाले अपने एक मित्रके नाम लिखे अपने पत्रका एक अश भी भेजा है। मुझे लिखा गया पत्र और उपर्युक्त उद्धरण, इन दोनोका अपना वास्तविक महत्त्व है और इस समय वे बडे प्रासगिक है। पत्रमे से मैंने वह अश निकाल दिया है जिसमें शान्तिकी याचना करने के लिए फ्रान्सीसी राजनेताओंकी मेरे द्वारा की गई प्रशसाके औचित्यपर आपत्ति की गई है। उनकी निगाहमे फ्रान्सका आत्म-समर्पण अनुचित था। इससे उनके मनको गहरा आघात पहुँचा है।

लेकिन पत्र-लेखकका कहना है कि "कार्य-समितिके निर्णयसे तो उससे भी गहरा आघात लगा है।" सक्षिप्तिकी दृष्टिसे उनके द्वारा भेजे गये उद्धरणसे भी मैंने वह अनुच्छेद निकाल दिया है जो बहुत दिलचस्प होते हुए भी उनकी दलीलके लिए बहुत जरूरी नही था।[2]

नई दिल्ली, १ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-७-१९४०

१. तात्पर्य इस निर्णयसे है कि कांग्रेस अहिंसाके सम्बन्धमें गांधीजी का पूरा साथ नहीं दे सकती; देखिए "खुश भी, गमगीन भी", पृ० २२२-२५।

२. गांधीजी और अपने मित्रके नाम उक्त व्यक्तिके पत्रोंके पाठ यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। गांधीजीके नाम अपने पत्रमें पत्र-लेखकने "न केवल हमारे देशकी खोई आजादीको फिरसे हासिल करने के सुविधाजनक साधनके रूपमें, बल्कि मानव-जाति द्वारा पालन किये जाने योग्य एकमात्र धर्मके रूपमें भी सत्याग्रहमें अपनी पूर्ण आस्था" का इजहार करते हुए कहा था कि गांधीजी की इच्छाके विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरक्षाके लिए कार्य-समितिने जिन उपायोंको अख्तियार करने का फैसला किया है उससे उन्हें भारी निराशा हुई।

२७६. कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न

वाइसराय महोदय फिर विभिन्न दलोंके नेताओके साथ मन्त्रणा कर रहे है। मुझे भी निमन्त्रित किया गया था, लेकिन किसी दलके नेता या किसी भी प्रकारके नेताके रूपमे नही। मुझे, यदि हो सके, तो एक मित्रकी तरह किसी निश्चित निर्णयपर पहुँचने मे मदद देने और खासकर उन्हे काग्रेसका मानस समझाने के लिए बुलाया गया था। जो-कुछ हो रहा है (और शीघ्र ही बहुत-सी बाते विद्युत्-वेगसे घटित होनेवाली है) उसको ध्यानमे रखकर तत्काल निर्णयकी अपेक्षा रखनेवाले कुछ प्रश्नो पर विचार कर लेना अच्छा रहेगा। ऐसा भी हो सकता है कि इसके छपते-छपते उनका निर्णय हो चुका हो।

जिस पहली चीजके बारेमे हरएकको खुद विचार करना है वह यह है कि क्या वेस्टमिन्स्टरके ढगका औपनिवेशिक दर्जा भारतको स्वीकार्य हो सकता है। यह दर्जा अगर अबतक कोरा भ्रम नही बन चुका है तो युद्धके अन्तमे बन जायेगा। ब्रिटेन चाहे विजयी हो या पराजित, वह वैसा नही रह जायेगा जैसा पिछली चन्द सदियोसे रहा है। लेकिन इतना निश्चित है कि यदि उसे पराजय मिली तो वह भी गौरवमय होगी। यदि वह पराजित होगा तो इसलिए कि उसकी स्थितिमे कोई भी अन्य राष्ट्र पराजयसे नही बच सकता था। उसकी विजयके सम्बन्धमे मैं ऐसा नही कह सकता। विजय प्राप्त करने के लिए उसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रमाणमे उन्ही साधनोको अपनाना होगा जिन्हे सर्वसत्तावादी राज्योने अपना रखा है। मुझे बहुत गहरे दु:खके साथ कहना पडता है कि ब्रिटिश राजनेताओने उस एकमात्र नैतिक प्रभावके लाभको ठुकरा दिया है जिसे वे काग्रेससे सहज ही प्राप्त करके युद्धके रुखको ब्रिटेनके पक्षमे मोड़ सकते थे। ब्रिटेनके राजनेताओने उस प्रभावका लाभ नही उठाया, इसके लिए उन्हे दोष नही दिया जा सकता। उन्हे इसकी जरूरत ही नही दिखाई दी। यह भी हो सकता है कि मैंने काग्रेसके जिस नैतिक प्रभावसे युक्त होने का दावा किया है उसका उन्हे कोई एहसास न हुआ हो। जो

अपने मित्रको लिखे पत्रमें पत्र-लेखकने कहा था: "राष्ट्रीय मुक्तिके तरीकेके रूपमें अहिंसाको बरकरार रखते हुए, राष्ट्रीय प्रतिरक्षाके लिए और तरहकी तैयारी करनेकी घोषणा मेरी निगाहमें तो अहिंसाके उस रूपका उपहास करना है जिस रूपमें हर सत्याग्रही उसे समझता है।...हमारा साध्य ही अहिंसा होनी चाहिए...और आत्म-निर्णय हमारा साधन।...

"नैतिक प्रयत्नकी इच्छा तो...सबमें है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि नैतिक प्रयत्न कोई आसान काम है या यह कि हर व्यक्ति इसे खुशीसे अपनायेगा।...हममें से अधिकाश लोग अपने भावावेगोंके अधीन हैं।...देशभक्ति ?? बुरे प्रकार की मदान्धता है।..."

भी हो, मेरे मनमें तो यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि भारतका तात्कालिक लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता ही होना चाहिए। यह गोलमोल बात करने या अपने विचारोको छिपाने का समय नही है। मै तो सोच भी नही सकता कि अगर मिल सके तो कोई अपने देशकी स्वतन्त्रतासे कुछ कम लेना चाहेगा। आजतक किसी भी देशको तबतक आजादी नही मिली है जबतक कि वहाँकी जनताने उसके लिए सघर्ष न किया हो। जो भी हो, इस सम्बन्धमे काग्रेस तो बहुत पहले ही निश्चय कर चुकी है। यदि भारतको ब्रिटेनकी कोई कारगर मदद करनी है तो वह भी स्वतन्त्र भारत ही कर सकता है। अलबत्ता, जैसा आजतक होता आया है, ब्रिटेन चाहे तो भारतसे करोडो रुपयेका दोहन कर ले, उसकी करोडोकी विशाल आबादीमे से हजारो लोगोको सिपाहियो और सैनिक मजदूरोंके रूपमे किरायेपर रख ले। ये सारे योगदान बेबस भारतकी ओरसे दिये गये योगदान होगे। उनसे ब्रिटेनकी नैतिक प्रतिष्ठा नही बढ सकती।

दूसरा विचारणीय प्रश्न आन्तरिक अव्यवस्था और बाहरी आक्रमणका मुकाबला करने के लिए व्यवस्था करने का है। निजी तौरपर सैनिक दल तैयार करना तो निरर्थक, बल्कि नुकसानदेह भी होगा। उसकी इजाजत कभी नही दी जायेगी। विदेशी अथवा स्वदेशी, कोई भी सत्ता निजी सैनिक दलोको कभी बर्दाश्त नही कर सकती। इसलिए जो लोग इस बातमे विश्वास रखते है कि भारतके पास सैन्य-बल होना चाहिए उन्हे देर-सवेर ब्रिटिश झण्डेके नीचे सेनामे भरती होने पर विवश होना पडेगा। यह इस विश्वासका तर्कसम्मत परिणाम है। कार्य-समिति इस मसले पर निर्णय ले चुकी है। अगर वह उसपर कायम रहती है तो मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि उसे शीघ्र ही काग्रेसजनोको सामान्य रीतिके अनुसार सेनामे भरती होने की सलाह देनी पडेगी। उसका मतलब होगा अविलम्ब स्वतन्त्रताकी माँगकी समाप्ति और साथ ही सच्ची अहिंसाका भी अन्त। मै अन्ततक यह आशा करता रहूँगा कि स्वय अपने लिए, भारतके लिए, बल्कि सच पूछिए तो खुद ब्रिटेन और मानवताके लिए काग्रेसजन दोमे से किसी भी प्रयोजनके लिए शस्त्र-बलके प्रयोगसे कोई वास्ता रखने से दृढतापूर्वक इनकार करेगे। मेरी पक्की राय है कि मानवताका भविष्य काग्रेसके हाथोमें है। प्रभु काग्रेसजनोको सही कदम उठानेकी बुद्धि और साहस दे।

वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्के विस्तारका प्रस्ताव विचाराधीन है। जब तक काग्रेस स्वतन्त्रता और अहिंसाकी दुहाई दे रही है तबतक वह इस प्रस्तावको कोई समर्थन नही दे सकती। लेकिन यदि वह इन दोनो चीजोको दरकिनार कर देती है तो स्वभावत उसे फिरसे प्रान्तोमें मन्त्रिमण्डलोका गठन करना होगा। इसका मतलब यह होगा कि काग्रेस युद्ध-तन्त्रका एक महत्त्वपूर्ण अग बन गई है। भारत सरकारको भारतको ब्रिटेनकी रक्षाके लिए तैयार करने के अलावा और किसी बातकी फिक्र नही है। भारतको आत्म-रक्षाके लिए तैयार करने की बात करना सिर्फ एक भ्रमजाल है। अगर भारतपर किसी शक्तिकी लोलुप दृष्टि लगी हुई है तो ब्रिटेनके एक अधीनस्थ देशके रूपमें ही। इस रूपमे वह एक परम अभिलषित वस्तु है।

क्या भारत ब्रिटिश ताजका सबसे देदीप्यमान रत्न नही है? लेकिन मै यह स्वीकार करता हूँ कि यदि भारतको युद्ध-व्यापार सीखना है तो आज वह उस हदतक उसका प्रशिक्षण प्राप्त कर सकता है जिस हदतक उसके ब्रिटिश अधिपतिको गवारा होगा।

काग्रेसको अपना रास्ता चुन लेना है। प्रलोभन बड़ा प्रबल है। काग्रेसजन फिरसे मन्त्री बन सकते है। वे केन्द्रमे भी मन्त्री या सदस्य बन सकते है। उन्हे युद्ध-तन्त्रको देखनेका मौका मिलेगा। वे अन्दरसे देख सकेगे (लेकिन फिर उसी हदतक जिस हदतक उसकी इजाजत दी जायेगी) कि जीवन-मृत्युके सघर्षका प्रसग उपस्थित होने पर अग्रेज किस तरह काम करते है। उन्हे करोडो रुपये वसूल करके युद्ध-प्रयत्नमे लगाने होगे। मेरा बस चले तो मै चाहूँगा कि काग्रेस इस प्रबल प्रलोभनके सामने न झुके और जो लोग युग-स्वीकृत तरीकोसे पद-प्राप्तिमे विश्वास करते है उन्हे ये पद प्राप्त करने दे। जैसा कि आजतक होता आया है, इन पदो को स्वीकार करनेवाले बहुत-से हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी और अन्य लोग होगे। वे भी हमारे देशभाई है। हमे स्वीकार करना चाहिए कि उनके आचरणके पीछे भी अपनी दयानतदारी होगी। मगर स्वतन्त्रता और उसकी प्राप्तिके एकमात्र उपायमे विश्वास रखनेवाले हम लोगोको अपने साध्य और साधनपर दृढतासे कायम रहना चाहिए। मुझे तो इस प्रकारके कार्य-विभाजनसे बहुत लाभ होने की सम्भावना दिखाई देती है। काग्रेस पिटी-पिटाई लीकपर चलकर अपनी पहचान खो दे, यह भारी अनर्थ होगा। इसके विपरीत यदि काग्रेस अपनी टेकपर दृढ रहे तो निश्चित है कि वह युद्धकी समाप्तिके पूर्व भी सघर्ष कर अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लेगी, बशर्ते कि उसका सघर्ष विशुद्ध, सच्चे और स्पष्ट रूपसे अहिंसक रहे।

नई दिल्ली, १ जुलाई, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ६-७-१९४०

२७७. एक सही शिकायत

एक भाईने मुझे काफी वजनदार दलीलवाला एक पत्र लिखा है, जिसमे उनका कहना है कि मै अपने देशभाइयोसे आशाएँ तो बडी-बडी रखता हूँ, लेकिन लिखता हूँ सिर्फ अग्रेजीमे प्रकाशित 'हरिजन' के लिए, तथा उसके हिन्दुस्तानी और गुजराती सस्करणोकी ओर कोई ध्यान नही देता। उनके अनुसार, 'हरिजनबन्धु' (गुजराती) और 'हरिजन-सेवक' (हिन्दुस्तानी) दोनोमे 'हरिजन' के लेखोके अनुवाद-भर छपते है। मुझे इस आरोपको स्वीकार करना होगा। अग्रेजीमे लिखने के बारेमे मेरे पास बचाव यह रहा है कि मुझे गुजराती और अपनी टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी दोनोंमें से किसीको भी समझने में असमर्थ अग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयों और साथ ही पश्चिमी दुनियाके उन पाठकोंके लिए लिखना पडता है जिनकी सख्या दिन-ब-दिन बढती ही

जा रही है। आशा है, मेरी इस सफाईको सही माना जायेगा। लेकिन मुझे लगता है, वह समय आ गया है जब मुझे यथासम्भव केवल गुजरातीमें ही और कभी-कभी हिन्दुस्तानीमें लिखना चाहिए। कारण सीधा-सादा और, आशा है, लोगोंके गले उतरनेवाला है। मेरे सामने आज सबलकी अहिंसाका सन्देश आम लोगोंतक पहुँचानेका कठिन कार्य उपस्थित है। वे कार्य-समितिके निर्णयकी बारीकीको नहीं समझेंगे। मुझे ऐसी चेतावनी भी मिली है कि लोग भ्रमित हो जायेंगे। वे समझेंगे कि कांग्रेसने अहिंसाका त्याग कर दिया है और चाहती है कि वे भी यही करें। तब वे कहेंगे, "लेकिन महात्मा तो अब भी उसमें विश्वास करता है। इन मतभेदोंके बीच हम किसकी बात मानकर चलें?" यदि मैं आम लोगोंका साथ खो बैठता हूँ तो यही माना जायेगा कि अहिंसाका सार्वजनिक प्रयोग निष्फल हो गया। मेरी आस्था तो तब भी पूर्ववत् बलवती रहेगी। लेकिन मेरी निष्फलता भी उतनी ही स्पष्ट होगी। ऐसी कठिन परिस्थितिमें अपना सन्देश आम लोगोंतक पहुँचानेके लिए मुझे अपने लेखोंके अनुवादोंका भरोसा करके नहीं चलना चाहिए। जो सबसे प्रभावकारी साधन सुलभ हो सकता है उसका प्रयोग मुझे करना ही चाहिए। इसलिए स्वभावतः मुझे कमसे-कम गुजरातियोंसे अपनी बात उन्हींकी भाषामें — जो मेरी भी है — कहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, उत्तर भारतकी किसी भी भाषामें अंग्रेजीकी तुलनामें गुजरातीसे अनुवाद करना बहुत आसान है।

लेकिन, प्रस्तावित परिवर्तनका निर्णायक कारण यह है कि लिखते समय मेरी नजरोंके सामने अंग्रेजी-भाषी लोग होते हैं। उन्हें देनेके लिए मेरे पास ठीक वही सन्देश नहीं होगा जो आम लोगोंको देनेके लिए होगा। अतीतका अनुभव भी परिवर्तनकी वांछनीयताके पक्षमें ही जाता है। जब मैंने दक्षिण आफ्रिकामें 'इंडियन ओपिनियन'का सम्पादन आरम्भ किया, उन दिनों वहाँके अधिकतर भारतीय अनपढ़ थे। मैं ऐसी भाषा लिखता था जो उनकी समझमें आ जाये। जब साप्ताहिक 'इंडियन ओपिनियन' उनके पास पहुँचता था, हर बीस भारतीयोंपर सिर्फ एक पाठक होता था, जो कहनेकी जरूरत नहीं कि सेवा-भावसे उन्हें वह पढ़कर सुनाता था। वे 'इंडियन ओपिनियन' में छपे एक-एक शब्दको सुनकर आत्मसात् कर लेते थे। उसमें जगह भरनेके लिए कुछ नहीं लिखा जाता था और न कोई निबन्ध ही। मैं तो बस उनके लिए उनकी कठिनाइयोंकी साफ-साफ चर्चा कर दिया करता था। सिद्धान्त-चर्चाके लिए मेरे पास समय ही नहीं था। क्या करना है, इसके बारेमें उन्हें साप्ताहिक हिदायतें मिल जाती थीं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सत्याग्रहियोंको गढ़ने और उनका मार्ग-दर्शन करनेमें 'इंडियन ओपिनियन'ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यदि मैं उनसे अंग्रेजीमें अपनी बात कहता तो विफल रहता। यह जानते हुए भी कि मैं उनमें से एक बहुत बड़े हिस्सेसे अपनी बात उन्हींकी भाषामें कह सकता हूँ, यदि मैंने अंग्रेजी माध्यमका सहारा लिया होता तो मैं कदापि उनके साथ ऐक्यका अनुभव न कर पाता। इसलिए अगर मैं आम लोगोंके एक हिस्सेको भी अपने साथ ले चलनेकी आशा करता हूँ — जो वास्तवमें करता भी हूँ — तो मुझे

कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए कि उनसे उस भाषामें बोलूँ जिसे वे और मैं, दोनो समझते है।

इसलिए अगर 'हरिजन' के अंग्रेजी जाननेवाले पाठक किसी दिन देखे कि 'हरिजन' मे प्रकाशित मेरे लेख तो अनुवाद है तो उन्हे आश्चर्य नही होना चाहिए। सौभाग्यसे अनुवादके सम्बन्धमे मुझे कुछ बहुत सुयोग्य सहायक प्राप्त है। महादेव देसाई और प्यारेलाल मेरे गुजराती या हिन्दुस्तानी लेखोका अनुवाद अक्सर करते रहे है। अंग्रेजी जाननेवाले पाठकोके लिए ज्ञातव्य है कि 'एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ' [आत्मकथा] और 'हिस्ट्री ऑफ सत्याग्रह इन साउथ आफ्रिका' [दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास], मेरी ये दोनो कृतियाँ उन्हे अनूदित रूपमे ही उपलब्ध है। यही बात 'हिन्द स्वराज' तथा मेरी और भी कई कृतियोंके बारेमे है। किन्तु अहिंसाके सम्बन्धमें तो अपने सन्देशको दुनियाके दूर-दूरके हिस्सोतक पहुँचाने के लिए मुझे आखिरकार अपने विचारपर ही सबसे ज्यादा निर्भर रहना है। सभी विचार समान शक्तिवाले नही होते। शक्ति तो पवित्र जीवनसे स्फुरित और प्रार्थनापूर्ण एकाग्रतासे युक्त विचारमे ही होती है। जीवन जितना पावन होगा, एकाग्रता जितनी अधिक होगी, वस्तु-मात्रके उत्स उस अदृश्य शक्तिमे आस्था जितनी ज्वलन्त होगी, विचारमे उतनी ही अधिक शक्ति होगी। जितनी पवित्रता, एकाग्रता और आस्था मैं चाहता हूँ उतनी यदि मुझमे हो तो मैं जानता हूँ कि मैं अपना सारा काम लिखे या बोले बिना, या कमसे-कम लिख या बोलकर चला लूँ, और तब मेरे विचारमे ऐसी शक्ति होगी जिसका रास्ता कोई नही रोक पायेगा। यह वह शक्ति है जिसे प्राप्त करने की आकाक्षा हर मनुष्यको रखनी है और जिसे समुचित प्रयत्नसे वह प्राप्त कर सकता है। मौनके स्वरको कभी अनसुना नही किया गया है।

नई दिल्ली, १ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-७-१९४०

२७८. अहिंसा और घबराहट

आशा है, एक भाईके पत्रके निम्न अंशको[1] पाठक रुचिपूर्वक पढ़ेंगे और शायद उससे लाभान्वित भी होंगे :

> जबसे मित्र-राष्ट्र हारने लगे हैं, देशमें घबराहट फैल गई है। ब्रिटेनकी विफलताके परिणामोंके बारेमें सोचकर लोग भयभीत हो उठे हैं। उन्हें गृह-युद्ध, साम्प्रदायिक दंगों, लूट-पाट, आगजनी और गुण्डागर्दीकी आशंका है। आप अहिंसाके दूत हैं, और कमसे-कम बीस वर्षोंसे लोगोंको उसकी शिक्षा देते आ रहे हैं। जहाँतक मैंने समझा है, आप तो सबलकी अहिंसाकी शिक्षा देते हैं, जो सबके प्रति — शत्रु या हमलावरके प्रति भी — सद्भावनासे जन्म लेती है। . . .
>
> लेकिन . . . देखता हूँ, आपके अधिकतर अनुयायियोंमें इस प्रकारकी अहिंसाका अभाव है। वे अहिंसक इसलिए हैं कि वे मानते हैं, यदि वे अन्यायीका प्रतिरोध करने के लिए हिंसाका प्रयोग करेंगे तो वह और भी भड़क उठेगा, और फलतः और भी हिंसासे काम लेगा, जिसको शायद वे झेल न पायें। उनकी अहिंसाकी यही पृष्ठभूमि प्रतीत होती है, और स्पष्ट है कि वह प्रेमसे नहीं, बल्कि भय और कायरतासे उत्पन्न है। क्योंकि उसके पीछे किसी उच्चतर उद्देश्यके लिए अपनी जानको जोखिममें डालने का नहीं, वरन् उसे बचाने का विचार है। . . .
>
> मेरा निश्चित विश्वास है कि घबराहट और सब जगह फैले भयके इस आलममें आपकी कलमसे निकले चन्द लेख हमारे नौजवानोंका सारा भय दूर कर देंगे, और उनमें ऐसी भावनाका संचार करेंगे जिससे वे समाजके गुण्डा-तत्त्वोंका मुकाबला कर पायेंगे। इस तरहका एक लेख[2] 'हरिजन'के पिछले अंकमें प्रकाशित भी हो चुका है; लेकिन मेरी अर्ज यह है कि शारीरिक दृष्टिसे समर्थ लेकिन घबराहटमें पड़े लोगोंमें साहस और बहादुरीका संचार करने के लिए पूरी एक लेख-मालाकी जरूरत है। मेरी रायमें तो यदि आप 'हरिजन'में हर हफ्ते इस विषयपर चन्द सतरें लिखने की कृपा करें तो सारा भय और घबराहट दूर हो जायेगी। हमारे भयसे हमारे बीच

१. यहाँ उसके कुछ हिस्से ही दिये जा रहे हैं।
२. देखिए "हिटलरशाहीका मुकाबला कैसे करें", पृ० २१३-१५।

गुण्डोंको शह मिल रही है। इसके मिटते ही हमारे समाजके गुण्डे और धौंसिये भी लुप्त हो जायेंगे।

यह पत्र औसत काग्रेसजनकी मनोवृत्तिकी सही तसवीर पेश करता है। इसमे जिस अहिंसाका वर्णन किया गया है वह कदापि हमे अपने लक्ष्यतक नही पहुँचा सकती। यदि हम इस अहिंसाको आधार बनाकर सबलकी सच्ची अहिंसाका —विश्वकी प्रबलतम शक्तियोके सयुक्त बलको अकेले चुनौती देते हुए डटी रहनेवाली अहिंसाका —विकास कर सके तो माना जायेगा कि इस अहिंसासे भी हमे ठीक लाभ हुआ। सभी काग्रेसजन अपने मनसे यह पूछ देखे कि क्या उनमे सबलकी अहिंसाको अपनाने का साहस है। उस परम वाछनीय स्थितिको प्राप्त करने के लिए अपने उद्देश्यकी खातिर अपना सब-कुछ दाँवपर लगा देने के सकल्पके अतिरिक्त और किसी चीजकी जरूरत नही है। जो व्यक्ति किसी और कष्टसे बचने के लिए जेल गया उसकी अहिंसाने तो स्वय उसको ही हानि पहुँचाई और उस उद्देश्यको भी कलकित किया जिसका इस्तेमाल उसने मृत्युसे बचने के लिए एक ढालकी तरह किया। स्वराज्य लानेवाले लोग इससे कठिन धातुके बने होते है। और यह तो आसानीसे समझा जा सकता है कि विरोधीको मारे या मनमे उसे मारने की इच्छा रखे बिना भी यदि हम बहादुरीके साथ मृत्युका सामना कर सकते है तो हमने स्वराज्य प्राप्त करने और उसे बरकरार रखने की योग्यता हासिल कर ली।

पत्र-लेखक भाईने मुझसे घबराहटकी भर्त्सना करते हुए एक लेख-माला लिखने को कहा है। मेरे कुछ भी लिखने-भरसे घबराहट रुकनेवाली नही है। जरूरत कथनीसे ज्यादा करनी की है। मै कह चुका हूँ कि जो नगरवासी घबराहटके वशीभूत हो गये बताये जाते है वे जब जेल गये तब भी अहिंसक नही थे। काग्रेस द्वारा छेडे गये सत्याग्रह आन्दोलनोमे हमारे नगरवासियोने जेल-यात्रियोंके रूपमे खासा योग दिया। अब उन्हे चाहिए कि वे दृढतापूर्वक अपनी-अपनी जगह डटे रहकर डरपोक लोगोको काल्पनिक अथवा वास्तविक खतरेसे बचने के लिए भाग निकलने का लोभ सवरण करने का साहस प्रदान करे। ऐसा सोचना मूर्खता है कि भागकर कोई यमराजको झाँसा दे सकता है। हमे मृत्युको यमदूत मानने के बजाय अपना हितकारी देवदूत मानना चाहिए। वह जब भी आ जाये, हमे उसका सामना और स्वागत करना चाहिए। मेरे मेजबान सेठ घनश्यामदास बिडलाने मुझे बताया है कि अभी कुछ ही महीन पहले एक पूरा-का-पूरा व्यापारी-परिवार अपने नोटोसे सोना खरीदकर उस कीमती सोनेके साथ रेलगाडीमे यात्रा कर रहा था कि गाडी दुर्घटनाग्रस्त हो गई और वे सबके-सब मृत्युके ग्रास बन गये। सच पूछिए तो वह सोना ही उस परिवारका मृत्युपाश साबित हुआ। युद्ध हो या न हो, हममे से हरएककी मृत्यु तो एक-न-एक दिन आयेगी ही। लेकिन उस अटल घड़ीके आने से पहले ही हम रोज-रोज क्यो मरे?

नई दिल्ली, १ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-७-१९४०

२७१. प्रश्नोत्तर

एक मुसलमान भाईकी दुविधा

प्र० : हम मुसलमान मानते हैं कि हमारे पैगम्बरका जीवन पूर्ण रूपसे खुदा द्वारा निर्देशित और सच्चे मानीमें अहिंसक था, हालाँकि इस शब्दका जो अर्थ आप लगाते हैं उस अर्थमें नहीं। उन्होंने कभी कोई आक्रामक युद्ध नहीं किया, और दूसरोंकी भावनाओंका उन्हें बहुत खयाल रहता था। लेकिन जब उन्हे आत्म-रक्षाके लिए युद्ध करने पर विवश होना पड़ा तो उन्होंने धर्म-युद्ध करने के लिए अपनी तलवार उठाई, और कुछ परिस्थितियोमें, जिन्हे उन्होने स्वयं निर्धारित कर दिया है, वे तलवारके उपयोगकी छूट भी देते है। लेकिन आपकी अहिंसा अलग किस्मकी है। आप हर स्थितिमें उसका विधान करते हैं। मैं नहीं समझता, पाक पैगम्बर इसकी इजाजत देते। इस स्थितिमें हम किसका अनुसरण करे — आपका या पाक पैगम्बरका? अगर हम आपका अनुसरण करते है तो मुसलमान नहीं रह जाते। यदि हम पैगम्बरका अनुसरण करते है तो अपने धर्मके रूपमें चरम अहिंसाका वरण करनेवाली कांग्रेसमें शामिल नहीं हो सकते। क्या आप इस दुविधाका हल सुझायेंगे?

उ० मैं यही उत्तर दे सकता हूँ कि जब आपको ऐसा अन्तर दिखाई देता है तो आपको वेझिझक पाक पैगम्बरका अनुसरण करना चाहिए, मेरा नही। हाँ, इतना जरूर कहना चाहूँगा कि विविध धर्मोके एक तटस्थ अध्येताके रूपमें मैंने पैगम्बरके जीवन और कुरान शरीफका अध्ययन किया है। और मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि कुरानकी शिक्षा तत्त्वत अहिंसाके पक्षमे है। कुरानमें कहा गया है कि अहिंसा हिंसासे श्रेष्ठ है। अहिंसाका आदेश कर्त्तव्यके रूपमें दिया गया है, हिंसाकी छूट जरूरत पड़ने पर। पाक पैगम्बरने जो-कुछ किया, उसपर मैं फतवा नही दूंगा। मुझे अपने आचरणका आधार विश्वके महान् शिक्षकोने जो-कुछ किया उसे नही, वल्कि जो-कुछ कहा उसको बनाना है। पैगम्बरको पैगम्बरी तलवार उठाने से नही, वल्कि वर्षोतक सत्यको जानने के लिए खुदाकी इबादत करने से मिली। उनके जीवनमे से इन मूल्यवान वर्षोंको अलग करते ही आप देखेंगे कि पैगम्बर पैगम्बर नही रह गये हैं। मुहम्मदके जीवनके उन्ही वर्षोंने उन्हे पैगम्बर बनाया। किसी पैगम्बरका उसकी पैगम्बरीकी स्वीकृतिके बादका जीवन हमारा मार्ग-दर्शक नही बन सकता। पैगम्बरोंके कार्योंका मूल्यांकन तो पैगम्बर ही कर सकते हैं। यदि कोई नागरिक किसी सिपाहीके गुण-दोष नही आँक सकता, विज्ञानसे अपरिचित सामान्य व्यक्ति किसी वैज्ञानिकके गुण-दोष नही परख सकता तो कोई साधारण मनुष्य किसी पैगम्बरके वारेमें कैसे निर्णय दे सकता है? और उसका अनुकरण तो साधारण मनुष्यके लिए और भी अशक्य है।

यदि मैं मोटरगाड़ी चलाने बैठूं तो निश्चित है कि मैं उसे और खुदको भी खतरेमें — बल्कि शायद मौतके मुँहमें भी — डालूँगा। फिर सोचिए कि किसी पैगम्बरका अनुकरण करना मेरे लिए कितना ज्यादा खतरनाक होगा! एक बार पैगम्बर साहबसे पूछा गया कि जब आप निर्धारित अवधिसे अधिक समयतक उपवास कर सकते हैं तो आपके साथी क्यों नहीं कर सकते। उन्होंने छूटते ही जवाब दिया : "खुदा मुझे रूहानी खुराक देता है, जो मेरी जिस्मानी जरूरतें भी पूरी कर देती है। तुम्हारे लिए उन्होंने रमजान तय कर दिया है। मेरी नकल करना तुम्हारे लिए मुनासिब नहीं।" यह उद्धरण मैंने याददाश्तसे दिया है।

बेंतका उपयोग मत करो

प्र० : मैं एक शिक्षक हूँ। अपने विद्यालयके बच्चों तथा खुद अपने बच्चोंसे पेश आते समय मैं अहिंसाके सिद्धान्तका पालन करनेकी कोशिश करता हूँ। विद्यालयके बच्चोंके सम्बन्धमें मैं काफी हदतक सफल रहता हूँ। बस एक धौंसिया है, जिसे मुझे प्रधानाध्यापकके पास भेजना होगा। लेकिन खुद अपने बच्चोंको अक्सर मेरा मन पीटनेको होता है, हालाँकि मैं अपनेको संयत करनेमें सफल हो जाता हूँ। देखता हूँ, इसके विपरीत, मेरे चाचाकी बात वे तुरन्त मान लेते हैं, जो इस पुरानी कहावतमें विश्वास रखते हैं : "बेंतका उपयोग न करनेका मतलब बच्चेको बिगाड़ना है।" मैं अपने बच्चोंके बारेमें क्या करूँ? अहिंसक प्रधानाध्यापकको किसी धौंसियेके साथ किस तरह पेश आना चाहिए?

उ० मेरी स्पष्ट राय है कि आपको अपने बच्चों या विद्यार्थियोंको शारीरिक अथवा किसी भी प्रकारकी सजा नहीं देनी चाहिए। अगर आप चाहें और आपमें उसकी योग्यता हो तो अपने बच्चों या विद्यार्थियोंके हृदयको द्रवित करनेके लिए आप खुदको सजा दे सकते हैं। लोग जानते हैं कि बहुत-सी माताओंने अपने बच्चोंको इसी रीतिसे सुधारा है। खुद मैंने तो कई प्रसंगोंपर ऐसा किया है। दक्षिण आफ्रिकामें मुसलमान, ईसाई, हिन्दू और पारसी सभी धर्मोंके बहुत-से उच्छृंखल बच्चोंसे मेरा वास्ता पड़ा, और मुझे याद नहीं कि एकको छोड़कर किसीको भी मैंने कभी कोई सजा दी हो। उनके सम्बन्धमें मेरा अहिंसक तरीका अक्सर सफल रहा। शिक्षक और विद्यार्थीके बीच एक बार प्रेमका बन्धन कायम हो जाने पर विद्यार्थी शिक्षकको अपनी खातिर कष्ट सहते देखकर सामान्यत उसके सामने झुक जाते हैं। रही आपके उस 'धौंसिये' विद्यार्थीकी बात, तो अगर उसके मनमें आपके लिए कोई आदर नहीं है तो आप उसे अपने विद्यालयसे निकालकर उसके साथ असहयोग कर सकते हैं। अहिंसाका तकाजा यह नहीं है कि आप अपने विद्यालयमें ऐसे विद्यार्थीको भी रखें जो अनुशासनके नियमोंका पालन नहीं करता।

गिरि-प्रवचन

प्र० : आप गिरि-प्रवचनका उल्लेख अक्सर करते हैं। क्या आप उसके इस वचनको मानते हैं कि "यदि कोई तुम्हारा कोट ले ले तो तुम उसे अपना कम्बल

भी दे दो"? क्या अहिंसाके सिद्धान्तकी ही यह सहज परिणति नहीं है? अगर ऐसा हो तो क्या आप किसी गाँवके एक कमजोर और गरीब काश्तकारको यह सलाह देंगे कि यदि उसकी 'आवादी' जमीन' या काश्तकारीके अधिकारोंपर कोई जमींदार जालिमाना तरीकेसे हाथ डाले, जैसा कि आजकल गाँवोंमें अक्सर होता है, तो वह उसे खुशीसे सहन कर ले?

उ० हाँ, मैं काश्तकारोंको बेझिझक यह सलाह दूँगा कि वे जालिम जमींदारकी जमीनको खाली कर दें। यह कोट माँगे जाने पर कम्बल भी दे देने-जैसा होगा। जितने की जरूरत है उतना लेना लाभदायक हो सकता है, लेकिन अगर हम किसीको अपनी जरूरतसे ज्यादा देने को मजबूर कर देते हैं तो बहुत सम्भव है कि वह अतिरिक्त मात्रा हमारे लिए एक बोझ बन जाये। जरूरतसे ज्यादा खाते रहने का मतलब अपनेको धीरे-धीरे मृत्युका ग्रास बनाना है। जमींदार अपना लगान चाहता है, जमीन नहीं। और जब वह जमीन नहीं चाहता तब जमीन वापस कर देने पर वह उसके लिए भार बन जायेगी। यदि हम किसी लुटेरेको उसकी माँगसे ज्यादा दे दें तो वह आश्चर्यमें पड जायेगा, प्रसन्न तो होगा, लेकिन स्तब्ध रह जायेगा। वह ऐसी बातका अभ्यस्त ही नहीं रहा है। इतिहासमें ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि इस प्रकारके अहिंसक आचरणका अन्यायी पर बडा शुभ प्रभाव हुआ है। ऐसे काम यान्त्रिक रीतिसे नहीं किये जा सकते। उनके पीछे आतरिक विश्वासका बल और बुरा काम करनेवाले के प्रति प्रेम या दयाका भाव होना चाहिए। और आपको मेरे उत्तरके तमाम फलितार्थोंका हिसाब लगाने की भी जरूरत नहीं है। अगर हिसाब लगाने बैठेंगे तो ऐसी भूलभुलैयामें जा फँसेंगे जिससे निकलने का रास्ता ही नहीं मिलेगा। इतना कह देना ही काफी है कि आपके द्वारा उद्धृत वचनमें ईसाने अहिंसक असहयोगके महान् सिद्धान्तको बहुत ही सजीव और प्रभावशाली रीतिसे प्रस्तुत किया है। जब हम अपने विरोधीके प्रहारका उत्तर प्रहारसे देते हैं तब हमारा असहयोग हिंसक होता है और अन्तमें वह प्रभावहीन भी साबित होता है। लेकिन जब हम उसे, जो-कुछ वह चाहता है, उसके बदले सब-कुछ दे देते हैं तब हमारा असहयोग अहिंसक होता है। अपने इस प्रकट सहयोगके द्वारा, जो वास्तवमें पूर्ण असहयोग है, हम विरोधीको सदाके लिए निरस्त्र कर देते हैं। जो लडकी बलात्कारपर उतारू किसी व्यक्तिको अपना जीवित शरीर देने के बजाय उसे अपनी लाश देती है वह उस व्यक्तिको हतप्रभ कर देती है और स्वयं वीरांगनाके योग्य मृत्युका वरण करती है। यह कोमल कायामें वज्रकी दृढतावाले हृदयका प्रमाण है।

अनिवार्य प्रार्थना

प्र० : मैं अ० भा० च० संघकी राजस्थान शाखाका एक कर्मचारी हूँ। मैं प्रार्थनामें विश्वास करता हूँ, लेकिन मेरे कुछ सहयोगी नहीं करते। तथापि संस्थाके

१. मूलानुसार।

नियमानुसार उन्हें प्रार्थनामें शामिल होना पड़ता है। उन्हें भय है कि अगर वे इनकार करेंगे तो अपनी नौकरी खो बैठेंगे। मेरी राय यह है कि संस्था अपने कर्मचारियोंको उनकी आठ घंटेकी मेहनतके बदले वेतन देती है। फिर उसे क्या अधिकार है कि वह इस प्रार्थनामें अपने कर्मचारियोंकी अनिवार्य उपस्थितिकी शर्तको नौकरीके इस सौदेमें शामिल करने पर आग्रह रखे?

उ० अनिवार्य प्रार्थना-जैसी कोई चीज तो हो ही नही सकती। प्रार्थना तभी प्रार्थना है जब स्वेच्छयाकी जाये। लेकिन आजकल लोग अनिवार्यताके बारेमे भी विचित्र प्रकारके विचार रखते है। यदि आपकी सस्थाका यह नियम हो कि उसके वेतनभोगी या अवैतनिक हर सदस्यको सामूहिक प्रार्थनामे शरीक होना पड़ेगा तो मेरी समझसे तो जिस प्रकार आप अपने अन्य कर्त्तव्योको पूरा करने के लिए बँधे हुए है उसी प्रकार प्रार्थनामे शामिल होने को भी बँधे हुए है। आपने इस सस्थामे स्वेच्छासे प्रवेश किया। आप उसके नियम जानते थे या आपको जानने चाहिए थे। इसलिए जैसे मै इस अनुबन्धके तहत आनेवाले आपके अन्य कार्योको ऐच्छिक मानूँगा उसी प्रकार प्रार्थनामे आपकी उपस्थितिको भी ऐच्छिक समझूँगा। अगर आपने उसमे सिर्फ वेतनके लिए प्रवेश किया था तो आपको प्रबन्धकको साफ बता देना चाहिए था कि आप प्रार्थनामे शरीक नही होगे। यदि आपत्ति होने पर भी आपने अपनी आपत्तिका इजहार किये बिना उसमे प्रवेश किया तो आपने गलत काम किया, जिसके लिए आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए। यह दो तरहसे किया जा सकता है—या तो सच्चे हृदयसे प्रार्थनामे शामिल होकर या त्यागपत्र तथा अचानक त्यागपत्र देने से सस्थाको होनेवाली क्षतिका मुआवजा देकर। किसी सस्थामे प्रवेश करनेवाले हर व्यक्तिका यह कर्त्तव्य है कि उसका व्यवस्थापक-मण्डल जो भी नियम बनाये उनका वह पालन करे। जब कोई नया नियम क्लेशप्रद लगे तो त्यागपत्र देने के नियमोके अनुसार उस संस्थाको छोड़कर चले जाने की उसे पूरी छूट है। लेकिन उस सस्थामे रहते हुए उसे उन नियमोकी अवहेलना नही करनी चाहिए।

नई दिल्ली, १ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

२८०. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

बिड़ला हाउस, अलबुकर्क रोड,
नई दिल्ली
२ जुलाई, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मेरे गत महीनेकी २० तारीखके पत्रका आपने बड़ी तत्परतासे उत्तर दिया, तदर्थ धन्यवाद। आपने ठीक-ठीक जो-कुछ कहा था उसका पूरा आशय लिख भेजने के लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपकी बातोंका खुलासा करने मे मेरा उद्देश्य आपके प्रस्तावोंको यथासम्भव अधिकसे-अधिक अनुकूल रूपमें पेश करने का था। सुधारोंके लिए आभारी हूँ। आपका पत्र मैं कार्य-समितिको पढ़कर सुना दूँगा।

मुझे इस बातकी भी खुशी है कि ब्रिटेनकी जनतासे अहिंसाकी खातिर मेरे सार्वजनिक अपील[1] करने पर आपको कोई आपत्ति नही है। कहने की जरूरत नही कि उस अपीलसे आपका नाम मैं किसी भी तरहसे नही जोड़ सकता।

जैसी आपकी इच्छा है, हमारी बातचीत और पत्रव्यवहार गोपनीय ही रहेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार

२८१. हर ब्रिटेनवासीसे

१८९६ में मैंने मजदूरो, व्यापारियो और उनके गुमाश्तोंके रूपमे दक्षिण आफ्रिका जानेवाले अपने देशभाइयोकी ओरसे वहाँ बसे हर ब्रिटेनवासीसे एक अपील की थी।[2] उसका ठीक असर हुआ था। उस समय मैंने जिस उद्देश्यको लेकर अपील की थी वह मेरे दृष्टिकोणसे चाहे जितना महत्त्वपूर्ण रहा हो, इस अपीलके प्रेरक हेतुकी तुलनामें वह सर्वथा महत्त्वहीन था। मैं हर ब्रिटेनवासीसे, चाहे वह जहाँ-कही भी हो, राष्ट्रोंके आपसी सम्बन्धकी समस्याओ तथा दूसरे मामलोंके निबटारेके लिए युद्धके तरीकेके बजाय अहिंसक मार्गको अपनाने की अपील करता हूँ। आपके राजनेताओने घोषणा की है कि यह युद्ध लोकतन्त्रकी खातिर है। युद्धका औचित्य सिद्ध करने के लिए और भी बहुत-से कारण बताये गये हैं। वे सभी आपको कण्ठस्थ होंगे। मेरा कहना

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. सम्भवत. "खुली चिट्ठी" और "पत्र: यूरोपीयोंके नाम"; देखिए खण्ड १, पृ० १७५-९६।

यह है कि युद्धको समाप्तिपर, वह चाहे जिसके पक्षमे हो, विश्वमे लोकतन्त्रका प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई लोकतन्त्र बचा ही नही रहेगा। यह युद्ध मानव-समाजके लिए एक अभिशाप और चेतावनीके रूपमे आया है। अभिशाप इसलिए कि यह जितने बड़े पैमानेपर इन्सानको हैवान बना रहा है उतने बडे पैमानेपर ऐसा होते पहले कभी नही देखा गया। आज योद्धा और गैर-योद्धाका सारा भेद मिटा दिया गया है। किसी भी व्यक्ति या वस्तुको बख्शा नही जा रहा है। झूठको तो कलाका रूप दे दिया गया है। ब्रिटेन छोटे राष्ट्रोकी रक्षा करनेवाला था। एक-के-बाद-एक ये सब मिट गये हैं — कमसे-कम फिलहाल। यह एक चेतावनी भी है। चेतावनी यह है कि यदि हर कोई समयके स्पष्ट लेखको पढ़ने से इनकार करता है तो मनुष्य पशु बन जायेगा — पशु, जिसे आज वह अपने तौर-तरीकोसे लज्जित कर रहा है। लड़ाई भड़कते ही मैंने यह लिखावट पढ़ ली थी। लेकिन मुझमे अपनी बात कहने का साहस न था। अवसर चूकने से पहले ही ईश्वरने अब मुझे वह बात कहने का साहस दिया है।

मै लडाई बन्द करने की अपील इसलिए नही कर रहा हूँ कि आप इतने थक गये है कि लड़ नही सकते। इसके बजाय यह अपील इसलिए कर रहा हूँ कि युद्ध तत्त्वत एक बुरी चीज है। आप नाजीवादको मिटाना चाहते है। आप उसे जैसे-तैसे अपनाकर कभी नही मिटा सकते। आपके सैनिक उसी विनाश-कृत्यमे लगे हुए हैं जिसमे जर्मन लगे हुए हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि आपके सिपाही शायद उतने पूर्ण नही हैं जितने जर्मन है। अगर बात ऐसी हो तो आपके सिपाही भी शीघ्र ही अधिक नही तो कमसे-कम उतनी पूर्णता तो प्राप्त कर ही लेगे। अन्य किसी भी शर्तपर आप यह लड़ाई नही जीत सकते। दूसरे शब्दोमे, आपको नाजियोसे भी अधिक हृदयहीन बनना पडेगा। चाहे जितने भी न्यायसम्मत उद्देश्यके लिए प्रतिक्षण चल रहे इस अन्धाधुन्ध नरसहारको उचित नही ठहराया जा सकता। मगर मेरा निवेदन यह है कि जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए आजकी-सी नृशसताकी जरूरत पडे वह न्यायसम्मत कहा ही नही जा सकता।

मै नही चाहता कि ब्रिटेन हार जाये। लेकिन मै यह भी नही चाहता कि पाशविक शक्तिके परीक्षणमे वह जीत जाये — चाहे उस शक्तिकी अभिव्यक्ति शरीरके माध्यमसे की जाये या मस्तिष्कके माध्यमसे। आपकी शारीरिक शूरता तो एक निर्विवाद तथ्य है। क्या आपको यह दिखाने की जरूरत है कि आपके शरीरकी तरह आपका मस्तिष्क भी विध्वसक शक्तिकी दृष्टिसे अप्रतिम है? मै तो यही आशा करता हूँ कि आप नाजियोंके साथ ऐसी किसी अशोभन प्रतिस्पर्धामे नही उतरना चाहते। मै आपको एक अधिक उदात्त और वीरतापूर्ण, बहादुरसे बहादुर सिपाहीके योग्य मार्ग सुझाने का साहस करता हूँ। मै चाहता हूँ, आप नाजीवादका मुकाबला बिना किसी हथियारके — या यदि अपनी बात सैनिक शब्दावलीमे ही कहनी हो तो — अहिंसक हथियारोसे करें। मै चाहूँगा कि आपके पास जो भी हथियार है उन्हे आप अपनी या मानवताकी रक्षाकी दृष्टिसे बेकार मानकर त्याग दे। आप श्री हिटलर और श्री मुसोलिनीको उन देशोमे से अपनी इच्छानुसार चाहे जितना ले लेने को आमन्त्रित करे जिनपर

आप अपना अधिकार मानते हैं। वे चाहें तो आप सुन्दर भवनोंसे युक्त अपने सुन्दर द्वीपका कब्जा भी उन्हें ले लेने दें। आप यह सब दे देंगे, लेकिन अपनी आत्मा, अपना मन कभी नहीं देंगे। अगर ये सज्जन आपका घर-बार ले लेना चाहें तो आप उन्हें खाली कर दें। अगर वे आपको अपने घर-बार छोड़कर निर्बाध जाने भी न दें तो आप स्वयं स्त्री-पुरुष और बच्चे सब उनके हाथों कत्ल हो जायें। लेकिन उनकी अधीनता कभी स्वीकार न करें।

इस प्रक्रिया या विधिको, जिसे मैंने अहिंसक असहयोगकी संज्ञा दी है, भारतमें काफी सफलतापूर्वक उपयोगमें लाया गया है। आपके भारत-स्थित प्रतिनिधि शायद मेरे दावेको गलत बतायें। अगर वे ऐसा करेंगे तो मुझे उनके लिए अफसोस होगा। वे आपसे कह सकते हैं कि हमारा असहयोग सर्वथा अहिंसक नहीं था, वह घृणासे उद्भूत था। अगर वे ऐसी साक्षी देंगे तो मैं उससे इनकार नहीं करूँगा। अगर वह पूर्णतः अहिंसक होता, अगर सभी असहयोगियोंके मनमें आपके प्रति प्रेम होता, तो मैं कहने की धृष्टता करता हूँ कि आप लोग, जो आज भारतके स्वामी बने हुए हैं, उसके शिष्य बन जाते और जितनी हममें है उसकी अपेक्षा बहुत अधिक कुशलताके साथ आप इस अद्वितीय अस्त्रको सर्वांगपूर्ण बनाकर जर्मन और इतालवी भाइयों द्वारा उपस्थित किये गये खतरेका सामना उसीके बलपर करते। सच तो यह है कि तब यूरोपका पिछले चन्द महीनोंका इतिहास कुछ और ढंगसे लिखा गया होता। तब यूरोपको निर्दोष लोगोंके खूनके दरियामें से न गुजरना पड़ता, छोटे राष्ट्रोंके साथ बलात्कार न हुआ होता और घृणा-द्वेषका यह ताण्डव न मचा होता।

यह किसी ऐसे आदमीकी ओरसे की गई अपील नहीं है जो अपने विषयको नहीं जानता। मैं लगातार पचास वर्षोंसे अधिक समयसे अहिंसा तथा उसकी सम्भावनाओंका आचरण वैज्ञानिक यथातथ्यताके साथ करता आया हूँ। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं जब वह विफल हुई हो। जहाँ यह यदा-कदा विफल हुई प्रतीत हुई है, उसका कारण मैंने अपनी कमियोंको माना है। मैं अपने लिए पूर्णताका दावा नहीं करता। लेकिन सत्यका, जो ईश्वरका ही दूसरा नाम है, आकुल अन्वेषक होने का दावा अवश्य करता हूँ। उस अन्वेषणके क्रममें ही अहिंसा मेरे हाथ लगी। उसका प्रचार मेरा जीवन-कार्य है। उस कार्यके सम्पादनके अलावा और किसी भी प्रयोजनसे जीने में मेरी कोई रुचि नहीं है।

मैं ब्रिटेनकी जनताका जीवन-भरका और सर्वथा निःस्वार्थ मित्र होनेका दावा करता हूँ। किसी समय मुझे आपके साम्राज्यसे भी प्रेम था। मैं समझता था, यह भारतका कल्याण कर रहा है। लेकिन जब मैंने देखा कि यह तो अपनी मूल प्रकृतिसे ही ऐसा कल्याण करने में अक्षम है, तब मैंने उसका मुकाबला करने के लिए अहिंसाका प्रयोग किया और अब भी कर रहा हूँ। मेरे देशका अन्तमें चाहे जो बने, आपके प्रति मेरा प्रेम अक्षुण्ण है और रहेगा। मेरी अहिंसा मुझसे विश्व-प्रेमकी अपेक्षा रखती है और आप उस प्रेमके किसी छोटे-मोटे अंशके पात्र नहीं रहे हैं।

ईश्वर मेरे एक-एक शब्दको शक्तिसे अनुप्राणित करे। उसीके नामपर मैंने इसे लिखना आरम्भ किया और उसीका नाम लेकर समाप्त कर रहा हूँ। प्रभुसे

यही प्रार्थना है कि वह आपके राजनेताओको मेरी अपीलपर कान देने की बुद्धि और साहस प्रदान करे। मैं वाइसराय महोदयको लिखने जा रहा हूँ[1] कि सम्राट्की सरकार यदि इस अपीलके हेतुको सफल बनाने मे मेरी सेवाकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता समझती हो तो वह देने को मैं बराबर तैयार हूँ।

नई दिल्ली, २ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-७-१९४०

२८२. पत्र : अमृतकौरको

नई दिल्ली
३ जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

एमरीको[2] तार मत करना। देखो कि अन्तमे स्थिति क्या रूप ग्रहण करती है। शिवरावको[3] चिन्ता करने की जरूरत नही। "हर ब्रिटेनवासीसे" मेरी अपील[4] पढना और ब्रिटेनवासियोको उसके अनुकूल बनाने की कोशिश करना। अब मेरी ओरसे पत्र पाने की उम्मीद मत करना। तुम लिखना। मैं कोशिश करूँगा कि कोई तुम्हे लिखता रहे। अपना लिखने का काम मुझे पत्र-पत्रिकाओके लिए ही सुरक्षित रखना चाहिए।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९७९) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२८८ से भी

१. देखिए "पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको", पृ० २६५।
२. भारत-मन्त्री
३. बी० शिवराव
४. देखिए पिछला शीर्षक।

२८३. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

दिल्ली
३ जुलाई, १९४०

आपने समाचार-पत्रोमे हर ब्रिटेनवासीके नाम मेरी खुली अपील देखी होगी। बहरहाल, शिष्टाचारके तौरपर मै उसकी एक नकल साथमे भेज रहा हूँ। आप मेरी अपीलके अन्तिम वाक्यपर ध्यान दीजिएगा। क्या आप इसकी विषयवस्तुको उपयुक्त अधिकारियोंके पास भेजने की कृपा करेंगे? अपील तथा उसके अन्तमे की गई पेशकश ब्रिटेनके कार्यमे मेरे तुच्छ व्यक्तिगत योगदानका प्रतीक है। इससे बेहतर मेरे पास देने को कुछ नही है।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-७-१९४०

२८४. तार : एगथा हैरिसनको

नई दिल्ली
५ जुलाई, १९४०

एगथा हैरिसन
क्रेनवॉर्न कोर्ट
अलबर्ट ब्रिज रोड
लन्दन

समझौतेकी आशा नही। तार द्वारा सूचित करो कि हर ब्रिटेनवासीके नाम की गई मेरी अपीलका वहाँ कितना प्रचार हुआ है।

गांधी

मूल अंग्रेजीसे. गांधी निधि फाइल (अगस्त १९७६)। सौजन्य राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. १० जुलाईको इसका उत्तर देते हुए वाइसरायने लिखा, "मैंने आपके ३ जुलाईके पत्र और अपीलको सम्राट्की सरकारके पास विधिवत् भेज दिया था। अब मुझे उसका यह उत्तर मिला है कि हालाँकि वह आपके हेतुओंकी बहुत कद्र करती है, फिर भी उसे ऐसा नहीं लगता कि जिस नीतिकी आपने हिमायत की है उसपर विचार करना उसके लिए सम्भव होगा, क्योंकि सारे साम्राज्यके साथ मिलकर उसने इस युद्धको विजय मिलने तक चलाते रहने का दृढ संकल्प कर रखा है।"

२८५. पत्र : अमृतकौरको

नई दिल्ली
५ जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारे भेजे हुए दो पैकेट मिल गये। तुम्हे अनेक पत्र न लिख पाऊँ, तो चिन्तित मत होना।

तुम्हारे अनुवाद मै स्वय ही देखूँ, तुम्हारी इस इच्छामें निहित स्नेहकी भावनाकी मै कद्र करता हूँ। मै वचन दे चुका हूँ कि ऐसा ही करूँगा। मै कोशिश करूँगा। यदि मैं तुम्हे और एस० को यह काम सिखा दूँ तो 'हरिजनसेवक' के बारेमे मुझे आसानी हो जायेगी। इन बदली हुई परिस्थितियोमे, जिन्हे बदलने की जिम्मेदारी मेरी ही है, मुझे 'हरिजन' के लिए भी लिखना ही पडेगा। "हर ब्रिटेनवासीसे" शीर्षक लेखकी बात कर रहा हूँ।

खुर्शीद यही है। भली-चगी है और काफी खुश रहती है। वह चन्द दिनोके लिए वम्बई जा रही है और १५ तारीखको सीमाप्रान्त लौट जायेगी।

रॉजर अभी यही है और सोच रहा है कि वह अपीलके सिलसिलेमे क्या-कुछ कर सकता है। तुम्हे अपने अग्रेज मित्रोंके बीच इसके पक्षमे प्रचार करना चाहिए।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८०) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२८९ से भी

२८६. प्रमाणपत्र : बाल द० कालेलकरको

सेवाग्राम
५ जुलाई, १९४०

इन शब्दोको लिखने मे मेरा हेतु अमेरिकामे मेरे सभी मित्रोको युवा कालेलकरसे परिचित कराना है। इनका पालन-पोषण मेरी देख-रेखमे हुआ है। युवा कालेलकर सत्याग्रह आश्रममे पढ-लिखकर तैयार हुए सबसे अधिक मेघावी बालकोमे से एक है। इन्हें दी गई हर सहायताका स्वागत किया जायेगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१७६) से

२८७. सेवाग्रामके कार्यकर्त्ताओंसे

६ जुलाई, १९४०

मेरी आशा है कि सब उबला हुआ पानी ही पीते है। वर्षा ऋतुमे हमारे कुएके पानीमे काफी खराबियाँ रहती है। मलेरियासे बचने के लिए सब रातको हाथ-पैरोपर मिट्टीका तेल लगाकर सोयें। सिरपर भी लगाना चाहिए। खाना चबाकर खाया जाये। दस्त हमेशा साफ आना ही चाहिए। न आये तो एरडीके तेलका जुलाब लेवे। धूपमे बचना, काम करते समय सिरपर टोपी या कुछ कपडा होना चाहिए।

बापु

बापूकी छायामें, पृष्ठ ३८३

२८८. भाषण: हरिजन उद्योगशाला, दिल्लीमें[1]

[७ जुलाई, १९४० के पूर्व][2]

इधर-उधर बिखरी और एक-दूसरेसे अलग पडी इकाइयोको जोडकर एक सगठित समाजकी रचना करने का प्रार्थना द्वारा हार्दिक एकता स्थापित करने से अधिक अच्छा साधन कुछ नही है। प्रार्थना हमें शुद्ध बनाती है और शक्ति देती है — वह शक्ति जो शुद्धि और ऊँचे सकल्पसे आती है। प्रभु आपको ये दोनो चीजें प्रचुर प्रमाणमे दे।

एक छोटी-सी लड़कीने गांधीजी से पूछा कि आसमानसे मौत बरपा करनेवाले हमलावरोंके खिलाफ, जिनसे सत्याग्रही कोई सम्पर्क भी स्थापित नहीं कर सकते, सत्याग्रह कैसे काम आ सकता है।

आत्मसमर्पण करने के बजाय अहिसक रीतिसे अपने प्राण उत्सर्ग करने से।

प्र०: लेकिन तब स्वतन्त्रताका उपभोग करने के लिए रहेगा कौन?

उ०. वे जो बच जायेंगे — यानी अगर बच गये तो। लेकिन तुम्हारे सवालके जवाबमें मैं भी एक सवाल पूछूं? जब सशस्त्र सैनिकोकी पूरी-की-पूरी डिवीजनें

१. प्यारेलालके लिखे "द जर्नी बैक" (वापसी यात्रा) शीर्षक लेखसे उद्धृत। यह उद्योगशाला ठक्कर बापाकी देख-रेखमें चलती थी, और अपने इस दिल्ली-प्रवासमें गाधीजी वहाँ दो बार गये थे।
२. गाधीजी दिल्लीसे ७ जुलाईकी शामको रवाना हुए थे।

गोलियोंकी बौछारमे स्वयको झोक देती है और वही ढेर हो जाती है तब स्वतन्त्रताका उपभोग कौन करता है? वही तो जो उनकी लाशोपर से होकर आगे बढता है और किला फतह करता है। लड़नेवाला सिपाही कभी भी स्वतन्त्रताके फलोंका रसास्वादन करनेकी आशा नही करता। लेकिन अहिंसाके प्रसगमे हर व्यक्ति यह मानकर चलता जान पड़ता है कि अगर अहिंसक पद्धतिकी सफलताका उपभोग करने के लिए कमसे-कम वह जीवित नही रहा तो उक्त पद्धति विफल मानी जानी चाहिए। यह अयुक्तियुक्त और अन्यायपूर्ण भी है। सशस्त्र सघर्षसे भी ज्यादा सत्याग्रहपर यह बात लागू होती है कि जीवन खोकर ही जीवन मिलता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

२८९. चर्चा: कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमे

[३/७ जुलाई, १९४०][1]

गांधीजी यह बात मेरे मनको बराबर बहुत कचोटती रही है कि आज मैं कार्य-समितिसे सर्वथा भिन्न मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करता हूँ। जब मैंने मुक्तिकी माँग की थी तो वह कोई औपचारिक चीज नही थी। 'हरिजन' मे प्रकाशित मेरा लेख[2] मेरे मानसको सही रूपमे प्रतिबिम्बित करता है। मैंने वाइसरायके सामने भी यही बात रखी थी। मैंने उनसे कहा कि यह हमारी आखिरी मुलाकात है। अगर वे चाहते हैं कि काग्रेसकी ओरसे कोई प्रस्ताव उनके सामने आना ही चाहिए तो अब उन्हे काग्रेस-अध्यक्षको बुलाकर बातचीत करनी चाहिए। मै समझता हूँ, कुछ ही दिनोमे वे अध्यक्षको आमन्त्रित करेंगे। इन मामलोमे कोई निर्णायक राय देना मेरे लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। आप मुझे अलग रहने दे तो बहुत अच्छा हो।

पिछले प्रस्तावके मैंने जो फलितार्थ निकाले है वे यदि सही माने जाते है तो आप प्रस्तावके तर्कसम्मत परिणामसे नही बच सकते। आप सत्ता हथियाना चाहेंगे। उसे प्राप्त करने के लिए आपको कुछ चीजे छोडनी पड़ेगी। आपको अन्य दलोके समान बनना पडेगा। आपको उनके तौर-तरीके अपनाने को मजबूर होना पडेगा। हो सकता है, आप और दलोसे आगे निकल जाये। यह तसवीर मेरे मनको वितृष्णासे भर देती है। मै 'सत्ता हथियाना', इस मुहावरेमे विश्वास ही नही करता। 'सत्ता हथियाने'-जैसी कोई चीज है ही नही। जनतामे निहित सत्ताके अलावा मेरी और कोई सत्ता नही है। मै जनतामे निहित सत्ताका प्रतिनिधि-मात्र हूँ। जब राजाजी

१. चर्चाकी विषय-वस्तुसे स्पष्ट है कि यह वह बैठक थी जो १७ से २१ जूनतक वर्धामें चलनेवाली उस बैठकके बाद हुई थी जिसमें गांधीजी ने काग्रेसकी प्रवृत्तियोंसे मुक्त कर दिये जानेकी इच्छा व्यक्त की थी।

२. देखिए "खुश भी, गमगीन भी", पृ० २२२-२५।

अपने विचारको पल्लवित कर रहे थे, मुझे लगा कि उनके और मेरे दृष्टिकोणोंके बीच भेदकी चौड़ी खाई है। उनका खयाल है कि देश-सेवाके हर अवसरका लाभ उठाकर वे सबसे अच्छी तरह देशकी सेवा कर सकते हैं। वे सत्ताको इसी दृष्टिसे देखते हैं। इस बातमें मेरा उनसे बुनियादी मतभेद है। वे इस भ्रममें रहकर खुश हो सकते हैं कि वे अहिंसाकी सेवा कर रहे हैं। सत्तासे मुझे भी डर नहीं लगता। किसी-न-किसी दिन हमें उसे सँभालना ही पड़ेगा। वाइसराय यहाँ अपने देशकी सेवा करने, उसका हित-साधन करनेके लिए हैं और इसलिए वे भारतके तमाम शक्ति-साधनोंका उपयोग बेरहमीसे करेंगे। यदि हम युद्ध-प्रयत्नमें शरीक होंगे तो ब्रिटेनके हारने पर भी हम अन्तमें हिंसाका कुछ पाठ सीख ही चुके होंगे। इससे हमें कुछ अनुभव मिलेगा, जैसा सिपाहीको प्राप्त रहता है वैसा कुछ अधिकार भी मिलेगा, पर यह सब हमें स्वतन्त्रताकी कीमतपर हासिल होगा। मुझे आपके प्रस्तावका यह तर्कसम्मत परिणाम जान पड़ता है। मुझे यह चीज जँचती नहीं है। अगर हम अहिंसक रहते हैं तो मुझे मालूम है कि परिस्थितिका सामना कैसे किया जा सकता है। हमारी जनताके एक बहुत बड़े भागमें हिंसाकी वृत्ति थी, लेकिन उसे अहिंसा सिखाई गई। अब आपको उसे हिंसाकी शिक्षा देनी होगी। लोगोंके मनमें उलझन पैदा हो गई है। उलझन मेरी व्याख्यासे नहीं, बल्कि खुद उस प्रस्तावसे पैदा हुई है। इस वातावरणमें मैं आपका मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता। मैं जो-कुछ कहूँगा उससे आपको परेशानी होगी।

मैंने वाइसरायको बताया कि अगर ब्रिटेन सफल हुआ तो वह मुसोलिनी और हिटलरसे बेहतर नहीं रह जायेगा। अगर हिटलरके साथ शान्तिका समझौता किया गया तो सभी शक्तियाँ भारतका शोषण करेंगी। लेकिन अगर हम अहिंसक रहते हैं और जापान हमारे देशमें घुस आता है तो हम इसका ध्यान रखेंगे कि हमारी इच्छाके बिना जापानियोंको कुछ भी न मिल सके। २० वर्षोंके दौरान अहिंसाने चमत्कार कर दिखाये हैं। हिंसाके जोरपर हम ऐसा-कुछ नहीं कर सकते।[१] . .

जवाहरलाल नेहरू: यह प्रश्न गांधीजीने विश्वके सन्दर्भमें उठाया था। वे दुनियाके सामने अहिंसाका सन्देश रखना चाहते थे।

गांधीजी ठीक-ठीक विश्वके सन्दर्भमें नहीं। मेरे मनमें तात्कालिक समस्याका विचार था। मेरे सामने दुनियाकी तसवीर नहीं, बल्कि भारत, सिर्फ भारत था। जो स्थिति कार्य-समितिने अपनाई है उसमें वह ब्रिटिश सरकारको सहायता देने और सेना तैयार करनेको स्वतन्त्र है। उसे पदग्रहण करनेकी छूट है। वाइसरायका विचार था कि प्रस्ताव उनके पक्षमें था। उन्होंने कहा. "आप भारतकी रक्षा करना चाहते हैं, आप हवाई जहाज, युद्ध-पोत, टैंक आदि चाहते हैं, हम आपको यह सब देंगे। इससे मेरा और आपका भी प्रयोजन सिद्ध होगा। यह स्वर्ण-अवसर है। आपको

१. इसके बाद बैठकमें अहिंसा और आन्तरिक अव्यवस्थाके प्रश्नपर विचार किया गया।

हमारे साथ आकर सब तरहसे तैयार और सज्जित हो जाना चाहिए। दबाव पड़ने पर हम दुहरी गतिसे आगे बढेगे।"

मुझे इस बातका अफसोस है कि काग्रेसने ऐसा कदम उठाया जो मेरी रायमें उसे पीछे ले गया है। लेकिन उस कदमके पीछे पूरी ईमानदारी है। जो एकमात्र कदम वह ईमानदारीसे उठा सकती थी वही उसने उठाया है। मै उसे और आम सदस्योको इस भूलसे विमुख करने की कोशिश अब भी करूँगा। यदि आम सदस्य मेरी भावनासे सहमत हो जाते है तो कार्य-समिति अपना कदम वापस ले लेगी। हमारे सामने आन्तरिक अव्यवस्थाका एक बृहत्तर प्रश्न था। अगर अव्यवस्था फैल जाती है तो हम उसे रोकने मे क्या योगदान देगे? क्या जनता अहिंसात्मक प्रयत्नमे हमे सहयोग देगी? मै आम लोगोकी परीक्षा करके देखूँगा और यदि मुझे लगेगा कि वे मेरा साथ छोड देगे तो मै अपनी नीति तदनुसार निर्धारित करूँगा। लेकिन उनके हिम्मत छोडने से पहले मै हिम्मत नही छोड़ूँगा। यूरोपमे जो भयकर बाते हो रही है उनसे मेरा मन व्यथा-विह्वल है। मै नही जानता कि उसमे मेरा क्या योग हो सकता है। लेकिन मुझे लगता है कि मै कुछ कर सकता हूँ और इसीलिए वह वक्तव्य जारी किया।

निजी सेनाकी बात मुझे कतई नही जँचती। उस तरह तो हम आम लोगोका शोषण करेगे। हम उनके पास जाकर कहेगे कि अपने घर-बारकी रक्षाके लिए आप हमे अपनी जेब झाडकर दे दे। मै तो यह नही कर सकता। यह मेरे बसकी बात नही है। मै तो देशके सामने यह घोषित करना चाहता हूँ कि जहाँतक काग्रेसका सम्बन्ध है, भारत अपनी रक्षा अहिंसक रीतिसे करेगा।

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी : गांधीजी की राज्यकी परिकल्पनामें मैं उनका साथ नहीं दे सकता। हमारा संगठन राजनीतिक है, जो अहिंसाके लिए नहीं, एक राज-नीतिक उद्देश्यके लिए काम कर रहा है। हम अन्य राजनीतिक दलोंकी स्पर्धाके बीच काम कर रहे हैं।

जवाहरलाल नेहरू : हिंसा और अहिंसाके बारेमें राजाजी की जो समझ है उससे मैं सहमत हूँ। और किसी तरह तो हम राजनीतिक धरातलपर काम ही नहीं कर सकते।

गाधीजी चर्चाके दौरान बहुत कठिन प्रश्न उठे है। राजाजी ने तो इस विचारको एकदम अस्वीकार कर दिया है कि हम अहिंसक रीतिसे सत्ताको अपने हाथमे रख सकते है। इसका प्रमाण तब भी मिला था जब काग्रेस अहिंसक रीतिसे सत्ता प्राप्त करके पदारूढ थी। जिस हदतक मन्त्रिमण्डलोंने हिंसासे काम लिया उस हदतक वे विफल रहे। उनके कार्यसे हमारी अहिंसाका दिवालियापन प्रकट हुआ। शायद हम और-कुछ कर भी नही सकते थे। मैने पद छोड देने की सलाह दी। लेकिन राजाजी को मेरी यह बात स्वीकार नही है कि सिर्फ पुलिसके उपयोगकी हद तक हिंसाका सहारा लेकर सत्ता सँभाली जा सकती है।

मै दो बातोपर फिर जोर देना चाहता हूँ। मै नही मानता [मूलानुसार] कि स्वतन्त्रताकी घोषणा जरूरी है। कानूनी घोषणा भले बादमें की जाये। अगर सरकार हमसे किसी प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा रखती है तो वह सहायता नैतिक ही हो सकती है। वह जोड़-तोड करके, फुसला-मनाकर या जबरदस्तीसे जो सहायता प्राप्त कर सकती है उसकी अपेक्षा यह सहायता बहुत श्रेष्ठ होगी। मुझे निश्चित तौर पर लगता है कि अगर उनमे सही काम करनेका साहस है तो बाजी उनके पक्षमें पलट जायेगी। भारतकी व्यावहारिक स्वतन्त्रताकी घोषणा तो कर ही दी जानी चाहिए। किसी सदस्यने बड़ी सहजतासे कह दिया कि सत्याग्रहका खयाल तो हमें छोड़ ही देना चाहिए। मैंने कभी इसका खयाल नही छोडा है। ऐसा समय आ सकता है जब हमे सविनय अवज्ञाका सहारा लेना पड़े। लोगोको जबरदस्ती सहयोग करनेके लिए मजबूर किया जाये और हम चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे, ऐसी स्थितिकी कल्पना मै तो नही कर सकता। यह प्रक्रिया आज चल रही है। फ्रान्सके आत्म-समर्पण करनेके समयतक यह क्रिया नरमीसे चल रही थी और इसका असर उतना ज्यादा महसूस नही हो रहा था। यह जबरदस्ती बेरोक-टोक चलती रहे और मै चुपचाप या बेफिक्रीसे बैठा रहूँ, ऐसा मै नही सोच सकता। लेकिन क्या हमारे लोग पूर्ण अहिंसाका परिचय दे सकते है? दुर्बलकी अहिंसा हमें कुछ राहत अवश्य दे सकती है, लेकिन सच्चा आनन्द और शक्ति नही — उस अहिंसाका सहारा लेने पर हम अन्तमें चुक जायेगे। अगर हम आरम्भ दुर्बलकी अहिंसासे करते है और अन्ततक उसी तक सीमित रह जाते है तो समझ लीजिए कि हम कही के नही रह जायेंगे। इसलिए अब कसौटीकी घडी आने पर आप कहते है कि यह असम्भव है। आपकी प्रामाणिकता और अपने विश्वासके मुताबिक आचरण करनेका आपका साहस पूर्ण सम्मानके योग्य है। लेकिन बरबस ऐसा महसूस हो रहा है कि हमारी अहिंसाका अन्त बडा दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। मै फिर अनुभव और हार्दिक विश्वासके साथ कहता हूँ कि अहिंसाके बलपर सत्ता प्राप्त कर सकना सम्भव है, किन्तु हमें सत्ता हाथमें नही लेनी चाहिए। किसी अहिंसक सगठनके लिए पदग्रहण करना मुनासिब नही है, लेकिन वह अपने मनोनुकूल काम करवा सकता है। अगर हम अपने लोगोपर अहिंसक रीतिसे नियन्त्रण नही रख सकते तो हमारे पास सत्ता इसी रूपमे हो सकती है। जवाहरलालने अहिंसामे विश्वास रखनेवालो के साथ न्याय नही किया है। उनका मतलब यह है कि हिंसाका मलिन कार्य दूसरोके सिर छोडकर वे खुद ऊँचे लोगोमें शुमार होना चाहते है। दूसरी ओर, मै यह मानता हूँ कि हम सत्ता बिलकुल हासिल ही न करे। उससे वेतन-भत्ते, यश-कीर्ति और ऐसी चीजें मिलती है जिनकी लोगोको बड़ी अभिलाषा रहती है। जो सत्तामे होते है वे अपनेको श्रेष्ठ और दूसरोको अपने मातहत मानते है। जब कोई अहिंसक व्यक्ति सत्ता ग्रहण करने से इनकार करता है तो उसका कहना यह होता है कि 'मै सत्ताको इसलिए अस्वीकार कर रहा हूँ कि यदि इसे स्वीकार करूँगा तो सब-कुछ गडबड करके रख दूँगा। मै इसके लिए बना ही नही हूँ। इसका श्रेय दूसरोको जाने दीजिए।' मेरे मनमें कभी यह विचार नही आया कि जिन लोगोने सत्ता ग्रहण की है उनसे मै श्रेष्ठ हूँ और न उन्ही के मनमें ऐसी कोई

भावना आई कि वे हीन है या उनसे कोई हीन कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। अब मान लीजिए, हिंसाकी दुहाई देनेवाले अन्य दलोके बीच आप अहिंसापर दृढ रहते है तो स्वभावत आप अल्पमतमे होगे। दूसरोका हृदय-परिवर्तन किये बिना एक छोटे-से अहिंसक समूहको तत्काल सत्ता प्राप्त करने की आशा क्यो करनी चाहिए? दूसरे लोगोको सत्तामे रहने दीजिए। देशको अहिंसाका कायल करने को प्रयत्नशील अहिंसक लोगोंका एक छोटा-सा समूह कदापि सत्ताकी परवाह नही करेगा। आप अपने धर्मपर दृढतासे आरूढ रहेगे तो देखेगे कि आपने अधिसख्यक लोगोको अपने मतका कायल कर लिया है। जिसमे आत्म-विश्वास है वह पूरे देशको अपने मतका कायल कर लेगा। लेकिन आपका कहना है कि करोडो लोग कभी भी उस अवस्था तक नही पहुँचेगे। मुझे तो लगभग निश्चित भरोसा है कि वे पहुँच सकते है। आप ऐसी कोई धारणा न बनाये। मै काफी लम्बी और कठिन प्रक्रियाओसे गुजरकर अहिंसक बना। जिस श्रेयका दावा हम अपने लिए करते है वह सम्पूर्ण मानव-जातिको देना अहिंसाका मूल तत्त्व है। मुझे कभी भी नही लगा है कि अहिंसाका आचरण अकेले मै ही कर सकता हूँ। इसके विपरीत, मै तो अपनेको साधारण मनुष्य मानता हूँ। मै पूर्णत आम लोगोमे से हूँ, और तब भी मै आम लोगोका नेतृत्व कर सकता हूँ। अनपढ गुजरातियोके बीचसे मै वीर पुरुष तैयार कर सकता हूँ। एक समय वह था जब ये अनपढ लोग कहा करते थे, 'हम क्या कर सकते है?' आज वही लोग शक्तिके स्वामी है। अगर हम हजारोका मत-परिवर्तन कर सकते है तो लाखो-करोडोका भी कर सकते है। १९२० मे हिन्दू और मुसलमान, दोनो समाजोके आम लोगोने अहिंसक रीतिसे काम किया। क्या यह हमारे लिए एक बहुत बड़ी बात नही होती कि लोकमत तथा सत्ताधारियोपर हम ऐसा प्रभाव कायम कर लेते जिससे अपनी बात मनवाने के लिए हमे किसी तरहकी जबरदस्तीकी जरूरत ही न पड़ती? अहिंसा सहसा सत्तासीन नही हो सकती। मै चन्द लोगोको लाभान्वित करनेवाले स्वराज्यसे सन्तुष्ट नही हूँ। वह तो करोड़ोके लिए है। उन सबको उसका एहसास होना चाहिए। हिंसक साधनसे प्राप्त स्वराज्यका एहसास उन्हे नही हो सकता। हमे निर्णय लेना है। अहिंसाकी दृष्टिसे सोचते हुए मै किसी कुष्ठ रोगीको भी नजरअन्दाज नही करता। मै कोई बेबुनियाद बात नहीं कह रहा हूँ। मेरे आश्रममे एक कुष्ठ रोगी[1] है। अब उसे लग रहा है कि वह अपनी भूमिका निभा सकता है, यद्यपि वह शस्त्र उठाने मे असमर्थ है। तार्किक दृष्टिसे मैने यह सिद्ध कर दिया है कि अगर कुछ शर्तोका ध्यान रखा जाय तो आपके सत्ता ग्रहण करने के रास्तेमे कोई भी चीज आडे नही आती।

बहुत-से भारतीय गाँव और सस्थाएँ अहिंसक व्यवहार कर रही है। हम समरूप राष्ट्रका निर्माण करने की कोशिश कर रहे है। हमे उसके लिए समय तो देना ही होगा। हिंसाने दुनियामे क्या कर दिखाया है? मै समझता हूँ, हम अधैर्यके वशीभूत हो गये है। अगर हम पद-ग्रहण नही करेगे तो दूसरे करेगे। अगर आप सोचते है कि आप दूसरोके साथ स्पर्धामे उतरकर देशकी सेवा कर सकते है तो यह आपकी

१. परचुरे शास्त्री

भूल है। हम लोकतन्त्रवादी हैं, हमारे बारेमें यही माना जायेगा कि हम जनताकी इच्छासे शासन कर रहे हैं। यदि जनता विद्रोह करती है तो हमें सत्तासे हट जाना चाहिए। हमने अहिंसाको अपनी शक्ति दिखाने का वह अवसर नही दिया है जो देना चाहिए था। हम सबने, हमसे जहाँतक बन सका, किया। अब उससे भी बेहतर कर दिखायें। अगर हम बेहतर कर दिखाते हैं, अगर हममें समुचित साहस है तो हम भारतको कुछ ऐसा दे जायेंगे जिसपर वह गर्व करेगा। मैं चाहूँगा, मेरी तरह आप भी यह मानिए कि सेनाके बिना भी राज्य सँभाला जा सकता है। अगर कोई मेरे सामने आयेगा तो मैं अहिंसक रीतिसे उससे निबट लूँगा। हमें ऐसा भय क्यो होना चाहिए कि वे हमे लील लेगे? हिंसक लोग हिंसक लोगोसे ही लड़ते है। वे अहिंसक लोगोको नही छेडते। हम सुदूर भविष्यमे होनेवाले किसी आक्रमणका मुकाबला करने के लिए भारी मात्रामे शस्त्रास्त्र जुटाते है। देशमें जो वैमनस्य-विभेद है उनको देखते हुए भी हमारा अहिंसापर कायम रहना जरूरी है। हम सारी दुनियाके मुकाबले भी अपने लोगोको शान्तिपूर्वक नियन्त्रणमे रख सकते हैं।

हमारी अहिंसा दुर्बलकी अहिंसा है। यह बहादुर आदमीकी अहिंसा नही है। अगर हममें अपने पडोसियोके लिए प्रेम हो तो कोई हिन्दू-मुस्लिम दगा न हो। इन दगोको रोका जा सकता है। अगर उन्हे रोका जा सकता है तो अन्य प्रकारकी अव्यवस्थाको भी रोका जा सकता हैं।

[अग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस सत्याग्रह फाइल, १९४०-४१। सौजन्य नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

२९०. कार्य-समितिके लिए प्रस्तावका मसौदा

[३/७ जुलाई, १९४०]

कार्य-समितिका ध्यान इस बातकी ओर गया है कि २१ जूनको वर्धासे जारी किये गये उसके पिछले वक्तव्यके अर्थके बारेमें काग्रेसजन उलझनमें पडे हुए है। वह देखती है कि कई समाचार-पत्रो तथा बहुत-से काग्रेसजनो-सहित अन्य लोगोने माना है कि समितिने काग्रेसकी नीतिके अभिन्न अगके रूपमें अहिंसाका त्याग कर दिया है। वक्तव्यके कुछ अनुच्छेद ऐसे अवश्य है जिनसे यह अर्थ निकल सकता है, हालांकि उसमे काग्रेसकी नीतिके बारेमे जोरदार ढगसे और स्पष्ट शब्दोमें निम्नलिखित घोषणा कर दी गई है

> दूसरे राष्ट्रो और देशोपर साम्राज्यवादी आधिपत्य जमाने की इच्छा और शस्त्रीकरणकी आत्मघाती होड़के फलस्वरूप यूरोपमें जो युद्ध चल रहा है उसने मानव-जातिको ऐसे दारुण दु.ख और विपत्तिमें डाल दिया है जैसा दुनियाने आजतक कभी नहीं देखा था। उसने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और जनताके अधिकारोकी हिफाजत करने की दृष्टिसे संगठित हिंसाकी — उसका सरंजाम

> **चाहे जितने बड़े पैमानेपर किया गया हो—निरर्थकता प्रकट कर दी है। उसने सर्वथा असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध कर दिया है कि युद्धसे शान्ति और स्वतन्त्रताकी स्थापना नही हो सकती, और आज दुनियाको परम अधोगति तथा विनाश देनेवाले युद्ध और सभी जातियोंकी स्वतन्त्रताकी नींवपर खड़ी शान्ति और अहिंसा, इन दो मार्गोंके बीच चुनाव करना है।... समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि स्वतन्त्रताके राष्ट्रीय संग्राममें अहिंसक कार्य-पद्धति और अहिंसाकी बुनियादी नीति पूर्ण रूपसे पहलेकी तरह ही लागू है और राष्ट्रीय प्रतिरक्षाके क्षेत्रमें उसका प्रयोग करने की असमर्थताके कारण उस नीतिपर कोई आँच नहीं आई है।**

कार्य-समिति इस निष्कर्षपर पहुँची है कि जहाँतक सम्भव है, आन्तरिक अव्यवस्थासे निवटने के लिए उसे केवल उन काग्रेसी स्वयसेवकोपर ही निर्भर रहना चाहिए जो अहिंसा तथा काग्रेसके अनुशासनसे प्रतिवद्ध है। ये स्वयसेवक ऐसे ही अन्य सगठनोके अहिंसक कार्योमे उनके साथ सहयोग करेगे। कार्य-समिति सभी काग्रेस समितियोको स्वयसेवक दलोंका सगठन करने की सलाह देती है, लेकिन ऐसा करते हुए समितियोको इस वातके लिए आश्वस्त हो जाना चाहिए कि स्वयसेवक वनने के उम्मीदवार अहिंसाके फलितार्थो और कठोर अनुशासनके मूल्यको समझते है।

काग्रेसकी अहिंसा अबतक ब्रिटिश सरकारके साथ उसके सघर्षतक ही सीमित रही है। यदि अबतक प्राप्त सफलताने अहिंसाको, उपर्युक्त हदतक, निर्विवाद रूपसे काग्रेसकी निश्चित नीति वना दिया है तो साथ ही यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि साम्प्रदायिक दगोके सन्दर्भमे अहिंसक प्रयत्नके लिए सफलताका दावा नही किया जा सकता। कार्य-समितिकी राय है कि इसका दोष स्वयसेवी सस्थाओको दिया जाना चाहिए। कार्य-समिति आशा करती है कि भारतके इतिहासकी इस नाजुक घड़ीमे स्वयसेवी सस्थाएँ दगो तथा ऐसी ही दूसरी वारदातोसे अहिंसाके सहारे कारगर ढगसे निवट सकेगी।

कार्य-समितिके समक्ष यह तय करने का प्रसग कभी नही आया कि भारतकी रक्षा अहिंसक रीतिसे की जा सकती है या नही, और न आज ही उसके सामने यह तय करने का कोई कर्त्तव्य उपस्थित हो गया है, यद्यपि यूरोपीय राष्ट्रोकी रक्षा करने मे हिंसाकी निर्विवाद विफलता इस बातका पर्याप्त कारण प्रस्तुत करती है कि कार्य-समितिको किसी निर्णयपर पहुँच जाना चाहिए। लेकिन अन्तिम निर्णय लेने की घडी आने तक कार्य-समितिको अपना मन पूर्वग्रह-मुक्त रखना चाहिए। लेकिन जहाँतक वर्त्तमानका सम्बन्ध है, कार्य-समितिकी पक्की राय है कि अपनी अहिंसक नीतिका खयाल रखते हुए काग्रेसजनोको सैनिक प्रशिक्षण या भारतको सैनिक मानसयुक्त देश बनाने के लिए चलाई जा रही प्रवृत्तियोसे कोई सरोकार नही रखना चाहिए। इसलिए भारतको सैनिक प्रतिरक्षाके लिए तैयार करने के निमित्त सगठित रीतिसे जो प्रयत्न किया जा रहा है उसे कार्य-समिति चिन्ताकी दृष्टिसे ही देख सकती है। कार्य-समितिकी राय है कि यदि भारत स्वतन्त्र और स्वाधीन होता और उसके पास कोई सेना न होती

तो उसे बाहरी आक्रमणका कोई भय नहीं होगा। यदि जनता कांग्रेसकी नीतिको स्वीकार कर ले तो स्वतन्त्र भारत अपने बचावकी जो सबसे अच्छी व्यवस्था कर सकता है, वह है सारी दुनियाके साथ मैत्रीका सम्बन्ध कायम करना। शस्त्रास्त्रों, दुर्गों आदि पर करोड़ों रुपये खर्च करने का मतलब विदेशी हमलेको न्योता देना है। कार्य-समिति मानती है कि भारत इतना गरीब देश है कि प्रतिरक्षा सेवाओं और आधुनिक उपादानोंमें वह धनका विनियोग कर ही नहीं सकता। इसलिए ब्रिटिश सरकार कहने को भारतकी रक्षाके लिए सरगरमीके साथ जो तैयारियाँ कर रही है, उनके खिलाफ कार्य-समिति उसे सचेत कर देती है। कार्य-समितिकी राय है कि उन तैयारियोंका उद्देश्य केवल ब्रिटेनकी सहायता करना है। इन तैयारियोंसे भारतको कोई सच्ची सहायता नहीं मिल सकती। कार्य-समिति ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेनकी जनताका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट करती है कि यद्यपि उनका दावा है कि भारतको प्रान्तीय स्वशासन प्राप्त है तथा हालाँकि हर प्रान्तकी अपनी निर्वाचित विधान-सभा और अंशत: लोक-निर्वाचित केन्द्रीय विधान-सभा भी है, तथापि इन विधानमण्डलोंसे पूछे बिना भारी राशियाँ खर्च की जा रही हैं। कार्य-समिति मानती है कि किसी एक व्यक्तिको — वह चाहे जितना ईमानदार और प्रतिष्ठित हो — भारत-जैसे विशाल देशके संसाधनों तथा लोगोंका, वहाँकी जनताके हर प्रकारके नियन्त्रण या अंकुशसे मुक्त रहकर, मनमाना उपयोग करने का अधिकार दे देना गलत और अनैतिक है। भारतकी स्वतन्त्रताके बारेमें ब्रिटिश सरकारकी उन घोषणाओंसे, जो कांग्रेसके दृष्टि-कोणसे चाहे जितनी असन्तोषजनक हों, यह तरीका मेल नहीं खाता।

कार्य-समिति यह घोषणा करना चाहती है कि कांग्रेस ब्रिटेनकी जनताके प्रति पूर्णत: मैत्री-भाव रखने का दावा करती है। उसकी अहिंसक नीतिका तकाजा है कि वह उन लोगोंके प्रति सद्भावनाके अतिरिक्त और कोई भाव न रखे। लेकिन जबतक उसे लाचार और पराधीन रखा जाता है और उसके धन-जनका उपयोग स्वयं ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्थापित प्रणालीके अधीन निर्वाचित जन-प्रतिनिधियोंकी इच्छा जाने बिना किया जाता है तबतक उस मित्रता और सद्भावनाके लिए कुछ भी कर दिखाने की गुंजाइश नहीं हो सकती और उनका कोई अर्थ नहीं हो सकता। कार्य-समिति ब्रिटिश सरकारसे अनुरोध करती है कि वह अपनी आत्मघाती नीतिको सुधार ले और लोक-निर्वाचित विधान-सभाओंको अपना विश्वास-भाजन बनाये। कार्य-समिति हालमें गांधीजी द्वारा हर ब्रिटेनवासीसे की गई अपीलमें[1] अपनेको शरीक करती है और आशा करती है कि ग्रेट ब्रिटेन अहिंसाकी उस नीतिको स्वीकार कर लेगा जिसकी शक्ति असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध हो चुकी है, यद्यपि उसके प्रयोगमें निर्विवाद रूपसे दोष था। ब्रिटिश सरकार यह भरोसा रख सकती है कि गांधीजी द्वारा सुझाई गई अहिंसक रीतिसे किये जानेवाले शान्ति-स्थापनाके प्रयत्नमें कांग्रेस उसे पूर्णतम और अति मैत्रीपूर्ण सहयोग देगी।

१. देखिए पृ० २६१-६४।

जन-साधारणमे, जिनमे कुछ कांग्रेसजन भी शामिल है, यह विश्वास फैला दिखाई देता है कि कांग्रेस औपनिवेशिक दर्जेसे सन्तुष्ट हो जायेगी, यद्यपि वह बार-बार और काफी जोर देकर इसके विपरीत घोषणा कर चुकी है। कार्य-समिति सभी सम्बन्धित लोगोको आगाह कर देती है कि वह पूर्ण स्वराज्यसे कम कोई भी दर्जा स्वीकार नही करेगी, और पूर्ण स्वराज्यकी घोषणा तुरन्त की जानी चाहिए और जहाँतक सम्भव हो, उस घोषणापर अविलम्ब अमल भी किया जाना चाहिए। कानूनी औपचारिकता भविष्यमे किसी उपयुक्त समयपर पूरी की जा सकती है। स्वाधीन और अपने कार्य-व्यापारमे स्वतन्त्र भारत ही यह निर्णय कर सकता है कि इस युद्धमे उसे क्या भूमिका निभानी है।

कुछ कांग्रेसजनोके बीच ऐसी चर्चा है कि कांग्रेस फिरसे मन्त्रिपद ग्रहण करने की स्वीकृति दे सकती है। कार्य-समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि ऐसी कोई सम्भावना नही है कि जबतक सरकारके साथ कोई सन्तोषजनक समझौता नही हो जाता तबतक कांग्रेस ऐसे किसी कदमके लिए अपनी स्वीकृति देगी और जिस युद्ध-प्रयत्नमे उसका कोई विश्वास ही नही है उसमे उसके सहयोग देने की सम्भावना तो बिलकुल नही है। उपर्युक्त बातोको ध्यानमे रखते हुए यह कहने की जरूरत नही रह जाती कि केन्द्रीय कार्यकारिणीके विस्तारके सरकारी प्रस्तावोसे कार्य-समितिका कोई सरोकार नही हो सकता।

हालकी घटनाओको ध्यानमे रखते हुए कार्य-समिति केन्द्रीय विधान-सभाके कांग्रेसी सदस्योपर विधान-सभाके अधिवेशनोंमें उपस्थित होने के खिलाफ लगाये गये प्रतिबन्धको उठा लेने का निश्चय करती है।

चूंकि अनुशासनको और भी कडाईसे लागू करना आवश्यक है, इसलिए कार्य-समिति अहिंसामे पूरा-पूरा विश्वास न रखनेवाले सभी लोगोसे कांग्रेससे त्यागपत्र दे देने को कहती है। कांग्रेसकी प्रतिज्ञामे विश्वास रखे बिना और उस प्रतिज्ञापत्र-पर हस्ताक्षर किये बिना किसीका भी चवन्निया सदस्य बनना कांग्रेस-सविधानके खिलाफ है।[1]

गांधीजी यह मसौदा मैने सिर्फ आपकी प्रतिक्रियाएँ जानने के लिए आपके सामने रखा है। मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि वर्धामे आप जो सबसे बुद्धिमत्ता-पूर्ण निर्णय ले सकते थे वही आपने लिया। आजकी चर्चासे मेरी रायकी पूर्णत पुष्टि हो गई है। इस मसौदेपर मैने जो श्रम किया उसका मुझे पूरा प्रतिदान मिल गया है। अपने विचारोंको मैने सिर्फ आपकी प्रतिक्रियाएँ जानने के लिए ही लिपिबद्ध किया था। मैने चर्चाके एक-एक शब्दको सुना है। मै देखता हूँ, हमारे बीच भेदकी ऐसी निश्चित, चौडी खाई है जिसे पाटा नही जा सकता। उसे पाटने की कोशिश करना देशकी कुसेवा करना होगा। मुझमे कोई अधीरता, कोई कुढन नही है। अगर मै देखता हूँ कि मेरा प्रभाव क्षीण हो गया है तो खुद कांग्रेसके ही हितकी दृष्टिसे मुझे उससे अलग हो जाना चाहिए।

१. इसके बाद गांधीजी के मसौदेपर सदस्योंने चर्चा की।

मेरी राजनीतिका स्रोत सदासे नैतिकता या धर्म रहा है और मेरी शक्तिका आधार भी यही बात रही है कि मेरी राजनीतिका स्रोत नैतिकता रही है। नैतिकता और धर्मकी दुहाई देने के कारण ही आज मैं राजनीतिमें हूँ। जिसे अपने देशसे प्रेम है उसका राजनीतिमें जीवन्त रुचि लेना अनिवार्य है, अन्यथा वह अपनी वृत्तिका अनुसरण शान्तिपूर्वक नहीं कर पायेगा। मैं कांग्रेसमें अपने धर्मके साथ आया।

वह समय आ गया है जब मुझे आपपर निगाह रखनी चाहिए और देखना चाहिए कि मैं आपको जहाँतक आवश्यक हो, अपने साथ ले जा सकता हूँ या नहीं।

अतीतमें राजाजी को बुद्धि और हृदय, दोनों धरातलोंपर अपने साथ ले चलने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन जब यह पद-ग्रहणका सवाल उठा, मैंने देखा कि हमारे विचार विपरीत दिशाओंमें जा रहे हैं। देखता हूँ, अब मैं उन्हें अपने साथ नहीं ले चल सकता। इसलिए मुक्तिकी माँग करना मेरे लिए परमावश्यक है। आन्तरिक कलह-क्लेश एक मामूली चीज है। उनपर हम काफी ध्यान दे चुके हैं। अगर बाहरी आक्रमणके बारेमें आप किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सकते तो आन्तरिक कलह-क्लेशके बारेमें भी कोई फैसला नहीं कर सकते। मेरी बुद्धि दोनोंमें बहुत भेद नहीं करती। प्रस्तावमें "अपना मन पूर्वग्रह-मुक्त रखने" की बात मैंने जान-बूझकर कही है। आपने कहा है कि हम अहिंसक साधनोंके सहारे सत्तारूढ़ हो सकते हैं, लेकिन सेनाकी सहायता बिना उस सत्ताको कायम रखने और सुदृढ़ करने के बारेमें आपको शंका है। यदि हममें एक राष्ट्रके रूपमें पर्याप्त अहिंसा नहीं है, या दूसरे शब्दोंमें, अगर हम राजनीतिमें अहिंसाको लागू नहीं करते तो मेरे मनमें जिस छोटे-से पुलिस-दलकी बात है वह आन्तरिक अव्यवस्थाका मुकाबला करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। अहिंसाकी कार्य-पद्धति हिंसाकी कार्य-पद्धतिसे भिन्न है। हम इस तथ्यकी ओरसे अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं कि आम लोगोंपर, यहाँतक कि हमारे रजिस्टरोंमें दर्ज कांग्रेसजनोंपर भी, हमारा नियन्त्रण निष्प्रभाव है। निषेधात्मक आदेशोंका पालन करने की वृत्ति तो लोग दिखाते हैं, लेकिन जब बात विधेयात्मक आदेशोंकी आती है तब दोनों विफल हो जाते हैं। यह सर्वथा हमारा ही दोष नहीं है। सवाल करोड़ों लोगोंका है। २० सालमें तो सैनिक कार्यक्रम भी पूरा नहीं हो पाता। इसलिए हमें धीरजसे काम लेना चाहिए। अगर आम लोग अहिंसासे स्वराज्य हासिल कर लेंगे तो वे अहिंसाके बलपर उसे कायम भी रख सकेंगे।

देशके लिए बीस वर्षका समय कुछ नहीं होता। हमारी अहिंसा सत्ता प्राप्त करने तक सीमित थी। ब्रिटेनके खिलाफ हम सफल रहे हैं, लेकिन अपने ही लोगोंके मुकाबले विफल हो गये। कई स्थानोंमें कांग्रेसजनों और कांग्रेस समितियों द्वारा हिंसक प्रदर्शन किये गये हैं। यही हमारी कठिनाइयों और मेरे इस आग्रहका कारण है कि हमें अहिंसाका विकास करना है। और यही वह अवसर है, अन्यथा हम कुछ नहीं कर पायेंगे। राजाजी का यह कहना सही है कि अगर मैं यह समझता हूँ कि कांग्रेस मेरे साथ है तो यह मेरी मूर्खता है। मैंने सोच-समझकर छलाँग लगाई है। मुसलमानोंके साथ साझेदारी करके मैंने आगके साथ खिलवाड़ किया। हिन्दुओंने कहा, मुसलमान

अपनेको सगठित कर लेगे। उन्होने सगठित किया। पर मेरे पास तो पूरे जन-समाजको मापने का एक ही पैमाना है।

काग्रेसमे जो दोष घुस आये है उनके बारेमे मै गम्भीरतासे सोचता रहा हूँ, लेकिन हमेशा यह आशा करता रहा हूँ कि समय आने पर मै आपको और भी आगे ले जा सकूँगा। भूलाभाईने कहा, हम अपने हाथ बाँध रहे है। उनका यह कथन सही है, और नही भी है। किसी भी दस्तावेजको उसके हर नुक्ते और विराम-चिह्नको नजरमे रखकर पढना चाहिए। आज हमारे सामने आन्तरिक तथा बाहरी समस्याओंके मुकाबलेके लिए विनाशके हथियारो और अहिंसाके बीच चुनावका प्रसग उपस्थित है। हमे चुनाव करना ही है। अगर हमारे सामने कोई और रास्ता नही है तो हम अहिंसाको अलविदा कह दे। हमारा रवैया तो आज अहिंसा, कल हिंसावाला हो गया है। हमे नही मालूम कि भविष्यमे हम क्या करेगे। कलकी बात छोडिए और खुदसे पूछिए. क्या आज हम बन्दूके सँभाल सकते है? भूलाभाईने ११०० अफसरोकी बात कही। मुझपर इस बातका कोई असर नही हुआ। मेरा दृष्टि-विस्तार करोडो अभावग्रस्त लोगोतक है। उस महासमुद्रमे उन ११०० लोगोका कही पता भी नही चलता। अगर मै कोई गलत कदम उठाऊँगा तो कभी भी अपनेको माफ नही कर सकूँगा। अगर राजाजी की स्थितिको आज आप नही स्वीकार करते तो कल करेगे। अगर आपने अपने आचरणमे अहिंसाको उतार लिया है तो बहुत अच्छी बात है; मै तो अपनी अहिंसाको अपनी जेबमे, अपने हृदयमे, अपने मनमे रखकर अपने रास्ते जा रहा हूँ। मै अपने लोगोको अपनी राहपर लाने की कोशिश करूँगा और अपना भाग्य आजमाऊँगा। विकल्प-रूपमे हमे अपने लोगोको सैनिक प्रशिक्षण देना होगा — लेकिन साम्राज्यकी खातिर नही, खुद अपनी खातिर। साम्राज्य तो चरमरा रहा है। उसका सूरज तेजीसे डूबता जा रहा है। अगर हममे अहिंसाके प्रति आस्था नही है तो फिर हम हिंसाके लिए सगठित हो। मै मानता हूँ, हम इसमे विफल रहेगे। मै मौलाना साहबकी इस बातसे सहमत हूँ कि आत्म-रक्षाके लिए हिंसासे शुरुआत करनेवाले लोग अन्तमे हमलावर बनते है। उन्होने अपने एक सहधर्मीका कथन उद्धृत किया है। मेरे पास यही मूल्यवान वस्तु है, जिसके लिए मै जीना चाहता हूँ। मै जन-साधारणके सैनिकीकरणमे सहायक नही बनना चाहता। अहिंसक सिपाही तिरस्कारका पात्र नही बनेगा। वह क्षय रोगी ही क्यो न हो, पर वह अपना जौहर दिखाने मे ऊँचेसे-ऊँचे पठानको भी मात दे जायेगा। मै चाहता हूँ, आप राजाजी की स्थिति पर गम्भीरतासे विचार करके देखे कि क्या आप उसे अपना सकते है। न अपना सकते हो तो उन्हे अपनी राह जाने दीजिए। इस समय अहिंसाकी हमारी व्याख्याएँ अलग-अलग है। उन्हे अपने लिए स्थान बनाने का अवसर दीजिए। अगर वे बुरी तरह अल्पमतमे हो तब भी उन्हे सरगरमी जारी रखनी है। मै भी आरम्भमे अकेला था, लेकिन शीघ्र ही मुझे भारी बहुमत प्राप्त हो गया। उन्हे कार्य-समितिको अपने मतका कायल करने के लिए कुछ भी उठा नही रखना चाहिए, या फिर नये सिरेसे ऐसे लोगोकी समिति बनानी चाहिए जो अहिंसाकी भावनासे उस हदतक ओतप्रोत नही है जिस हदतक मैने बताया है।

आप मुझे अपना सन्देश, जिस रूपमें मैंने उसे जाना है उस रूपमें, लोगों तक पहुँचाने दीजिए। अगर हममें ईमानदारी है तो इस दुहरे विभाजनसे देशका कोई नुकसान नहीं होनेवाला है। हम सबको अपने-अपने विचारोंके अनुसार बरतना चाहिए। मुझे इस बातसे अतीव प्रसन्नता हुई है कि हर आदमी दिल खोलकर बोला है। क्षण-क्षण बदलनेवाली स्थितिको ध्यानमें रखते हुए हमें यह पता लगाना है कि इस नाटकमें हम क्या भूमिका निभा सकते हैं। जवाहरलाल नेतृत्व करें। वे अपनेको ओजस्वी ढंगसे अभिव्यक्त करेंगे। मैं तो उनकी मुट्ठीमें रहूँगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस सत्याग्रह फाइल, १९४०-४१। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२९१. भाषण: कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें

[३/७ जुलाई, १९४०]

गांधीजी: अगर राजाजी का मसौदा कांग्रेसके मानसको प्रतिबिम्बित करता है तो वह अवश्य स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। अगर ऐसी बात न हो और मसौदा कुछ सदस्योंकी व्यक्तिगत रायका ही प्रतिनिधित्व करता हो तो यह जानना आवश्यक है कि कांग्रेसके मनमें क्या है। इसे जानने के लिए अभी कोई प्रस्ताव पास न किया जाये। आपको स्थितिका सामना बहादुरीसे करना चाहिए। आपको यह स्वीकार करना चाहिए कि जिस अहिंसाका परिचय आजतक हम देते आये हैं वह सच्ची अहिंसासे अलग चीज है। कांग्रेसकी अहिंसा सिर्फ दुर्बलका प्रतिरोध है। यह अनाक्रामक प्रतिरोध है। दक्षिण आफ्रिकामें मेरा तिरस्कार करनेके खयालसे मेरे संघर्षको इसी संज्ञासे अभिहित किया गया था और मैंने उसका विरोध किया था। मैं इससे सन्तुष्ट नहीं हूँ, लेकिन देश शंकाके भूतसे तो मुक्त हो जायेगा। जब भी हमने सबलकी अहिंसाको आजमाया है, हम बुरी तरह विफल रहे हैं।

कार्य-समितिके सदस्योंका काम इस बातका पता लगाना होना चाहिए कि कांग्रेसके मनमें क्या है। उन्हें प्रान्तोंमें जाकर चुपचाप वहाँके कांग्रेसजनोंकी राय जाननी चाहिए। इससे हमें आम कांग्रेसजनोंकी रायका पता चलेगा। तब हम अधिक अच्छी और सही जानकारी लेकर यहाँ आयेंगे। हर व्यक्ति एक सीमातक सदस्योंको प्रभावित करनेकी कोशिश कर सकता है। अगर हमें पता चलता है कि राजाजी का प्रस्ताव लोक-इच्छाको प्रतिबिम्बित करता है तो हमें उसपर अमल होने देना चाहिए। मैं उससे सन्तुष्ट तो नहीं हूँ, लेकिन अहिंसाको ध्यानमें रखते हुए मैं हर सम्भव सहायताका वचन देता हूँ।

१. इस चर्चाके बाद गांधीजीने अपना मसौदा वापस ले लिया और चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने समितिके विचारार्थ अपना मसौदा पेश किया। इस मसौदेके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

मुझे लगता है कि सरकार मसौदेको स्वीकार कर लेगी। अगर यह उसे स्वीकार्य हो सकता है तो मैं समझता हूँ कि स्वतन्त्रताकी बात भी गले उतर जायेगी। स्वतन्त्रताके प्रश्नपर दुविधाका रुख कभी नही रखना चाहिए। यह व्यूह-कौशलकी दृष्टिसे गलत होगा। अगर हमारा मतलब सचमुच वही हो जो हमने मसौदेमे कहा है तो हमे अपनी सामर्थ्य-भर अधिकसे-अधिक श्रेष्ठ युद्ध-प्रयत्न करनेको तैयार रहना चाहिए। अगर सरकारको भरोसा हो जाये कि कांग्रेस युद्ध-प्रयत्नमे पूर्ण रूपसे शरीक होगी तो मुझे लगता है कि हमे स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय सरकार, दोनो मिल सकती है। मेरा मतलब उस राष्ट्रीय सरकारसे नही है जिसमे सभी दलोका प्रतिनिधित्व होगा, बल्कि उस सरकारसे है जो कांग्रेसको सत्ता हस्तान्तरित किये जाने के परिणामस्वरूप बनेगी। लेकिन इस सबका अर्थ यह होगा कि हमने अहिंसाको अलविदा कह दिया। सरकार कांग्रेसका सहयोग पानेको उत्सुक है। लेकिन अगर उसे कांग्रेसका सहयोग न मिला तो उसमे इतनी उपाय-कुशलता है कि वह किन्ही और उपकरणोको हासिल कर ले। अभी उसे इस बातमे सन्देह है कि कांग्रेसको सत्ता सौप देने पर भी उसे उसकी पूरी मदद मिल पायेगी। मैंने उसे कभी यह सोचने का अवसर नही दिया है कि उसे कांग्रेससे एक भी सिपाही मिल सकता है। वह उससे सिर्फ नैतिक समर्थन ही प्राप्त कर सकती है। वह इस बातको महसूस करती है। वह अन्य दलोकी ओरसे स्वत मिलनेवाली सहायता और कांग्रेसका नैतिक समर्थन, इन दो चीजोको तोलकर देख रही है। लेकिन अगर हम उसके पास जाकर कहे कि भारतके समस्त ससाधन ब्रिटिश लोगोकी सेवामे प्रस्तुत है तो मुझे इसमे कोई सन्देह नही कि सरकार कांग्रेसकी माँग स्वीकार कर लेगी। सवाल यह है कि यह सम्भावना क्या आपको मजूर हो सकती है। मुझे तो हजार आपत्तियाँ है, लेकिन उन सबका आधार अहिंसा है।

प्रश्न: कांग्रेसके नैतिक समर्थनसे उसे कैसे मदद मिलनेवाली है?

गांधीजी · उसका नैतिक समर्थन प्राप्त करके ब्रिटेन सारी दुनियाकी निगाहमे ऊपर उठ जायेगा। उसका मतलब यह होगा कि वह उस सगठनका समर्थन पानेको बहुत उत्सुक है जो २० वर्षोसे अहिंसक रीतिसे काम करता आया है। ब्रिटेनवाले कहेगे 'हम अन्य दलोके बजाय आपका समर्थन प्राप्त करना चाहेगे।' वे अहिंसक भारतसे अपील करेंगे। यहाँ मैं नैतिक समर्थनको बहुत ऊँची चीज मानकर बात कर रहा हूँ। उन्हे शरीर-बलका प्रतिनिधित्व करनेवाले भारत और अहिंसाकी अपरिमेय शक्तिका प्रतिनिधित्व करनेवाले भारतके बीच चुनाव करना है। वे दोनो एक-दूसरेसे भिन्न शक्तियाँ है। यदि वे कहते है कि हमें तो नैतिक समर्थन ही चाहिए तो यह एक बहुत बडी चीज होगी। यह कोई निर्जीव और यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं है। यह अत्यन्त सजीव प्रक्रिया है।

अगर आप कांग्रेसजनोके साथ न्याय करना चाहते है तो आप यहाँसे जाकर चुपचाप उनकी रायका पता लगाइए। अगर हमे पता चले कि उनमे सच्ची अहिंसा नही है तो हमें ईमानदारीके साथ ऐसी घोषणा करनी चाहिए। तब माना जायेगा कि हमने अपना कर्त्तव्य कर लिया। फिर हमे अपनेको शस्त्र-सज्जित करना चाहिए।

अगर हम खुले तौरपर और ईमानदारीके साथ ऐसा करें तो हम अन्य सगठनोको मात कर देगे। मुझे मालूम है कि हिंसा कैसे काम करती है। मै बराबर उसे अहिंसाके पार्श्वमे रखकर विचार करता हूँ। मुझे कभी भी ऐसा नही लगता कि इस तरहका आत्यन्तिक विचार अकेले मेरा ही है। मुझे लगता है कि मै भारतके मूक मानसका प्रतिनिधित्व करता हूँ। यदि मुझमें शारीरिक शक्ति हो और मै लोगोंके पास जाऊँ तो मुझे भरोसा है कि वे मेरी मान्यतासे अपनी सहमति प्रकट करेगे। मै उसे जनसाधारणकी भाषामे उसके सामने पेश करना जानता हूँ। . .

ऐसी सहायता दी गई तो वह भारतके हकमें होगी। उसका मतलब यह होगा कि हमने डूबती नौकाको बचानेकी भरसक कोशिश की। वे कहेंगे 'हम डूबते हुओं को सहारा दो।' तब हम जवाब दे सकते है 'हमे मुसीबतें झेलने का अभ्यास है। हम नेकीके साथ और अहिंसक रीतिसे लडे। अब आप डूब रहे है तो हम आपको सहारा दे रहे हैं।' इस रुखमें कोई बुराई नही है।[1]

[अंग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस सत्याग्रह फाइल, १९४०-४१। सौजन्य नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

२९२. पत्र : अमृतकौरको

नई दिल्ली
[७][2] जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

तुमारा खत मिला। तुमारा लेख छपेगा। अच्छा है। तरजुमा पढुगा। दूसरे लेखोका तरजुमा पढ रहा हू। शायद आज यहाका काम खतम होगा। गरमी काफी रहती है। मेरी प्रकृत्ति अच्छी है।

वापुके आशीर्वाद

श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर
मैनॉर विला
शिमला (पश्चिम)

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२३९) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७८७२ से भी

१. इस चर्चाको ध्यानमें रखकर चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने अपने मसौदेको फिर नये सिरेसे तैयार किया। चर्चाके बाद मसौदा जिस अन्तिम रूपमें सामने आया उसके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

२. मूल पत्र में "८" जुलाई है, पर डाककी मुहर "७ जुलाई" की है।

२९३. 'मेरी कोई सुनता नहीं'?

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते ।।[१]

[ऊँचा हाथ करके मै पुकार रहा हूँ। मेरी कोई नही सुनता। धर्मसे अर्थ और काम दोनोंकी प्राप्ति होती है। ऐसे धर्मका सेवन लोग क्यो नही करते?]

बापूजी अणे पिछले शनिवारको कुछ मिनटोके लिए दिल्लीमे मुझसे मिलने आ गये थे। हम साथ काम कर रहे हों या विरोधी लगनेवाली दिशाओमे, बापूजी अणे मुझपर सदा प्रेम रखते हैं। इसलिए समय मिलता है, तो वे मेरे यहाँ झाँक जाते है, विचार-विनिमय करते है, और उनके पास श्लोकोका जो भण्डार भरा है, उसमे से कभी-कभी कुछ बानगी दे जाते है। इस बार जब वे दिल्लीमे मुझसे मिलने आये, तो उन्होने कांग्रेससे मेरे बिलकुल अलग पड जानेके बारेमे कुछ हदतक दुख व्यक्त किया, लेकिन सच पूछिए तो उन्होने मुझे बधाई दी।

> **अब कांग्रेसको या किसीको भी आपको कोंचना नहीं चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे आपको अपने रास्ते जाने दें। आपने अंग्रेजोंके नाम जो अपील निकाली है, वह मैंने देखी। वे आपकी सुनेंगे नहीं, लेकिन आपको इसकी क्या पड़ी है? आपको तो जिसे आप धर्म मानते हैं वह उन्हे बताना ही चाहिए। देखिए न, कांग्रेसने ही ठीक मौकेपर आपकी नहीं सुनी न? यदि व्यासकी किसीने नहीं सुनी थी, तो औरोंकी तो क्या बिसात है? 'महाभारत'-जैसा ग्रन्थ लिखकर अन्तमें उन्होने जो श्लोक लिखा, वह 'भारत सावित्री' के नामसे प्रख्यात है।**

ऐसा कहकर इस लेखके शीर्षपर अंकित श्लोक उन्होने मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होने मेरी श्रद्धाको दृढ किया और यह भी बताया कि मैंने जो मार्ग अपनाया है, वह दुर्गम है।

लेकिन मुझे यह मार्ग कुछ ऐसा कठिन नही लगा। भले ही इस समय सरदार और मै अलग-अलग रास्तोपर चलते दिखाई दे, लेकिन इससे कोई हमारे हृदय थोडे ही अलग हो गये है? अलग पडने से मै उन्हे रोक सकता था, लेकिन वैसा करना मैने उचित नही समझा। और राजाजी की दृढताको देखते हुए उनसे अपना मत बदलने का आग्रह करना अधमता होती। उन्हे भी मै रोक सकता था, लेकिन

१. अगले अनुच्छेदमें श्लोकका अर्थ दिया गया है।

वैसा करने के वदले मैंने उन्हे प्रोत्साहन दिया — प्रोत्साहन देना अपना कर्त्तव्य माना। यदि इस नये लगनेवाले क्षेत्रमें अहिंसाके प्रयोगको सफल कर दिखाने की शक्ति मुझमें होगी, यदि मेरी श्रद्धा अन्ततक टिकी रहेगी, और यदि जनताके वारेमें मेरा मत सही होगा तो राजाजी और सरदार पहलेकी तरह मेरे ही साथ वने रहेगे।

ये नये लगनेवाले क्षेत्र कौन-से है? काग्रेसके प्रस्तावो तथा 'हरिजन' के लेखोके अध्येता उनसे अनभिज्ञ नही है। एक क्षेत्र तो है — सरकारके विरुद्ध लडने में अहिंसाका प्रयोग। इसकी पहचान मैंने सदा निर्वलके अस्त्रके रूपमे कराई है। इसका प्रयोग हिन्दुस्तानने कर देखा और वह वहुत हदतक सफल हुआ माना जायेगा। कहा जा सकता है कि इस अहिंसाने तो काग्रेसमे अपना स्थायी स्थान वना लिया है।

दूसरा क्षेत्र है आपसी झगडोमे — उदाहरणके लिए, हिन्दुओ और मुसलमानोके वीचके झगडोमे या अराजकताकी हालतमे होनेवाले उपद्रवोमे — अहिंसाका प्रयोग। ऐसे मौकोपर अहिंसाके प्रयोगमे अभी हम स्पष्ट सफलता नही दिखला सके है। अत जव ऐसी अराजकताका डर हमारी आँखोके आगे नाच रहा है, उस समय काग्रेसवाले क्या करे? वे डण्डेका जवाव डण्डेसे देगे, या उसका जवाव डण्डेवाले के सामने सिर झुकाकर, जो मार पडे उसे वरदाश्त करके दे? इसका उत्तर जितना हम सोचते है उतना सरल नही है। इस प्रश्नकी गुत्थियोमे न उलझकर अभी तो मै इतना ही कहूँगा कि ऐसे समय काग्रेसवाले स्वय मरकर स्थितिको जितना सँभालते वने सँभाले, मार कर हरगिज नही। मारे विना मरनेवाला अपनी जिम्मेदारी सौ फीसदी अदा कर देता है। वाकी, परिणाम तो सदा ईश्वरके हाथमे रहता है। यह दुर्वलकी अहिंसा नही है, यह तो स्पष्ट ही है। इसमे जेल जाने का सुख नही मिलता। सरकारके प्रति मनमे द्वेष हो, तो उसे गुप्त रखकर भी जेल जाया जा सकता है या सरकारसे असहयोग किया जा सकता है। लेकिन जहाँ तलवार, छुरे, लाठी और पत्थर आदिका प्रयोग धडल्लेसे हो रहा हो, वहाँ अकेला आदमी क्या करे? जिसके मनमें द्वेष है, वह क्या तलवारका वार झेल सकता है? यह स्पष्ट है कि ऐसा वार झेलनेवाले को प्रेम अथवा दयासे ओतप्रोत होना चाहिए। जो विरोधीको भी अपना ही अग समझेगा, वही उसके वार झेलेगा और उन्हे फूल मानेगा। ऐसा एक ही आदमी, यदि भाग्य साथ दे तो, हजारका काम कर सकता है। इसके लिए उच्च कोटिका आत्मवल होना चाहिए।

जो स्त्री या पुरुष यह वल दिखा सकता है, वह वाहरी आक्रमणका सामना तो सरलतासे कर सकता है। यह हुआ तीसरा क्षेत्र। काग्रेसकी कार्य-समितिकी मान्यता है कि आन्तरिक उपद्रवोमे तो कदाचित् अहिंसाका प्रयोग हो सके, किन्तु वाहरी आक्रमण करनेवाले शत्रुके विरुद्ध अहिंसासे लडने की शक्ति हिन्दुस्तानमें नही है। उसके इस अविश्वाससे मुझे दुख पहुँचा है। मै नही मानता कि भारतके करोडो निःशस्त्र लोग इस व्यापक क्षेत्रमे अहिंसाका प्रयोग सफलतापूर्वक नही कर सकते। काग्रेसके दफ्तरमे जिनके नाम दर्ज है, वे सरदार-जैसे सरदारको, जिनकी श्रद्धा इस समय डगमगा गई है, अपना विश्वास जताकर आश्वासन दे सकते है कि केवल

अहिंसाका अस्त्र ही हिन्दुस्तानसे सधेगा। इस बीच शायद कोई कांग्रेसी शंका करे, 'लेकिन हिन्दुस्तानमे इतनी लडाकू जातियाँ है, उनका क्या होगा?' मेरी दृष्टिमे तो यह विशेष कारण है कि सब कांग्रेसी अहिंसक सेनाके द्वारा ही अपनी रक्षा करने की तालीम ले। यह प्रयोग बिलकुल नया ही है। लेकिन बीस वर्षसे एक क्षेत्रमे सफल प्रयोग करती आ रही कांग्रेस ऐसा नही करेगी तो और कौन करेगा? मेरा अटल विश्वास है कि हमारे पास आवश्यक संख्यामे अहिंसक सेना हो तो इस नये क्षेत्रमे भी हमारी विजय होगी, और हम करोडोके निरर्थक खर्चसे बच जायेगे।

अतः मै आशा करता हूँ कि प्रत्येक गुजराती स्त्री-पुरुष अहिंसापर डटे रहकर सरदारको विश्वास दिलायेगा कि वह स्वयं कभी हिंसक बलका प्रयोग नही करेगा, और हिंसाके प्रयोग द्वारा विजय-प्राप्तिकी आशाके बावजूद उसका परित्याग कर देगा, लेकिन स्वयं अहिंसक बलका त्याग नही करेगा। हम भूले करते-करते ही भूल न करना सीखेगे। जितनी बार गिरेगे, उतनी बार उठेगे।

दिल्लीसे वर्धा जाते हुए रेलगाडीमे, ८ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १४-७-१९४०

२९४. स्वत्वाधिकार

यह विचित्र बात है कि जो काम मै एक पत्र-लेखककी[1] सलाहपर करनेको तैयार नही था, वही काम इनकार करने के लगभग तुरन्त बाद मुझे करना पड रहा है। पर उसका कारण मेरी समझसे बहुत ही तर्कसंगत है। चूँकि अपने मुख्य लेख अबसे मै गुजरातीमे ही लिखूँगा, इसलिए नही चाहूँगा कि अखबारोमे उनके अनधिकृत अनुवाद छपे। जब मै गुजरातीमे बहुत लिखा करता था और उसका अंग्रेजीमें अनुवाद साथ-साथ प्रस्तुत करने का समय नही निकाल पाता था, तब गलत अनुवादोके कारण मुझे बहुत नुकसान उठाना पडा है। अब मैने अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी अनुवाद कराने का प्रबन्ध कर लिया है। इसलिए मै सम्पादको और प्रकाशकोंसे कहूँगा कि वे कृपया अंग्रेजी और हिन्दुस्तानीमें अनुवादका अधिकार सुरक्षित समझे। मुझे इसमें सन्देह नही कि मेरे अनुरोधका खयाल रखा जायेगा।

वर्धा जाते हुए रेलगाड़ीमे, ८ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

१. सतीश कालेलकर; देखिए पृ० १८७-८८।

२९५. कांग्रेसकी सदस्यता और अहिंसा[1]

पंजावके एक काग्रेसी भाई पूछते हैं

जो लोग खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि अहिंसामें उनका विश्वास नहीं है, क्या वे कांग्रेसमें रह सकते हैं? क्या अहमदशाह अब्दाली-दिवस-समारोहमें वे भाग ले सकते हैं? और जिस कांग्रेस समितिमें ऐसे लोगोंका बहुमत हो क्या उसमें अहिंसामें विश्वास रखनेवाले लोग रह सकते हैं?

मेरे उत्तरकी अब कोई कीमत नही हो सकती। काग्रेसमें जो फेर-बदल हो रहे है, उस स्थितिमें काग्रेस क्या निर्णय करेगी, यह मै नही कह सकता। मुझे तो यह भी लगता है कि काग्रेसियोको मुझसे ऐसे सवाल नही करने चाहिए। मुझे जवाब भी नही देना चाहिए। फिर भी इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए चूँकि मै बँध चुका हूँ इसलिए देता हूँ। जिनका अहिंसामे विश्वास न हो वे काग्रेसमे नही रह सकते। कोई भी काग्रेसी अहमदशाह अब्दाली-दिवस-समारोहमें भाग नही ले सकता। जिस समितिमे अहिंसामे विश्वास न रखनेवाले लोगोका बहुमत हो उसमे से अहिंसामें विश्वास रखनेवालो का निकल जाना मै बेहतर मानूँगा।

दिल्ली-वर्धा रेलगाडीमें, ८ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

२९६. वजीरियोंके बारेमें[2]

वजीरिस्तान सीमा-प्रान्तकी सीमासे लगा हुआ एक प्रदेश है। सभी जानते है कि सीमापर अनेक जातियाँ निवास करती है। सामान्य धारणा यह है कि ये जातियाँ लूट-मार करने और अग्रेज सरकारको तग करनेके लिए ही पैदा हुई है। किन्तु हकीकत इन दोनो बातोसे भिन्न है। वजीरी आदि जातियाँ गरीबीमें पली-बढी होती है। वहाँका पहाडी जीवन बडे कष्टोका जीवन माना जाता है। फिर, ये जातियाँ आपसमें भी लडती रहती है। अपनी आर्थिक आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए उन्हे हिन्दुस्तानका भूभाग सुभीतेका मालूम होता है। फिर, उन्हे गलत रास्तेमें प्रवृत्त करनेवाले तो मिल ही जाते है। अत परिणाम यह है कि हम उनकी लूट-

१. यह "प्रश्नोत्तरी" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. यह "नोंध" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

पाटसे ही उनके बारेमें अपनी धारणा बनाते हैं। खान साहबने मुझसे कहा है कि सरहदके लोग भोले और भले होते हैं।

जब-जब मैं सीमा-प्रान्तमे घूमा हूँ, तब-तब मेरा प्रयत्न सीमाको पार करके इन जातियोसे परिचय प्राप्त करने का रहा है। पहला प्रयत्न तो तभी किया था, जब गाधी-अर्विन समझौता हुआ था। लेकिन फिर लॉर्ड अर्विनका सकोच देखकर मैं रुक गया। उसके बाद पत्र-व्यवहार द्वारा अनुमति माँगी थी, उसमे भी असफल हुआ। फिर जब सीमा-प्रान्तका दौरा किया, तब भी प्रयत्न किया, गवर्नर साहबसे मिला। लेकिन गवर्नर साहब अनुमति नही दे सके, अथवा यो कहिए कि न दिला सके। हालमे सीमा-प्रान्त प्रान्तीय काग्रेस समितिने एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजने का प्रयत्न किया था। उसे भी अनुमति नहीं मिली। अब कार्य-समितिने काग्रेसकी ओरसे एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजने का निर्णय किया है। श्री भूलाभाई देसाई और जनाब आसफ अली उसके सदस्य चुने गये है। हम आशा तो करते हैं कि सरकार इस प्रतिनिधि-मण्डलको जाने देगी।

इस प्रस्तावका उद्देश्य राजनीतिक नही है। इसका उद्देश्य केवल यह पता लगाना है कि सरहदी जातियोंको किस प्रकारकी मदद दी जा सकती है और उनके साथ मैत्री कैसे स्थापित की जा सकती है। उनसे हमेशा डरते रहना हमे शोभा नही देता। अधिकतर डरकी जडमे हमारा अज्ञान ही रहता है। यदि अपने पास बैठे किसी भाईके बारेमे सन्देह करूँ, तो मैं उससे डरूँगा। सन्देह दूर हो जाये, तो मेरा डर भाग जायेगा। अनेक वर्षोसे हम मान बैठे हैं कि सरकार हमे सरहदी जातियोके साथ सम्बन्ध स्थापित करने ही नही देगी। सरकारने खुद भी डरकर करोडो रुपये खर्च करके किले बनवाये है और लड़ाइयाँ भी लडी हैं। काग्रेसका कर्त्तव्य है कि वह इन जातियोके साथ नि स्वार्थ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करे। इस दृष्टिसे समितिका यह प्रयत्न स्वागतके योग्य है। आरम्भ किये प्रयत्नको अन्ततक निबाह ले जाना काग्रेसका स्वाभाविक कर्त्तव्य है। आरम्भ न करना, यह पहली बुद्धिमानी है। लेकिन एक बार जब आरम्भ कर ही दिया, तब उसे अन्ततक निबाह ले जाने का कर्त्तव्य उसमे से उद्भूत हो ही जाता है।

दिल्लीसे वर्धा जाते हुए रेलगाड़ीमें, ८ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १४-७-१९४०

२९७. क्या इस्लाम ईश्वर-प्रणीत धर्म है?[1]

एक मुस्लिम अखबारमें एक लेखकने लिखा है कि यदि मैं इस्लामको ईश्वर-प्रणीत धर्म और मुहम्मद साहबको खुदाका पैगम्बर मानता होऊँ, तो यह बात प्रकट करने से मुसलमानोंका शक दूर होगा, और शायद हिन्दू-मुस्लिम एकता भी सरलतासे साधी जा सकेगी। यह लेख मैंने लगभग एक महीना पहले पढा था। मुझे ऐसा नही लगा कि उसका जवाब देने से कोई प्रयोजन सिद्ध होगा। लेकिन इन दिनो मुसलमानोंके मानसको समझने के लिए मैं यथासाध्य अधिक-से-अधिक मुस्लिम अखबार पढता हू। उनमें इतना जहर उँडेला जाता है और जाने अथवा अनजाने इतना असत्य लिखा होता है कि मैं इस्लामके बारेमे अपनी मान्यता — यद्यपि वह जगजाहिर है — यहाँ प्रकट करना आवश्यक समझता हूँ।

मैं इस्लामको निश्चय ही एक ईश्वर-प्रणीत धर्म मानता हूँ, और इसलिए कुरान शरीफको भी ईश्वर-प्रणीत मानता हूँ तथा मुहम्मद साहबको एक पैगम्बर मानता हूँ। मैं हिन्दू-धर्म, ईसाई धर्म, पारसी धर्मके बारेमे भी ऐसा ही मानता हूँ। पैगम्बर अनेक हो गये हैं, उन्होने अनेक धर्मोका प्रवर्तन किया है, उनमे से बहुतोके नाम-निशान भी आज हमारे यहाँ बाकी नही है, क्योकि वे विविध धर्म और वे अनेक पैगम्बर अपने-अपने समयके लिए और उस समयके लोगोके लिए थे। कुछ मुख्य धर्म आज भी मौजूद है। विभिन्न धर्मोका यथासम्भव अध्ययन करने के बाद मैं इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि यदि सभी धर्मोका एकीकरण करना उचित और आवश्यक हो, तो उन सबकी एक गुरुकिल्ली होनी चाहिए। और यह कुजी सत्य और अहिंसा है। इस कुजीसे जब मैं किसी धर्मकी पेटीको खोलता हूँ, तो मुझे अन्य धर्मोसे उस धर्मका ऐक्य साधते जरा भी मुश्किल नही होती। यद्यपि सभी धर्म पत्तोके रूपमें अलग-अलग दिखाई देते है, लेकिन जब हम तनेकी ओर देखते है, तो सब एक ही दिखाई देते है। इतना अगर हम समझ सकें तो — और तभी — धर्मके नामपर जो लडाइयाँ होती आई है और होती रहती है, वे बन्द हो जाये। ऐसी लडाई केवल हिन्दुओ और मुसलमानोंके बीच ही नही होती। क्या हिन्दू, क्या ईसाई और क्या इस्लाम — सभी धर्मोमें ऐसी लडाइयाँ हुई है और उनके वर्णनसे इतिहासके पन्ने रँगे हुए है। धर्मकी रक्षा उस धर्मके अनुयायियोकी पवित्रता और उनके सत्कर्मोसे होती है, विधर्मियोके साथ झगडा करने से कभी नही होती।

दिल्लीसे वर्धा जाते हुए रेलगाड़ीमें, ८ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १४-७-१९४०

१. यह "नोंध" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२९८. पत्र : अमृतकौरको

रेलगाडीमे
८ जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

साथमें दो और सुधारे हुए अनुवाद भेज रहा हूँ। दोनो अच्छे है। मसनवीने[1] तो मुझे मुग्ध कर लिया। यह मूलकी भाँति प्रभावोत्पादक थी। निस्सन्देह यह आसान भी थी। तुमने देखा होगा कि कार्य-समितिमे क्या हुआ।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८१) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२९० से भी

२९९. दिल्ली प्रस्ताव

मैंने अभी-अभी यह समाचार देखा है कि कार्य-समितिका निर्णायक प्रस्ताव[2] समाचार-पत्रोमे छपने को दे दिया गया है। प्रस्ताव मेरी उपस्थितिमे पास हुआ था, परन्तु उसके प्रकाशनार्थ जारी किये जाने से पहले मैं कुछ नही कहना चाहता था। यह सोचना भारी भूल होगी कि सदस्योने पूरे पाँच दिन विवाद और वितण्डेमे ही विताये। उन्हे भारी जिम्मेदारी निभानी थी। यद्यपि तार्किक दृष्टिसे यह प्रस्ताव रामगढवाले प्रस्तावसे[3] भिन्न नही है, फिर भी इसकी भावना उसकी भावनासे निस्सन्देह भिन्न है। अक्सर शब्द वही रहते है, पर भावना बदल जाती है। अबतक किसी न

१. देखिए "मसनवी क्या कहती है", पृ० २२५-२७।

२. ७ जुलाईको पास किये गये इस प्रस्तावमें माँग की गई थी कि "ब्रिटेन भारतको पूर्ण स्वतन्त्रता देना स्वीकार करे", और उसके लिए पहले कदमके रूपमें केन्द्रमें अस्थायी राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की जाये। प्रस्तावमें घोषणा की गई थी कि "यदि ये कदम उठाये जाते है, तो कांग्रेस देशकी प्रतिरक्षाकी प्रभावशाली व्यवस्था करने के प्रयासमें अपना पूरा-पूरा जोर लगा सकेगी।" देखिए परिशिष्ट ४।

३. इस प्रस्तावमें इस बातको दुहराते हुए कि भारतके लोग केवल पूर्ण स्वतन्त्रता ही स्वीकार कर सकते है, अंग्रेज सरकार द्वारा भारतके युद्धरत देश घोषित किये जाने की निन्दा की गई थी, और कहा गया था कि "कांग्रेसजन और कांग्रेससे प्रभावित लोग युद्ध चलाने के लिए धन, जन या सामग्री किसी प्रकारकी मदद नही दे सकते।"

किसी कारणसे कांग्रेसकी नीति यह रही थी: यदि ब्रिटेन स्वेच्छासे हमारी मूलभूत माँग स्वीकार कर ले तो कांग्रेस ब्रिटेनके पक्षमें अपना पूरा नैतिक प्रभाव डालेगी, परन्तु इसके अतिरिक्त वह किसी तरहसे युद्धमें भाग नहीं लेगी। ऐसा विचार कार्य-समितिके सभी सदस्योंका नही था। इसलिए फैसला करने की घडी आने पर हर सदस्य को, दूसरोंका खयाल किये बिना, अपना निर्णय स्वय करना था। वे पाँच दिन घोर हृदय-मन्थनके दिन थे। प्रस्तावका एक मसौदा[1] मैंने तैयार किया था, जो लगभग सभीकी रायमें सबसे अच्छा था, बशर्ते कि वे शुद्ध अहिंसामे जीवन्त विश्वास प्रकट कर सकते, या सचाईके साथ यह कह सकते कि उनके निर्वाचन-क्षेत्रोंका ऐसा विश्वास है। कई लोगोंमें तो दोमें से कोई भी विश्वास नही था और कइयोंमें व्यक्तिगत रूपसे ऐसा विश्वास विद्यमान था। केवल खान साहब अपने विश्वास और अपने प्यारे खुदाई खिदमतगारोंके विश्वासके विषयमें सन्देह-रहित थे। इसलिए उन्होने पिछले वर्धा-प्रस्तावके बाद ही निश्चय कर लिया था कि कांग्रेसमे उनका स्थान नही है। अपने अनुयायियोंके विषयमे उनका एक खास मिशन और एक खास कर्त्तव्य था। अत: कार्य-समितिने उन्हे कांग्रेससे अलग होने की इजाजत खुशीसे दे दी। अलग होकर वे कांग्रेसकी और अधिक सेवा कर रहे है, जैसा कि मै भी करनेकी आशा रखता हूँ। कौन कह सकता है कि अलग होनेवाले व्यक्ति अपने साथियोंमें वह विश्वास न फूँक सकेंगे जो उन्होंने, लगता है, फिलहाल खो दिया है?

प्रस्तावका मसौदा राजाजी ने तैयार किया था। उन्हे अपने दृष्टिकोणके औचित्य का उतना ही दृढ़ विश्वास था जितना कि मुझे अपने दृष्टिकोणके औचित्यका। उनकी दृढता, साहस और अति विनम्रताके कारण कई लोग उनके विचारोंके कायल हो गये, जिनमें सरदार पटेल सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। यदि मैंने उन्हे रोकने का फैसला किया होता तो वे अपने प्रस्तावको पेश करने का खयाल तक न करते। परन्तु मैं अपने साथियोंके उत्साह और आत्मविश्वासको उतना ही मान देता हूँ जितने का दावा अपने लिए करता हूँ। मुझे बहुत पहलेसे पता था कि हमारे सामने उपस्थित राजनीतिक समस्याओंके विषयमे हमारा दृष्टिकोण एक-दूसरेसे बहुत भिन्न होता जा रहा है। वे मुझे यह नही कहने देंगे कि वे अपनी अहिंसक भूमिकासे हट गये हैं। उनका दावा है कि उनकी अहिंसा ही उन्हे उस बिन्दुतक ले आई जिसकी परिणति इस प्रस्तावमें हुई। उनका विचार है कि अहिंसाके विषयमें बहुत अधिक सोचते रहने के कारण मुझे खब्त हो गया है। उनका लगभग यह विचार हो चला है कि मेरी दृष्टि धुँधली हो गई है। इसके जवाबमें मेरा उनके विषयमें ऐसी ही बात कहना बेकार था, हालाँकि एक हदतक विनोदमें मैंने ऐसा कह ही दिया। मेरे पास अपनी आस्थाके अतिरिक्त कोई प्रमाण नही है, जिसके आधारपर मै उनकी विपरीत आस्थापर सन्देह कर सकूँ। ऐसा करना स्पष्टत बेकार होगा। वर्धामे मैं समितिको कायल न कर सका, इसलिए मैंने जिम्मेवारीसे मुक्ति ले ली। मुझे यह बात दिनके प्रकाशकी भाँति तुरन्त स्पष्ट हो गई कि यदि मेरा दृष्टिकोण स्वीकार्य नही है, तो एकमात्र

१. देखिए पृ० २७३-७९।

वास्तविक विकल्प राजाजी का दृष्टिकोण हो सकता है। इसलिए मैंने उन्हे अपने प्रयत्न मे लगे रहने को प्रोत्साहित किया, हालाँकि मै बराबर मानता रहा कि उनका विचार बिलकुल गलत है। और अनुकरणीय धैर्य, चतुराई तथा विरोधियोका लिहाज रखने के कारण उनके पक्षमे अच्छा-खासा बहुमत हो गया और पाँच सदस्य तटस्थ रहे। मै कुछ क्षणके लिए डर गया था। आम तौरपर ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे ही पास नही किये जाते है। परन्तु इस कठिन घड़ीमे सर्वसम्मतिकी आशा नही की जा सकती थी। मैंने सलाह दी कि राजाजी के प्रस्तावपर अमल होना चाहिए। और तब अन्तिम क्षणमे समितिने फैसला किया कि प्रस्ताव दुनियाके सामने रखा जाये।

समितिने जो महत्त्वका कदम उठाया है वह हमारे लिए चाहे फायदेमन्द साबित हो या नुकसानदेह, लेकिन उसकी पृष्ठभूमिका जनताको पता होना जरूरी था। जो कांग्रेसजन सबलकी अहिंसामे जीवन्त आस्था रखते है, वे स्वभावत अलग रहेगे। वे आगे क्या कर सकते है, फिलहाल यह प्रश्न पूर्णत अप्रासगिक है। राजाजी का प्रस्ताव कांग्रेस की सोच-समझकर तय की हुई नीतिको प्रतिबिम्बित करता है। जो गैर-कांग्रेसी यह चाहते थे कि कांग्रेस मेरी धार्मिक प्रवृत्तिसे मुक्त होकर शुद्ध राजनीतिक रवैया अपनाये, उन्हे इस प्रस्तावका स्वागत करना चाहिए और उसका पूरे दिलसे समर्थन करना चाहिए। मुस्लिम लीग और उन नरेशोको भी जो भारतको अपनी रियासतोसे अधिक महत्त्व देते है, ऐसा ही करना चाहिए।

ब्रिटिश सरकारको फैसला करना है कि वह क्या चाहती है। यदि उसकी बुद्धि उसी तरह धुंधली नही हो गई है -- जैसा कि राजाजी समझते है, मेरी हो गई है -- तब तो वह आजादीको रोक नही सकती। यदि स्वतन्त्रताकी माँग स्वीकार हो जाती है, तो प्रस्तावके दूसरे भागोको स्वीकार करना स्वाभाविक ही होगा। सवाल यह है. क्या वह भारतपर शासन करने के नाते भारतसे जबरदस्ती सहायता लेना चाहती है, या वह सहायता चाहती है जो स्वतन्त्र और स्वाधीन भारत दे सकता है? मैंने तो अपनी व्यक्तिगत सलाह पहले ही दे दी है। मैंने अपनी ओरसे सदा मदद करने का वचन दिया है। मेरी सलाह मानने से उसकी वीरतामें चार चाँद ही लगेंगे। परन्तु यदि वह मेरी सलाह नही मान सकती, तो एक नि स्वार्थ और पक्के दोस्तके नाते मै यही परामर्श दूंगा कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस द्वारा की गई दोस्तीकी पेशकशको न ठुकराये।

सेवाग्राम, ८ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

३००. मैसूरके वकील

मैसूरके सत्याग्रह-सघर्पमें भाग लेनेवाले कई वकीलोकी वकालतकी सनदे वहाँके मुख्य न्यायालयने छीन ली है। इस कार्रवाईका आखिरी शिकार श्री एच० सी० दासप्पाको बनाया गया है, जो मैसूरके बडे प्रतिष्ठित व्यक्ति है और पिछले बीस वर्षोसे वकालत करते आ रहे है। वकालत-जैसे उदार पेशेमें लगे व्यक्तिकी सनद जब्त कर लेना निस्सन्देह एक गम्भीर बात है, लेकिन इससे पहले भी सर्वथा अपर्याप्त अथवा राजनीतिक कारणोके आधारपर इस तरहकी कार्रवाई की गई है। ऐसे अन्यायोको निरुद्विग्न भावसे और धीरजके साथ बरदाश्त करना चाहिए। लेकिन श्री दासप्पाके मामलेमें मुख्य न्यायाधीशके आदेशकी जो रिपोर्ट 'हिन्दू' में छपी है उसे पढकर मुझे गहरा दुख हुआ है। श्री दासप्पाने एक मजिस्ट्रेटके उस आदेशकी अवहेलना करनेकी धृष्टता की थी जिसमे उन्हे मैसूरके अमुक हिस्सेमे किसी भी सभामें बोलने की मनाही की गई थी, और फिर मेरे निर्देशपर सत्याग्रही कैदियोको न्यायमूर्ति नागेश्वर अय्यर द्वारा की जानेवाली विभागीय जाँचका बहिष्कार करनेकी सलाह देनेकी उतनी ही बडी ढिठाई की थी। इन गम्भीर अपराधोके लिए श्री दासप्पाकी वकालतकी सनद हमेशाके लिए छीन ली गई है। अगर न्यायाधीशोकी चले तो श्री दासप्पा कगालका जीवन बितानेको मजबूर कर दिये जायें, और अगर यह फैसला, जिस कागजपर यह लिखा गया है, उसके बाहर भी कोई असर दिखा सके तो वे एक चरित्रशून्य और समाजके धिक्कार तथा तिरस्कारके पात्र बन जाये। मै श्री दासप्पाको व्यक्तिगत रूपसे जानता हूँ। मै उन्हे सर्वथा निष्कलक चरित्रका और ऐसा ईमानदार आदमी मानता हूँ जिसपर कोई उँगली नही उठा सकता। वे बड़ी बहादुरीके साथ अपनी सामर्थ्य-भर अहिंसाका आचरण करने का प्रयत्न करते रहे है। उन्होने वही किया हे जो ब्रिटिश भारतमें बहुत-से देशभक्तोने —चाहे वे वकील रहे हो या और कुछ—किया है। और आजकल न्यायाधीश उनके ऐसे आचरणकी ओर कोई ध्यान नही देते तथा जनताने तो उन्हे अपना नायक बना लिया है। भूलाभाई बम्बई उच्च न्यायालयके महाधिवक्ता (एडवोकेट-जनरल) रहे है। उन्होने कानूनोकी अवहेलना की है। उच्च न्यायालयके वकील मुशी और चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने भी ऐसा ही किया है। लेकिन उनकी सनदें नही छीनी गई है। उनमें से दो तो अपने-अपने प्रान्तोमें मन्त्री भी रहे है। सरकारी तहकीकातोका बहिष्कार इससे पहले भी किया गया है, लेकिन बहिष्कार करनेवालो को कोई दण्ड नही दिया गया। न तो उनकी प्रतिष्ठाको और न उनके चरित्रको ही लाछित किया गया है। मेरी रायमें तो मैसूर मुख्य न्यायालयके न्यायाधीशने अपना निर्णय देते हुए यह भुला दिया कि वे कौन है। श्री दासप्पाका कोई नुकसान नही हुआ है। मैसूरके लोगोकी निगाहमें उनकी इज्जत और बढेगी।

लेकिन मैं यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि पूर्वग्रहोके वशीभूत होकर मैसूरके न्यायाधीशोने अपना नुकसान जरूर किया है।

न्यायके साथ ऐसी विडम्बना पहले भी हुई है। डर्बनके एक मजिस्ट्रेटने किसी मूर्खतापूर्ण पूर्वग्रहके वशीभूत होकर एक निर्दोष व्यक्तिको सजा दे दी थी। उसका निर्णय उलट दिया गया और सर्वोच्च न्यायालयने ऐसे कठोर शब्दोमें उसकी भर्त्सना की कि मजिस्ट्रेटको उसके पदसे हटाना पड़ा। पंजाबमें सैनिक शासनके दिनोमे काम करनेवाले न्यायाधीशोंको नही हटाया गया, लेकिन बहुतोको इस कारण पूरी तरह जलील होना पडा कि उन्होने ऐसे निर्णय दिये थे जिनका समर्थन उनके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्योसे नही होता था। मैसूरके न्यायाधीशका यह निर्णय पंजाबके न्यायाधीशोके निर्णयसे भी बदतर है। तब आतकका वातावरण था। भीड़ने हत्याएँ की थी और गणमान्य लोगोके मुकदमोकी सुनवाई साधारण अदालतों द्वारा नही बल्कि सैनिक कानूनके अधीन स्थापित न्यायाधिकरणो द्वारा की गई थी। मैसूरमे ऐसा कुछ नही हुआ है। मुख्य न्यायाधीशका निर्णय एक ऐसे आदमीकी प्रतिष्ठापर ठडे दिमागसे सोच-समझकर किया गया प्रहार है जो न्याय-पीठसे दिये गये गैरजिम्मेदाराना वक्तव्योके खिलाफ अपना बचाव नही कर सकता था। न्यायाधीश कभी-कभी भूल जाते है — जैसे कि ये सज्जन भूल गये है — कि दुनियामे लोकमतका भी एक चाबुक होता है जो किसीको उसका मुँह देखकर बख्श नही देता।

यह निर्णय देनेवाले न्यायाधीशोके प्रति मै सहानुभूति और दया प्रकट करता हूँ, और आशा करता हूँ कि ठडे दिमागसे सोचने पर वे उसपर पश्चात्ताप करेंगे। श्री दासप्पा और वकालतकी सनदोसे वचित किये जानेवाले उनके सहयोगियोको तो मै बधाई ही दे सकता हूँ। मेरा उनसे अनुरोध होगा कि वे इस दण्डको वरदान बना दे। यह अच्छा ही है कि मैसूरके इन न्यायाधीशोने अपनेको जितना पूर्वग्रह-ग्रस्त सिद्ध किया है उतने पूर्वग्रहग्रस्त न्यायाधीशोके समक्ष उन्हे किसी मुकदमेकी पैरवीमें हाजिर नही होना पडेगा। इन वकीलोके भाग्यमे अब शायद गरीबी ही हो। वे इस गरीबी पर गर्व करें। वे थोरोके इस कथनको याद रखे कि अन्यायपूर्ण शासनमे सम्पत्तिशाली होना अपराध, और गरीब होना सद्गुण है। यह सत्याग्रहियोंके लिए एक चिरन्तन सूत्र है। सनदोंसे वचित वकीलोंको अपने जीवनको ऐसा नया रूप देने का विरल अवसर प्राप्त हुआ है जिससे उन्हे आवश्यकताओका कभी अनुभव ही न हो। वे यह याद रखें कि कानूनी पेशेका मतलब यह नही होना चाहिए कि उस पेशेमें लगा आदमी प्रतिदिन उससे ज्यादा कमाये जितना कि — उदाहरणार्थ — एक बढ़ई कमाता है। वे मैसूरमें ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए दुगना प्रयत्न करें जिससे न्यायकी वैसी विडम्बना असम्भव हो जाये जिसका वर्णन मैंने ऊपर किया है। इतनी कडी भाषाका प्रयोग करते हुए मुझे लिखना पड़े, यह मेरे लिए कोई सुखकर बात नही है। लेकिन अगर मुझे सत्यकी सेवा करनी थी तो मै अन्यथा कुछ कर भी नही सकता था।

सेवाग्राम, ९ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-७-१९४०

३०१. स्वर्गीय चंगनचेरी पिल्लै[1]

पाठकोंने त्रावणकोर-निवासी श्री चगनचेरी के० परमेश्वरन् पिल्लैकी मृत्युके बारेमें पढ़ा होगा। वे हरिजनोंके सच्चे और सतत लगनशील सेवकोंमें से थे। वे त्रावण-कोर उच्च न्यायालयके सेवानिवृत्त न्यायाधीश थे। वे हरिजन सेवक सघकी कार्य-परिषद्के सदस्य थे। वे अत्यन्त सरल स्वभावके और बहुत प्यारे आदमी थे। उनके सचिवने उनकी मृत्युका निम्नलिखित दर्दनाक विवरण मुझे लिख भेजा है[2]

भोजनकी प्रेरणा मृत्युने दी।[3] सचिवने ठीक ही कहा है कि वे जीवित रहने के लिए खाते थे। लेकिन ईश्वर जब हमें असावधानीमें पकड़ना चाहता है तो हमारी बुद्धिको भ्रमित कर देता है। हममें से कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह उस स्वर्गीय सेवक-जैसी भूल नहीं करेगा। यदि हमारे जीवनका वैसा सेवामय अन्त हो सके जैसा कि इस महान् हरिजन-सेवकका हुआ तो यही बहुत बड़े श्रेयकी बात होगी। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे और उनकी विधवा तथा उनके परिवारको इस क्षतिको सहने की शक्ति प्रदान करे। मैं आशा करता हूँ कि वे सब उनके पद-चिह्नोंपर चलेंगे।

सेवाग्राम, ९ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

३०२. सुभाष बाबू

वर्धाकी वापसी यात्रामें नागपुर स्टेशनपर एक युवकने मुझसे पूछा कि कार्य-समितिने सुभाष बाबूकी गिरफ्तारी[4] पर कोई टिप्पणी क्यों नहीं की। मेरा मौन चल रहा था। इसलिए मैंने जवाब तो नहीं दिया, लेकिन उसके इस वाजिब सवालको लिखकर रख लिया। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो सवाल नागपुर स्टेशन पर उस युवकने पूछा वह हजारों नहीं तो सैकड़ों लोगोंके मनमें तो जरूर उठा होगा। यह सच है कि सुभाष बाबू कांग्रेसके एक भूतपूर्व राष्ट्रपति हैं और लगातार दो बार

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३. सचिवके विवरणके अनुसार मृतकने मृत्युसे कुछ घंटे पूर्व बढ़िया भोजन किया था।

४. कलकत्तामें हॉलवेल स्मारकको हटाने के आन्दोलनके सिलसिलेमें सुभाषचन्द्र बोस २ जुलाई, १९४० को गिरफ्तार कर लिये गये थे।

इस पदपर चुने गये। उन्होने देशके लिए महान् त्याग-बलिदान किया है। वे एक जन्मजात नेता हैं। लेकिन उनके इन्ही गुणोंके कारण उनकी गिरफ्तारीके खिलाफ विरोध प्रकट किया जाये, ऐसा नही हो सकता। अगर गिरफ्तारीकी भर्त्सना उसके गुण-दोषके आधारपर की जा सकती तो कार्य-समिति उसकी ओर ध्यान देनेको बाध्य होती। सुभाष बाबूने कानूनकी अवहेलना कांग्रेसकी अनुमतिसे नही की थी। उन्होने तो खुल्लमखुल्ला और बड़े साहसके साथ कार्य-समितिकी भी अवहेलना की है। यदि उन्होने इस समय सरकारके खिलाफ संघर्ष छेड़नेके लिए कोई गौण प्रश्न उठानेकी अनुमति माँगी होती तो मेरा खयाल है, कार्य-समितिने इनकार कर दिया होता। इससे अधिक महत्त्वके सैकडों सवाल ढूँढे जा सकते है। लेकिन अभी देशका ध्यान केवल एक सवालपर केन्द्रित है। उचित समय आने पर उस सवालपर सीधी कार्रवाई करनेकी तैयारियाँ की जा रही हैं। इसलिए अगर कार्य-समितिने कोई कार्रवाई की होती तो वह उसके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर करनेकी ही होती। समिति वैसा करने को तैयार नही है। मैंने उस युवककी बातकी उपेक्षा भी कर दी होती। लेकिन मुझे लगा कि इस गिरफ्तारीको उसके सही परिप्रेक्ष्यमे रख देने से कोई नुकसान नही होनेवाला है। सुभाष बाबू-जैसे महान् व्यक्तिकी गिरफ्तारी कोई मामूली बात नही है। लेकिन सुभाष बाबूने अपनी लडाईकी योजना काफी सोच-समझकर और हिम्मतके साथ सामने रखी है। वे मानते है कि उनका तरीका सबसे अच्छा है। वे ईमानदारीके साथ मानते है कि कार्य-समितिका रास्ता गलत है, और उसकी 'दीर्घसूत्रता' से कोई लाभ नही होनेवाला है। उन्होने मुझसे बडी आत्मीयता से कहा कि जो-कुछ कार्य-समिति नही कर पाई, वे वह सब करके दिखा देंगे। वे विलम्बसे ऊब चुके थे। मैंने उनसे कहा कि अगर आपकी योजनाके फलस्वरूप मेरे जीवन-कालमे स्वराज्य मिल गया तो आपको बधाईका सबसे पहला तार मेरी ओरसे ही मिलेगा। आप जब अपना संघर्ष चला रहे होंगे उस दौरान अगर मैं आपके तरीकेका कायल हो गया तो मै पूरे दिलसे अपने नेताके रूपमे आपका स्वागत करूँगा और आपकी सेनामे भरती हो जाऊँगा। लेकिन मैंने उन्हे आगाह कर दिया था कि उनका रास्ता गलत है।

लेकिन मेरी रायकी क्या वकत? जबतक वे किसी खास कार्य-पद्धतिको सही मानते है तबतक उसका अनुसरण करने का उन्हे अधिकार है, बल्कि यह उनका कर्त्तव्य है। उसे कांग्रेस पसन्द करे या नापसन्द, इससे कोई फर्क नही पडता। मैंने उनसे कहा कि अगर आप कांग्रेससे बिलकुल त्यागपत्र दे दे तो यह ज्यादा ठीक होगा। मेरी सलाह उन्हे नही जँची। तथापि अगर उनका प्रयत्न फलीभूत होता है और भारतको आजादी मिल जाती है तो उनका विद्रोह उचित सिद्ध होगा, और कांग्रेस उनके विद्रोहकी निन्दा न करेगी। इतना ही नही, बल्कि त्राताके रूपमे उनका स्वागत भी करेगी।

सत्याग्रहमें स्वेच्छासे जेल जानेका अपना अलग श्रेय होता है। देशके किसी प्रचलित कानूनको भंग करनेपर की गई गिरफ्तारीके खिलाफ आवाज नही उठाई जा सकती। इसके विपरीत, दस्तूर तो गिरफ्तार सत्याग्रहीको बधाई देने और अन्य

कांग्रेसजनोंको उसका अनुकरण करनेको आमन्त्रित करने का रहा है। स्पष्ट है कि सुभाष बाबूके मामलेमें समिति वैसा नहीं कर सकती थी। प्रसगवश यह कह दूं कि समितिने अन्य बहुत-से प्रमुख-प्रतिष्ठित कांग्रेसजनोंकी गिरफ्तारी और कैदकी ओर भी ध्यान नहीं दिया है। इसका मतलब यह नहीं कि समितिने उनके सम्बन्धमें कुछ महसूस नहीं किया है। लेकिन जीवन-संघर्षमें बहुत-से अन्यायोंको मूक रहकर भी सहन करना पड़ता है। यदि उसके पीछे विचार होता है तो उससे शक्ति उत्पन्न होती है; यदि वह तितिक्षा सही विवेकसे युक्त होती है तो दुर्निवार भी बन जा सकती है।

सेवाग्राम, ९ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-७-१९४०

३०३. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

सेवाग्राम
९ जुलाई, १९४०

प्रिय भाई,

आपका पत्र अभी-अभी पढ़ा है। आपकी अनासक्ति[1] आश्चर्यजनक है। बापा[2] सड़क-निर्माण, हरिजनों, भीलों, सोसाइटीके[3] मामलों, उपेक्षित कार्यों आदि कई विषयोंपर प्रमाण-पुरुष हैं। लेकिन मुझे यह मालूम नहीं था कि तुलसीदासके भी वे प्रामाणिक व्याख्याता हैं। मैं तो अपनी बहनोंके सामने सीताका उदाहरण अब भी रखूंगा। उससे आगे बढ़ने की प्रेरणा मैंने कभी नहीं दी है। लेकिन और लिखकर मुझे आपको उबाना नहीं चाहिए। मुझे सदा उस सीधे-सँकरे मार्गपर आरूढ़ रखिए।

स्नेह।

मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]

महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी, जिल्द ५, पृ० ३५२-५३ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे, **लेटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री**, पृ० ३२० भी

१. इस शब्दके प्रयोगके बारेमें टी० एन० जगदीशन् बताते हैं: "शास्त्रियरने यह पत्र, जो उपलब्ध नहीं है, सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटीपर आये एक गम्भीर संकटकी घड़ीमें पूनासे लिखा था। यही कारण है कि गांधीजी ने 'अनासक्ति' शब्दका उल्लेख किया है।"

२. अमृतलाल वि० ठक्कर

३. भारत सेवक मण्डल (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी)

३०४. पत्र : विजयाबहन म० पंचोलीको

सेवाग्राम
९ जुलाई, १९४०

चि० विजया,

हम लोग कल रातको यहाँ पहुँचे, और वा ने खबर दी कि तूने नारणभाई[1] को विदा कर दिया। मै तो सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। वे बेचारे कष्टसे मुक्त हुए और तुम सब चिन्तासे मुक्त हो गये। तू हिम्मतसे काम ले रही है, लेकिन तेरे अन्तरका दुःख मै तेरे पत्रमे पढ़ पाता हूँ। लेकिन तू दुःखी मत हो। जितनी जल्दी बने, यहाँ आ जा। अमृतलाल यहाँ नही है। तेरे पत्र उसे भेज दूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१३०)से। सी० डब्ल्यू० ४६२२ से भी, सौजन्य : विजयाबहन म० पंचोली

३०५. पुर्जा : मुन्नालाल गंगादास शाहको

[९ जुलाई, १९४०][2]

तार भेजने और पत्र भेजने में कोई बहुत फर्क नही पडेगा। पत्र लिखना ही ठीक होगा। कल तो पत्र मिल ही जायेगा। तुम लिखो, और मै भी लिखता हूँ। मेरा पत्र आकर ले जाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३४)से। सी० डब्ल्यू० ७०९६ से भी, सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

१. विजयाके पिता

२. ९-७-१९४० के एक पुर्जेमें मुन्नालाल शाहने गांधीजी से अपनी पत्नी कंचनको तार करनेकी अनुमति माँगी थी। उपर्युक्त पुर्जा उसका जवाब है।

३०६. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेवाग्राम, वर्धा
९ जुलाई, १९४०

चि० अमला,

तूने जो लिखा है, वह याद रखूंगा और जो आवश्यक होगा वह करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

डॉ० मार्गरेट स्पीगल
आइवेनहो
बैंक वे बाथ्सके सामने
बम्बई, फोर्ट

मूल गुजरातीसे : स्पीगल पेपर्स, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३०७. पत्र : वसंतलालको

सेवाग्राम, वर्धा
९ जुलाई, १९४०

भाई वसंतलाल,

चि० भागीरथी और उसके पतिको मेरे आशीर्वाद। आशा रखें के दोनो सुखी होंगे और यथाशक्ति देशसेवा करेंगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०२५६)से

३०८. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
१० जुलाई, १९४०

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला

देशी राज्य परिषद्की कार्यकारिणीमे शामिल हो जाओ। स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८३)से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ७२९२ से भी

३०९. पत्र : अमृतकौरको

१० जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

तुम्हारे दो पत्र मिले। मै तुमको पत्र बिलकुल लिखूंगा ही नही, ऐसा नही। आज ही तुमको तार दिया है कि तुम देशी राज्य परिषद्की कार्यकारिणीमे सम्मिलित हो सकती हो। सच तो यह है कि तुम्हारी नामजदगीमे मेरा भी कुछ हाथ है। मुझसे पूछा गया था और मैंने अनुमोदन कर दिया। मै तुम्हे इसके बारेमे बताना भूल गया था।

मै जब गुजरातीमे लिखता हूँ तब भी उसका हिन्दी अनुवाद तो देना ही होता है। और वह अपील[1] लिख देने के बाद अब मेरी कलमसे लिखे कुछ अंग्रेजी लेख[2] भी प्रकाशित होंगे।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८२) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२९१ से भी

१. देखिए पृ० २६१-६४।
२. देखिए "कोई पश्चाताप नहीं", १७-७-१९४० भी।

३१०. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

प्रिय मलकानी,

फिलहाल अखिल भारतीय चरखा संघकी ओरसे [रुपये-पैसेकी] बिलकुल कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती। मैं कुछ धन जुटाने की कोशिश कर रहा हूँ। वहाँ जितना भी कर सकते हो, तुमको करना चाहिए। तुम्हारा काम टेढा है, मैं जानता हूँ। यदि हिन्दी प्रचार-कार्य तुम्हारे बसका न हो तो तुम्हें साफ मना कर देना चाहिए।

स्नेह।

बापू

प्रोफेसर ना० मलकानी,
तिलक कांग्रेस भवन
हैदराबाद, सिन्ध

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३९) से

३११. पत्र : मार्गरेट जोन्सको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

प्रिय कमला,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। .[2] साथमें चन्देलके लिए एक पत्र[3] भेज रहा हूँ। यहाँ तुम्हें अच्छा लगा, यह जानकर खुशी हुई। जब चाहो तब फिर आ जाना।

स्नेह।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]
बापू—कन्वर्सेशन्स एँड कॉरेस्पॉन्डेंस, पृ० १८८

१. एक अंग्रेज महिला, जो एफ० मेरी बारके दक्षिण आफ्रिका चले जाने के बाद खेड़ीमें ग्रामोद्धार-कार्य कर रही थीं। उन्होंने भारतीय नाम कमला अपना लिया था।

२. साधन-सूत्रके अनुसार

३. देखिए अगला शीर्षक।

३१२. पत्र : चन्देलको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

भाई चन्देल,

तुमने बड़ा साफ पत्र लिखा है। उसे पाकर बहुत खुशी हुई। अगर तुम खेडी से निकल सको तो बेहतर यही होगा कि तुम अपने ही गाँवमें काम करो। लेकिन वहाँ जाओ तो हमेशाके लिए जाओ। पर विचार करने की सबसे पहली बात यह है कि क्या तुम खेडीके कामको ठीक चलती हालतमें छोडकर निकल सकते हो। ऐसा नही होना चाहिए कि तुम्हारे चले जाने से वह बिलकुल बिखर जाये। अच्छा हो, तुम कुछ दिन मेरे पास आकर रहो और बातचीत करके इन सब बातोंको तय कर लो।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]
बापू–कन्वर्सेशन्स एंड कॉरेस्पॉन्डेंस, पृ० १८८-८९

३१३. पत्र : एस० आर० वेंकटरामन्‌को

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

प्रिय वेंकटरामन्,

'हरिजन' के तमिल संस्करणके बारेमें आपको राजाजी से मिलना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री एस० आर० वेंकटरामन्
सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी
रायपिटा
मद्रास

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०५०४) से

१. यह पत्र गांधीजी ने हिन्दीमें लिखा होगा, क्योंकि साधन-सूत्रके अनुसार "चन्देलके नाम गांधीजी के सारे पत्र हिन्दीमें हैं।" किन्तु इसका अंग्रेजी अनुवाद ही उपलब्ध होने के कारण इसे अंग्रेजीसे पुन. अनूदित करके देना पड़ा है।

३१४. पत्र : पुरातन बुचको

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

चि० पुरातन,

तूने भयानक समाचार दिया है। मुझे सन्देह तो था ही। शराबके बारेमें क्या किया जाये? हम हारेंगे नहीं।

बापूके आशीर्वाद

श्री पुरातन बुच
हरिजन आश्रम
साबरमती
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१७७)से

३१५. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

चि० प्रभा,

तू कितनी आलसी है! और मुझसे तुरन्त जवाब चाहती है। अगर पटनामें फिलहाल कोई काम न हो और जयप्रकाशकी भी इच्छा हो तो राजेन्द्र बाबूसे पूछकर यहाँ चली आ और अपनी तबीयत ठीक कर ले। हजारीबाग भी न जाना हो, तो तू यहाँ क्यों नहीं आ सकती? यहाँ आई, तो हम लोग भविष्यके लिए योजना बनायेंगे।

सुशीला अभी तो दिल्लीमें अपने कॉलेजके अस्पतालमें काम कर रही है।

विजयाके पिता गुजर गये। शायद वह कुछ दिनके लिए यहाँ आयेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४५)से

३१६. पत्र : चक्रैयाको

सेगाँव, वर्धा
११ जुलाई, १९४०

चि० चक्रैया,

तेरा खत मिला। पैसेके बारेमे तूने लिखा वह ठीक नही है। दुनिया पैसेकी नही हैं। निर्जल रेगिस्तानमे पैसे क्या कर सकते है? मैंने इनकार किया धर्म समजकर। तू घर पर जाय तो वहा खानेका धर्म हो जाता है। पीछे जाहिरमें से पैसे क्यो लिया जावे? जो तेरी सेवा अब हो रही है वह पैसेसे नही, लेकिन प्रेमसे शर्माजी तेरी सेवा करते है उसके लिये मुझे पैसे कहा देने पडते है? हम अच्छे रहे तो पैसेकी दरकार कम रहती है। तेरा तो भगवानने अबतक निभाया है, और भी निभायगा। धीरज और श्रद्धा कभी नही छोड़ना। मैं दिल्ली गया था, वहा भी तेरे लिये बात करके आया हूँ। होमीयोपेथीके दवासे अच्छा हो जायगा तो बड़ी बात होगी। आशा है कि तू बिलकुल अच्छा हो जायगा।

शर्माजी का खत उन्हे देना।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१११)से। सी० डब्ल्यू० ९१८१ से भी

३१७. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
[११ जुलाई, १९४० के पश्चात्][1]

चि० मणिलाल,

मेरीबहन बार बहुत श्रेष्ठ सहकार्यकर्त्री है। इसे घर ले जाना। कोई मदद चाहिए तो देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१६)से

१. देखिए पृ० २९९ की पा० टि० १।

३१८. पत्र : राधाको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जुलाई, १९४०

चि० राधा,

आशा है मांके न रहने से तू निराश नहीं हो गई होगी। उन्होंने अच्छी उम्र पाई। भगवान्‌ने उनके अनेक मनोरथ पूरे किये और वे तुम सबको सुखी छोड़कर गई हैं। वैसे माँ कितनी भी बूढ़ी होकर जाये, बच्चोंको उसका अभाव तो खलता ही है। उसे धैर्यके साथ सहन करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२३)से

३१९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जुलाई, १९४०

चि० प्रेमा,

तेरा सर्वस्वार्पणका पत्र मिला। इससे कमकी तुझसे आशा भी नहीं थी। मेरी चिन्ता न करना। मेरे लिए निराशा-जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। कार्य-समितिके प्रस्तावसे वैसा कोई आघात भी नहीं लगा। 'हरिजन' और 'हरिजनबन्धु' पढ़ती रहना। मुझे नई रचना तो करनी ही पड़ेगी। लेकिन ऐसे कामके लिए मैं अब भी अपनेको बूढ़ा नहीं मानता।

अपनी वर्षगाँठके लिए गाड़ी-भर आशीर्वाद ले। वर्षगाँठ आई, यानी एक वर्ष उम्रमें से कम हो गया न?

मेरा वहाँ आना जरा भी निश्चित नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०९)से। सी० डब्ल्यू० ६८४८ से भी; सौजन्य प्रेमाबहन कंटक

३२०. पत्र: नरहरि द्वा० परीखको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जुलाई, १९४०

चि० नरहरि,

डॉ० मेहताके पुत्र भाई मगनलाल वहाँ हैं। आश्रमके पतेपर उन्हें पत्र[1] भेज रहा हूँ। वे जहाँ भी रहते हों, उक्त पत्र उनके पास भिजवा देना। जो मदद जरूरी हो देना। और शहरके मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंसे उनका परिचय करा देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९११८)से

३२१. पत्र: मगनलाल प्रा० मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जुलाई, १९४०

चि० मगन,

तेरा पत्र मिला था। मैं दिल्ली और अन्य स्थानोंमें घूम रहा था, इसलिए तुरन्त उत्तर नहीं दे पाया। रतिलालकी[2] तबीयत कैसी है? उसका दिमाग कैसा है? चम्पा[3] आज यहाँ आई है, दु:खी है। उसका क्या किया जाये?

तुझे वहाँके लोगोंसे पहचान करनी चाहिए। नरहरिभाईको लिख रहा हूँ।[4] वे परिचय करा देंगे। अम्बालालभाई वगैरहसे और कांग्रेसके नेताओंसे मिल लेना। चम्पाने बताया कि तूने लाल बँगला[5] छोड़ दिया है और अलग कहीं रहने लगा है। यह पत्र आश्रमके पतेपर भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०१७)से, सौजन्य. मंजुला मेहता

१. देखिए अगला शीर्षक।
२. मगनलाल प्रा० मेहताके भाई
३. रतिलाल मेहताकी पत्नी
४. देखिए पिछला शीर्षक।
५. आश्रमके अहातेके निकट डॉ० प्राणजीवन मेहताका मकान

३२२. पत्र : कुँवरजी खेतसी पारेखको

सेवाग्राम
१२ जुलाई, १९४०

चि० कुँवरजी,

कचन यहाँ आ गई है। आशा है, उसके आने से असुविधा नही होती होगी। भोजकभाई तुम दोनोका भोजन बनाते है, उसमें भी यदि जरा भी असुविधा होती हो तो तुम अपने भोजनकी व्यवस्था अलग कर लेना। बच्छराजभाईसे सलाह लेकर ठीक प्रबन्ध कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७४१)से। सी० डब्ल्यू० ७२१ से भी, सौजन्य : नवजीवन न्यास

३२३. पत्र : भोलानाथको

सेवाग्राम, वर्धा
१२ जुलाई, १९४०

भाई भोलानाथ,

तुमारा पत्र मैं कल ही पढ सका। मैंने लिखने का निश्चय तो किया ही था। कैसे रह गया मैं नहिं कह सकता। लेकिन हूआ सो ठीक ही हूआ है। तुमारे कामो में दखल न दें तो काफी समझा जाय।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १३७९)से

३२४. अहिंसाका सर्वोत्तम क्षेत्र

पिछले हफ्ते मैंने अहिंसाके तीन क्षेत्रोंके बारेमे लिखा था।[1] आज चौथे और सर्वोत्तम क्षेत्रकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह है कौटुम्बिक क्षेत्र। यहाँ 'कौटुम्बिक' का अर्थ थोडा व्यापक समझना चाहिए। जिस-जिस सस्थाके हम सदस्य हो, उस-उस सस्थाके सब सदस्योंको एक कुटुम्ब-रूप ही मानना चाहिए। इस क्षेत्रमें अहिंसाके प्रयोग सफल होने ही चाहिए। अगर ऐसा न हो, तो समझना चाहिए कि हममे शुद्ध अहिंसाका पालन करने की शक्ति नही है, क्योकि जिस प्रेमका पालन हम अपने कुटुम्बमे अथवा अपनी सस्था या अपने सगे-सम्बन्धियो या साथियोके प्रति करते है, उसी प्रेमका पालन हमे अपने शत्रु अथवा चोर-डाकुओके प्रति करना है। अगर हम पहलेमे असफल रहे, तो दूसरेमे सफल होने की आशा करना आकाश-कुसुम प्राप्त करने की तरह होगा।

सामान्यत हम यह मान लेते है कि यदि हम कुटुम्ब अथवा संस्थामे अहिंसाका पालन न करें, तब भी राजनीतिमे तो कर ही सकते है। यह केवल भ्रम है। जिसका हम आजतक पालन करते आये है, उसे अहिंसाका नाम देकर हम अहिंसा को बदनाम करते है। ऐसी लँगडी अहिंसा संकटकी स्थितिमें हमारे काम नही आ सकती। अहिंसाकी बारहखड़ी कुटुम्ब मे ही सीखी जा सकती है। यदि वहाँ हम पास हो जाये तो सभी क्षेत्रोमे पास हो सकते हैं, यह मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ। क्योकि अहिंसक मनुष्यके लिए तो सारा संसार ही कुटुम्ब है। जो ऐसा मानता है, वह किससे डरेगा? अथवा किसे डरायेगा?

इसपर कहा जा सकता है कि उपर्युक्त शर्तके अनुसार तो अहिंसक लोग बहुत कम ही बच रहेगे। हाँ, यह सम्भव है। लेकिन यह मेरी शर्तका जवाब नही है। जो अहिंसामे विश्वास रखते है, उन्हे अहिंसा-पालनकी शर्त तो जान ही लेनी चाहिए। उससे भटककर वे उसका त्याग करना चाहे तो भले करें। जब कांग्रेसकी कार्य-समितिने भी स्थिति स्पष्ट कर ही दी है, तब यह अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसाके पालन का दावा करनेवाले भी यह समझ ले कि अहिंसाकी उनसे क्या माँग है। भले ही ऐसा करने से अहिंसकोकी सेना बिलकुल छोटी क्यों न हो जाये। सच्ची लेकिन छोटी सेनाके कभी बड़ी होने की आशा की जा सकती है। झूठी सेनामें से तो छोटी या बडी कुछ भी नही बन सकती।

मेरे लिखने का कोई यह अर्थ न करे कि शर्तोंका पूर्णत पालन करनेवाले ही अहिंसक सेनामे शामिल हो सकते हैं। जो इन शर्तोंको स्वीकार करें और उनका

१. देखिए "मेरी कोई सुनता नहीं", पृ० २८२-८४।

पालन करने में उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्नशील हो, वे भी सेनामें शामिल हो सकते है। तब दल पूर्ण अहिंसकोका नही होगा, वल्कि अहिंमाका पालन करने का शुद्ध प्रयत्न करनेवालो का होगा।

पचास वर्षोसे मेरा प्रयत्न अपने जीवनको उत्तरोत्तर अहिंसामय बनाने तथा साथियोको वैसी प्रेरणा देने का रहा है। मेरा मत है कि इस प्रयत्नमें मुझे उचित प्रमाणमें सफलता मिली है। ज्यो-ज्यो वाहरका वातावरण कमजोर या निराशाजनक मालूम होता है, त्यो-त्यो मेरा उत्साह और मेरी श्रद्धा वढती है, और मैं अहिंसाकी शर्तोको अधिक स्पष्टताके साथ देख पाता हूँ।

सेवाग्राम, १५ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनवन्धु, २०-७-१९४०

३२५. एक अनुकरणीय सत्प्रयास

विडला-परिवारकी ओरसे राजपूतानाके पिलानी ग्राममें विडला कालेजके नामसे एक सस्था चल रही है। मुझसे कई वार कहा गया कि मैं उसे देखने जाऊँ और वहाँ जाने की मेरी तीव्र इच्छा भी रही है, लेकिन वहाँ तक जाने का समय मैं नही निकाल पाया। ठक्कर वापा उसे देख आये है। उन्होने मुझे उसका सुन्दर विवरण भेजा था और वहाँ जाने का आग्रह किया था। लेकिन अभी हाल में सेठ घनश्यामदासने उसका विवरण देनेवाली एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जो मेरे देखने में आई। पुस्तिका का उद्देश्य इस सत्प्रयासका परिचय देना है। इसलिए उसमें जितनी कला उँडेली जा सकती थी, उतनी उँडेली गई है। पुस्तिका सुन्दर कागजपर छपी है। भाषा आकर्षक है। चित्रोका चयन सुन्दर है और वे अच्छे ढगसे सजाये गये है। इसलिए पढने-वाले का जी सहज ही उसे पढने को ललचा जाता है। एक-दो महीने तो यह पुस्तिका महादेवके पास पडी रही। वे मुझे यह पुस्तिका तव देनेवाले थे जव मैं फुरसतमें होऊँ। आखिर शिमला जाते समय महादेवने मुझे उक्त पुस्तिका देने की हिम्मत की। अपने कामसे जरा अवकाश पाकर रेलगाडीमें मैंने यह पुस्तिका हाथमें ली तो उसे लिये ही रह गया। पुस्तिका विद्यार्थियोकी नोटवुकके आकारकी है। उसके ४७ पृष्ठ पूरे पढकर ही मैंने फिर दूसरा काम हाथमें लिया। जो शिक्षामें रुचि रखते हो, उन्हे यह पुस्तिका पिलानीके विडला कालेजके मन्त्रीको पत्र लिखकर मँगा लेनी चाहिए।

इस सत्प्रयासका सक्षिप्त इतिहास मैं नीचे दे रहा हूँ

यह संस्था विडला पाठशालाके नामसे एक वहुत मामूली मकानमें चालीस वरस पहले स्थापित की गई थी। अव उसने विशाल भूमिपर भव्य भवनोका रूप धारण कर लिया है। वहाँ इण्टरमीडिएट कालेज है। उसमें ३३ शिक्षको आदिके मकान है। ५ छात्रालय है, जिनमें २९५ विद्यार्थी रहते है। इनमें से २७ हरिजन है। १८

खेलके मैदान है। एक पुस्तकालय है, जिसमें ३६०८ हिन्दी और ६७७२ अंग्रेजीकी पुस्तकें है। एक हाईस्कूल है, जिसमे ७९१ विद्यार्थी पढ़ते है। एक कालेजमे १६५ विद्यार्थी है। कन्या शालामे १५७ लड़कियाँ पढ़ती है। इसके अतिरिक्त सस्थाकी ओरसे १२८ ग्रामीण शालाएँ चल रही है, जिनमे ४६३६ लडके और २०० लडकियाँ पढती है। विद्यार्थियोके लिए व्यायाम आदि अनिवार्य है। सगीत भी सिखाया जाता है। विद्यार्थियों को अनेक उद्योग सिखाये जाते है। खेती होती है और दुग्धालय भी अच्छे आधार पर चल रहा है। इनके सिवाय दर्जीका काम, रँगाईका काम, छपाईका काम, किताबो की जिल्द बाँधने का काम, बढईगिरी, कताई, बुनाई, दरी बनाना, चमड़ेका काम वगैरह भी सिखाये जाते है। उम्दा नस्लकी गाये, भेड़े और बकरे पाले गये है। नई तालीमका प्रयोग भी शुरू किया गया है। कोई ऐसी चीज नही बची जिसकी ओर सचालको का ध्यान न गया हो। प्रार्थना, बौद्धिक और औद्योगिक विकास, पौष्टिक आहार, आरोग्यरक्षण, सब व्यवस्थित ढगसे चल रहे हैं। विद्यार्थियोंकी खुराक ऐसी रखी जाती है जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहे। ऐसा प्रयत्न किया जाता है कि शिक्षक और विद्यार्थी आपसमे एक ही परिवारके सदस्यो की तरह रहे।

इस सस्थाका जन्म सेठ शिवनारायण द्वारा अपने दो पौत्रो, सेठ रामेश्वरदास और सेठ घनश्यामदासको शिक्षा देने की इच्छासे हुआ। लेकिन केवल मेरे पौत्र पढे, गाँवके दूसरे लड़कोको उसका लाभ न मिले, यह सेठजी को अच्छा नही लगा। इसलिए उन्होने पाँच रुपयेका एक शिक्षक रखा और बिडला पाठशाला खोली। उस नन्हे बीजसे यह महावृक्ष फैला है, जिसका वर्णन मैंने ऊपर किया है। तब स्वार्थके साथ परोपकारका जो मेल साधा गया था, वह अब बिड़ला-बन्धुओमे उतरा है। उनमे भी शिक्षा, स्वास्थ्य आदिमे अधिकसे-अधिक रुचि सेठ घनश्यामदासने ली। पिलानीकी यह विशाल सस्था उन्ही की लगन, बुद्धि तथा दिलचस्पीका फल है। इस सस्थाको सर मॉरिस ग्वायर आदि गण्यमान्य व्यक्ति देख आये है, और उन्होने उसकी मुक्त कण्ठसे प्रशसा की है। इस अधूरे कालेजको पूरा और आदर्श कालेज बनाने का घनश्यामदासजी का प्रयत्न कई वर्षोसे चल रहा है। लेकिन पिलानीके देशी राज्यमे स्थित होने के कारण वहाँ सब-कुछ बहुत धीमी गतिसे ही चलता है। हम आशा करते है कि जयपुर राज्य ऐसी श्रेष्ठ शिक्षा-प्रवृत्तिको पूरा प्रोत्साहन देगा और शीघ्र ही कालेजको पूरा करने की अनुमति देगा। मेरी रायमे तो इतनी बुद्धिमत्ता और व्यवस्थापूर्वक चलाई जानेवाली सस्थाएँ हिन्दुस्तानमे थोड़ी ही है।

यदि हम आधुनिक कालेजकी आवश्यकताको स्वीकार करे, तो बिड़ला कालेजमें अनेक विषयोका जो समन्वय साधा गया है, वह अन्यत्र शायद ही दिखाई देगा।

सेवाग्राम, १५ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

३२६. अहिंसा कैसे सीखी जा सकती है?[1]

प्र० : आप अहिंसा-अहिंसा रटते रहते हैं, इससे लोग अहिंसक नहीं हो जायेंगे। अब जब आपने गुजरातीमें लिखना शुरू किया है, तो आपको लोगोंको बताना चाहिए कि वे अपने जीवनमें सबलकी अथवा सच्ची अहिंसा किस प्रकार उतारें?

उ० आपका प्रश्न अच्छा है और ठीक मौकेसे पूछा गया है। आपके प्रश्नका उत्तर आपके पूछने से पहले भी, मैंने अनेक बार छिटपुट रूपमें दिया है। फिर भी, मुझे स्वीकार करना चाहिए कि इसी प्रश्नको विषय बनाकर कुछ लिखा हो, इसकी मुझे याद नही है। जितना देना चाहिए था उतना जोर मैंने इस विषयपर नही दिया। मेरा समय सरकारसे लडने-भरको पर्याप्त साधन जुटाने में बीता है। आज तक यही उचित था। लेकिन हमने देख लिया कि ऐसा करने से अहिंसा अपग रह गई है। सबलकी अहिंसाकी हम झाँकी तक नही ले सके हैं। अब अगर हमे आगे बढना है तो पहलेकी अहिंसाको कुछ समयके लिए भूलना पडेगा। अगर हममें सच्ची अहिंसाका प्रादुर्भाव होगा, तो हम अपनी पहलेकी अहिंसाको भी उसके उज्ज्वल रूपमे देख सकेंगे और अल्प प्रयासमे ही उसमे शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त करेंगे। मैं अब काग्रेससे अलग हो गया हूँ, इसलिए काग्रेसके नामपर अब मैं अकेला भी सविनय अवज्ञा नहीं कर सकता। लेकिन व्यक्तिगत अवज्ञा तो जब करना चाहूँ कर सकूँगा। इसलिए यह मान लेने की कोई जरूरत नही है कि जबतक सच्ची अहिंसाका पाठ सीखा जा रहा है, तबतक सविनय अवज्ञा बिलकुल बन्द रहेगी। लेकिन मेरी कल्पनाके अहिंसक दलमे प्रवेश करनेवाला अपने बारेमें यह आशा न रखे कि वह तत्काल सविनय अवज्ञा कर सकेगा। उसे समझ लेना चाहिए कि जबतक उसने सच्ची अहिंसाका अनुभव नहीं किया, तबतक वह सविनय अवज्ञा कर ही नहीं सकता।

सच्ची अहिंसाके नाममे ही भडक उठने की जरूरत नहीं है। इस अहिंसाको हम स्पष्टताके साथ समझ ले और इसकी सर्वोपरि उपयोगिताको स्वीकार कर ले, तो यह आचरण करने में उतनी कठिन नही है जितनी कि मानी जाती है। इसके लिए भारत-सावित्रीवाला श्लोक[2] बार-बार दुहराना आवश्यक है। उसमें ऋषि-कवि पुकार-पुकारकर कहते हैं कि जिस धर्ममें शुभ अर्थ और शुभ काम सहज ही समाये हुए हैं ऐसे धर्मका आचरण हम क्यो नही करते। यह धर्म तिलक लगाने अथवा गगास्नान करने का नही है, बल्कि अहिंसा और सत्यका है। हमारे यहाँ दो अमर वाक्य हैं "अहिंसा परम धर्म है", और "सत्यके सिवाय और दूसरा धर्म

१. यह और अगला शीर्षक, दोनों "प्रश्नोत्तरी" से लिये गये हैं।
२. देखिए "मेरी कोई नहीं सुनता" शीर्षक लेखमें उद्धृत श्लोक, पृ० २८२-८४।

नही है।" इसमे इच्छा करने के योग्य समस्त अर्थ और काम निहित है। तो फिर हम हिचकिचाते क्यो है? फिर भी, स्वीकार करना पडता है कि जो सरल है, वही लोगोको कठिन मालूम पडता है। यह वृत्ति हमारी जडताको सूचित करती है। यहाँ जडता शब्दको निन्दाके अर्थमे नही समझना चाहिए। यहाँ मैंने पारिभाषिक अग्रेजी शब्दका अनुवाद किया है। वस्तु-मात्र मे जडता नामक गुण रहता है और वह अपनी जगह उपयोगी भी है। इसीलिए हम टिके हुए है। जड़ताका यह गुण न हो, तो हम दौडते ही रहे। लेकिन इस जड़ताके वशीभूत हो जाने से हम लोगोमे इस मान्यताने घर कर लिया है कि सत्य और अहिंसाका पालन करना बहुत कठिन है। यह जडता दोषयुक्त है। इसके दोषको दूर करना आवश्यक है। पहले तो हमें सकल्प करना चाहिए कि असत्य और हिंसासे चाहे जो लाभ हो, हमारे लिए वह निषिद्ध है, क्योंकि वह लाभ लाभ नही बल्कि हानि-रूप होगा। यदि हम इतना निश्चयपूर्वक मान ले, तो दोनो गुण सरलतासे सीखे जा सकते है।

लेकिन यहाँ तो हम अहिंसाकी ही बात करेगे। आजतक हम लोग चरखे आदिको अहिंसाका आधार-रूप मानते आये है और वे ऐसे ही है और सदा रहेगे।[1] लेकिन हमे आगे बढना है। मै मान लेता हूँ कि अहिंसाका पूर्ण आचरण करनेवाले ने अपने माता-पिता-पुत्र आदि तथा पति-पत्नी, नौकर-चाकर, इन सबके साथ तो अपने सम्बन्ध अहिंसामय कर ही लिये होगे अथवा कर लेगे। लेकिन देशमे जो उपद्रव होते है, उनका क्या हो? हिन्दू-मुसलमानोके झगडोका क्या इलाज है? चोर-डाकुओके उपद्रवके समय वह क्या करेगा? जब ऐसा हो तब मर-मिटने का सकल्प कर लेना-भर काफी नही है। इस तरह मर-मिटने के लिए भी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। मै हिन्दू होऊँ तो मुझे मुसलमानो तथा अन्य विधर्मी जातियोके प्रति अपने अन्दर भाईचारेकी वृत्तिका विकास करना चाहिए। मुझे अपने आसपास रहनेवाले विधर्मियोके साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए, जैसा मै अपने सहधर्मियोके साथ करता हूँ अथवा होना चाहिए। उनकी सेवाके अवसर खोजकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इस सेवामें डर नही होना चाहिए, कृत्रिमता नही होनी चाहिए। अहिंसाके शब्दकोशमे भयके लिए स्थान ही नही है। अपने अन्दर ऐसा भाईचारा विकसित करनेवाले ही साम्प्रदायिक दंगोमे मर-मिट सकते है। यही बात चोर-डाकुओके बारेमे भी है। चोर-डाकुओंकी सामान्यत. कोई विशेष जाति नही होती, फिर भी इतना तो हम जानते ही है कि सामान्यत अमुक जातियोमें चोर-डाकू पाये जाते है। उनके साथ हमे सम्पर्क साधना चाहिए। उदाहरणके लिए, रविशकर महाराज इसी कोटिके व्यक्ति है। उन्होंने यह शुभ कार्य सहज भावसे किया है। ऐसा करनेवाले बहुत कम मिलेगे। यह क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें सच्चा प्रेम होने के अतिरिक्त और किसी योग्यताकी

१. लगता है, मूलमें यहाँ कोई चूक हो गई है, क्योंकि उसका अनुवाद होगा "आजतक हम चरखे आदिको अहिंसासे स्वतन्त्र मानते आये है और वे ऐसे ही हैं तथा रहेंगे?" यह बात गांधीजी की चिन्तन-धारासे मेल नहीं खाती। इसके अतिरिक्त, *हरिजन*में प्रकाशित इसके अंग्रेजी अनुवादसे भी यहाँ पाठमें दिये गये अनुवादकी पुष्टि होती हैं।

आवश्यकता नहीं होती। रविशंकर महाराजको अंग्रेजीका बिलकुल ज्ञान नहीं है। गुजराती भी वे केवल कामचलाऊ जानते हैं। भगवान्ने उन्हें पड़ोसीके प्रति प्रेम का गुण दिया है, और उनकी सादगी ऐसी है कि सबकी नजरमें चढ़ जाती है।

अत जहाँ-जहाँ अपने प्रत्येक कार्यमें अहिंसाका आचरण करनेवाले रहते हों, वहाँ उनमें से हरएकको अपने लिए कार्यक्रम बना लेना चाहिए। उनमें इतनी सजगता होनी चाहिए कि वे अपने प्रत्येक क्षणका हिसाब दे सकें।

सेवाग्राम, १५ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

३२७. एक और दरार

प्र० : कांग्रेसकी कार्य-समितिके प्रस्तावका यही अर्थ हुआ न कि कांग्रेसमें पहलेसे ही जो दरारें मौजूद हैं, उनमें एक और जुड़ गई?

उ० यह आशंका अनुचित है। पहले तो यह देखना है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें क्या होता है। मान लीजिए कि उसमे पता चले कि अधिसंख्य सदस्य अहिंसामें विश्वास रखनेवाले हैं तो सरदार वगैरह खुश ही होंगे। उन्होंने जो निर्णय किया है वह बहुत बेचैनीका अनुभव करते हुए और लोगोंके प्रतिनिधियोंके रूपमें किया है। वे मानते हैं कि कांग्रेसमें शुद्ध अहिंसाका पालन करनेवाले लोग थोड़े-से ही हैं। ऐसा मानने के लिए उनके पास सबल कारण है। यदि प्रश्न केवल स्वयं उन्हीं का होता तब तो वे निस्संकोच अहिंसाकी ओर ही जाते। इसलिए मान लें कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें सच्चे अहिंसक लोग अल्पमतमें पाये जाते हैं तो उस हालतमें उन अहिंसक सदस्योंका धर्म कांग्रेससे अलग हो जाना और इस तरह उसकी और अधिक सेवा करना होगा। कांग्रेसमें रहने से संघर्ष होगा ही। अधिसंख्य सदस्योंको अपनी नीतिपर अमल करते हुए बहुत-से ऐसे प्रस्ताव पास करने होंगे जिनसे अहिंसक सदस्य सहमत न हो पायेंगे। इससे वाद-विवाद होगा। यह अहिंसाका मार्ग नहीं। अहिंसा तो खुद ही एक ओर हटकर मार्ग देती है। त्याग-पत्र देने के बाद कांग्रेसके अल्पमतवाले लोग रचनात्मक कार्यमें पूरी मदद करेंगे। जहाँ मतभेदकी गुंजाइश न हो ऐसे कामोंमें पूरी मदद देते हुए भी वे पदोंका तनिक भी लालच नहीं रखेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर शुद्ध अहिंसकोंका सच्चा दल सामने आता है तो कार्य-समितिका निर्णय ईश्वरकी एक कृपा ही माना जायेगा। अगर हर प्रान्तमें कुछ सच्चे अहिंसक होंगे तो न केवल कांग्रेस और भी निखरेगी, बल्कि उससे बाहर निकल जानेवाले उसके सेवक उसे शुद्ध अहिंसाकी ओर ले जायेंगे।

सेवाग्राम, १५ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

३२८. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जुलाई, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

उर्दूके बारेमे खयाल अच्छा है। इससे तुम्हे हिन्दू लेखकोंके उर्दू लेखनकी तथा उर्दू पत्र-पत्रिकाओ और पुस्तकोंकी समीक्षा मिल जायेगी। एक उर्दू साप्ताहिक होना चाहिए, जिसमे निष्पक्ष रूपसे झूठका जवाब दिया जाये। जान-बूझकर गढी गई झूठी बातोका निराकरण बड़ा दुष्कर कार्य है, लेकिन प्रयत्न करना चाहिए।

स्नेह।

बापू

श्री जवाहरलाल नेहरू
लखनऊ, स० प्रा०

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०; सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३२९. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

१५ जुलाई, १९४०

भाई वल्लभराम,

मै समझता हूँ। अगर तुम्हारी जरूरते पूरी करने की मुझमे सामर्थ्य होगी, तो मै तुम्हे सेवाग्राममें स्थान दूँगा। तुम गाँवमे रहकर वही आयुर्वेदको निखारो, तो मुझे अच्छा लगेगा। लेकिन मै मानता हूँ कि यह काम कठिन है। बम्बईमे तो सरल है। अगर तुम्हे लगे कि यह बात विचार करने योग्य है तो आ जाना। सोम, मंगल और बुधको छोडकर चाहे जिस दिन आ सकते हो। शंकरलालके बारेमें समझा। वालजीभाईके बारेमे भी समझा।

बापूके आशीर्वाद

वैद्यराज वल्लभराम
धन्वन्तरि आयुर्वेद असपताल
१५१ प्रिन्सेज स्ट्रीट, बम्बई-२

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९११) से; सौजन्य : वल्लभराम वैद्य

३३०. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जुलाई, १९४०

भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारे कार्यक्रममें रद्दोवदल नही करना चाहूँगा। लेकिन तुमने जो योजना वनाई थी उसे तुमने वदल दिया, यह अवश्य याद दिला देना चाहूँगा। तुम्हारा निर्णय यह था कि अपनी पुस्तक वम्वईमे आठ दिनोके अन्दर पूरी करके तुम यहाँ आ जाओगे और तव अपना काम यहाँ शुरू करोगे तथा अपनी विद्याका लाभ यहीके लोगोको दोगे। अगर तुम्हे अपनी दी हुई तारीखे मुकर्रर रखना जरूरी लगे तो वैसा करना। अगर जरूरी न लगे तो छोडकर जल्दी ही यहाँ आ जाओ।

वापूके आशीर्वाद

सरदार पृथ्वीसिंह

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६४१) से। सी० डब्ल्यू० २९५२ से भी, सौजन्य पृथ्वीसिंह

३३१. मैसूरका न्याय

श्री एच० सी० दासप्पाके मामलेपर अपना लेख[1] भेज चुकने के वाद मुझे वगलोरके एक वकीलका निम्नलिखित पत्र मिला है

> मैसूर रियासतके न्याय-विभागकी स्वतन्त्रताका सकेत देनेवाली काफी सामग्री अव आपको मिल चुकी है। निस्सन्देह, वह सर डार्सी रेलीके नियन्त्रण और मार्ग-दर्शनमें चलता है। उच्च न्यायालयके अन्य न्यायाधीश उन्हीं के नक्शेकदम पर चलते है, और ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं आता जव इन अवर न्यायाधीशोमें से किसीने मुख्य न्यायाधीशोके निर्णयोकी भाषा, शैली और स्वरकी ज्यादतियो पर भी उँगली उठाई हो। उच्च न्यायालय या न्याय-विभागमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करने का दावा करनेवाली सरकार, स्पष्ट ही, मैसूर उच्च न्यायालयके न्यायाधीशोसे पूरी तरह सन्तुष्ट है। पिछले दस-बारह वर्षोंके दौरान उच्च न्यायालयके न्यायाधीशो द्वारा ऐसे अनेक महत्त्व-

१. देखिए पृ० २९१-९२।

पूर्ण निर्णय दिये गये है जिनसे साफ जाहिर हो गया है कि किसी भी मनुष्य के नहीं, बल्कि केवल ईश्वरके भयकी दुहाई देनेवाले ये न्यायाधीश नौकरशाहीके दबावके सामने झुकते आये हैं। शायद इस व्यावहारिक आज्ञाकारिता के कारण ही रियासतमें राजनीतिक सुधारोंके सम्बन्धमें जारी किया गया राज्यादेश न्याय-विभागमें सुधारकी सिफारिशों पर इस तरह मौन है जिससे अनिष्टकी आशंका होती है। इन तमाम बुराइयोंकी पराकाष्ठा श्री दासप्पाके मामलेमें दिये गये इस फतवेमें देखने को मिलती है कि 'इस देशमें सत्यको बहुधा राजनीतिक नारेबाजीके गर्तमें ढकेल दिया जाता है।' देश शब्दका उल्लेख अपनी अनिष्टकारी शक्ति और फलितार्थोंकी दृष्टिसे इतना व्यापक है कि क्या कांग्रेसी और क्या गैर-कांग्रेसी, क्या रियासतोंकी प्रजा और क्या ब्रिटिश भारतके निवासी, सबके-सब इसकी लपेटमें आ जाते हैं। इस धृष्टतापूर्ण मान्यताके लिए सर डार्सी रेलीके पास क्या आधार है? और एक पूरे देशपर ऐसा आरोप लगाने के लिए उनके पास क्या सबूत था? श्री डार्सी रेलीने महज इसलिए श्री एच० सी० दासप्पाकी भर्त्सना की और उनकी वकालतकी सनद छीन ली कि उन्होंने एक ऐसा आरोप लगाया था जिसे वे सिद्ध नहीं कर पाये। क्या श्री रेलीका यह कृत्य नीति-संगत है, जबकि खुद उन्होंने एक न्यायिक निर्णयके माध्यमसे जरा बदले हुए रूपमें वही काम किया है जिसके लिए श्री दासप्पाको दण्डित किया गया?

पत्र-लेखककी शिकायत सर्वथा उचित है। लेकिन न्यायाधीश तो तमाम कानूनोंसे ऊपर होते हैं — कमसे-कम मैसूरमें। उनपर भी 'समरथको नहिं दोष गोसाईं' वाली बात ही लागू होती है।

सेवाग्राम, १६ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-७-१९४०

३३२. खान साहबकी अहिंसा

जबकि सभी जगह सच्ची अहिंसाकी होली जल रही है, तब खान साहबकी अहिंसा आज भी जीवन्त है, यह बात हमारे लिए दीप-स्तम्भके समान प्रकाश देनेवाली है। खान साहबका वक्तव्य[1] मनन करने लायक है। खान साहबको यही शोभा देता है। खान साहब पठान हैं। पठान तो, कहा जा सकता है, तलवार-बन्दूक साथ लेकर ही जन्म लेते हैं। जब वे और उनके खुदाई खिदमतगार रौलट अधिनियम-आन्दोलनमें कूदे, तब खान साहबने उनमें उनके हथियार छुड़वा दिये। सरकारके विरुद्ध लड़ना था, लेकिन खान साहबने अहिंसाका चमत्कार एक दूसरी ही जगह देखा। पठानोंमें वैर भँजाने का रिवाज इतना कठोर है कि यदि एक कुटुम्बीका खून हुआ हो तो उसका बदला लेना अनिवार्य हो जाता है। एक बार बदला लिया कि फिर दूसरे पक्षको उस खूनका बदला लेना पड़ता है। इस प्रकार बदला पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासतमें मिलता है, और वैरका अन्त ही नहीं आता। यह हुई हिंसाकी पराकाष्ठा, साथ ही हिंसाका दिवालियापन। क्योंकि इस प्रकार बदला लेते-लेते कुटुम्बोंका नाश हो जाता था। खान साहबने पठानोंका ऐसा नाश होते देखा, इसलिए उन्होंने समझ लिया कि उनका उद्धार अहिंसामें ही है। उन्होंने सोचा, 'अगर मैं अपने लोगोंको सिखा सकूँ कि हमें खूनका बदला बिल्कुल नहीं लेना है, बल्कि खूनको भूल जाना है, तो वैरकी यह परम्परा समाप्त हो जायेगी और हम जीवित रह

१. उक्त वक्तव्य इस प्रकार था: "कांग्रेसकी कार्य-समितिके कुछ प्रस्तावोंसे मालूम होता है कि उसका अहिंसाका प्रयोग स्थापित सत्ताके खिलाफ आजादीके लिए लड़ने तक ही सीमित है। भविष्यमें इसका प्रयोग कहाँतक और किस ढंगसे किया जायेगा, मैं नहीं कह सकता। निकट भविष्यमें शायद इसका कुछ पता चले। इस बीच कार्य-समितिमें बने रहना मेरे लिए मुश्किल है, इसलिए मैं इस्तीफा देता हूँ। इतना स्पष्ट कर दूँ कि मेरी मान्यता की तथा जिसका मैंने अपने खुदाई खिदमतगार भाइयोंको उपदेश दिया है, वह अहिंसा बहुत व्यापक है। वह हमारे समूचे जीवनको छूती है, और ऐसी अहिंसाका ही स्थायी मूल्य है। जबतक हम अहिंसाका ऐसा पूरा पाठ नहीं सीखेंगे, तबतक सरहदके लोगोंमें प्रचलित कुल-वैरसे उत्पन्न उन आपसी लड़ाई-झगड़ोंसे हम कभी छुटकारा नहीं पा सकेंगे जो उनके लिए शाप-रूप सिद्ध हुए हैं। जबसे हमने अहिंसाको स्वीकार किया है और खुदाई खिदमतगारोंने उसकी प्रतिज्ञा की है, तबसे हमें इन झगड़ोंको खत्म करने में काफी सफलता मिली है। अहिंसाने पठानोंकी हिम्मत बहुत बढ़ाई है। चूँकि पहले ये लोग औरोंकी बनिस्बत हिंसामें अधिक लिप्त थे, इसलिए अहिंसाको अपनाने से इन्हें औरोंकी बनिस्बत लाभ भी बहुत अधिक हुआ है। अहिंसाके सिवाय और किसी तरीकेसे हम सच्ची तथा प्रभावी आत्मरक्षा नहीं कर सकेंगे। इसलिए हम खुदाई खिदमतगारोंको, किसीको भी न मारते हुए खुद मरकर, अपने नामके अनुसार, खुदा और मानव-जातिके सच्चे सेवक बनना चाहिए।"

हरिजन, २१-७-१९४०।

सकेंगे तथा जीवन को सफल भी बना सकेंगे।' यह सौदा नकदका था। उनके अनुयायियोने उसे अगीकार किया, और आज ऐसे खिदमतगार देखने मे आते हैं जो बदला लेना भूल गये है। इसे कहते हैं बहादुरकी या सच्ची अहिंसा।

अब अगर खान साहब इस काग्रेसमे बने रहे, तो उनका जीवन-भरका काम मिट्टीमे मिल जायेगा। वे अपने पठानोसे किस मुँहसे कह सकते है कि 'तुम लड़ाईके लिए भरती हो जाओ, लेकिन वह बदला लेने का कानून तो रद्द हुआ ही मानो।' ऐसी भाषा पठान नहीं समझ सकते। वे तुरन्त कहेंगे, 'जर्मनी बदला ही ले रहा है न? इंग्लैड बचाव कर रहा है। वह हार जायेगा, तो भविष्यमे वह खुद भी बदला लेने की तैयारी करेगा। इसलिए इस लड़ाई और हमारे खूनका बदला खूनसे लेने मे रत्ती-भर भी फर्क नही है।' इस तर्कके सामने खान साहबका मुँह बन्द हो जायेगा इसलिए उन्होंने काग्रेससे निकलकर अपना काम जारी रखना ज्यादा ठीक समझा है।

खान साहबको कहाँतक विजय मिली है, मैं नही जानता। इतना जानता हूँ कि खान साहबकी श्रद्धा उनकी बुद्धिकी उपज नहीं है, केवल उनके हृदयसे उत्पन्न हुई है, और इसलिए वह अटल है। लेकिन उनके अनुयायी उनकी शिक्षाका पालन कहाँतक करते रहेंगे, यह खान साहब खुद भी नही कह सकते। उन्हें इसकी परवाह भी नही है। उन्हें तो बस अपना फर्ज अदा करना है। परिणाम वे खुदापर छोड़ देते हैं। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है। खान साहब पक्के मुसलमान है। मेरे साथ वे लगभग एक बरस रहे। इस दौरान वे नमाज पढ़ने मे कभी नहीं चूके, न रोजे रखने मे चूके। लेकिन खान साहबमे अन्य धर्मोके प्रति भी पूरा आदर है। उन्होंने थोड़ा 'गीता' का अध्ययन भी किया है। उन्होंने वाचन बहुत कम किया है। लेकिन वे जो पढ़ते या सुनते है, यदि वह ग्रहण करने के लायक हो, तो उसे ग्रहण करते उन्हे देर नही लगती। वे लम्बी बहसमें कभी नही पड़ते। थोड़ा समझ लेने के बाद तुरन्त 'हाँ' या 'ना' कह सकते हैं। खान साहबको स्पष्ट रूपमे सफलता मिल जाये तो उससे अनेक उलझने सुलझ सकती हैं। अभी कोई कुछ नही कह सकता। चाकके ऊपर मिट्टीका लोदा चढ़ा हुआ है उससे माट तैयार होगा या गागर, यह तो ईश्वर ही जानता है।

सेवाग्राम, १६ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २०-७-१९४०

३३३. वार्षिक कताई-यज्ञ

ऊपर लिखे निवेदनकी[1] ओर मैं समस्त पाठकोका ध्यान आकर्षित करता हूँ। ज्यो-ज्यो चरखा-जयन्तीके वर्षोकी सख्या वढती जा रही है, त्यो-त्यो चरखेको मिलने-वाला प्रोत्साहन भी वढना चाहिए। यदि हम राष्ट्रीय शालाके वार्षिक यज्ञको माप-दण्ड मानें, तो कहना पडेगा कि प्रोत्साहनकी मात्रा ठीक-ठीक वढी है। लेकिन दरिद्र-नारायणके पेटमे इतना वडा गड्ढा है कि वह अव भी वहुत प्रोत्साहनकी माँग करता है। करोड़ोके रोजगार और पेटकी भूख मिटाना एक भगीरथ कार्य है। उसके लिए प्रयत्न भी भगीरथ होना चाहिए। मै आशा करता हूँ कि सव चरखा-प्रेमी इस यज्ञमें पूरी तरह से भाग लेंगे और यज्ञकी शोभा वढायेंगे। यज्ञमे भाग लेनेवालो को मेरी सलाह है कि वे अधिक घटे तो काते ही, साथ ही प्रति घटा अपनी गति भी वढायें, चरखा अच्छा रखे, साफ रखे, पूनियाँ अच्छी वनाये, तकुएमें टेढापन न आने दें, तकुए के चक्करोकी जाँच करे, अर्थात् सक्षेपमे कहा जाये तो श्रमके साथ वुद्धिका पूरा मेल साधे। यदि ऐसा किया जाये तो उतने ही समयमे गति ड्योढ़ी या दूनी हो सकती है।

सेवाग्राम, १६ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनवन्धु, २०-७-१९४०

३३४. असंभव[2]

कुमारी म्यूरियल लेस्टर लिखती हैं :

जरा देखिए कि अपनी सवसे हालकी कृति 'आई सॉ गॉड डू इट' में शेरवुड एडीने[3] आपको कैसे गलत रूपमें पेश किया है। मुझसे उसमें से यह कतरन आपको भेजने को कहा गया है, ताकि अगर आप चाहे तो उसका उत्तर दे सकें। यह है वह उद्धरण :

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। यह निवेदन राष्ट्रीय पाठशाला, राजकोटके नारणदास गांधी द्वारा जारी किया गया था।

२. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३. अमेरिकन वाई० एम० सी० ए० के अधिकारी तथा इंडिया अवेकनिंग, द न्यू एरा इन एशिया और अन्य पुस्तकोंके लेखक।

"इस पूरे अध्यायमें मैंने दिखाया है कि अन्तःकरण-प्रेरित आपत्तिकर्त्ता कहलानेवाले कुछ लोग पूर्ण शान्तिवादियोंके रूपमें सम्पूर्ण युद्ध-प्रणालीकी सार्थकताको ही चुनौती देते हैं, लेकिन अधिकतर लोग ऐसे हैं जो, यदि उनके देश पर आक्रमण हो जाये या उसके महत्त्वपूर्ण हितोंपर खतरा आ जाये तो, बलप्रयोग द्वारा उसकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य मानेंगे। जीवित लोगोंमें सबसे प्रभावशाली और महान् शान्तिवादी गांधी भी हर स्थितिमें शान्तिके हामी नहीं, बल्कि परिस्थितिके अनुरूप आचरण करनेवाले यथार्थवादी और बहुत हदतक एक व्यावहारिक राजनेता हैं। वे भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अहिंसक प्रतिरोधका सफल प्रयोग कर रहे हैं, लेकिन वे स्वीकार करते हैं कि कोई भी आधुनिक राज्य पुलिस-बल और सैन्य-बलके बिना कायम नहीं रखा जा सकता। जब मैंने खुद उनसे पूछा कि अलग-अलग जातियोंसे बनी भारतीय सेनाकी कमान कोई मुसलमान, अथवा हिन्दू या सिख कैसे सँभाल सकता है तो उन्होंने जवाब दिया कि हम पहले किसी अमेरिकी या किसी तटस्थ विदेशीसे अपनी सेनाका नेतृत्व करने को कह सकते हैं। लेकिन अगर जापान, या सोवियत रूस या कोई और देश भारतपर आक्रमण कर दे तो गांधीके अनुयायी शान्तिवादी और भारतीय राष्ट्रवादी अपने देशकी रक्षा अपने पूरे सैन्य-बलसे करेंगे। मैं मानता हूँ, हमारे देशको भी ऐसा ही करना चाहिए।"

मैं तो यही कह सकता हूँ कि मैंने ऐसी कोई बात कभी कही हो, ऐसा मुझे याद नही आता। मैं डॉ० शेरवुड एडीको अच्छी तरह जानता हूँ। वे मुझसे मिलने आये थे, यह भी मुझे याद है। मेरे मुँहसे कहलाई गई यह आश्चर्यजनक बात तो भारतकी प्रतिरक्षाके सम्बन्धमे मेरी लिखी या कही सभी बातोको झुठला देती है। यदि सशस्त्र प्रतिरक्षामे मेरा विश्वास हो तो भी मैं यह तो कभी नही चाहूँगा कि कोई विदेशी सेनापति मेरी सेनाका नेतृत्व करे। मै विदेशी प्रशिक्षक रख सकता हूँ, लेकिन अफसर नही। इसलिए यदि ये पक्तियाँ डॉ० एडीकी निगाहमें आये और तब भी वे अपने कथनको सुधारने के बजाय उसपर कायम ही रहे तो मै यही कह सकता हूँ कि जो वक्तव्य मुझपर आरोपित किया गया है, उसे देते वक्त निश्चय ही मुझे खुद अपना भान नही रहा होगा। यह तो कह नही सकता कि मैंने जरूर पी रखी होगी, क्योंकि पीता मै हूँ नही।

सेवाग्राम, १६ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

३३५. पत्र : शारदाबहन गो० चोखावालाको

सेवाग्राम, वर्धा
१६ जुलाई, १९४०

चि० बबुडी,

तेरा पत्र मिला। पत्नी होना, माँ होना कोई हँसी-खेल नही है। इसे कर्त्तव्यके रूपमें मानें, तो इसमें तो हम अपने-आपको गढ सकते हैं। गार्हस्थ्य धर्म ऐश-आराम के लिए नहीं बल्कि हमारी परीक्षाके लिए है, ऐसा समझ ले तो यह हमारे लिए बडीसे-बडी पाठशाला है। तुम दोनों ऐसा समझकर ही अपने जीवनको गढना। शकरीबहन[1] वहाँ आई, यह अच्छा हुआ। जब तू फिर यहाँ आनेवाली हो, तब वे भी आयें। यह बीमारी अच्छी होने तक शकरीबहन वहाँ खुशी से रहे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००२९)से; सौजन्य. शारदाबहन गो० चोखावाला

३३६. पत्र : क० मा० मुंशीको

सेवाग्राम
१६ जुलाई, १९४०

भाई मुंशी;

तुम्हारा पत्र मिल गया था। तुम्हारी गुत्थी तो मैंने कल ही सुलझा दी है। अब मेरे लिए कुछ लिखने को नहीं रह जाता। दो मार्ग स्पष्ट हैं। जो भी अपनाओगे ठीक होगा — अगर वह तुम्हारी शक्तिके भीतर हो तो। श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः।[2]

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६५४)से, सौजन्य: क० मा० मुंशी

१. शारदाबहन गो० चोखावालाकी माँ
२. भगवद्गीता, ३/३५

३३७. पुर्जा : कृष्णचन्द्रको

सुरेन्द्रके लिए

१६ जुलाई, १९४०

कहो कि यह[1] निकम्मी चीज है। होमीयोपेथी चल रही है उसे चलाना है। मैं दूसरी तलाश करता हूँ। धीरज रखना।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५४) से

३३८. कोई पश्चात्ताप नहीं

"हर ब्रिटेनवासी" को लक्ष्य करके लिखी मेरी उस अपीलके[2] फलस्वरूप मेरे सिर अतिरिक्त कामका ऐसा बोझ आ पडा है जिसे मैं प्रभुकी सहायतासे ही उठा सकता हूँ। यदि उसकी इच्छा होगी कि मैं यह भार वहन करूँ तो वह मुझे उसके लिए अपेक्षित शक्ति भी दे देगा।

जब मैंने मुख्यत गुजराती या हिन्दुस्तानीमें ही लिखनेका निश्चय किया,[3] उस समय मुझे इसका कोई भान नही था कि मुझे यह अपील भी लिखनी पड़ेगी। उसका स्फुरण मुझे सहसा हुआ, और उसीके साथ उसे लिखनेका साहस भी मुझमें आ गया। बहुत-से अंग्रेज और अमेरिकी मित्र मुझसे इस प्रसंगपर मार्ग-दर्शन करनेका आग्रह कर रहे थे, लेकिन उस समयतक मैं तमाम आग्रहोको अनसुना करता रहा, क्योंकि मुझे कोई मार्ग सूझ ही नही रहा था। वह अपील जारी कर चुकनेके बाद अब मुझे उसपर हुई प्रतिक्रियाओकी ओर ध्यान देना ही है। मुझपर पत्रोकी भारी बौछार हो रही है। सिर्फ एक क्रोध-भरा तार मिला, बाकीमे तो अंग्रेजों द्वारा मैत्रीपूर्ण आलोचना ही की गई है, बल्कि कुछने अपीलकी कद्र भी की है।

वाइसराय महोदयने मेरा प्रस्ताव सम्राट्‌की सरकारको भेज दिया, इस बातसे मैं उनका बडा आभारी हुआ। इसके सम्बन्धमें हुआ पत्र-व्यवहार पाठक देख चुके होंगे या इस अकमे देखेंगे। अपीलकी जैसी प्रतिक्रिया हुई उससे बेहतरकी आशा भी नही की जा सकती थी, तथापि मुझे यह कहना पडेगा कि अपीलके पीछे प्रेरणा ही मेरे इस बोधकी थी कि ब्रिटेन इस युद्धको विजय प्राप्त करने तक चलानेको कृत-सकल्प है। इसमे सन्देह नहीं कि यह सकल्प स्वाभाविक है और ब्रिटेनकी उज्ज्वल

१. एफिड्रिन
२. देखिए पृ० २६१-६४।
३. देखिए "एक सच्ची शिकायत", पृ० २५२-५४।

परम्पराके योग्य है। फिर भी इस सकल्पमें जो भीषण नरसहार प्रतिफलित होता है उसका विचार करते हुए लक्ष्य-प्राप्तिका कोई श्रेष्ठतर और अधिक शूरताका मार्ग ढूंढने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। कारण, शान्तिसे प्राप्त विजय युद्धमे अर्जित विजयसे अधिक महिमामण्डित होती है। अहिंसक पद्धतिका अनुसरण करने का मतलब कोई अपकीर्तिकर आत्म-समर्पण नहीं होता। उसने समस्त आधुनिक युद्ध-तन्त्रको निष्प्रभ, बल्कि वस्तुत सर्वथा व्यर्थ बना दिया होता। और तब हम सबके सपनोंकी नई विश्व-व्यवस्था हमें प्राप्त हो जाती। यदि युद्ध अन्ततक चलाना है या दोनों पक्षोंके थक जानेपर जोड-तोडवाली शान्ति स्थापित होनी है तो मैं मानता हूँ कि नई विश्व-व्यवस्था असम्भव ही है।

अत एक मित्रसे[1] प्राप्त पत्रमें दी गई दलीलपर विचार करता हूँ। पत्र इस प्रकार है

> दो अंग्रेज मित्र, जो आपके प्रशंसक हैं, कहते हैं कि 'अभी' आपकी अपीलका कोई असर नहीं हो सकता। किसी आम आदमीके लिए किसी भी हदतक समझसे काम लेते हुए एकाएक पूर्णतः रुख बदल लेना असम्भव है, बल्कि सच तो यह है कि यहाँ, जैसा कि आप खुद कहते हैं, अहिंसामें 'हार्दिक' विश्वाससे प्रेरित हुए बिना समझदारों के लिए ऐसा कुछ कर सकना असम्भव है। आपके ढाँचेपर एक नई दुनिया गढ़ने का समय युद्धके 'बाद' आयेगा। वे यह महसूस करते हैं कि आपका रास्ता सही है, पर उनका कहना है कि इसके लिए जाने कितनी तैयारी, शिक्षण और 'महान्' नेतृत्वकी आवश्यकता है, और उनके पास इनमें से कुछ नहीं है। भारतके सम्बन्धमें वे कहते हैं कि वर्तमान सत्ताधारियोंका रुख बहुत दु खद है। भारतको कैनडा-सा स्वतन्त्र तो कबका घोषित कर देना चाहिए था, और वहाँकी जनताको अपना सविधान स्वयं तैयार करने देना चाहिए। लेकिन अभी जो बात उनकी समझमें नहीं आती वह यह है कि आप अविलम्ब पूर्ण स्वराज्य चाहते हैं, और अगले कदमके तौरपर आप यह करेंगे कि 'ब्रिटेनको युद्ध-संचालनमें भविष्यमें कोई मदद नहीं देंगे, जर्मनीके सामने आत्म-समर्पण करेंगे, या अहिंसक साधनोंसे उसका प्रतिरोध करेंगे।' इस गलतफहमीको दूर करने के लिए आपको अपना आशय अधिक विस्तारपूर्वक समझाना चाहिए।

यह अपील आज असर पैदा करने के लिए की गई थी। गणितका हिसाब लगाकर वह नहीं की जा सकती थी। अगर यह चीज मनको जँच जाती तो तदनुसार काम करना आसान था। जन-मानसपर तो प्रतिक्रिया दबावके रहते ही होती है। अपीलका अभीप्सित परिणाम नहीं हुआ, इससे प्रकट होता है कि या तो मेरे शब्द में शक्ति नहीं या ईश्वरकी इच्छा कुछ और है, जिसका हमें कोई भान नहीं है।

1. अमृतकौर; देखिए "पत्र: अमृतकौर को", पृ० ३२९।

यह अपील एक व्यथित हृदयसे स्फुरित हुई है। मैं उसे बाहर आने से रोक नहीं सकता था। वह तात्कालिक प्रयोजनके लिए नहीं लिखी गई थी। मैं इस सम्बन्धमें पूर्णत आश्वस्त हूँ कि वह एक शाश्वत सत्यका प्रतिपादन करती है।

यदि अभीसे जमीन तैयार नहीं की जाती तो युद्धकी शोकमय समाप्तिके उपरान्त शायद नई विश्व-व्यवस्था विकसित करने का समय ही न रह जाये। वह व्यवस्था चाहे जैसी हो, उसकी स्थापना तो अभीसे जाने-अनजाने उसके लिए प्रयत्न करने से ही होगी। सच तो यह है कि प्रयत्न मेरी अपीलसे पहले ही आरम्भ हो चुका था। आशा करता हूँ, अपीलने उसे उत्तेजन दिया है, शायद एक निश्चित दिशा दी है। ब्रिटिश लोकमतको गढ़नेवाले गैर-सत्ताधारी नेताओंसे मेरा निवेदन है कि यदि वे मेरी स्थितिमे निहित सत्यके कायल हैं तो उसके स्वीकार किये जाने के लिए काम करें। मेरी अपीलमें जो गुरु-गम्भीर प्रश्न उठाया गया है उसके सामने भारतकी स्वतत्रता के प्रश्नका महत्त्व तिरोहित हो जाता है। लेकिन मैं इन दो अग्रेज सज्जनोकी इस रायसे सहमत हूँ कि ब्रिटिश सरकारका रुख दु:खद है। भारतकी स्वतन्त्रताकी कल्पित स्वीकृतिसे उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला है वह सर्वथा गलत है। वे यह भूल जाते हैं कि मैं तो मचसे अलग हूँ। जो लोग कार्य-समितिके पिछले प्रस्तावके लिए जिम्मेदार है उनका आशय तो यही है कि स्वतन्त्र भारत ब्रिटेनके साथ सहयोग करेगा।

भारतकी स्वतन्त्रता और उसके फलितार्थोसे सम्बन्धित विषय यद्यपि काफी आकर्षक है, तथापि यहाँ उसपर अधिक विचार करने का अवकाश नहीं है।

मेरे सामने जो कतरनें और पत्र हैं, उनमें कहा गया है कि भारतकी रक्षार्थ सैनिक तैयारी न करने की मेरी सलाहके काग्रेस द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने के बाद मुझे इस बातका कोई हक नहीं रह जाता कि मैं ब्रिटेनसे ऐसी अपील करूँ या उस अपीलके अनुकूल उत्तरकी आशा रखूँ। दलील देखने में ठीक है, लेकिन देखने में ही। आलोचक कहते हैं कि जब मैं अपने लोगोंको ही अपनी बात नहीं समझा सका तो ब्रिटेनसे, जो आज जीवन-मृत्युके संघर्षमें जूझ रहा है, यह आशा रखने का मुझे क्या अधिकार है कि वह मेरी बातपर कान देगा। मैं ऐसा आदमी हूँ जिसने एक कार्य-विशेषका वरण किया है। भारतके करोड़ों आम लोगोंने ब्रिटेनवासियोकी तरह युद्धके कड़वे घूंट नहीं चखे हैं। ब्रिटेनको यदि अपना घोषित उद्देश्य पूरा करना है तो उसे अपनी नीतिमें आमूल परिवर्तन करने की जरूरत है। मुझे लगता है, मैं यह जानता हूँ कि कैसे परिवर्तनकी जरूरत है। कार्य-समितिको अपनी बात समझाने की मेरी असमर्थता विचाराधीन विषयके सन्दर्भमें अप्रासगिक है। भारत और ब्रिटेन, इन दोनोंकी परिस्थितियोंके बीच कोई साम्य नहीं है। इसलिए मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है। मैं मानता हूँ कि यह अपील जारी करके मैंने पूर्णत ब्रिटेनके जीवन-भरके मित्रका धर्म निभाया है।

लेकिन एक पत्र-लेखक ताना मारते हैं: "यह अपील जरा हिटलरसे तो करके देखिए।" अव्वल तो मैंने लिखा हर हिटलरको भी था।[1] लिखने के कुछ दिन बाद मेरा

१. देखिए खण्ड ७०, पृ० २३।

पत्र समाचार-पत्रोंमें छपा था। दूसरे, हर हिटलरसे अहिंसाको स्वीकार करने की अपील करने का कोई अर्थ नहीं हो सकता। वे तो फतह-पर-फतह हासिल करते जा रहे हैं। उनसे मैं केवल अपने कदम रोकने की ही अपील कर सकता हूँ। सो मैंने किया है। लेकिन ब्रिटेन आज अपने बचावके लिए जूझ रहा है। इसलिए उसके स्वीकारार्थ मैं अहिंसात्मक असहयोगका वस्तुत प्रभावकारी साधन पेश कर सकता हूँ। मेरे तरीकेको अस्वीकार करना हो तो उसके गुण-दोषोंके आधारपर अस्वीकार कर दीजिए, लेकिन इस तरह दो असमान वस्तुओंके बीच असंगत तुलना करके या लँगड़ी दलीलें देकर नहीं। मैं यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि मैंने जो प्रश्न उठाया है वह सार्वभौम महत्त्वका है। अहिंसक पद्धतिकी उपयोगिताको सभी आलोचक स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। मगर वे नाहक मान लेते हैं कि मानव-स्वभावका गठन ऐसा है कि अहिंसक तैयारीके निमित्त आवश्यक तनाव और दबावको सहन करना उसके लिए असम्भव है। लेकिन आज विवादका मुद्दा भी तो यही है। मेरा कहना है. 'आपने छोटे-बड़े किसी पैमानेपर इस पद्धतिको आजमाकर नहीं देखा है। जहाँतक इसे आजमाया गया है, इसके बहुत आशाप्रद परिणाम निकले हैं।'

सेवाग्राम, १७ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-७-१९४०

३३९. त्रावणकोर

कुछ त्रावणकोरवासियोंको लगा है कि मैंने उनकी उपेक्षा की। लेकिन वास्तवमें मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। किसी भी रियासतकी आलोचना करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा बहुत-सा काम वार्तासे निकल जाता है। आलोचना मैं तभी करता हूँ जब वैसा करना अनिवार्य हो जाता है। निदान जब कुछ ऐसे लोगोंने, जो मेरे और सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर दोनोंके मित्र हैं, मुझसे कहा कि अवसर मिलने पर वे मुझसे मुलाकात करना चाहेंगे, तो मैंने त्रावणकोरके मामलेके बारेमें कुछ भी कहना बन्द कर दिया। लेकिन मुलाकात नहीं होनी थी, सो नहीं हुई। मेरी पूछताछके जवाबमें मुझे उनका यह विचित्र तार मिला है:

> आपका तार[1] अभी-अभी मिला है। भारतमें घटित होनेवाली घटनाओं और साथ ही अलग-अलग कार्यक्रमों, किन्तु समान उद्देश्योंवाले आपके हालके वक्तव्य तथा कार्य-समितिके प्रस्तावको ध्यानमें रखते हुए, और के० सी० जॉर्जकी गिरफ्तारीके बाद प्रकाशमें आई साम्यवादी प्रवृत्तियोंके साथ त्रावण-कोर राज्य कांग्रेसके नेताओंके उस घनिष्ठ सम्बन्धको देखते हुए, जिसे जाहिरा

१. यह उपलब्ध नहीं है।

तौरपर स्वीकार नहीं किया जा रहा है, तथा आपके द्वारा त्रावणकोरको सलाह देने के लिए चुने श्री टी० एम० वर्गीज और श्री जी० रामचन्द्रन्की खुल्लमखुल्ला शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयोंको मद्देनजर रखते हुए, हमारी मुलाकातसे कोई प्रयोजन सिद्ध होनेवाला नहीं है। कहने की जरूरत नहीं कि इन परिस्थितियोंमें त्रावणकोरके मामलेके बारेमें जो-कुछ ठीक लगे वह कहने की आपको पूरी छूट है, लेकिन आशा की जाती है कि आप उन लोगोंके बयानोंको स्वीकार करके नहीं चलेंगे जो यहाँ अपनी प्रतिष्ठा खो चुके हैं और जो अपने प्रभाव, चन्देकी उगाही और राजनीतिक अस्तित्वके लिए सिर्फ इस सम्भावना पर निर्भर हैं कि वे आपको जो भी एकतरफा तथ्य सुलभ करायेंगे उन्हीं के आधारपर आप समय-समयपर कोई-न-कोई वक्तव्य जारी करते रहेंगे। राज्य कांग्रेसके सर्वश्री वी० के० वेलायुधन, एम० एन० परमेश्वरन् पिल्लै आदि अधिकतर प्रमुख नेताओंने राज्य कांग्रेसकी प्रवृत्तियोंसे अपने-आपको खुले तौरपर अलग कर लिया है। ऐसे नेताओंकी संख्या ६० से अधिक है।

त्रावणकोरके मामलेसे कार्य-समितिके प्रस्ताव और मेरे हालके वक्तव्यका क्या सम्बन्ध है, यह मेरी समझमे नही आता। कार्य-समितिने तो त्रावणकोरके मामलेमें कोई रुचि भी नहीं ली है। हमारी मुलाकातकी बात मूलत मेरे मनमे स्फुरित हुई हो, ऐसा भी नही है। यह विचार सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके मनमे महीनो पूर्व आया था। एक तिथि भी तय हो गई थी। लेकिन उनके सामने एक जरूरी काम आ पड़ा। इसलिए हमारी मुलाकात स्थगित हो गई। अभी ३ अप्रैलको उन्होंने मुझे तारसे सूचित किया कि वे शीघ्र ही मुलाकातकी तिथिके बारेमे लिखेंगे। क्या कार्य-समितिके प्रस्ताव और मेरे वक्तव्यसे स्थिति इतनी बदल गई है कि मुलाकात अवाछनीय हो गई? योग्य दीवानने जिन अन्य बातोका जिक्र किया है उन्ही की चर्चासे तो हमारी मुलाकातका प्रयोजन सिद्ध होता। उन्हे सिर्फ मुझे इस बातका कायल कर देना था कि खतरनाक किस्मकी साम्यवादी प्रवृत्तियोंसे राज्य काग्रेसका सम्बन्ध है, और मै स्थानीय काग्रेस और उसकी कारगुजारियोसे हाथ झाडकर अलग हो जाता। मुझे नही मालूम कि श्री के० सी० जॉर्ज साम्यवादी है। मै दीवान साहबको आगाह कर देता हूँ कि वे सिर्फ नामके कारण अपने मनमे कोई पूर्वग्रह कायम न करे। मै कई मित्रोंको जानता हूँ जो अपनेको साम्यवादी कहकर खुश होते है। लेकिन वे सर्वथा निरीह है। उनकी संगतिमे मै भी अपनेको साम्यवादी कहता हूँ। साम्यवादमे निहित मूल विश्वास अपने-आपमे बड़ी श्रेष्ठ वस्तु है और अनादि कालसे चला आ रहा है। लेकिन यह तो विषयान्तर हो गया।

अगर श्री टी० एम० वर्गीज और श्री जी० रामचन्द्रन् अविश्वसनीय है तो मुझे उनकी अविश्वसनीयताका कायल करने के लिए भी हमारी मुलाकात जरूरी है। मै यह स्वीकार करूँगा कि उनके साहस, त्याग-बलिदान, योग्यता और ईमानदारीका मै बड़ा प्रशसक हूँ। श्री रामचन्द्रन् साबरमती आश्रमके पुराने सदस्य है जिनपर

अविश्वास करने का मुझे कभी कोई कारण नहीं मिला है। सर सी० पी० रामस्वामी मुझे इतनी अच्छी तरह तो जानते हैं कि वे इस बारेमें आश्वस्त अनुभव करें कि यदि मुझे अपनी भूल दिखाई दी तो उसे स्वीकार करने में मुझे कोई झिझक नहीं होगी। मेरी जानकारीके स्रोत दूषित हैं, मुझे इसका विश्वास दिलाना उनका कर्तव्य था और आज भी है। सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके इस विचित्र तारसे मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि राज्य कांग्रेस या उसके सदस्योंके खिलाफ उन्हें सिवाय इसके और कोई शिकायत नहीं है कि वे निष्कलंक और निर्भीक देशभक्त हैं। उनके सिद्धान्तसे उन्हें नफरत है और इसलिए वे उन्हें कुचल देना चाहते हैं। मेरे पास जो भी सबूत है, सब इसी बातका संकेत देते हैं और उनके तारसे इस धारणाकी पुष्टि होती है।

मैंने एक प्रस्ताव रखा है, जिसे मैं एक बार फिर दुहराता हूँ। राज्य कांग्रेसके पूरे आचरण और उसके प्रति रियासतके व्यवहारकी निष्पक्ष और खुली जाँच करवाकर देख लिया जाये। जाँच करानेके लिए एक या अनेक जितने न्यायाधीश रखे जायें, वे अपनी ईमानदारीके लिए जाने-माने और बाहरके हों। मैं राज्य कांग्रेसको ऐसी अदालतके निर्णयको स्वीकार करने की सलाह दूँगा।

यदि यह सीधा-सादा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जाता तो राज्य कांग्रेस द्वारा लगाये गये आरोपोंके सरकारी अधिकारियोंकी ओरसे स्वार्थपूर्ण हेतुओंसे प्रेरित होकर किये गये खण्डनको अस्वीकार करने और उन्हें स्वयं भी सही मानने तथा जनतासे भी सही मानने को कहने के लिए मुझे क्षमा किया जाये।

सेवाग्राम, १७ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-७-१९४०

३४०. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१७ जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

'हरिजन'का काम और कामोंके लिए गुंजाइश ही नहीं छोड़ता। तो ए० में तुम्हारा समय काफी आनन्दमें बीता। तुमको आराम करना चाहिए।

स्नेह।

बापू

श्री राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविल
शिमला वेस्ट

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८४)से, सौजन्य · अमृतकौर। जी० एन० ७२९३ से भी

३४१. पत्र : पुष्पाको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४०

शाबास! तुम्हारे विश्वविद्यालयके छात्र-जीवनको प्रभु सफल बनाये। सिर्फ पढाई-लिखाईकी खातिर अपनी आँखों या अपने शरीरके अन्य किसी अंगको हानि मत पहुँचने देना।

एन्ड्रयूज-स्मारकके लिए चन्दा अवश्य जमा करो और इस पत्रका उपयोग अपने प्रमाण-पत्रके रूपमें करो। और दोनों भाइयोंको 'गीता' के १२ अध्याय पूरे कर लेने के लिए बधाई देना।

स्नेह।

बापू

कुमारी पुष्पा
मार्फत श्री वी० ए० सुन्दरम्
कृष्णकुटीर
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१९३)से

१. वी० ए० सुन्दरम्की पुत्री

३४२. पत्र : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणीको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४०

भाई काकुभाई,

मैं डॉ० वैद्यको भली-भाँति जानता हूँ। उनकी इच्छा मुझसे मिलने की हो तो वे बेशक आ जायें या तुम उन्हें लेकर आ जाओ। उन्हें शान्ति देना कठिन है, लेकिन तुम्हारा प्रेम उनपर असर कर सकता है। यदि वे किसी भी काममें लग जायें तो ठीक हो। क्यों न वे तुम्हारी देखरेखमें भण्डारमें ही काम करें?[1]

बापूके आशीर्वाद

श्री काकुभाई
अ० भा० च० संघ
खादी भण्डार
३९६ कालबादेवी रोड
बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४६)से; सौजन्य . पुरुषोत्तम का० जेराजाणी

३४३. पत्र : हर्षदाबहन दीवानजीको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४०

प्यारी बहन,

तुम्हारा भेजा सूत मिल गया था।

बापूके आशीर्वाद

श्री हर्षदाबहन दीवानजी
१५वीं स्ट्रीट, खार
बम्बई

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९३६)से

१. यहाँ साधन-सूत्रमें एक पंक्ति पढ़ी नहीं जा सकी।

३४४. पत्र : मंजुला म० मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४०

चि० मंजुला[1],

रगूनसे लिखे तेरे पत्र अभी-अभी मिले। दूसरा पत्र आज ही मिला। रगूनके पत्र पढ़कर मैं तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। तेरी सरलता और पवित्रता देखकर मेरे आनन्दकी कोई सीमा नही है। उनके आगे तेरा दुःख नही के बराबर लगता है। सच तो यह है कि उसने तुझे निखारा है। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों यहाँ आ जाओ, अथवा तू तो आ ही जा। मगनको मैं समझाऊँगा। सम्भव है कि वह मेरी बात मान ले। कमसे-कम प्रयत्न तो करूँगा ही। चाहे जो हो, तेरी तो कुशल ही है। मुझे निःसकोच लिखती रहना। पैसोंकी कोई चिन्ता मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०१८)से, सौजन्य : मंजुला म० मेहता

३४५. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४०

भाई बनारसीदास,

पीछे सदेशा[2] है। अग्रेजीमें कुछ न मागो। मैंने लिखा है उसमें से लेना।
फिर 'विशाल भारत'में[3] आये क्यो?
जब आना है तब आ जाना। वक्त दे सके।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २५७३)से

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताके पुत्र मगनलाल मेहताकी पत्नी
२. यह उपलब्ध नही है।
३. कलकत्तासे प्रकाशित हिन्दी मासिक पत्रिका

३४६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१९ जुलाई, १९४०

चि० अमृत,

आज तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम्हारा प्रस्ताव ले लिया जायेगा। दो अंग्रेजोंकी शिकायतके तुम्हारे भेजे विवरणपर मैंने टिप्पणी[1] लिखी है, देखना।

मैं समझता हूँ कि बावला, मुन्नालाल, भणसाली और पुलिसके दो सिपाहियोंको एक पागल सियारके[2] काटने की घटनाके बारेमें किमीने तुम्हे बतलाया ही होगा। उन सभीकी 'सीरम'वाली चिकित्सा हो रही है। इलाज १४ दिनमे पूरा होता है। बी० को आज ज्वर है, लेकिन उनका कहना है कि वह सीरमके कारण नही है।

मौलाना साहब मुझसे पूना पहुँचने का आग्रह कर रहे हैं।[3] मैंने उनका आग्रह माना नही है। वे यहाँ २१ तारीखको आ रहे हैं। देखो, क्या होता है। जबसे गुजरातीमें लिखना शुरू किया है, मैं तुम्हे अपने लेखोंकी नकले भेजने के बारेमें लापरवाह हो गया हूँ।

मौसम काफी ठडा है। लेकिन जाहिर है खुश्की होते ही गर्मी बढ जायेगी।

हम लोग काममें काफी व्यस्त हैं, फिर भी बहुत ही अधिक व्यस्त नही। कोई भी खास बीमार नही है।

पिछले शनिवारको ओमकी[4] शादी हो गई। उस समय बड़े जोरकी वर्षा हो रही थी।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८५) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७२९४ से भी

१. देखिए "कोई पश्चात्ताप नहीं", पृ० ३२०-२३।

२. मूलमें 'लोमड़ी' के अंग्रेजी पर्याय 'फॉक्स' का प्रयोग हुआ है। लेकिन अगले शीर्षकके मूल (गुजराती) में 'सियार' के पर्याय 'शियाळ' का प्रयोग हुआ है। दरअसल गांधीजी 'फॉक्स' और 'सियार' के अंग्रेजी पर्याय 'जैकाल' को एक-दूसरेके पर्यायके रूपमें प्रयुक्त होनेवाले शब्द मानते थे। कदाचित् इस बातकी ओर अमृतकौरने भी उनका ध्यान आकृष्ट किया था, देखिए "पत्र : अमृतकौरको", २५-७-१९४०।

३. वहाँ २७ और २८ जुलाईको होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके लिए।

४. उमा अग्रवाल, जमनालाल बजाजकी सबसे छोटी पुत्री

३४७. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
१९ [जुलाई][1] १९४०

चि० मणिलाल और सुशीला,

तेरा पत्र मिला। सुशीलाकी प्रसूतिका समाचार मुझे नानाभाईने तारसे दिल्ली भेज दिया था। बिना किसी पीडाके सब निबट गया, यह अच्छा हुआ। नाम ठीक खोजा है। वहाँ राशि देखनेवाला ठीक मिला या पचागमें देखा? मुझे तो कुछ समझ मे नही आता। इलाके कानमें मेरे आशीर्वाद फूँकना और कहना "कुल-परिवारका नाम रोशन करना।"

तुम्हारे यहाँकी राजनीति उलझ गई है। लगता है तू बिलकुल अकेला पड गया है। उसने मुझसे तार देने को कहा था। मैंने जवाब नही भेजा। कौन जाने, इस बार क्या होगा। मेरीबहनसे मिलते रहना। वह बहुत अच्छी स्त्री है। यहाँ उसने सुन्दर काम किया है।

वहाँ डाक नियमपूर्वक आती है क्या? यहाँ तो कुछ समझमें नही आता। तेरा ८ जुलाईका पत्र आज मिला, यानी ग्यारह दिनमे यहाँ पहुँचा। और वह भी अकोला होकर आया है, यानी हवाई डाकसे ही आया होगा न? यह सब यहाँ कुछ समझमे नही आता।

यहाँ एक रात एक पागल सियार, जहाँ सब सो रहे थे वहाँ, पाँच आदमियोंको काट गया — भणसालीभाई, मुन्नालाल, बाबला और दो पुलिसवालोंको। सबको 'सीरम' की सूई लगाई जा रही है। उम्मीद है, सब ठीक हो जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९०८)से

१. साधन-सूत्रमें जनवरी है, जो स्पष्ट ही भूल है।

३४८. पत्र : नानालाल इच्छाराम मशरूवालाको

सेवाग्राम
१९ जुलाई, १९४०

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तार भी मिला था। मैंने फीनिक्स पत्र[1] लिख दिया है। अहिंसा-हिंसाके बारेमें 'हरिजनबन्धु'में लिखूंगा। आशा है, तुम मजेमें होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६९३) से। सी० डब्ल्यू० ४३३८ से भी, सौजन्य : कनुभाई मशरूवाला

३४९. पत्र : एफ० मेरी बारको

सेवाग्राम, वर्धा
२० जुलाई, १९४०

चि० मेरी,

तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। मुझे खुशी हुई कि तुम्हें यह एक नया अनुभव प्राप्त हो रहा है। कमला[2] और चन्देल कुछ दिनों मेरे पास रह गये हैं।

हाँ, बम्बईसे भेजा गया तुम्हारा पुर्जा मुझे मिल गया था।

बड़ी व्यथा हुई यह पढ़कर कि डर्बनमें खादी कहीं नहीं मिलती। खादीका कुछ भण्डार रखने के लिए तुम्हें लोगोंको प्रेरित करना चाहिए।

तुमने वहाँ तेलुगुका काम करने की भी गुंजाइश निकाल ली, यह खूब रहा।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०७९)से

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. मार्गरेट जोन्स

३५०. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

सेवाग्राम,
२० जुलाई, १९४०

प्रिय भाई,

आपका लम्बा पत्र[1] मिला। लेकिन मेरे लिए तो वैसा लम्बा नहीं ही है। आपने यह कहकर मेरे साथ न्याय नहीं किया कि न तो आर०[2] और न मैं ही दूसरोकी रायका खयाल करने को कोई बहुत तैयार रहते है। आपके बारेमें तो यह सच नहीं ही हो सकता। हाँ, हमारे बीच कुछ मतभेद है, जो हमारे पारस्परिक स्नेह तथा आदर-भावके बावजूद अपनी जगह मौजूद है। पत्रके बारेमे मुझे काफी-कुछ कहना था, लेकिन मै जानता हूँ आप नही चाहते कि मै बहस करूँ। कृपया मेरा विश्वास कीजिए; मुझसे कहा हुआ आपका एक भी शब्द ऐसा नहीं जिसका मुझपर प्रभाव न होता हो। मै तो यही सोचता हूँ कि मै ईश्वरके चलाये ही चल रहा हूँ। महादेव देसाई आपको लिखेंगे।

स्नेह।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
लेटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री, पृ० ३२६

१. १६ जुलाईका। श्रीनिवास शास्त्रीने इस पत्रमें कार्य-समितिके ७ जुलाईके प्रस्तावकी आलोचना की थी और गांधीजी ने उसकी सिफारिश करते हुए जनतासे उसे मान लेने का जो अनुरोध किया था उसके औचित्यपर शंका प्रकट की थी; देखिए परिशिष्ट ५।

२. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

३५१. पत्र : चारुप्रभा सेनगुप्तको

२० जुलाई, १९४०

प्रिय चारुप्रभा,

मेरा खयाल है कि पुरुषोपर लगाये तुम्हारे आरोपके उत्तरमें मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। यदि न लिखा हो तो मेरा यही कहना है कि तुम्हें धीरजसे काम लेना होगा।

स्नेह।

बापू

श्री चारुप्रभा सेनगुप्त
१२३/१/१ अपर सर्कुलर रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७०८)से

३५२. पत्र : मणिलाल गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
२० जुलाई, १९४०

चि० मणिलाल,

कल ही तुझे पत्र लिखा और आज यह तेरा दूसरा पत्र आ गया। इसमें श्री फोगल और श्रीमती पॉलके पत्र भी हैं। उनके पत्रोंके जवाब भी इस पत्रके साथ हैं। कलका मेरा पत्र मिला होगा या शायद दोनो साथ मिले।

मेरीबहन लिखती है कि डर्बनमें एक गिरह भी खादी नही मिलती।[1] यह बात जरा विचित्र लगती है। किसीकी इच्छा हो और उसे बिलकुल खादी न मिले, यह कैसी बात है? कोई न रखे, तो तुझे ही थोडा माल रखना चाहिए। क्या तू किसीको खादी रखने के लिए राजी नही कर सकता?

सुशीला और इला मजेमे होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९१५)से

१. देखिए "पत्र : एफ० मेरी बारको", पृ० ३३१।

३५३. बातचीत : एमिली किनेर्डके साथ[1]

[२० जुलाई, १९४०][2]

लगता था कि 'हर ब्रिटेनवासीसे' गांधीजीकी अपीलकी उपयोगितामें उन्हें सन्देह था। परन्तु उन्होंने कहा : "क्या आपका यह खयाल नहीं है कि डेनमार्कने आपके अहिंसाके आदर्शका पालन किया है?"

गांधीजी : बिलकुल नहीं। वह तो आत्म-समर्पण था. और मैंने आत्म-समर्पण नहीं, बल्कि अहिंसात्मक प्रतिरोध करने को कहा है।

एमिली किनेर्ड : परन्तु डेनमार्कने प्रतिरोध नहीं किया और वैसा ही किया जिसकी सलाह आपने आज ब्रिटेनके लोगोंको दी है!

गां० : परन्तु प्रतिरोध किये बिना आत्म-समर्पण करने या हथियार डालने की सलाह तो मैंने नहीं दी है। मैंने ब्रिटेनके लोगों और उनकी-जैसी स्थितिमें पड़े सभी लोगोंसे यह अपील की है कि वे मनुष्यके लिए सम्भव सबसे बड़ी दिलेरीका परिचय दें — अर्थात् हथियारोंका इस्तेमाल न करें और दुश्मनको चुनौती दें कि वह चाहे तो उनकी लाशोंपर से चलकर उनकी धरतीपर आये। डेनमार्कने तो ऐसा कुछ नहीं किया।

ए० कि० : परन्तु डेनमार्कके पास समय नहीं था। सब-कुछ इतना अकस्मात् हुआ कि डेनमार्कके लिए प्रतिरोध न करने के सिवा कोई चारा ही नहीं था।

गां० : हाँ, हाँ, मुझे मालूम है। परन्तु ऐसी आकस्मिकतामें ही तो अहिंसाकी परख होती है। इसमें सन्देह नहीं कि डेनमार्कके लिए प्रतिरोध न करना समझदारी-की बात थी। परन्तु समझदारी और अहिंसा दोनों एक चीज नहीं हैं। अहिंसात्मक प्रतिरोध हिंसात्मक प्रतिरोधसे बहुत अधिक प्रभावकारी होता है, और हिंसात्मक प्रतिरोधके अभ्यस्त इन राष्ट्रोंसे मैंने इसी अहिंसात्मक प्रतिरोधको अपनाने का अनुरोध किया है।

ए० कि० : अच्छा, तो उससे क्या लाभ होनेवाला है?

गां० : ईसामसीहके आत्म-बलिदानसे क्या लाभ हुआ था?

ए० कि० : वह तो अलग बात थी। वे ईश्वरके पुत्र थे।

गां० : इसी तरह हम भी हैं।

१. महादेव देसाईके "ए हॉट गॉस्पेलर" (एक उत्साही धर्मोपदेशिका) शीर्षक लेखसे उद्धृत।

२. देखिए अगला शीर्षक, जिसमें गांधीजी कहते हैं, "कुमारी किनेर्ड. . . कल यहाँ रहीं।"

ए० कि० : नहीं, वे ईश्वरके 'एकमात्र' पुत्र थे।

गां० : यहीं माँ और बेटेमें[1] मतभेद है। आपकी दृष्टिमें ईसामसीह ईश्वरके एकमात्र सगे पुत्र थे। मेरे विचारमें वे ईश्वरके एक पुत्र-भर थे, चाहे हम सबसे कितने ही पवित्र क्यों न रहे हों। परन्तु हममें से हरएक ईश्वरका पुत्र है और हर कोई वही काम करने की क्षमता रखता है जो ईसामसीहने कर दिखाया था, बशर्ते कि हम अपने भीतर विद्यमान दिव्य तत्त्वको व्यक्त करने की कोशिश करें।

ए० कि० : मेरे विचारसे, आप यहीं गलती करते हैं। यदि आप ईसामसीह को हृदयसे स्वीकार कर लें और अपने लोगोंसे भी वैसा करने को कहें, तो आप अपना सन्देश ज्यादा आसानी और ज्यादा प्रभावकारी तरीके से दे सकते हैं।[2] वे हमारे मुक्तिदाता हैं और उन्हें हृदयसे स्वीकार किये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

गां० : तो जो ईसामसीहको स्वीकार कर लेते हैं उन सबका उद्धार हो जायेगा। क्या उन्हें और कुछ करने की जरूरत नहीं है?

ए० कि० : हम पापी हैं और उनमें आस्था रखने से ही हमारा उद्धार होगा।

गां० : और तब हम भले पापी बने रहें? क्या आपका यही आशय है? आप कहीं प्लिमथ ब्रदर्सकी[3] सदस्य तो नहीं हैं?

ए० कि० : नहीं, मैं प्रेसबिटेरियन[4] हूँ।

गां० : परन्तु आपकी बातें प्लिमथ ब्रदर्सके ढंगकी हैं, जिनसे मैं बहुत पहले दक्षिण आफ्रिकामें मिला था।

ए० कि० : हाँ, मुझे यही तो लगता है कि दक्षिण आफ्रिकामें ईसाइयोंके साथ अपने सम्पर्ककी दृष्टिसे आप शायद बहुत अभागे रहे। आप ठीक तरहके लोगोंसे नहीं मिल पाये।

गां० : आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। मैं कितने ही सम्माननीय लोगोंसे मिला था। वे सब ईमानदार और सच्ची लगनवाले लोग थे।

ए० कि० : परन्तु वे 'सच्चे' ईसाई नहीं थे।

१. एमिली किनेर्ड और गांधीजी। वे ८६ वर्ष की थीं और गांधीजी उन्हें माँ कहकर सम्बोधित कर रहे थे।

२. महादेव देसाईका कहना है कि वे यह अपनी स्मृतिके आधारपर लिख रहे हैं।

३. जे० एन० डार्बी द्वारा संस्थापित एक रूढ़ि-मुक्त (नॉन-कन्फर्मिस्ट) सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायके अनुगामी किसी भी ईसाई पादरी संस्थाको मान्य नहीं करते और ईसाको प्रभु पुत्रके रूपमें स्वीकार करनेवाले हर व्यक्तिको अपने धर्मभ्रातृत्वमें स्थान देते हैं।

४. १६८९ में संगठित एक ईसाई पादरी-संघ, जिसमें स्थानीय बिशप और उसकी परिषद्के हाथोंमें सारी धार्मिक सत्ता होती है।

तब गांधीजीने उन आरम्भिक दिनोंमें ईसाइयोंके साथ अपने सम्पर्कका सजीव विवरण दिया और अन्तमें एफ० डब्ल्यू० मेयरके साथ अपने घनिष्ठ सम्पर्कका हाल बताया।[1] उन्होंने लेडी एमिलीसे पूछा :

क्या आप एफ० डब्ल्यू० मेयरको जानती है?

ए० कि० : हाँ, जानती हूँ।

गा० अच्छा, तो मै आपको बताता हूँ कि एफ० डब्ल्यू० मेयरने मेरे साथ लम्बी बातचीतके बाद दूसरे ईसाई मित्रोसे कहा था कि वे मुझसे कुछ न कहे। उन्होंने बताया कि मै तो मानो ईसाई बन चुका हूँ और मेरे सम्बन्धमे धर्म-परिवर्तन की औपचारिक विधिकी जरूरत नही है। परन्तु इस बातसे उन लोगोंको सन्तोष नही हुआ। और ए० डब्ल्यू० बेकर तो, जो अब ८० वर्षसे भी ऊपरके होंगे, अब भी मेरे पीछे पडे हुए है। वे मुझे पत्र लिखकर बार-बार यह याद दिलाते है कि यदि मैने उनके ढगपर ईसामसीहको स्वीकार न किया तो मेरा उद्धार नही हो सकेगा।

ए० कि० : परन्तु श्री गांधी, इतना लम्बा समय बीत चुकने पर भी आपको उन ईसाइयोंकी याद आती है!

और उन्होंने कहा कि समझमें नहीं आता, जो बात मुझे इतनी स्पष्ट दिखाई देती है उसे आप क्यों नहीं देख पाते। उनका तात्पर्य किसी भी अन्य धर्मके सन्देश की तुलनामें ईसाई धर्मके सन्देशकी श्रेष्ठतासे था। उनका कहना था कि बाइबिल का अनुवाद सैकड़ों भाषाओंमें हो चुका है और दुनियाके सुदूर भागोंमें रहनेवाला अधर्मी भी, जो अंग्रेजीका एक अक्षर भी नहीं जानता, यह देखकर विस्मय-विमुग्ध है कि ईश्वरका सन्देश उसकी अपनी बोलीमें ही उसके पास पहुँच गया है।

गा० . इससे कुछ सिद्ध नही होता।

ए० कि० : और जरा सोचिए कि जहाँ पचास साल पहले भारतमें कुछ लाख ईसाई थे, वहाँ आज उससे दस गुने हैं।

गा० इससे भी कुछ सिद्ध नही होता। परन्तु धर्मोके नामोंको लेकर यह झगडा क्यो? क्या चन्द लाख भारतीय या आफ्रिकी ईसाई कहलाये बिना ईसाके सन्देशको अपने जीवनमे आचरित नही कर सकते?

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

१. इस सम्बन्धमें विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ३९, पृ० ९८-१०० और १०७-१०।

३५४. पत्र : अमृतकौरको

दुबारा नहीं पढ़ा

सेवाग्राम
२१ जुलाई, १९४०

प्रिय पगली,

कैसी अजीब बात है! कुछ लोगोंको खुश किया ही नहीं जा सकता! चि० अमृत क्यों नहीं? मैं तुम्हें सन्तुष्ट करता हूँ। "लेकिन कभी-कभी 'पगली' का प्रयोग होना ही चाहिए।" बेचारा 'खुश करनेवाला' करे क्या? इसलिए सबसे निरापद रास्ता खुदको खुश करना और दूसरोंको भी वैसा ही करने देना है। लेकिन मैं निरापद रास्तेपर चला ही नहीं हूँ। अब ईश्वर ही बचाये! और फिर पागलोंको खुश करना टेढ़ी खीर है।

कुमारी किनेर्ड — यही है न उनके नामके हिज्जे?[1] — कल घंटे-भर यहाँ रहीं।[2] उन्हें खूब हँसाता रहा और वे खुश-खुश गईं, मगर मुझे अपनी छापके ईसाई धर्ममें दीक्षित किये बिना। मुझे कभी खाली पाओ तो उनकी मुलाकातका वर्णन करने को मुझसे अवश्य कहना। खाली न पाओ तो प्यारेलालसे कहो। वह वहाँ था — और नायकम् भी।

तुम्हारा पहला लेख मैंने स्वीकार कर लिया है। सभाका विवरण 'हरिजन' के लिए अनावश्यक है। अच्छा लिखा हुआ है। 'हि० टाइम्स' वगैरहको भेजो। वह और तीन पुराने लेख सुधारकर वापस भेज रहा हूँ। सभी अनुवाद अच्छे थे, कुछ अंश तो खासे मुहावरेदार थे। लिखावटमें बहुत सुधार और जमावट आई है।

बादलाको बुखार था। अब बेहतर है, हालाँकि थोड़ा बुखार अब भी है।

पण्डित कुंजरू आज यहीं हैं और कोदण्डराव आ रहे हैं। मौलाना मंगलवारको आ रहे हैं। मैं पूना जाना नहीं चाहता। लेकिन उनका आग्रह रहा तो इनकार न कर पाऊँगा।[3] देखती ही हो कि मुझे 'हरिजन' के लिए भी लिखना पड़ता है। इसलिए मुश्किलसे तुम्हें कोई अन्तराल देखने को मिलेगा। अपने को थोड़ा विश्राम दो।

जहाँतक खादीकी बात है, तुम्हें अलग-अलग भण्डारोंको लिखकर उन्हें सही रास्तेपर लाना चाहिए। कोई चीज अखबारोंमें प्रकाशित करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। अगर इससे तुम्हें सन्तोष न मिले तो मैं तो तुम्हारे साथ हूँ ही।

१. स्पष्ट ही तात्पर्य मूलमें प्रयुक्त अंग्रेजी हिज्जेसे है।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. अन्ततः गांधीजी अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें भाग लेने नहीं गये।

नकदीकी शर्तमे कोई ढील नही दी जा सकती। प्रतिष्ठित लोगोको उधार देकर हमने वडा नुकसान उठाया है। इसलिए भूल करनेवाले विक्रेताओको नुकसान उठाना पडा, यह ठीक ही हुआ। जौके साथ घुन न पिस जाये, इसका वहुत खयाल रखकर वनाया गया नियम प्रभावकारी नही होता।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८६) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७२९५ से भी

३५५. प्रस्तावना[1]

यह आवृत्ति देवनागरी लिपिमे छापने मे दो उद्देश्य रहे है। मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि गुजरातीके पाठक देवनागरी लिपिका स्वागत कहाँतक करेगे। मैं अपने दक्षिण आफ्रिका-निवासके दिनोसे ही यह सपना देखता आया हूँ कि सस्कृत मूलकी सारी भाषाओके लिए एक ही लिपि हो और वह लिपि देवनागरी हो। किन्तु मेरी यह इच्छा अभी तक सपना ही है। एक लिपिका आन्दोलन तो काफी चलता है किन्तु प्रश्न यह है कि 'विल्लीके गलेमे घटी कौन वाँधे', आरम्भ कौन करे? गुजराती कहते हैं कि 'हमारी लिपि वहुत सुन्दर और सरल है। इसे हम क्यो छोड़े?' वीच मे एक दूसरा पक्ष भी अभी-अभी खड़ा हो गया है जिसमें मैं भी हूँ। वह कहता है कि देवनागरी खुद अधूरी है, उसमें कठिनाइयाँ हैं, उसे सुधारकर पूर्ण करना चाहिए। किन्तु जवतक पूर्णताको न पहुँचे तवतक यदि हम कुछ न करें तव तो हमे दुहरी हानि होगी। इससे वचने के लिए ही प्रयोगके रूपमें हमने देवनागरीकी यह आवृत्ति प्रकाशित की है। यदि लोग इसका स्वागत करेंगे तो नवजीवन प्रकाशनकी अन्य पुस्तके भी हम देवनागरी लिपिमे प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

इस साहसका दूसरा हेतु यह है कि हिन्दी-भाषी जनताको गुजराती पुस्तकें देवनागरी लिपिमें मिले। मेरी यह राय है कि यदि गुजराती पुस्तकें देवनागरी लिपि मे छापी जाये तो इस भाषाको सीखने की कठिनाई आधी ही रह जायेगी।

इस आवृत्तिको लोकप्रिय वनाने की दृष्टिसे इसकी कीमत काफी कम रखी गई है। मुझे आशा है कि इस उपक्रमको गुजराती और हिन्दी-भाषी जनता सफल वनायेगी।

सेवाग्राम, २१ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

सर्वोदय, अक्तूबर, १९४०

१. आत्मकथाके देवनागरी लिपिमें प्रकाशित गुजराती संस्करणकी

३५६. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२१ जुलाई, १९४०

चि० काका,

यह रही प्रस्तावना।[1] मैंने इसे दुहराया नही है। कोई भूल-चूक न हो, तो ऐसी ही भेज देना। तुम्हे यदि कोई सुधार करना हो तो सुधार करके वापस भेजना। मैं देख जाऊँगा और वापस भेज दूंगा। . . . लिख दिया है।

बाकी तो देखा जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९३६)से

३५७. पत्र : हीरालाल शर्माको

सेगाँव
२१ जुलाई, १९४०

चि० शर्मा,

क्या बात है साइनस तक पहुचे और कुछ नही किया? कहा गई तुमारी डाक्तरी? और द्रौपदी और बच्चोको वहा रखकर क्या करोगे? तुमारा काम मेरी समझमें नही आता है। जबरदस्तियोके बारेमे देख लूगा।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २८७

१. देखिए पिछला शीर्षक।

३५८. सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी

गोखलेका महानतम कृतित्व जिस विपत्तिमे पड़ गया है उसके बारेमे कुछ कहना अबतक मै टालता रहा हूँ। सोसाइटी जब व्यथाके दौरसे गुजर रही थी, पण्डित कुजरूने कृपापूर्वक मुझे उससे सम्बन्धित हर घटनासे अवगत रखा। सोसाइटीके लिए यह कोई मामूली बात नही थी कि उसे अपने सदस्योंको निकालना पड़ा या अपने एक सबसे पुराने सदस्यके त्यागपत्र दे देने के फलस्वरूप उसे खोना पडा। झगड़ेकी आग कई महीनो से धुंधुआ रही थी। लेकिन उसके प्रमुख सदस्य उस दिनको, जिसे वे दुर्दिन मानते थे, टालते आ रहे थे। उन्होंने मतभेदोंको मिटाने की कोशिश की, पर विफल रहे। उस अराजक-सी बन गई स्थितिमे भी उन्होंने अनुशासन कायम करने का प्रयत्न किया।

सोसाइटीने एक ऊँचे आदर्शका वरण किया है। राजनीतिको शुद्ध करनेके निमित्त और बिना किसी स्वार्थमय हेतुके अथवा मात्र सत्ताकी खातिर सत्ता प्राप्त करने की इच्छासे दूर रहकर भारतकी सेवा करना — यह एक महान् आदर्श है। गोखलेने सोसाइटीके लिए आचार और परम्पराका एक निश्चित स्तर कायम कर दिया था। जो लोग उस स्तरका निर्वाह नही कर सकते उन्हे स्पष्ट ही इस सोसाइटी में शामिल नहीं होना चाहिए या यदि शामिल होने के बाद उन्होने अपना दृष्टिकोण बदल दिया हो तो उसमे बने नही रहना चाहिए। श्री परुलेकर और कुमारी गोखलेके साथ बात ऐसी ही थी। वे उस सिद्धान्तको माननेवाले है जिसमे आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य अन्यायोंके मार्जनके लिए हिंसाकी हिमायतकी भी गुंजाइश है। उनकी योग्यता या त्यागमे शका करने का कोई कारण नही था। इसमे सन्देह नही कि ये दोनो अमूल्य गुण है। लेकिन जहाँ अमुक परम्परा या अनुशासनके पालनका प्रश्न हो वहाँ ये गुण अप्रासगिक है। सच तो यह है कि इस दृष्टिसे स्वयं उस परम्पराके गुण-दोषोका विचार भी अप्रासगिक है। इसलिए जब सोसाइटी इन सदस्योको त्यागपत्र देने पर राजी न कर पाई तो उसे उनको निष्कासित करने का दु खद कार्य करना पडा, क्योंकि उसके बिना सोसाइटी एक हेतु और एक नीतिपर दृढ़ एक सुसगठित संस्थाके रूपमे काम ही नही कर सकती थी। मै जानता हूँ कि अध्यक्ष तथा अन्य सदस्योने संकटको टालनेके लिए कुछ भी उठा नही रखा। उन्होने सहयोगियोको सारी स्थिति पर विचार करनेके लिए बुलाया। अध्यक्ष सदा उनकी सहायतामे तत्पर रहे। और उन्हीकी सर्वसम्मत सिफारिशपर सोसाइटोने यह अन्तिम कदम उठाया।

श्री जोशीके[1] बारेमे कहा जाता है कि उन्हे त्यागपत्र देने पर मजबूर किया गया, लेकिन ऐसा कहना गलत है। बहुत उचित कारणोसे अध्यक्ष और परिषदका

१. एन० एम० जोशी

विचार था कि उनका वम्बईमे तवादला कर दिया जाये। लेकिन श्री जोशी वम्बईसे हिलने को तैयार ही नहीं थे, और फलत उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। और सोसाइटीने सदस्योकी रायसे उनके लिए पेंशनकी व्यवस्था करके उनका त्यागपत्र मजूर कर लिया। यह है उस सकटका विना रग-मुलम्मा चढ़ा सच्चा विवरण जिसके दौरसे सोसाइटी गुजरी है। मुझे इस घटनाकी चर्चा करने के कर्त्तव्यका अनुभव एक तो इसलिए हुआ कि इन सब वातोको लेकर सोसाइटीकी तीखी आलोचना की गई है, और दूसरे, मैं अपनेको सोसाइटीका अनधिकृत और निष्क्रिय सदस्य मानता हूँ। पाठकों को शायद मालूम न हो कि सोसाइटीके प्रधानकी मृत्युके शीघ्र वाद ऐसा प्रसग उपस्थित हो गया था जब खुद मैं उसके लिए गम्भीर सकटका कारण वन जाता। सदस्यताके लिए मेरा नाम सुझाया गया। कुछ सदस्य मेरे प्रवेशकी सम्भावनासे आशकित थे, क्योकि मैं उनके लिए एक अनजाना व्यक्ति था, जो सही भी था। इस मतभेदकी जानकारी मिलते ही मैंने अपना नाम वापस ले लिया और सब ठीक हो गया। इस स्वाभाविक संयमके फलस्वरूप वादमें हम एक-दूसरेके निकट आ गये। कितना अच्छा होता, अगर श्री परुलेकर और कुमारी गोखलेने १९१५ में उनके सामने प्रस्तुत उदाहरणका अनुकरण किया होता! अगर उनके हृदयमे सोसाइटीकी भलाईका खयाल है तो जिन विषयोमे अन्य सदस्योंके साथ उनका मतभेद नही है उनके सम्बन्धमें वे अनेक प्रकारसे उसकी सेवा कर सकते थे।

सेवाग्राम, २२ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

३५९. प्रश्नोत्तर

कताईके अलावा और क्या?

प्र० : शहरोंमें और खास तौरसे वम्बई शहरमें सक्रिय सत्याग्रही कातने के अलावा और क्या काम कर सकता है?

उ० : इस प्रश्नके उत्तरमें मेरा प्रतिप्रश्न है। आप कातने के अलावा अन्य काम किसलिए चाहते हैं? अगर आपको कातने में रस ही नही आता, तब तो आप सक्रिय अथवा निष्क्रिय सत्याग्रही हो ही नहीं सकते, क्योकि सब प्रकारके सत्याग्रहके मूलमें चरखेकी कल्पना निहित है, और यह वीस वर्षोसे चला आ रहा है। इसलिए उचित है कि आप अपना वचा हुआ समय चरखेको ही दें। उसे आप शास्त्रीय पद्धतिसे चलाइए। जगहकी तगी हो तो तकली चलाइए। अब तो ऐसी युक्ति भी हाथ लग गई है कि तकलीकी गति सहज ही वढाई जा सकती है। इसकी कीमत नहीके बराबर है और घरका एक कोना-भर मिल जाये तो भी उसे चलाया जा सकता है। अगर

अपनी रुई आप खुद नही पीजते तो आपको पीजनी चाहिए। आप कदाचित् अपनी कोठरीमे धुनकी नही लगा सकते। अत आप विनोबाने आन्ध्र-पद्धतिका जो सरल अनुकरण ढूँढ निकाला है उसके अनुसार पीजिए। उसके उपकरण सादे हैं और उनसे आप अपनी कोठरीमे पिंजाई कर सकते हैं। यदि आप इस प्रक्रियामे रस ले सकें तो बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। रुईमे जो रोमांस भरा पडा है यदि आप उसे देखने बैठेंगे तो ऐसा रस लूट सकेंगे जो किसी सर्वोत्तम उपन्यासमे भी नही मिलता और हिन्दुस्तानकी गरीबीकी कुंजी आपके हाथमे आ जायेगी। इसलिए अगर आपको सच्चा सत्याग्रही बनना है, सच्ची अहिंसाका विकास करना है तो आप चाहे कही भी हों, मैं तो आपको कातने और बस कातने की ही सलाह दूँगा। सूत्र-यज्ञके बिना अहिंसक स्वराज्य असम्भव है।

लेकिन अगर आप बिलकुल फुरसतमे हों और उतना कात भी लेते हो जितनेसे मुझे सन्तोष हो जाये और आपको अन्य सेवा-कार्य करने की उत्कण्ठा हो तो मैं आपको अनेक काम बता सकता हूँ। आप हरिजनोकी सेवा कीजिए। उनके जीवनमें प्रवेश कीजिए। हरिजनोंके मोहल्लेमे जाकर रहिए और वहाँ उन्हे पढ़ाइए। अगर वे बीमार हों तो उनकी तीमारदारी कीजिए। उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के रास्ते उन्हे बताइए। यह क्षेत्र विशाल है। अब तो ठक्कर बापा आपके शहरमे बहुत समय बितानेवाले हैं। यदि आप उनसे कहेंगे तो हरिजन-सेवाके काममे वे आपका मार्ग-दर्शन करेंगे।

नि स्वार्थ भावसे मुसलमानोसे मित्रताके सम्बन्ध बनाइए। हो सकता है कि आप अपने पड़ोसीको भी न जानते हो। यदि ऐसा हो तो उनसे जान-पहचान कीजिए। उनकी जो सेवा बन सके, सो कीजिए। यदि अन्य मतावलम्बियोंसे आपका परिचय न हो, तो उनसे परिचय कीजिए। आपका परिचय किन-किनसे है, इससे आपकी अपनी परख हो जायेगी।

फिर, आप खादीका प्रचार कर सकते है। खादी-भण्डारके काकुभाईके पास जाकर उनसे पूछिए कि खादीकी फेरी अथवा ऐसे ही अन्य कामोंमें वे आपका क्या उपयोग कर सकते हैं। यह तो मैंने आपके सामने कुछ नमूने पेश किये हैं। सेवाका क्षेत्र असीम है, और बम्बई-जैसे शहरमे तो सेवाके पहाड खडे हैं, आप खोदते ही जाइए।

दूसरोंके काजी मत बनिए

प्र० : बम्बईमें अनेक व्यक्ति केवल पद प्राप्त करने के लिए कांग्रेसमें सम्मिलित हुए हैं। वे बिलकुल नही कातते। कुछ लोग नामके लिए चरखा घरमें रख लेते हैं। इस बारेमें आपका क्या कहना है?

उ० आप दूसरोके काजी मत बनिए। आप अपने ही काजी बने तो आपको पूरा सन्तोष प्राप्त होगा। दूसरोके काजी बनने जायेंगे तो मुसीबतमे पडेंगे। यदि मुझे कोई काग्रेस कमेटीका मन्त्री बना दे तो अनुशासनका पालन न करनेवालोके नाम आप मेरे रजिस्टरमे नही पायेंगे।

क्या हरिजन फौजमें भरती हो?

प्र० : मैं हरिजन-सेवक हूँ। मैं फौजी तालीममें विश्वास करता हूँ। क्या मैं हरिजनोको फौजमें भरती होने के लिए प्रोत्साहित कर सकता हूँ? जो फौजमें भरती हो जाते हैं उनका डर जाता रहता है। वे अस्पृश्य नहीं रह जाते। उन्हे अपने सम्मानका भान हो जाता है। आप मुझे क्या सलाह देंगे?

उ० : आपको मुझसे यह प्रश्न नही पूछना चाहिए था। मैं स्वय फौजी तालीममें विश्वास नही करता। और न आपकी तरह मैं यही मानता हूँ कि फौजमें भरती होनेवाले हरिजनका अकस्मात् कायाकल्प हो जाता है। लेकिन अगर कोई हरिजन स्वेच्छासे फौजमें भरती होना चाहे तो मैं विशेष प्रयत्न करके उसे रोकूँगा नही। बड़े लोगोंके लड़के यह तालीम ले और हरिजनोमे उनका अनुकरण करने की उत्कठा पैदा हो जाये तो मैं उन्हे कैसे रोकूँ? उन्हे अहिंसाका पाठ सिखाना कठिन काम है। जो दुहरे दबावमे पले-बढ़े है वे एकाएक अहिंसाको मनमे कैसे स्थान दे सकते है? मुझे तो आश्चर्य यही है कि इतने रौंदे-कुचले जाने के बावजूद ऐसे हरिजन मौजूद हैं जिन्होंने अहिंसाका पाठ ठीक-ठीक सीख लिया है।

अपात्रके प्रति उदारता

प्र० : जब अंग्रेजोके सामने जीवन-मरणका प्रश्न है, तब उन्हे सताना नहीं चाहिए, इस कारण आप सविनय अवज्ञा नहीं करते। क्या आपको नहीं लगता कि जिनके प्रति आप यह उदारता दिखा रहे हैं वे इसके पात्र नहीं हैं, और इस तरह स्वराज्यकी लड़ाई लड़ते रहने का जो आपका पहला कर्त्तव्य है उससे चूक रहे हैं?

उ० : मैं ऐसा नही मानता। अगर मैं इस समय सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करूँ तो उससे मेरी अहिंसा लज्जित होगी और मेरी अवज्ञामे विनय नही रहेगी। अंग्रेजोकी हारसे स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न मैं कभी नही करूँगा। यह कोई प्रेमकी निशानी नहीं है। अत. मेरी उदारता अपात्रके प्रति नहीं है। उदारता अहिंसाका अग है। उसके बिना अहिंसा पगु है, इसलिए वह चल ही नही सकती।

अस्पृश्यताकी मर्यादा

प्र० : सत्याग्रह-शिविरोमें अस्पृश्यताकी मर्यादाका प्रश्न प्रायः उठा करता है। हमारे बिहारमें तो उठता ही है। यदि छू लेने-मात्रसे अस्पृश्यताका निवारण होता हो तो अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज बिहारमें नहीं है। लेकिन अगर अपने घड़ेमें से अछूतको पानी लेने देने की बात हो, अपनी पंगतमें उसे जीमने देने की बात हो, अपनी रसोईमें उसे आने देने की बात हो तो यह अस्पृश्यता कांग्रेसियोंमें भी है। इस सम्बन्धमें आपका क्या कहना है?

उ० . अस्पृश्यता-निवारण सही ढगसे तो तभी हुआ माना जा सकता है, जब अस्पृश्य माने जानेवाले अपने भाई-बहनोंके साथ भी मैं वैसा ही व्यवहार करूँ, जैसा

अपने भाई-बहनोंके साथ करता हूँ। काग्रेसके रसोईघरोमें अब जात-पाँतकी मर्यादा नही रही है, अस्पृश्य और स्पृश्यका भेद मिट गया है। इसलिए जैसा आप लिखते है, अगर बिहारमे वैसा भेद किया जाता हो तो मुझे आश्चर्य होगा और दु ख भी होगा। काग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममे जितनी न्यूनता रहेगी, जितना मैल होगा उतना ही स्वराज्य देरसे आयेगा। यदि हमे सच्ची अहिंसासे स्वराज्य प्राप्त करना है तो वह आत्मशुद्धिके बिना प्राप्त नही होगा। आत्मशुद्धि शब्दका प्रयोग आज मै नये सिरेसे नही कर रहा हूँ। इसका प्रयोग काग्रेसके प्रस्तावमे किया गया है। सन् १९२० से आत्मशुद्धि काग्रेसकी राजनीतिका अभिन्न अंग बनी। स्व० मोतीलालजी तथा अन्य नेताओंके तत्कालीन पत्र पढ़ने और विचार करने लायक है। उन लोगोंके जीवनने पलटा खाया था। उस ऊँची सीढ़ीसे क्या आज हम नीचे उतर आये है?

पापके पैसेका दान

प्र० : मान लीजिए, किसी व्यक्तिने गरीबोंका लहू चूसकर करोड़ों रुपये जमा किये और आप-जैसे महात्माको दिये, और आपने वे रुपये सचमुच पारमार्थिक काममें लगाये, तो क्या जिसने करोड़ों रुपये जमा किये थे वह व्यक्ति पापमुक्त हो गया? आपने भी अनीतिपूर्ण ढंगसे कमाया गया यह पैसा स्वीकार करके क्या नीति-भंग नहीं किया है? जहाँ ऐसा ही चक्र चलता रहता हो वहाँ कोई आदमी कैसे दोषमुक्त रह सकता है? इस अनीतिसे — मजदूरोंके शोषणसे — अहिंसा कैसे पार पा सकती है?

उ० मै सचमुच ही महात्मा हूँ, ऐसा मानकर हम इस पहेलीको हल करे। जैसा आप मानते है उस रीतिसे जिसने करोड रुपये इकट्ठा किये थे उसका पाप उसके दानसे हलका नही हो जाता। उसने यदि शुद्ध भावसे मुझे उक्त दान दिया हो तो जहाँतक उस पैसेका सवाल है, उसने उससे नया पाप नही कमाया। इस दानका यह भी परिणाम हो सकता है कि वह करोडपती अनीतिसे धन कमाना छोड दे। लेकिन इस दानको स्वीकार करके मैने कोई पाप नही किया। समुद्रमें पहुँचकर गन्दा पानी भी जैसे समुद्रकी स्वच्छतामे भागीदार बन जाता है, उसी प्रकार दोषपूर्ण धन जब शुभ काममे खर्च होता है तो वह शुद्ध हो जाता है। किन्तु एक शर्त है कि दान करनेवाले की नीयत साफ हो। मुझे धन देकर उसे कोई स्वार्थ नही साधना है और मै वह दान लेकर कोई सौदा नही करता। दस-बीस करोडपतियोंको मिटा देने से गरीबोका शोषण बन्द नही होगा, बल्कि गरीबका अज्ञान दूर करके अहिंसात्मक असहयोग सिखाने से ही वह गुलामीसे मुक्त हो सकेगा और धनी व्यक्ति भी अपने दोषसे मुक्त होगा। मैने तो यहाँतक सकेत किया है कि अन्तमे दोनो बराबरीके साझेदार बनेगे। दोष पूँजीमे नही, उसके दुरुपयोगमे है। किसी-न-किसी रूपमे द्रव्यकी आवश्यकता तो सदा रहेगी ही।

अहिंसा सबसे बड़ा बल

प्र० : आप अंग्रेजोंसे हथियार छोड़कर अहिंसाका मार्ग अपनाने को कहते हैं। इससे एक नैतिक उलझन पैदा होती है। 'क' की अहिंसा 'ख' की हिंसाको प्रोत्साहित करती है। हिंसक मनुष्य जड़वत् हो जाता है। यदि अहिंसक मनुष्यका संघर्ष जड़ पदार्थसे हो तो जड़ पदार्थपर उसकी अहिंसाका कोई असर नहीं होगा। इसलिए मुझे तो लगता है कि आपके विश्वासमें कहीं कोई दोष है। हो सकता है, किसी छोटे क्षेत्रमें अहिंसा सफल हो जाये। लेकिन इतना ही हो तो उसकी कीमत क्या है? उसके बारेमें आपका जो दावा रहा है वह तो छिन्न-भिन्न हो ही गया न?

उ० : आप जिस प्रकार सोच रहे हैं उस प्रकार अहिंसाका झटपट दिवाला नही निकलेगा। अहिंसा सबसे बडा बल है। लेकिन महान् शक्तियोका सभी पूरी तरहसे प्रयोग कर सकें तो फिर उनकी महत्ता क्या रहेगी? पानी-जैसे रोज काममें आनेवाले पदार्थमे भी जो शक्ति निहित है उसका भी अन्त हम नही पा सके हैं। उसकी कुछ शक्तियाँ तो ऐसी हैं कि हम उन्हे देखकर चकित हो जाते हैं। इसलिए अहिंसा-जैसी सूक्ष्मतम शक्तिका हमे तिरस्कार नही करना चाहिए, बल्कि धीरज और विश्वासके साथ उसकी अनन्त शक्तियोकी खोज करनी चाहिए। देखते-देखते इस शक्ति का महान् प्रयोग तो हमने सफलतापूर्वक कर दिखाया है। वैसे, मैंने इस सफल प्रयोग को बहुत नीचा स्थान दिया है। इसे अहिंसाका नाम देते भी सकोच होता है। फिर भी जैसे रामनामके सहारे पत्थर तिरे कहे जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसाके नामसे चलाये गये आन्दोलनसे देशमें जागृति हुई और हम आगे बढे हैं। जिनका विश्वास अटल हो, ऐसे व्यक्ति इस प्रयोगको आगे बढ़ा सकते हैं। हिंसा करनेवाले सब लोग जड़वत् होते हैं, इस उक्तिमें अतिशयोक्ति है। कुछ जरूर मूर्ख-जैसे हो जाते हैं। हो सकता है, ऐसे अपवादस्वरूप उदाहरणोंके आधारपर कोई सिद्धान्त बनाकर हम भूल कर बैठें। नियम सामान्य अनुभवोके आधारपर बनाये जायें, यही निरापद मार्ग है और सामान्य अनुभव तो अवश्य ऐसा है कि काफी हदतक हिंसाका निवारण अहिंसासे हो जाता है। इस अनुभवसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्कट हिंसाका प्रतिकार उत्कट अहिंसासे हो सकता है।

थोडी देरके लिए हम जड़ पदार्थवाली बातपर विचार करें। जो आदमी पत्थरसे अपना सिर टकरायेगा उसका सिर फूटेगा ही। मान लीजिए कि हमारी ओर कोई पत्थर वेगसे चला आ रहा है। उसका सामना करने से दुखद मृत्यु हो सकती है। हो सकता है, रास्तेसे हट जाने से हम बच जाये। लेकिन अगर कही हटने की जगह न हो तो हम धैर्यपूर्वक जहाँ हैं वहीं खडे रहकर पत्थरको लगने दे तो कमसे-कम चोट आयेगी, और मौत भी आई तो वह दुखद नही होगी। इसी विचारको आगे बढायें तो हम अनुमान कर सकते हैं कि मूर्ख आदमीका भी अगर कोई सामना करे तो अन्तमें वह थक ही जायेगा। और ऐसा क्यो नही होगा कि अनेक मनुष्योंके प्रेममय बलिदानसे मूर्ख भी बुद्धिमान बन जाये। अतिशय मूर्खके भी समझदार हो जाने के

उदाहरण देखने मे आये है। कहने का तात्पर्य यह है कि अहिंसाकी शक्ति असीम है, जिसमे धीरज होगा वह उसका आनन्द लूटेगा।

सेवाग्राम, २२ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २७-७-१९४०

३६०. दो वाजिब शिकायतें

१ : अनुवादका अधिकार

कलकत्तासे एक तार आया है, जिसका सार इस प्रकार है.[1]

पहली नजरमे तो यह शिकायत ठीक मालूम होती है। लेकिन मैंने तो सभी भाषाओमे अनुवादकी मनाही की है। अनुभवने मुझे सिखाया है कि मै हिन्दुस्तानकी चाहे जिस भाषामे लिखूँ, अग्रेजीमे उसका यथार्थ अनुवाद तो कदापि नहीं होगा। लेकिन मुझे लगा कि केवल अग्रेजीमे अनुवादकी मनाही करने की बनिस्बत सभी भाषाओंमे अनुवादकी मनाही करना ही उचित होगा। गुजरातीमे प्रकाशित प्रत्येक महत्त्वपूर्ण लेखका अनुवाद 'हरिजन' और 'हरिजनसेवक'मे लगभग एक साथ ही प्रकाशित होगा और इसलिए कोई अड़चन नही होगी। अनुवादको उद्धृत करनेकी मनाही तो है ही नही। इसलिए मै आशा करता हूँ कि यह पहली शिकायतका उचित समाधान माना जायेगा। अगर मैंने अनुवाद प्रकाशित करने की व्यवस्था न की होती, तो यह शिकायत बिलकुल वाजिब होती। मेरा उद्देश्य स्पष्ट और निर्दोष है। मै हिन्दुस्तानकी भाषामे लिखूँ, तभी हिन्दुस्तानके हृदयमे प्रवेश पा सकता हूँ। और वह भाषा तो वही होगी जिसमे मै अधिकतम सरलताके साथ लिख सकता हूँ। अगर हिन्दुस्तानी पर मेरा उतना ही अधिकार होता जितना गुजरातीपर है तो मै हिन्दुस्तानीमे ही लिखता।

२ : क्या गुजराती अधिक अहिंसक है?

दूसरी शिकायत यह है :

> आपने जो गुजरातीमें लिखना शुरू किया है उससे गुजरातीके प्रति आपका पक्षपात तो सूचित नहीं होता। पर मालूम होता है कि आप ऐसा मानते हैं कि गुजरातियोंपर आप ज्यादा जल्दी असर डाल सकेंगे अर्थात् गुजराती ज्यादा अहिंसक हैं। इस बारेमें मुझे सन्देह है। भले ही गुजरातमें आपके पास अधिक सेवक हों, मगर वहाँ जनतापर आपका कोई खास प्रभाव

१. सार यहाँ नही दिया जा रहा है। शिकायतमें गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंके अनुवादकी जो मनाही कर रखी थी उसका विरोध किया गया था।

हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। आपने अहिंसाके स्तम्भोंमें अस्पृश्यता-निवारण और खादीको रखा है। आपके गुजरातमें और खासकर काठियावाड़में जितनी भयानक अस्पृश्यता है उतनी हिन्दुस्तानके किसी दूसरे भागमें शायद ही होगी। ऐसे वचन भी आपके ही मुँहसे सुने हैं। और आपने बताया है कि खादीके बारेमें भी यही हाल है। गुजरात मिलोंका केन्द्र-स्थान है। इसमें शक नहीं कि गुजरातमें बहुत-से सेवक खादी-प्रेमी हैं और उन्होंने अस्पृश्यताको अपने जीवनमें से सर्वथा निकाल दिया है। मगर मेरी शिकायत तो आम जनताके बारेमें है। जहाँकी जनता कम तैयार है वहाँ आप ज्यादा असर क्या डालेंगे? इसलिए आप अपनी अधिक अच्छी गुजरातीके बजाय टूटी-फूटी हिन्दुस्तानीमें क्यों न लिखें? क्योंकि मेरा अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानी समझनेवालोंकी संख्या तो बहुत ज्यादा है ही, और शायद आपका असर भी हिन्दुस्तानी जनतापर ज्यादा होगा। यदि ऐसा न हो, तो भी जितना प्रभाव गुजरातियोंपर है उतना तो है ही, यह मैं छाती ठोंककर कह सकता हूँ।

यह शिकायत मधुर हिन्दुस्तानीमे बडे सरल भावसे की गई है। उसका भावार्थ मैंने अपनी भाषामे दिया है। ऐसा करते हुए मैंने मूल लेखके प्रति अन्याय तो नही ही किया है, वल्कि शायद लेखक स्वीकार करेगा कि मैंने उसकी दलीलको कुछ और प्रभावशाली बना दिया है। उसे इस तरह प्रभावशाली बनाने मे मेरा क्या उद्देश्य है, यह मेरा उत्तर पढने से समझमे आ जायेगा।

मेरा दावा है कि मैंने, गुजराती होकर भी, ऐसा कभी नही माना कि मैं दूसरे प्रान्तोंसे भिन्न हूँ। मैंने अपने-आपको हमेशा हिन्दुस्तानी माना और बताया है। मैं जब दक्षिण आफ्रिका पहुँचा तो वहाँ तमिल, तेलुगु तथा गुजरातियोके बीच परस्पर भेदभाव था। मैंने वहाँ पहुँचते ही उसे मिटाया, क्योकि मुझे लगा कि हिन्दुस्तानसे यहाँ आये हुए सब लोग हिन्दुस्तानी है, इनमे न प्रान्तके नामपर भेद किया जा सकता है, न धर्मके नामपर। उनके प्रान्त भिन्न हैं, धर्म भिन्न हैं, भाषाएँ भिन्न हैं, यह सब तो ठीक है, लेकिन सबका देश एक है, सबका सुख-दुःख एक है, सब एक राज्यके अधीन हैं, और जब वे परदेस जाते हैं तो परदेसी भी उनके बीच जाति, धर्म अथवा प्रान्तका भेद न तो जानते हैं, न मानते हैं। उनके लेखे तो हम सब हिन्दुस्तानी, सब कुली, सब सामी हैं और सबके लिए एक ही कानून है। अब हम कुली और सामी नही रहे, लेकिन सबकी पहचान तो एक ही है। इसलिए अपने स्वभाव तथा अनुभवसे मैंने भेद माना ही नही, न किसीको मानना चाहिए।

लेकिन इस सबके बावजूद जब मैं अपनी शक्तिके उपयोगका विचार करता हूँ, और उसे भारत माताके चरणोमे अर्पित करता हूँ, तो मुझे अपने मूलका विचार तो करना ही चाहिए। गुजराती मेरी मातृभाषा है, गुजरातके साथ मेरा सम्बन्ध अधिक है। गुजरातके माध्यमसे, गुजराती भाषाके माध्यमसे ही मैं भारतमाताकी अधिकतम सेवा कर सकता हूँ — इस विचार-सरणीके अनुसार मैंने गुजरातमें रहना

पसन्द किया, फिर भी पोरबन्दर या राजकोटमे नही, हालाँकि दोनो स्थानोसे मुझे आमन्त्रण मिला था और वहाँ सुभीता भी था। मै पोरबन्दर या राजकोटका नही रह गया था, मै अपनी जातिका भी नही रह गया था। मेरी यह पसन्द सब प्रकारसे उचित सिद्ध हुई है; होनी भी चाहिए थी, क्योकि मेरा जीवन इस मान्यतापर आधारित है कि मै भगवान्के दिखाये रास्तेपर चलता हूँ।

ऊपरकी विचारमाला यदि पाठकोंके गले उतर गई हो, शिकायत करनेवाले साथीके गले उतर गई हो, तो मेरे लिए अधिक कुछ कहने को नही रह जाना चाहिए। लेकिन मुझे कहना है, क्योकि मुझे गुजरातियोंसे और सारे देशसे काम लेना है।

जितना निकट परिचय मेरा गुजरातियोसे है, उतना निकट परिचय और उतनी सख्यामे दूसरोसे नही है। इसलिए अपनी बात अगर मै उन्हे समझा सकूँ तो मुझे इस बातका विश्वास हो जायेगा कि मै सारे हिन्दुस्तानको समझा सकूँगा। वे लोग तो मानते हैं कि मुझे गुजरातमे ही रहना चाहिए, लेकिन मुझे ऐसा नही लगता। यदि मै उनके बीच बना रहूँ तो वे मौलिक कार्य, स्वतन्त्र कार्य नही कर सकेंगे। प्रतिपल उनका मार्गदर्शन करनेवाले सरदार-जैसे प्रौढ नेता उनके पास हैं। इसलिए मुझे लगता है कि गुजरातमे बसने से मेरी शक्तिका पूरा उपयोग नही होगा।

सेवाग्राममे मुझे भगवान्ने ही रखा है, फिर चाहे यह एक कठिन क्षेत्र ही क्यों न हो। यदि वह कठिन है तो उसे मुझे ही सुधारना है। सेवाग्राममे रहने से मुझे बहुत-कुछ नया सीखने को मिला है और मिलता जा रहा है। यदि वहाँकी छह सौ की बस्तीमें मै घुलमिल सकूँ, उन्हे रचनात्मक कार्यमे लगा सकूँ, उनमे आवश्यक सुधार करा सकूँ और वे सहज ही सत्याग्रही सेनाका रूप ले ले तो सारे देशमे वैसा करने की कुजी मेरे हाथ लग जायेगी। हो सकता है कि बडे क्षेत्रमे काम करने से मै खो जाऊँ, घबरा जाऊँ या रास्ता भूल जाऊँ। सेवाग्राममे बहुत-कुछ व्यवस्थित हो गया है, और यह सब सारे देशको दृष्टिमे रखकर किया गया है। इसलिए यह उचित ही है कि सेवाग्राममे रहकर ही, मुझे जो कहना हो, मै भारतवासियोसे कहूँ, और वह भी गुजराती भाषाके माध्यमसे।

इसमे एक विघ्न आ सकता है। खान साहब जब चाहे मुझे अपने कामसे सीमा-प्रान्तमे खीच ले जा सकते हैं। उनका काम मेरा काम है। यह मेरा दृढ विश्वास है कि उन्हे सफलता मिलेगी तो समूचे देशको सफलता अवश्य मिलेगी। वहाँ सच्चे अर्थोमे बलवानकी अहिंसाका प्रयोग चल रहा है। वह सफल होगा या नही, यह तो भगवान् ही जाने। लेकिन मै जहाँ जाऊँगा, उसीके इशारेपर और उसीके कामके लिए। हिन्दुस्तानको आजादी अहिंसाके द्वारा मिले, इसे मैं भगवान्का ही काम मानता हूँ। और अगर यह आजादी मिल जाये, तो सारा ससार जो लहूकी नदीमे डूब रहा है, उबर जायेगा।

इस तरह पाठक देखेगे कि इसमे गुजरात अथवा किसीके भी प्रति कोई पक्षपात नही है। यदि पक्षपात है भी तो सत्य और अहिंसाके प्रति ही है। इनके माध्यमसे मुझे भगवान्की थोड़ी-बहुत झाँकी मिलती है। मेरे लिए सत्य और अहिंसा

ही भगवान् हैं। एक दिशासे देखता हूँ, तो वे सत्यरूप हैं और दूसरी ओरसे देखता हूँ, तो वे ही अहिंसारूप दिखाई देते हैं।

शिकायत करनेवाले साथीकी यह बात बिलकुल सच है कि अस्पृश्यता-निवारण तथा खादीके प्रति प्रेमके मामलेमें गुजराती जनता और सब प्रान्तोंकी जनतासे पीछे है। लेकिन गुजरातकी इस त्रुटिका यह मतलब नहीं है कि मैं गुजरातसे भाग जाऊँ। यदि गुजरातमें ये दोनों बातें सफल न हों, तो गुजरात ही हिन्दुस्तानकी आजादीको रोकनेके दोषका भागी होगा। इन दो महारोगोंको निकाल बाहर करनेके लिए अगर मैं गुजरातियोंको अपने प्राण उत्सर्ग करनेको प्रेरित कर सकूँ तो कितने आनन्दकी बात हो! यदि ऐसा हो सके तो सारे हिन्दुस्तानके लोग उन्हें देखने आयें, और हिन्दू-मुस्लिम दंगोंका भी सहज ही हल निकल आये। हमारे हृदयसे अस्पृश्यताका भाव निकल जाने पर ही हिन्दू-मुस्लिम एकता सिद्ध होगी तथा और भी बहुत-कुछ मिलेगा।

आज तो यह सब सपना ही है। इस सपने को सच करने के लोभसे इस बुढ़ापेमें भी मैं गुजराती भाषाके माध्यमसे अपना सन्देश पहुँचानेका साहस बटोरता हूँ। अगर भगवान्को मुझसे इस प्रकार काम लेना होगा तो उनके निकट तो मैं सदा जवान ही हूँ।

सेवाग्राम, २२ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २७-७-१९४०

३६१. खुला पत्र

प्रिय गांधीजी,

. . . मैं आज भी यह आशा और दुआ कर रहा हूँ कि कांग्रेसकी समझमें आ जाये कि यह उसके लिए सन्दिग्ध महत्त्वकी राजनीतिक विजय प्राप्त करनेका नहीं, बल्कि . . . इंग्लैंड तथा विश्वके अन्य सभी देशोंके स्वतन्त्रता-प्रेमियोंकी मैत्री प्राप्त करनेका परम अवसर है, और उस मैत्रीको प्राप्त करनेका मार्ग यह है कि कांग्रेस भारतकी रक्षा या विश्वमें लोकतन्त्रके बचाव के लिए एकमात्र उपयुक्त उत्साहका — मनुष्यके प्रति मनुष्यकी निर्दयताके विरुद्ध अन्ततक अहिंसक लड़ाई चलानेके उत्साहका — परिचय दे। भारतकी सारी ताकतको मिलाकर बननेवाली मात्र तृतीय श्रेणीकी सैनिक शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा मुख्य सैनिक शक्तिके लिए एक मामूली सहारेकी ही भूमिका निभा सकती है। . . . लेकिन प्रतिरक्षा समितियोंको तथा जिन्हें सैनिक मार्गसे किसी बेहतर रास्तेका इल्म नहीं है उन्हें हतोत्साह नहीं करना चाहिए। मेरे कहनेका मतलब यह है कि ये प्रयत्न तो जारी रहने ही दिये जायें, लेकिन

उनके साथ ही जो लोग शान्तिको समझते और उससे प्रेम करते हैं उन्हें ठीक उसी प्रयोजनसे एक अहिंसक प्रतिरक्षा-वाहिनी तैयार करनी चाहिए जिस प्रयोजनसे सैन्य बलका संगठन किया जा रहा है। सेनाकी तरह इस वाहिनीको भी अराजनीतिक ढंगसे और स्वेच्छासे संगठित होना चाहिए। यह वाहिनी भारतके प्रतिरक्षा-सम्बन्धी हितोंके लिए अहानिकर होने के—नकारात्मक ही सही—गुणसे तो युक्त होगी ही, साथ ही उसे चाहिए कि वह भारतमें या अन्यत्र रहनेवाले स्वतन्त्रताके सभी शत्रुओंके विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक या आक्रामक कार्रवाई करनेको तत्पर एक अहिंसक सेनाके रूपमें आरम्भमें ही अपनेको सरकारकी सेवामें प्रस्तुत कर दे।

. . . मैं समझता हूँ, इस युद्धसे स्पष्ट हो चुका है कि सशस्त्र सेना लोकतान्त्रिक संस्थाओंको पहले तो बेकार बनाये बिना और फिर उन्हें नष्ट किये बिना उनकी भी रक्षा नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त, विश्वकी सशक्ततम प्रतिरक्षा सेना भी इस युद्धोन्मत्त संसारमें अपने राष्ट्रको निरापद नहीं बना पाई है। मुझे विश्वास है कि आर्थिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार के आक्रमणके विरुद्ध चलाया गया अहिंसक युद्ध न केवल सभी सेनाओंसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगा, बल्कि अगर दुनियाके सभी अहिंसक लोग इस मसलेपर एकहृदय और एकबुद्धि होकर विचार करें तो ऐसा युद्ध बड़ी शीघ्रतासे छेड़ा जा सकता है। . . .

परम्परागत लोकतंत्रमें पीड़ित लोगोंको सिद्धान्त-रूपमें यह अधिकार दिया गया था कि अगर सरकारमें उनकी इच्छाका प्रतिनिधित्व करनेवाले लोग न हों तो वे हिंसक विद्रोह कर सकते हैं। किन्तु शुद्ध लोकतन्त्रको, विद्रोहके अधिकारको कायम रखते हुए, हिंसाको अस्वीकार करना होगा। वह इसलिए कि हिंसाका प्रयोग चाहे जैसे किया जाये, वह लोकतन्त्रके प्रतिकूल वस्तु है। . . . मैं नहीं समझता कि इतिहासमें ऐसा एक भी उदाहरण है जब प्रतिरक्षात्मक युद्धसे उन समस्याओंका समाधान हुआ हो जिनके लिए प्रतिरक्षकोंने अपनी मान्यताके अनुसार युद्ध किया है। परन्तु दूसरी ओर, डेनमार्क एक ऐसे राष्ट्रका उत्कृष्ट उदाहरण है जो साम्राज्यवादी विजयकी झूठी शान या अपनी अखण्डताकी रक्षाके आग्रहका त्याग करके स्वतन्त्रताके मार्गपर आरूढ़ हुआ है।

क्रिस्टाग्रह अपने दो घोषणा-पत्रोंमें अपने प्रभु ईसाकी अहिंसाके प्रति स्पष्ट शब्दोंमें अपनी आस्था प्रकट कर चुका है। घटनाक्रमने जो नया मोड़ लिया है उसके सन्दर्भमें अपनी वर्त्तमान स्थितिको पूर्णतः स्पष्ट करनेके लिए वह शायद शीघ्र ही उसपर पुनर्विचार करे, हालाँकि यह अनावश्यक प्रतीत हो सकता है। बहुत-से मिशनरियोंको हालमें स्मरण-पत्र 'ए' की प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी स्मरण-पत्रके अधीन भारतमें सभी गैर-ब्रिटिश मिशनरी काम करते

हैं। उनमें से अधिकतर लोगोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सरकारने उन्हें राष्ट्रकी सुरक्षा और कल्याणके हकमें राजनीतिको "प्रभावित" करनेकी सुविधा दी है। तो मैं मानता हूँ कि स्वातन्त्र्य-प्रेमी ईसाइयोंके लिए — चाहे वे मिशनरी हो या गैर-मिशनरी — अपने प्रभु ईसाके तलवार न उठानेके आदेशका पालन करते हुए, अपने राष्ट्र और विश्वकी सेवा करनेका यह परम उपयुक्त अवसर है। खुद अपने बारेमें मैं कह सकता हूँ कि इस महान् उद्देश्यके प्रति अपनेको पूर्णतः समर्पित करनेके लिए मैं तैयार हूँ, और प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आप विश्व-सत्याग्रह सेनाका संगठन करनेका फैसला करें तो मैं आपके नेतृत्वका अनुसरण करूँगा। मैं ऐसा इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि इसी मार्गपर चलकर मानव-जातिकी गैर-भाईचारेकी प्रवृत्तिसे उद्भूत वास्तविक आक्रमण-वृत्तिको समूल नष्ट किया जा सकता है और न्याय, समानता तथा शान्तिके आधारपर नये विश्वका निर्माण किया जा सकता है। . . . जिस रास्तेपर संयुक्त राज्य और इंग्लैंड अबतक चलते रहे हैं उसमें मुझे कोई आशा दिखाई नहीं देती। १९४० का युद्ध कभी विजयमें परिणत नहीं हो सकता। अलबत्ता व्यवस्थापर अव्यवस्था, सभ्यतापर बर्बरता, लोकतन्त्रपर निरंकुशता, प्रकाशपर अन्धकार और नेकीपर हिंसाकी विजय हो सकती है। विश्वके एक बड़े भागमें ऐसा हो भी चुका है और शेष भाग भी तेजीसे उसकी लपेटमें आ रहा है। लेकिन सद्भावनाका उदारतासे प्रयोग किया जाये तो इसे अब भी हर भागमें रोका जा सकता है — विशेषकर यह देखते हुए कि ऐसे लोग बड़ी संख्यामें मौजूद हैं जो अपने अन्दर विद्यमान सत्यके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिए तैयार हैं।

ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह आपको अपने मार्गपर चलनेकी प्रेरणा दे। इस भूमण्डलपर आपके असंख्य मित्र हैं। हमारे युगकी अपार स्नेह-शून्यता और मूढ़ताका यदि अहिंसक प्रतिरोध किया जाये तो शायद अब भी नये युगका उदय हो सकता है और विभिन्न राष्ट्रोंके बीच पूर्ण न्यायपर आधारित शान्ति स्थापित हो सकती है।

सत्यके प्रति आपकी एकाग्र निष्ठाकी परम सराहनाके भाव तथा हार्दिक स्नेह-सहित,

आपका,
विश्व-सत्याग्रह सेनाके लिए समर्पित,
रॉल्फ टी० टेम्पलिन

उपर्युक्त पत्र[1] मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। श्री टेम्पलिन उन पाश्चात्य सत्याग्रहियोंका नमूना हैं जिनकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मैं उनके पत्रके

१. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये गये हैं।

सम्बन्धमे केवल दो बाते कहना चाहता हूँ। मै कहना चाहता हूँ कि डेनमार्क अहिंसक कार्रवाईका उदाहरण नही है।[1] यह सम्भव है कि वह सबसे अधिक समझदारीका काम रहा हो। जब सशस्त्र प्रतिरोध बेकार हो तब मनुष्यका खून बहाना मूर्खता है। दूसरी बात यह है कि मै विश्वकी किसी सत्याग्रह-सेनाका नेतृत्व करने की आशा नही रखता हूँ। इस समय जहाँतक मै देख सकता हूँ, हर देशको अपना कार्यक्रम खुद बनाना पड़ेगा। यह सम्भव है कि सब एक ही समयमे कार्रवाई करे।

सेवाग्राम, २३ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

३६२. त्रावणकोर

मैं आशा कर रहा था कि किसी दिन सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरसे बातचीत करने का अवसर मिलेगा और उससे त्रावणकोरकी विकट समस्याका शायद कोई हल निकल आयेगा। इसी आशासे मैं वहाँकी कांग्रेसके एकके-बाद-एक कार्य-वाहक अध्यक्ष द्वारा भेजे गये घोषणा-पत्रोका प्रकाशन रोके हुए था। आखिरी घोषणा-पत्र जून महीनेके अन्तिम सप्ताहमे श्री अच्युतन नामक एक हरिजन वकीलकी ओरसे प्राप्त हुआ। उसमे से दलीलो और निष्कर्षोवाले अशोको यथासम्भव निकालकर, तथ्यात्मक विवरणवाला हिस्सा मैं नीचे दे रहा हूँ:

> किसी प्रकारके प्रतिबन्धक आदेशका कोई दिखावा तक किये बिना, विशेष और सामान्य पुलिस द्वारा जुलूसों और सभाओंको जबरदस्ती भंग करवाया गया है। केन्द्रीय विधान-सभाके सदस्य श्री के० सन्तानम्ने त्रावणकोरमें थोड़ा समय बिताकर मद्रास जाने पर वहाँ जो भाषण दिया उसका कुछ हिस्सा यहाँ दे रहा हूँ। उन्होंने कहा: "मेरे मनपर यह छाप पड़ी है कि त्रावण-कोरमें पुलिस-राज है। कोई भी व्यक्ति अपनी बात निरापद महसूस करते हुए नहीं कह सकता था, और अपने मित्रसे भी चर्चा करते घबराता था। सरकार उत्तरदायी शासनकी किसी प्रकारकी चर्चाकी छूट न देने को कृतसंकल्प जान पड़ती है, और उसे रोकने के लिए कोई भी हथकण्डा अपनाने को तैयार है। लोकमतकी अभिव्यक्तिके सारे सामान्य रास्ते बन्द कर दिये गये हैं।"
>
> दमन-चक्र निष्ठुरतासे चलाया गया है, जिसके लिए तीन तरीके अपनाये गये हैं: १. कानूनी आतंक, २. पुलिस आतंक, ३. समाचार-पत्रोंकी जबान-पर ताला।
>
> १. कानूनी आतंक 'त्रावणकोर सुरक्षा अधिघोषणा' के रूपमें सामने आया है। जो गम्भीर स्थिति पैदा हो गई है उसका कारण यह नहीं है कि

१. देखिए "बातचीत: एमिली किनेडीके साथ", पृ० ३३४-३६।

लोग अमुक संख्यामें गिरफ्तार और अनिश्चित कालके लिए नजरबन्द कर लिये गये हैं, बल्कि यह है कि आज राज्य कांग्रेससे किसी प्रकार की सक्रिय सहानुभूति रखनेवाले हर पुरुष और स्त्रीके सिर खतरा मँडरा रहा है। बहुत-से लोग इस अधिनियमके अधीन गिरफ्तार करके यों ही छोड़ दिये गये हैं, जिससे उन्हें यह मालूम हो जाये कि अधिकारीगण किसीके भी साथ चाहे जैसा बरताव कर सकते हैं। अधिनियमके अन्तर्गत बहुत-से महत्त्वपूर्ण नेता बिना मुकदमा चलाये अनिश्चित कालके लिए जेलोंमें डाल दिये गये हैं।

२. पुलिसके आतंकका सामान्यतः जो अर्थ लगाया जा सकता है, उससे कहीं अधिक विकराल रूपमें यह चीज सामने आई है। त्रावणकोरमें वह जुलूसों और सभाओंके जबरदस्ती भंग किये जाने तक ही सीमित नहीं रहा है। यहाँ वह तथाकथित विशेष पुलिसके लोगोंकी, जो कोई गणवेश नहीं पहनते और सिर्फ ५ रुपये माहवार वेतन पाते हैं, छिपी और खुली गुण्डागर्दीकी शक्लमें सामने आया है। इस विशेष पुलिसमें विभिन्न इलाकोंके छँटे हुए बदमाश और पियक्कड़ शामिल हैं। उनका खास काम भीड़में घुल-मिलकर अचानक गुण्डागर्दी शुरू कर देना है। ऐसी गुण्डागर्दीके कारण सभ्य रीतिसे किसी भी सभा, जुलूस या प्रदर्शनका आयोजन करना असम्भव हो गया है। नय्या-टिंकारा, अल्लप्पी, पालाई, करुणागपल्ली तथा कई अन्य स्थानोंमें खुलेआम ऐसी गुण्डागर्दी की गई है।

३. समाचार-पत्रोंकी जबानपर ताला: बेशक, त्रावणकोरमें कई अखबार नियमित रूपसे निकल रहे हैं। लेकिन उनमें से कोई भी राज्य कांग्रेसकी सभाओं और प्रदर्शनोंका समाचार या विवरण छापने को तैयार नहीं। राज्य कांग्रेसके कार्यवाहक अध्यक्षों या उसके नेताओंके वक्तव्य उनमें कभी प्रकाशित नहीं होते। कई प्रसंगोंपर रियासतके एक भागके लोगोंको, दूसरे भागमें क्या हुआ, इसकी कोई जानकारी नहीं मिल पाई; जो मिल पाई, सो केवल मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी समाचार-पत्रोंसे ही मिल पाई। जब पुलिसने नय्या-टिंकारा और पालाईमें कहर बरपा किया तो यह बात पूरी तरह सिद्ध हो गई।

किन्तु त्रावणकोर सरकार दमनके इन तरीकोंसे ही सन्तुष्ट नहीं हुई। बड़ेसे-बड़े और छोटेसे-छोटे हर अधिकारीने रियासतमें घूम-घूमकर राज्य कांग्रेसके हर सदस्य और हर हमदर्दके साथ न केवल उसे किसी उपद्रवी राजनीतिक दलका आदमी मानकर व्यवहार किया, बल्कि उसे किसी दुश्मन की भाँति हर तरहसे परेशान किया। आन्दोलनसे सम्बद्ध लोगोंको हवालातोंमें पुलिसकी हिंसाका शिकार बनना पड़ा। जो गिरफ्तार स्वयंसेवक मुकदमा

चलाये जाने का इन्तजार कर रहे हैं उन्हें निष्ठुरतासे पीटा जाता है और अक्सर कई-कई सप्ताहोंकी नजरबन्दीके बाद उन्हें मुकदमा चलाये बिना छोड़ दिया जाता है।

राज्य कांग्रेसके नेताओंने जब-जब त्रावणकोर पुलिसके खिलाफ आरोप प्रकाशित किये, सरकारने उन्हें स्पष्ट रूपसे और पूर्णतः अस्वीकार कर दिया है। लेकिन श्री जी० रामचन्द्रन् द्वारा नय्याटिंकारा और पालाईमें पुलिस-जुल्म के बारेमें लगाये गये जो स्पष्ट आरोप मद्रासके 'हिन्दू' में प्रकाशित हुए और जिनके समर्थनमें सर्वथा असन्दिग्ध तथ्य-आँकड़े प्रस्तुत किये गये, उनके फल-स्वरूप सरकारको अन्तमें सरकारी जाँचका आदेश देने को विवश होना पड़ा। ध्यातव्य है कि सरकार द्वारा प्रकाशित इन आरोपोंकी स्पष्ट और सम्पूर्ण अस्वीकृतिके बहुत बाद इस जाँचका आदेश दिया गया है। जनताको जाँचके निष्कर्षोंका अब भी इन्तजार है।

लेकिन वर्त्तमान परिस्थितिने जो सबसे चिन्ताजनक मोड़ लिया है उसकी चर्चा तो अब कर रहा हूँ। तात्पर्य दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर-सहित सभी अधिकारियों द्वारा विभिन्न साम्प्रदायिक संगठनोंको दिये जा रहे प्रोत्साहनसे है। किसी समय सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर कहा करते थे कि त्रावणकोरमें विभिन्न साम्प्रदायिक संगठनोंकी मौजूदगी के कारण ही त्रावण-कोरमें उत्तरदायी शासनकी कोई योजना लागू नहीं की जा सकी है। लेकिन आज साफ मालूम पड़ रहा है कि उनकी नीति हर साम्प्रदायिक संगठनको अपने अलग रास्तेपर विकसित होने में बढ़ावा देने की है, ताकि राजनीतिक एकता असम्भव हो जाये। सरकारी अधिकारी और स्वयं दीवान भी विभिन्न साम्प्रदायिक संस्थाओंकी सभाओंमें भाग लेते हैं। त्रावणकोर-प्रेमियोंको मालूम है कि अगर यह प्रक्रिया जारी रही तो वह दिन दूर नहीं जब त्रावणकोर विभिन्न साम्प्रदायिक संगठनोंकी समर-भूमि बन जायेगा।

मैं जानता हूँ कि सरकारकी ओरसे इन आरोपोका प्रतिवाद किया जायेगा। मै पहले ही कह चुका हूँ कि यदि ऐसे प्रतिवादोके साथ निष्पक्ष जाँचका स्पष्ट वचन नहीं दिया जाता तो उनका कोई मूल्य नही हो सकता। जिन्हे सिद्ध नही किया जा सकता ऐसे प्रत्याख्यान प्रकाशित करने से भी अधिकारियोंपर कोई आँच आने की आशका नहीं रहती, लेकिन राज्य काग्रेसके अध्यक्षो द्वारा गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्य जारी किये जाने का मतलब यह होगा कि वे अपनी स्वतन्त्रता और अपनी सस्थाकी प्रतिष्ठाको खतरेमे डाल रहे है।

इसलिए उनकी बातोके सच होने की सम्भावना निश्चय ही अधिक है। श्री अच्युतनने श्री सन्तानम्के भाषणका जो उद्धरण दिया है वह ऐसा नही है जिसकी आसानीसे उपेक्षा की जा सकती हो।

सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके तारकी[1] एक नकल मैंने श्री रामचन्द्रन्‌को भेजी थी। उसपर उन्होंने जो टिप्पणी भेजी है उसका एक अंश मैं नीचे दे रहा हूँ

मैं कह सकता हूँ कि हमारी कार्य-समितिने "साम्यवादी प्रवृत्तियों" को आन्दोलनसे स्पष्ट और पूर्ण रूपसे अलग रखा है। जिन श्री के० सी० जॉर्जका उल्लेख किया गया है वे हमारी कार्य-समितिके कठोरतम आलोचकोंमें से थे, और हमारे कार्य तथा कार्यक्रमको बिलकुल बेकार मानते थे।. . . यह कहना सर्वथा गलत है कि हम चन्दोंकी उगाही और अपने अस्तित्वके लिए बापू द्वारा समय-समयपर जारी किये जानेवाले वक्तव्योंपर निर्भर हैं। पिछले आठ-नौ महीनोंके दौरान बापूने त्रावणकोरके बारेमें एक शब्द भी नहीं कहा है। हमारा हेतु इतना अधिक न्यायसंगत है कि वह बापूपर भी निर्भर नहीं है। वह निर्भर है तो अपनी सहज न्याय्यतापर। बेशक, बापू हमारे हेतुमें सहायक हो सकते हैं। लेकिन यह एक बात है और यह कहना बिलकुल जुदा बात है कि हमारा आन्दोलन बापूपर निर्भर है।. . .

सर सी० पी० कहते हैं कि त्रावणकोर कांग्रेसके अधिकतर सदस्योंने — जिनमें श्री वी० के० वेलायुधन, एम० एन० परमेश्वरन् पिल्लै आदि भी शामिल हैं — कांग्रेससे अपनेको खुले तौरपर अलग कर लिया है। हाँ, इन दो सज्जनोंने ऐसा अवश्य किया है। लेकिन उनमें से किसीने नहीं कहा है कि राज्य कांग्रेस गलतीपर है। श्री वेलायुधनने कहा है कि वे एलवा साम्प्रदायिक संगठनके मण्डली का आदेश मानकर कांग्रेससे अलग हुए हैं; और ध्यातव्य है कि इस संस्थापर सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके आदमियोंने पूरी तरह कब्जा कर लिया है। श्री एम० एन० परमेश्वरन् पिल्लैने तो लगभग क्षमा माँगकर अपनी वकालतकी सनद फिरसे प्राप्त कर ली है। इन कार्रवाइयोंसे राज्य कांग्रेसकी माँग, उसके कार्यक्रम और उसकी स्थितिपर कोई असर भला कैसे पड़ता है? लेकिन इन दो सज्जनोंके अलावा राज्य कांग्रेसके किसी भी नेताने किसी भी अर्थमें अपने कदम वापस नहीं लिये हैं। इस ६० की संख्याका बारीकीसे विश्लेषण करने की जरूरत है।[2] . . . फिर, पालाईमें बरती गई नृशंसतापर मेरा एक दूसरा वक्तव्य भी है, जो 'हिन्दू' में प्रकाशित हुआ है और जिसकी नकल मैं साथमें भेज रहा हूँ। उस समय त्रावणकोरकी सरकारकी ओरसे कहा गया था कि मामलेकी सरकारी जाँच करके प्रेस-विज्ञप्ति निकाली जायेगी। यह कथन हफ्तों पहले प्रकाशित हुआ था, लेकिन किसी जाँच या विज्ञप्तिके बारेमें आजतक कुछ मालूम नहीं हो पाया है। दरअसल उन निश्चित और अकाट्य आरोपोंके

१. देखिए "त्रावणकोर", पृ० ३२३-२४।
२. खाली जगह साधनसूत्रके अनुसार

कारण त्रावणकोर सरकार बड़ी मुश्किलमें पड़ गई थी। अपनी पहली विज्ञप्तिमें उसने हर आरोपको अस्वीकार कर दिया था। और जब मैंने उत्तर दिया तो उसने कहा कि जाँच करके विज्ञप्ति निकाली जायेगी। लेकिन अबतक कुछ नहीं हुआ है।

मैं श्री रामचन्द्रन्के वक्तव्यके प्रत्येक शब्दको सच मानता हूँ। इस भयंकर दमनके कारण शायद राज्य कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या कम हो जाये। लेकिन अगर अहिंसक स्वातन्त्र्यकी मशालको ऊँचा रखनेवाला एक भी सच्चा प्रतिनिधि शेष रह जाता है तो उसी एकके अनेक होते चले जायेंगे और अन्तमें हर त्रावणकोरवासी जीवनदायी स्वतन्त्रताका मसीहा बन जायेगा। अभी कुछ दिन पहले एक मित्रने मुझे अमेरिकाके एक राष्ट्रपतिका एक सूत्र-वाक्य भेजा था. "सच्चे साहससे युक्त अकेला व्यक्ति भी बहुमतके बराबर होता है।" वाक्य मैंने स्मृतिसे उद्धृत किया है, लेकिन आशयमें कोई भूल नहीं है। राज्य कांग्रेसका हर सदस्य इस वाक्यको हृदयगम करके इस विश्वासपर दृढ़ रहे कि अगर एक भी सच्चा व्यक्ति इस दमनके समक्ष टिका रह जाता है तो समझिए, हमने कुछ भी नहीं खोया। लेकिन मैं जानता हूँ कि राज्य कांग्रेसमें ऐसे एक नहीं, अनेक तपे-परखे स्त्री-पुरुष हैं जो त्रावणकोरके उपाय-कुशल दीवान और उनके सलाहकारोंकी बुद्धि द्वारा आविष्कृत कठोरतम दमनके सामने भी अडिग खड़े रह सकते हैं।

सेवाग्राम, २३ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-७-१९४०

३६३. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ जुलाई, १९४०

प्रिय पगली,

तुम्हारे दो पत्र मिले। मेरा विस्तृत पत्र[1] और संशोधित अनुवाद आदि तुमको मिल गये होंगे।

मैंने के०से यह कभी नहीं कहा कि एम० को[2] डॉक्टर बनना ही चाहिए, यह भी नहीं कि उसका डॉक्टर बनना ठीक रहेगा। मुझे लगा कि उसकी ऐसी इच्छा है। और यदि यह ठीक था, तो मैंने उसका अनुमोदन कर दिया था। लेकिन मेरी खास सिफारिश यह थी कि उसे तुम्हारी संस्थामें भेजा जाये। मेरा खयाल था कि वहाँ

१. देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृ० ३३७-३८।
२. मेहरताज, अब्दुल गफ्फार खाँकी बेटी

सचमुच उसका विकास हो सकेगा और वह स्वतन्त्रताका उपभोग करेगी। मैंने एम० से यह भी कहा था कि पहले वह जाकर तुम्हारी सस्था देख आये और फिर के० के वहाँ जाने का प्रबन्ध करे। लेकिन वह हुआ नहीं। इसलिए तुम उसे अपने कालेजमें लेने की अपनी योजनापर अमल करो। मैं इसके बारेमें के० एस०को लिखूंगा। के०ने कहा और तुमने यह मान लिया कि इसमें मेरी सलाह है। ऐसी गलती फिर कभी मत करना। मेरे बारेमें जो भी कहा जाये, उसकी पुष्टि हमेशा मुझसे ही करा लिया करो और जबतक मेरी ओरसे पुष्टि न हो जाये, तबतक उसे इस विचारसे भी स्वीकार मत करो कि बादमें सचाई मालूम होने पर जरूरत महसूस हुई तो अपनी धारणामें सुधार कर लूंगी। सचाई मालूम होने तक राय कायम करना स्थगित रखो। इस नियमको सभीपर लागू करना चाहिए। लेकिन जहाँतक मेरी बात है, यह एक अनुल्लघनीय आदेश है।

मीरा नई दिल्लीमें है। खुर्शीद इस बार ठीक थी। उसने मुझे फिर लिखा है।

मैं सेवाग्राममें ही रहूँगा। आशा है कि यहाँ ३ अगस्तको तुम्हारा स्वागत करने के लिए मौजूद रहूँगा, बशर्ते कि तुम तारीख न बदलो।

अगर जी० की आँखें खराब हो गईं तो यह बहुत बुरा होगा। मुझे पता नही कि मीरा[1] यहाँ है या नही। जो भी हो, तुम्हे अपनी पसन्दकी लडकी मिल जायेगी। पर इस बीच तुम जिसे भी चाहो कुछ दिनके लिए साथ लेती आओ। गुजरातमें बस जाने का कोई सवाल ही नही उठता। मैं लेखकी एक अग्रिम प्रति तुम्हें भेज रहा हूँ। इससे तुमको पता चल जायेगा कि मैं किस ढगसे सोच रहा हूँ।

मैं शायद पूना नहीं जाऊँगा। आज रात फैसला हो जायेगा। मौलाना आ रहे हैं। आशा है, तुम भली-चगी होगी।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८७)से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२९६ से भी

1. मीराबहन नहीं

३६४. इतना खराब तो नहीं है

एक मित्रने अपने एक अंग्रेज मित्रके पत्रमें से निम्न अंग उद्धृत करके मुझे भेजा है :

> क्या आप समझते हैं कि 'हर ब्रिटेनवासीसे' महात्माकी अपीलकी[1] किसी भी ब्रिटेनवासीके मस्तिष्क अथवा हृदयपर कोई अनुकूल प्रतिक्रिया होनेवाली है? उस अपीलसे जितनी दुर्भावना पैदा हुई है उतनी हालमें शायद और किसी चीजसे नहीं हुई है। आज हम बड़े विस्मयकारी और नाजुक समयसे गुजर रहे हैं, और यह तय करना अत्यन्त कठिन सावित हो रहा है कि हम क्या करें। जो भी हो, हमें कमसे-कम स्पष्ट खतरोंसे बचनेकी तो कोशिश करनी ही चाहिए। जहाँतक मेरी समझमें आता है, महात्माकी शुद्ध [अहिंसक] नीति निश्चित रूपसे भारतको किसी दिन भारी विपदमें डाल देगी। खुद उनका इरादा इसपर कहाँतक अमल करनेका है, मुझे मालूम नहीं, क्योंकि उनके पास जो मसाला रहता है उसके अनुरूप वे अपनेको अद्भुत तरीकेसे ढाल लेते हैं।

खैर, मुझे तो मालूम है कि 'हर ब्रिटेनवासीसे' की गई मेरी अपीलने एक नहीं, अनेक लोगोंके हृदयको छुआ है। मैं जानता हूँ, बहुत-से अंग्रेज मित्र इस बातके लिए बड़े उत्सुक थे कि मैं कोई ऐसा कदम उठाऊँ। लेकिन अंग्रेज मित्रों द्वारा किया गया अनुमोदन चाहे जितना रुचिकर हो, मैं उसमें से कोई आत्म-सन्तोष ग्रहण नहीं करना चाहता। मेरे लिए महत्त्वकी बात तो यह जानना है कि कोई एक अंग्रेज भी वैसा सोचता है जैसा उपर्युक्त उद्धरणमें बताया गया है। ऐसी जानकारीसे मुझे सचेत हो जाना चाहिए। उससे मुझे अपने विचारोंको व्यक्त करनेके लिए प्रयुक्त शब्दोंके चयनमें, सम्भव हो तो, अधिक सतर्क हो जानेकी प्रेरणा मिलनी चाहिए। लेकिन जिस कर्त्तव्यको मैं अपने सामने साफ-साफ देखता हूँ उससे तो प्रियतम मित्रोंकी अप्रसन्नता भी मुझे विमुख नहीं कर सकती, और अपील करनेका यह कर्त्तव्य तो इतना अपरिहार्य था कि उसकी ओरसे विमुख होना मेरे लिए अशक्य था। जितना निश्चित यह है कि इस समय मैं यह टिप्पणी लिख रहा हूँ उतना ही निश्चित यह भी है कि एक-न-एक दिन संसारको उस स्थितिको स्वीकार करना है जिसे स्वीकार करनेके लिए मैंने ब्रिटेनको आमन्त्रित किया है। जो लोग उस सुखद दिनके, जो अब बहुत दूर नहीं है, साक्षी होंगे वे मेरी इस अपीलका आनन्दपूर्वक स्मरण करेंगे और मैं जानता हूँ कि वह अपील उस दिनको किसी-न-किसी हदतक निकट लाई है।

किसी भी ब्रिटेनवासीको आजकी अपेक्षा अधिक बहादुर, आजकी बनिस्बत हर तरहसे बेहतर बननेकी अपीलका बुरा क्यों मानना चाहिए? भले वह यह कहे कि

१. देखिए पृ० २६१-६४।

उसमें यह सब करनेकी सामर्थ्य नहीं है, लेकिन उसकी उदात्त प्रकृतिसे की गई किसी अपीलसे उसका नाखुश होना मुनासिब नहीं।

और इस अपीलसे कोई दुर्भावना क्यों पैदा होनी चाहिए? अपीलके ढंग या उसकी विषयवस्तुमें ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे दुर्भावना पैदा हो। मैंने लड़ाई बन्द करनेकी सलाह नहीं दी है। मैंने सलाह यह दी है कि उसे ऐसे धरातलपर ले जाओ जो मानव-स्वभावको, मनुष्य में निहित उस देवत्वको शोभा देनेवाला है जिसका वह ईश्वरके साथ सहभागी है। अगर पत्र-लेखकके कथनका प्रच्छन्न अर्थ यह है कि उक्त अपील करके मैंने नाजियोंके हाथ मजबूत किये हैं तो यह बात जाँच की कसौटीपर खरी नहीं उतरती। ब्रिटेनवासियों द्वारा लड़ाईके इस नये तरीकेको अपना लिये जानेका परिणाम श्री हिटलरको चकित और भ्रमित कर देना ही हो सकता है। इस एक ही कार्रवाईके फलस्वरूप वे पायेंगे कि उनका विराट सैन्य-बल किसी कामका नहीं रह गया है। योद्धाका सम्बल उसके आक्रामक या प्रतिरक्षात्मक युद्ध होते हैं। यह देखते ही वह निढाल हो जाता है कि उसकी युद्ध-क्षमताका कोई उपयोग नहीं रह गया है।

यह किसी कायर व्यक्तिकी ओरसे किसी बहादुरसे अपनी बहादुरी छोड़नेकी अपील नहीं है, और न दुर्दिनमें घिरे मित्रका किसी सुखके साथी द्वारा किया गया उपहास है। पत्र-लेखकसे मेरा निवेदन है कि वे मेरी अपील मेरे स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर पढ़ें।

हर आलोचककी तरह श्री हिटलर भी कह सकते हैं: यह तो संसार या मानव-स्वभावके ज्ञानसे शून्य महामूर्ख आदमी है। यह एक निरीह-सा प्रमाणपत्र होगा, जिससे न तो दुर्भावना पैदा हो सकती है और न क्रोध। निरीह इसलिए होगा कि ऐसे प्रमाणपत्र तो मैं पहले भी प्राप्त कर चुका हूँ। यह ऐसे प्रमाणपत्रके अनेक संस्करणोंमें सबसे ताजा होगा, लेकिन मैं आशा करता हूँ, अन्तिम नहीं होगा, क्योंकि मेरे मूर्खता-पूर्ण प्रयोगोंकी श्रृंखला अभी समाप्त नहीं हुई है।

जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, मेरी शुद्ध नीतिको अपनाने से उसका कोई नुकसान नहीं हो सकता। अगर कुल मिलाकर भारत उसे ठुकरा दे तो भी उससे अगर किसीको नुकसान होगा तो सिर्फ उसपर चलनेकी मूर्खता करनेवालोंका ही होगा। और "महात्मा के पास जो ससाला रहता है उसके अनुरूप वे अपनेको अद्भुत तरीकेसे ढाल लेते हैं"—यह कहकर तो पत्र-लेखकने मेरे एक सद्गुणको ही उजागर किया है। अपने पास मौजूद मसालेके बारेमें मेरे सहज ज्ञानने मुझे ऐसी श्रद्धा दी है जो अडिग है। अपने अन्दर मैं महसूस कर रहा हूँ कि वह मसाला तैयार है। मेरी सहज बुद्धिने मुझे कभी धोखा नहीं दिया है। लेकिन अपने अतीतके अनुभवके आधारपर मुझे ज्यादा मनसूबे नहीं बाँधने चाहिए। "मेरे लिए तो एक कदम आगे ही काफी है।"

सेवाग्राम, २४ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-७-१९४०

३६५. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

सेवाग्राम
२४ जुलाई, १९४०

चि० नरहरि,

तुम्हारा पत्र मुझे आज ही मिला। जो हो रहा है, वह मुझे तो बहुत पसन्द है। 'हरिजनबन्धु'को तुम मेरा साप्ताहिक पत्र मानो। मैंने तुम्हारे मसौदेमें कुछ सुधार किये हैं, उन्हें देख लेना। प्रतिज्ञा-पत्रमें टिप्पणी करने-जैसा कुछ नही है। यदि समय होता तो मैं उसे सक्षिप्त कर देता। लेकिन जैसा है उसमे भी कोई दोष नहीं है। यदि सघ स्थापित हुआ और बादमे कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता हुई तो कर दूंगा। शान्ति सघ और तुम्हारी कल्पनाके सघमे भेद है। सत्याग्रह सघ तो सार्वजनिक होगा ही। अन्तिम रूपसे विचार करने के लिए तुम्हे यहाँ आना पड़ेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९११९) से

३६६. पत्र : जेठालाल जी० संपतको

२४ जुलाई, १९४०

चि० जेठालाल,

क्या मैं अक्षरश वही काम नही कर रहा हूँ जो तुमने सुझाया है? अपनी और अपने अन्य साथियोकी सारी शक्ति मैं उसीमें उँड़ेल रहा हूँ। उसकी सफलता पर मेरी सारी योजना निर्भर है। देखे, क्या होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८७१)से। सौजन्य: नारायण जे० सम्पत

३६७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२५ जुलाई, १९४०

प्रिय पगली,

तुम्हारा प्रस्ताव इस सप्ताह नहीं दिया जा सका। स्पीयरकी पुस्तक जरूर भेजो या अपने साथ लेती आना। बेकारमें डाक-खर्च क्यों भरो?

अंग्रेजकी शिकायतके बारेमें मैंने लिखा है।[1] 'हर ब्रिटेनवासीसे' मेरी अपील का अनुवाद हो रहा है। वह तुम्हें अगली खेपके साथ भेज दूंगा, और वही खेप अन्तिम होगी। सिर्फ एक लेख भेजने से कोई फायदा नहीं।

देखता हूँ, 'जैकॉल' और 'फॉक्स' एक-दूसरेके पर्यायवाची शब्दोंके रूपमें प्रयुक्त होते हैं।[2] सभी मरीज ठीक चल रहे हैं।

मैंने पूछताछ कर ली है और मुझे बताया गया है कि मीरा मिल तो सकती है, लेकिन उसका छठा या सातवाँ महीना चल रहा है।[3] तुम्हारे लिए खास उपयोगी नहीं होगी न?

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८८)से, सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ७२९७ से भी

१. देखिए "इतना खराब तो नहीं है", पृ० ३५८-५९।

२. देखिए पृ० ३२९ की पा० टि० २।

३. देखिए पृ० ३५७।

३६८. पत्र : द० बा० कालेलकरको

सेवाग्राम
२५ जुलाई, १९४०

चि० काका,

भाई सक्सेनाको लिखना कि मैं उनका लेख आरम्भसे अन्ततक ध्यानसे पढ गया, लेकिन उसमें मुझे इस प्रश्नका स्पष्ट उत्तर नहीं मिला कि मन क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता। हिन्दी और उर्दूके बारेमें मेरे विचार भी वे ठीकसे नहीं समझे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९३३)-से

३६९. पत्र : मगनलाल प्रा० मेहताको

२५ जुलाई, १९४०

चि० मगन,

तू वहाँ कहाँ पढ़ेगा? क्या ज्ञान प्राप्त करेगा? अब तो बहुत बरस बीत चुके हैं। मंजुलाका पत्र विचार करने लायक है। यहाँ आयेगा तब हम चर्चा करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

श्री मगनलाल प्राणजीवन मेहता
मारफत 'हिन्दुस्तान टाइम्स'
नई दिल्ली

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६०३)से। सौजन्य: मंजुला म० मेहता

३७०. कताई और चरित्र

अखिल भारतीय चरखा संघकी कर्नाटक-शाखाके मन्त्रीने मुझे बम्नीके स्कूलोमे कताईके कामकी निम्नलिखित रिपोर्ट[1] भेजी है।

चरित्रको दृढ़ बनानेमें कताईके प्रभावके बारेमे ऊपर जो-कुछ कहा गया है उसकी पुष्टि करनेवाला प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध है। मैं आशा करता हूँ कि कुमारी ब्रिस्को[2] अपने प्रयोगकी प्रगतिके बारेमें समय-समयपर मुझे रिपोर्ट भेजती रहेंगी।

सेवाग्राम, २६ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३७१. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

२६ जुलाई, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

यह एक नितान्त व्यक्तिगत पत्र है। दफ्तरमें काम करनेवाले लोगोंके सिवाय इसे और कोई नही देखेगा।

प्रतिष्ठित लोगोने मुझे बताया है कि युद्धके नामपर पानीकी तरह पैसा बहाया जा रहा है। ऐसे लोगोंको, जो पहले अपनी नौकरियोमे ऊँची तनख्वाहे पाते रहे हैं, युद्धके लिए उससे भी बहुत ऊँची तनख्वाहोंपर रखा जा रहा है और उन्हे ऐसे दर्जे दिये जा रहे हैं जिनका उपभोग उन्होने पहले कभी नही किया। इनमें यूरोपीयो या आंग्ल-भारतीयोकी संख्या सबसे अधिक बताई गई है। यदि ये नियुक्तियाँ देशभक्तिके आधारपर ही की गई हैं तो जितना इनके और इनके आश्रितोंके निर्वाहके लिए जरूरी है उससे ज्यादा न तो इन सज्जनोको लेना चाहिए और न इन्हें दिया जाना चाहिए।

एक ओर तो बहुत ही मनमाने ढंगसे पैसा खर्च किया जा रहा बताया जाता है और दूसरी ओर उसकी वसूली ऐसे तरीकेसे की जा रही है जो जबरदस्तीकी हदतक

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। रिपोर्टमें हुबलीके रिमांड होममें रहनेवाले बालकोंको पिंजाई और कताई सिखाने के कामकी चर्चा थी, और यह बताया गया था कि उससे लड़कोंके चरित्रमें बड़ा सुधार हुआ है।

२. हुबली बस्तीके प्रमाणित स्कूलकी लेडी सुपरिंटेंडेंट, ई० डब्ल्यू० ब्रिस्को

पहुँचता है। अमीर-गरीब सबसे पैसा ऐंठा जा रहा है। इस तरह जबरदस्तीसे की जा रही वसूलीकी शिकायत करते हुए मेरे पास भारत-भरसे पत्र आये है। इनमें ऐसे सजीव और विशद विवरण दिये गये है जिनपर सहसा विश्वास नही होता।[1] अगर आप तफसीले देखना चाहे तो मै भेज सकता हूँ।

इन कार्रवाइयोके फलस्वरूप, लेकिन विशेष रूपसे इन वसूलियोके कारण, लोग मन-ही-मन बहुत ज्यादा असन्तुष्ट और दुर्भावनाग्रस्त हो उठे है। मै अपने पत्र-लेखकोको सलाह देता हूँ कि यदि उनकी इच्छा न हो तो उन्हे जोर-जबरदस्तीके सामने झुकनेकी जरूरत नही है। मुझे पूरी आशका है कि एकत्रित कोषका काफी बडा हिस्सा खजानेतक कभी नही पहुँच पाता है। मेरे विचारसे वसूलियाँ बिलकुल बन्द कर दी जानी चाहिए; और जो लोग स्वेच्छासे कुछ देना चाहते हो उन्हे ठीक रसीदें प्राप्त करके निर्धारित बैंको या डाकघरोमे चन्देकी राशियाँ जमा कराने दिया जाये।

मै इस तरहकी जानकारी प्रकाशित करनेसे यथासम्भव बचना चाहता हूँ। लेकिन मुझे लगा कि इन शिकायतोकी ओर आपका ध्यान दिलाऊँ तो आप उसका बुरा नही मानेंगे।

आशा है, लॉर्ड होपटाउनके बारेमे आपको आश्वासन-भरा समाचार मिला होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिमे. लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य. राष्ट्रीय अभिलेखागार

३७२. तार : चोइथराम गिडवानीको

[२७ जुलाई, १९४० या उसके पूर्व][2]

श्री पमनानीके[3] परिवारको मेरी सम्वेदना पहुँचा दीजिए। यह हत्या मनको बहुत अशान्त कर देनेवाली है। आपको ऐसे विवेकपूर्ण कदम उठाये जानेकी सलाह देनी चाहिए जिससे शान्तिसे रहना सम्भव हो सके।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८-७-१९४०

१. देखिए "पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको", ११-८-१९४० भी।

२. इस समाचारपर २७ जुलाईकी तारीख दी गई है।

३. एच० एस० पमनानी, एक कांग्रेसी एम० एल० ए०

३७३. क्या यह उचित है ?

असमके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री गोपीनाथ बारदलईने मुझे एक अखबारकी कतरन भेजी है, जिसमें असम युद्ध-समितिकी उद्‌घाटन-सभामें प्रान्तके गवर्नर महोदयके भाषणका पूरा पाठ दिया गया है। उसमें से निम्न अंश मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ

> मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हम असमके लोग कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमारे यहाँ ऐसा मन्त्रिमण्डल है जो न केवल संविधानको कार्यान्वित करने को तैयार है, बल्कि इस न्यायोचित युद्धके लक्ष्योंकी प्राप्तिके निमित्त भरसक प्रयत्न करनेको भी प्रतिबद्ध है। उसका यह रुख वास्तवमें इस पूरे प्रान्त में व्याप्त सामान्य रुखको ही स्पष्ट रूपसे प्रतिबिम्बित करता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा किये गये सद्‌भावनाके उत्कृष्टतम कार्योंमें से एक था सरकारी खजानेमें से युद्ध-सम्बन्धी प्रयोजनोंके लिए एक लाख रुपयेका दान देना। इसका विवरण अभी हालमें ही प्रकाशित हुआ है, लेकिन मैं समझता हूँ, इसे जितनी प्रसिद्धि मिलनी चाहिए थी उससे आधी भी नहीं मिली। इस कार्यपर असम गर्व कर सकता है, क्योंकि अबतक भारतमें इस तरहका दूसरा उदाहरण सामने नहीं आया है। यह उन भावनाओंका एक ठोस और महत्त्वपूर्ण प्रतीक है जिनका अनुभव मन्त्रि-मण्डल ब्रिटिश राष्ट्रकुलके सदस्यके नाते करता है। यह हमारे हेतुकी न्याय्यता में उसके विश्वासका एक प्रमाण है, उसकी इस हार्दिक मान्यताका सबूत है कि इस युद्धका परिणाम भारतके लिए अत्यधिक महत्त्व रखता है और उसके इस संकल्पका द्योतक है कि विजय प्राप्त करनेके लिए वह कुछ भी उठा नहीं रखेगा। और जो भी इस दानकी आलोचना करनेका दुस्साहस करता है वह अनिवार्यतः अपने सिर भारतका शत्रु और हिटलरका मित्र होनेका कलंक लगाता है।

इसके उत्तरमें श्री गोपीनाथ बारदलईने निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया है'

> असम युद्ध-समितिकी उद्‌घाटन-सभामें असमके गवर्नर सर रॉबर्ट रीडके भाषणसे उचित आलोचना और स्वतन्त्र वाणीके लोकतान्त्रिक अधिकारोंके सभी प्रेमियोंको आश्चर्य और दुःख हुआ होगा। यह सचमुच दुर्भाग्यकी बात है कि इस भाषणका ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है कि युद्ध-कोषमें मन्त्रिमण्डल द्वारा दिये गये एक लाख रुपयेके दानकी आलोचना दुस्साहसका कार्य होगा, और उससे आलोचक भारतका शत्रु और हिटलरका मित्र साबित होगा।
>
> मेरी समझमें नहीं आता कि किस अधिकारके बलपर मन्त्रिमण्डल ऐसा दान दे सकता है। मुझे तो यह बिलकुल स्पष्ट लगता है कि बजट-व्यवस्था

या लेखा-पद्धतिका कोई भी नियम इसकी इजाजत नहीं दे सकता। यदि किसीको ऐसा करनेका अधिकार हो सकता है तो शायद विधान-सभाको ही और चूँकि उसने ऐसी कोई इजाजत नहीं दी, इसलिए यह दान असंवैधानिक ही माना जाना चाहिए। शायद इसी एक कारणसे अन्य प्रान्तोंने ऐसा कोई काम नहीं किया है।

मैं समझता हूँ, हमें यह घोषणा करनेकी जरूरत नहीं है कि हम हिटलर के मित्र नहीं हैं; लेकिन जब यह दान मन्त्रिमण्डलका कार्य है तब मुझे तो इसकी कोई वजह दिखाई नहीं देती कि विरोधी दलकी हैसियतसे हम उसकी आलोचना न करें। कांग्रेसका वह प्रस्ताव देशके सामने है जिसमें आम तौर पर भारत और खास तौरसे कांग्रेसजनों द्वारा सहयोग दिये जानेकी बात कही गई है, और गवर्नर महोदयको यह तो जरूर मालूम होगा कि सदनका एक अच्छा-खासा हिस्सा और देशकी जनताका एक बहुत बड़ा भाग उससे पूर्णतः सहमत है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए उन्हें मन्त्रिमण्डल द्वारा दिये गये दानकी जिम्मेदारीमें इस तरह शरीक नहीं होना चाहिए था।

श्री गोपीनाथ बारदलई अपने गौरवास्पद विरोधके लिए बधाईके पात्र हैं। एक संवैधानिक गवर्नरके लिए यह बात, निस्सन्देह, शोभास्पद नहीं थी कि अपने मन्त्रियोंके अमुक कार्यके औचित्य या वैधता तथा सरकारी खजानेमें से दिये गये दान-जैसे प्रश्नपर विरोध पक्षकी इच्छाओंका कोई खयाल किये बिना उस कार्यकी जिम्मेदारियोंमें शरीक हों। इस कार्यकी वैधताके प्रश्नको अलग रखें तो भी यह बड़ी गम्भीर बात है कि कोई मन्त्रिमण्डल बजटमें पहलेसे ही व्यवस्था किये बिना और जिस सदनके नामपर उसे काम करना है और जो उसके अधिकारोंका स्रोत है उसकी मंजूरी लिये बिना सरकारी खजानेमें से किसीको कोई राशि दे। मैं समझता हूँ, श्री बारदलईने यह प्रश्न उठाकर बिलकुल ठीक किया है। और मैं आशा करता हूँ कि इस भेटकी वैधतापर भली भाँति विचार किये बिना यह रकम अदा नहीं की जायेगी। मैं तो इससे भी एक कदम आगे जाकर कहूँगा कि यदि यह भेंट मन्त्रिमण्डलके अधिकार-क्षेत्रके अन्दरकी चीज साबित होती है तो भी गवर्नर महोदयको चाहिए कि इसे असम विधान-सभासे मंजूर करवाकर अपनी भूल सुधार ले। ब्रिटेनकी सरकारके खजानेसे प्रति-दिन खर्च किये जा रहे नब्बे लाख पौंडकी तुलनामें एक लाख रुपयेकी कोई बिसात नहीं है। मेरी रायमें, यह संवैधानिक औचित्यकी रक्षाका अतिरिक्त ध्यान रखनेका और भी बड़ा कारण है।

सेवाग्राम, २७ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३७४. स्त्रियोंकी भूमिका[1]

अखिल भारतीय महिला परिषद्की स्थायी समितिकी बैठक अभी कुछ दिन पूर्व एबटाबादमें हुई थी। सीमा-प्रान्तमें परिषद्का यह प्रथम उपक्रम था। मुझे मालूम हुआ है, सदस्याओंका अनुभव बहुत अच्छा रहा। जात-पाँत और धर्मका कोई भेद-भाव नहीं था। मुसलमान, सिख और हिन्दू स्त्रियाँ एक-दूसरेसे मुक्त भावसे मिली-जुली। स्थायी समितिने निम्नलिखित तीन प्रस्ताव पास किये:

> १. अपनी एबटाबादकी बैठकमें अखिल भारतीय महिला परिषद्की स्थायी समितिकी सदस्याएँ, यूरोप और सुदूर पूर्वमें जो युद्ध चल रहा है, उसपर अपना गहरा दुःख और निराशा प्रकट करती हैं। जो देश अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे हैं और उस नाजी तथा फासिस्ट हुकूमतकी फौलादी बेड़ियोंमें पड़े हुए हैं, जिसके खिलाफ भारतकी आबादीके सभी हिस्सोंने स्पष्ट शब्दोंमें अपनी राय जाहिर की है, उन सबके प्रति सदस्याओंकी गहरी सहानुभूति है। वे दुनिया-भर की स्त्रियोंसे फिर अपील करती हैं कि वे युद्धके द्वारा विवादों और शिकायतोंके निबटारेके प्रयत्नकी निरर्थकताको समझ लें और अपना सारा जोर शान्ति-स्थापनाके लिए लगा दें।
>
> २. स्थायी समिति अपने इस विश्वासको दुहराती है कि राष्ट्रोंका भ्रातृत्व कायम करके विश्वमें स्थायी शान्ति स्थापित करनेका एकमात्र कारगर उपाय अहिंसा ही है। वह यह महसूस करती है कि इस आदर्शको प्राप्त करना कितना ज्यादा कठिन है, और इसलिए भारतीय स्त्रियोंसे अपील करती है कि अपने व्यक्तिगत और सामूहिक जीवनमें वे अहिंसाके आचरणको विकसित करनेका प्रयत्न करें, क्योंकि उसे लगता है कि अपनी सेवा और त्यागकी पारम्परिक विरासतके बलपर वे इस क्षेत्रमें विश्वकी स्त्रियोंका मार्ग-दर्शन कर सकती हैं।
>
> ३. सदस्याएँ अ० भा० महिला परिषद्की इस रायको दुहराती हैं कि भारतके स्वतन्त्र दर्जेकी स्वीकृति सभी राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता और विश्व लोक-तन्त्रके उस लक्ष्यकी प्राप्तिकी दिशामें प्रथम और तर्कसिद्ध कदम होगा जिसके लिए ब्रिटेन इस लड़ाईमें पड़ा है।

स्पष्ट है कि मेरी ही तरह एबटाबादमें एकत्र होनेवाली इन बहनोंका भी विश्वास है कि युद्धके खिलाफ छेड़े जानेवाले अभियानमें दुनियाकी स्त्रियाँ ही नेतृत्व करेंगी

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

और उन्हीको करना चाहिए। यह उनका अपना विशिष्ट कार्य और सौभाग्य है। इसलिए समितिने अहिंसामें अपने विश्वासको पुनर्घोषित किया है। मै आशा करता हूँ कि जो बहने परिषद्के प्रभावमे है वे उसके विश्वासमें भी उसकी सहभागिनी है और उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए काम करेगी।

सेवाग्राम, २७ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३७५. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ जुलाई, १९४०

प्रिय पगली,

सशोधित अनुवादोकी एक पूरी खेप मैने तुम्हे भेजी थी। दो और भी — जो अन्तिम है — तैयार थे, लेकिन रह गये। वे आज भेजे जा रहे है। इनके साथ अतुलानन्दसे मिले पत्रक भी है। उसका पत्र इसके साथ है। वह तो हर तीसरे महीने बीमार पडता ही है। अजीब बात है कि इतने विज्ञापनके बाद भी उसकी पुस्तके बिकती नही है। इससे प्रकट होता है कि ऐसे साहित्यका पाठक-वर्गके लिए कोई उपयोग नही है। पुस्तको द्वारा सास्कृतिक एकता पैदा नही की जा सकती।

तुम्हारे कुछ अनुवाद अच्छे बन पडे है, लेकिन सब ऐसे नही है। भाषा अभी जमी नही है। शब्दोके चुनावमे खीचतान झलकती है। इसमे कुछ अजब भी नही। अजब तो यह है कि तुमने इस हदतक प्रगति कर ली है। जरूरत इस बातकी है कि तुम और अभ्यास करो और चालू हिन्दी काफी पढ़ती रहो। मैने 'प्रताप'[1] पढ़नेका सुझाव दिया था। अच्छे पत्र और भी है, जिनको पढ़ने से लाभ होगा और व्याकरण की ठीक समझ पैदा होगी।

बाबलाको अब भी ज्वर है, हालाँकि चिन्ताकी कोई बात नही। कु०[2] यहाँ आनेवाला है। उसे बँधे-बँधाये कामसे थोड़ा आराम लेनेकी जरूरत है।

अ० स० कमजोर है। वह पी० की देखरेखमें पत्र-व्यवहारका काम सँभाले है और उर्दू अनुवाद कर रही है।

स्नेह।

तानाशाह

१. कानपुरका एक हिन्दी दैनिक
२. जे० सी० कुमारप्पा

[पुनश्च .]

यह तुम्हे ३० तारीखको मिल जायेगा। मै समझता हूँ, अब मुझे और पत्र लिखने की जरूरत नही पडेगी।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९८९)से, सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ७२९८ से भी

३७६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

वर्धा
२७ जुलाई, १९४०

अखबारोमें मैंने एसोशिएटेड प्रेस द्वारा जारी किया गया इस आशयका समाचार पढ़ा है कि मेरा इरादा एक अहिंसक सेनाको प्रशिक्षित करनेके निमित्त बारडोलीमें सरदार पृथ्वीसिंहके मार्ग-दर्शनमें एक कक्षा खोलनेका है और उसके लिए सारा प्रारम्भिक प्रबन्ध किया जा चुका है। इस समाचारकी कही कोई बुनियाद नही है। सरदार पटेलके मार्ग-दर्शनमें सरदार पृथ्वीसिंहका इरादा बारडोलीमें एक व्यायाम-कक्षा खोलनेका जरूर था। चूंकि सरदार पृथ्वीसिंहकी सलाहसे अन्तिम निर्णय मुझे करना था, इसलिए अब वह खयाल भी छोड दिया गया है। इस सबके बाद तो मै समाचारपत्रोसे फिरसे यही अनुरोध कर सकता हूँ कि वे व्यक्तियोसे सम्बन्धित समाचार उनसे पूछताछ किये बिना प्रकाशित न करे — उस हालतमें जब पूछताछ करना आसान हो और थोड़ी देर हो जानेसे जनताका कोई नुकसान न होनेवाला हो।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८-७-१९४०

३७७. प्रश्नोत्तर

पाकिस्तान और अहिंसा

एक गुजराती मुसलमान भाई लिखते है :

मै अहिंसाको मानता हूँ और पाकिस्तानको भी मानता हूँ। तो अब पाकिस्तानके लिए अहिंसक ढंगसे मै कैसे काम करूँ?

उ० . जिस बातमें न्याय नही है वह अहिंसक रीतिसे नही प्राप्त की जा सकती — जैसे कि चोरी अहिंसक ढगसे नही की जा सकती। मै पाकिस्तानके मनलेको जैसा समझा हूँ उस प्रकार तो वह न्याययुक्त भी नहीं है। किन्तु आप उसे न्याय-युक्त मानते है, अत आप उसके लिए आन्दोलन अवश्य कर सकते है। यदि यह आप अहिंसक रीतिसे करे तो पहले तो आपको जो आपका विरोध करते हो उन्हे समझाना

चाहिए। आप स्वयं इस मामलेमे निःस्वार्थ भावसे काम कर रहे है, ऐसी छाप लोगो पर पड़नी चाहिए। विरोधी जो कहे वह आपको आदरपूर्वक सुनना चाहिए, और अगर उनकी कोई भूल हो तो उन्हे आदरपूर्वक बतानी चाहिए। अन्तमे, मान लीजिए कि लोग आपकी बात नही मानते और अपने पक्षकी सचाईके बारेमे आपकी मान्यता अडिग बनी रहे, तो जो आपके मार्गमे रोड़े अटकाते हो उनके विरुद्ध आप अहिंसात्मक असहयोग कर सकते है। लेकिन ऐसा करते हुए आप विरोधीको कोई नुकसान नही पहुँचायेंगे, उसके नुकसानकी इच्छा भी नही करेंगे, और अगर आपको नुकसान होता हो तो उसे बरदाश्त करेंगे। लेकिन यह सब तभी सम्भव होगा जब आपका पक्ष तटस्थ व्यक्तियोंकी रायमे वाजिब माना जाये।

पंजाबका सत्याग्रह-शिविर

पजाबसे एक भाई लिखते है :

> **पंजाबमें सत्याग्रहकी जो तैयारी हो रही है उसमें काफी मात्रामें झूठ भरा हुआ है। यह बात सब लोग जितनी जल्दी समझ लें उतना अच्छा है। कुछ लोगोंने चरखा केवल नाम-मात्रको चलाया है। कुछ लोगोंने प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर तो किये, पर चरखेको छुआतक नहीं। खादीके बारेमें भी ऐसा ही समझिए। शिविरमें हमारे सत्याग्रही आपकी और कांग्रेसकी नीतिकी हँसी उड़ाते थे। इसलिए कांग्रेसने आपको जो मुक्त कर दिया है वह मुझे तो अच्छा लगा है। अब अगर कांग्रेस चरखा, अहिंसा आदिकी शर्तको हटा ही दे तो इससे भी ज्यादा अच्छा हो। साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि कांग्रेसके प्रस्तावसे देशको अपार हानि हुई है। ऐसी स्थितिमें मेरे जैसे व्यक्ति क्या करे?**

उ०. आपने जो शिकायत की है, ऐसी शिकायतवाले और भी पत्र पजाबसे आये है। और ठीक पजाब-जैसी हालत चाहे न हो, लेकिन अन्य बहुत-से प्रान्तोमे भी ऐसी ही हालत है। यह दुःखकी बात है, और इसमे काग्रेसकी अधोगति है। काग्रेस अगर कमजोर होगी तो अपनी आन्तरिक व्याधिके कारण होगी, बाहरके आक्रमणोसे कभी नहीं होगी। जो सलाह मैने गुजरातियोको दी है वही मै आप-जैसोंको दे सकता हूँ। गुजराती लेख गुजरातकी स्थितिको ध्यानमे रखकर लिखे जाते है, लेकिन वैसी स्थिति न्यूनाधिक सभी जगह होती है। इसलिए नाम बदलकर ऐसा समझ ले कि मेरा गुजराती लेख सभी प्रान्तोके लिए है।

केवल एक सत्याग्रही क्या करे?

उत्कलसे एक भाई पूछते है :

> **एक गाँवमें एक ही सत्याग्रही है। बाकी लोग हिंसा-अहिंसाकी कोई परवाह नहीं करते। यह अकेला सत्याग्रही किस तरहके अनुशासनका प्रशिक्षण ले?**

उ० आपका प्रश्न उत्तम है। अकेला सत्याग्रही अपने अन्तरकी जाँच करे, और यदि उसे यह विश्वास हो जाये कि उसमे विश्व-प्रेम है तथा सत्याग्रहीके अन्य लक्षण भी उसमें नजर आते हो तो यह प्रेम उसके दैनिक जीवनमे प्रकट होगा। उसने अपने गाँवमें निर्धनतमसे लेकर सबके साथ सेवाके सम्बन्ध बना लिये होगे। उसने अपने-आपको गाँवका भगी बना लिया होगा, वह बीमारोकी देखभाल करता होगा, गाँवके झगडे निबटाता होगा, गाँवके बच्चोंको पढाता होगा, उसे सब पहचानते होंगे, वह गृहस्थ होकर भी सयममे रहता होगा, अपने और पडोसीके लडकेमें भेद नहीं करता होगा, यदि उसके पास धन होगा तो वह खुदको उसका मालिक न मानकर वह धन लोगोका है और वह खुद उसका रक्षक-मात्र है, ऐसा मानकर अपनी जरुरत-भर के लिए उसमें से लेता होगा, जहाँतक बने अपनी जरुरतें गरीबो-जैसी ही रखता होगा, उसके जीवनमे जात-पाँत और छुआछूतका भेद नहीं होगा, और सब जातियो तथा सब धर्मोंके लोग उसके इस गुणसे परिचित होगे। उसे चाहिए कि इनमें से जो गुण उसमे न हो उनकी पूर्ति करे, जो ज्ञान न हो वह ज्ञान प्राप्त करे। अपना एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दे, उसके यहाँ चरखा नित्य चलना चाहिए और उसका कुटुम्ब सुव्यवस्थित होना चाहिए। ऐसा एक ही सत्याग्रही अपने गाँवकी रक्षा कर सकेगा। बाकी लोग सत्याग्रही न हो, फिर भी मौका आने पर वे ऐसा आचरण करेंगे मानो वे उसकी सेनाके सदस्य है। लेकिन वे ऐसा आचरण करे अथवा न करे, भीतर या बाहरसे आक्रमण होने पर वह अकेला सत्याग्रही उसका अहिंसात्मक ढगसे निवारण करेगा, अथवा वैसा करते हुए अपनेको होम देगा। ऐसा सत्याग्रही सदा अकेला रह ही नहीं सकता। मेरा यह दृढ विश्वास है कि अन्य कुछ लोग उसके जैसे हुए बिना रह ही नहीं सकते। यहाँ मुझे इतना कह देना चाहिए कि मैं सेवाग्राममें सत्याग्रहीके रूपमे अकेला ही आया था। सौभाग्य अथवा दुर्भाग्यसे मैं अकेला नहीं रह सका तथा सेवाग्रामके बाहरके और लोग भी आकर मेरे साथ बस गये। सेवाग्रामवासियोमें से कोई सत्याग्रही माना जा सकता है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। वैसे मुझे आशा तो है कि ऐसे कुछ सत्याग्रही तैयार हुए होंगे। लेकिन मैंने जो शर्ते और लक्षण अकेले सत्याग्रहीमें ऊपर गिनाये है, और अन्य लक्षण जिन्हे मैं आवश्यक मानता हूँ वे सब मुझमे है, ऐसा दावा मैं नहीं करता। फिर भी अगर उन सबपर अमल करनेकी मेरी तैयारी न हो और उनमें से अधिकाशको मैं न्यूनाधिक प्रमाणमे अपने आचरणमें न उतारता होऊँ तो मैंने ऊपर जो-कुछ लिखा है, वह मैं लिख ही न पाता। मेरी वर्त्तमान अभिलाषा यह अवश्य है कि सेवाग्राम एक आदर्श ग्राम बने। मैं जानता हूँ कि यह काम उतना ही कठिन है जितना पूरे हिन्दुस्तानको आदर्श बनाने का काम। केवल सेवाग्रामको कोई मनुष्य कभी-न-कभी आदर्श बना भी सकता है। लेकिन समूचे हिन्दुस्तानको आदर्श बना सकने लायक एक मनुष्यकी आयु ही नहीं होती, तथापि अगर केवल एक ही गाँवको कोई एक आदमी आदर्श बना सके, तो उसके बारेमें कहा जा सकता है कि उसने समूचे हिन्दुस्तानके लिए ही नहीं, बल्कि शायद समस्त ससारके लिए मार्ग खोज निकाला है। साधकको इससे आगे जानेका लोभ नहीं करना चाहिए।

तू मरेगा नहीं

एक हिन्दी-भाषी भाई आगरासे लिखते हैं :

> आपकी व्याख्याके अनुसार सत्याग्रही अब कांग्रेसमें नहीं रह सकता। मुझे भी यही लगता है। मैं वेदको माननेवाला हूँ। वह तो साफ कहता है: 'सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभः' (हे हिंसामुक्त पुरुष, तू मरेगा नहीं, तू मरेगा नहीं, डर मत)। हम ऐसे सनातन वचनोंमें विश्वास क्यों न करें? मेरी श्रद्धा तो अहिंसामें बढ़ती ही जा रही है। मैं कांग्रेसी हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए?

उ० : जैसा कि आप लिखते हैं, यदि आपमें सचमुच वैसी श्रद्धा हो तो आप कांग्रेससे अलग हो जायें; और बाहर रहकर आप कांग्रेसकी अधिक और सच्ची सेवा कर सकेंगे तथा अपने प्रेम, धीरज तथा शौर्यसे अपने आसपास रहनेवाले कांग्रेसियोंके हृदयमें परिवर्तन ला सकेंगे।

सेवाग्राम, २९ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३-८-१९४०

३७८. इसमें हिंसा है

> "दुःखी इसलिए कि इतने बरसतक जिन्हें मैं अपनी बात समझा सकता था तथा जिन्हें साथ लेकर चलनेके गौरवपूर्ण लाभका उपयोग मैंने किया है, उन्हें समझा सकनेकी शक्ति अब मेरे शब्दोंमें न जाने क्यों नहीं रही और इतने बरसोंका प्रेम-सम्बन्ध न जाने क्यों बीते कलका हो गया।" आपके लेखमें ये वाक्य पढ़कर मुझे दुःख हुआ, आश्चर्य भी हुआ। क्या आपके इन वाक्योंमें हिंसा नहीं है?

यह श्री सुरेन्द्रने बोरियावीसे लिखा है। यह उद्धरण पढ़कर मैं चौंका। मेरी लेखनीसे ऐसा वाक्य नहीं निकल सकता, यह मैंने एकदम मान लिया और तदनुसार उन्हें उत्तर भी लिख दिया, क्योंकि ऐसा विचार मनमें लानेमें भी हिंसा है। सरदारके साथ तो क्या, किसीके साथ भी मेरा प्रेम-सम्बन्ध टूट नहीं सकता। बरसोंसे शत्रुके प्रति भी प्रेमका बरताव सिखानेवाला मैं सरदार-जैसे साथीसे प्रेम-सम्बन्ध कैसे तोड़ सकता हूँ? मालवीयजी तथा शास्त्रीजी-जैसे लोगोंके साथ मेरा मतभेद तो अवश्य है, लेकिन उनके साथ प्रेम-सम्बन्ध पूर्ववत् जैसा-का-तैसा बना हुआ है। मतभेद होते ही प्रेम-सम्बन्ध टूट जाये, यह असहिष्णुताकी निशानी है।

इसलिए सुरेन्द्रजीका पत्र पढ़नेके बाद मैंने 'हरिजनबन्धु' पढ़ा। मैंने देखा कि यह मेरे 'हरिजन'के लेखका अनुवाद है। मूल लेख पढ़ा तो मैंने देखा कि मेरे शब्द

सर्वथा निर्दोष तथा अवसरके अनुकूल हैं। "इतने वर्षोंका प्रेम-सम्बन्ध न जाने क्यो बीते कलका हो गया," ऐसा अर्थ अंग्रेजीमें बिल्कुल नही है। सम्बन्धित अंग्रेजी वाक्य का अर्थ बस इतना ही है कि "इतने वर्ष जाने क्यो बीते कल-जैसे हो गये।" उक्त अंग्रेजी लेखमें इसी वाक्यके पूर्व यह कहा गया है कि "बीससे अधिक वर्षकी हमारी मैत्रीमें कोई फर्क नही पडा है।" इसलिए मेरा दु ख सम्बन्धके भग होनेका नही था, बल्कि मेरे शब्दोमे जो शक्ति कलतक थी उसके एकाएक गायब हो जानेका दु ख था, और है। प्रेम है, लेकिन साथीको फिरसे वापस पाने लायक शक्ति अपने शब्दोंमें लानेके लिए मुझे तपस्या करनी होगी। उस लेखकी ध्वनि ही आरम्भसे अन्ततक मिठास व्यक्त करने की है। मुझसे और कुछ हो ही नहीं सकता।

लेकिन इस दोषयुक्त अनुवादकी दुर्घटना बताती है कि मैंने जो गुजरातीमें लिखनेका निश्चय किया है वह सब प्रकारसे उचित ही है। अनुवाद चाहे कितना भी सक्षम व्यक्ति क्यो न करे, फिर भी उसमें दोष रह जानेकी सम्भावना रहती ही है। बाइबलका अनुवाद करनेवाले चालीस-बयालीस विद्वान थे, फिर भी उसमें भूले — चाहे थोड़ी ही सही — रह तो गई ही हैं।

प्रेम-सम्बन्ध तो जैसा है वैसा ही बना रहेगा। समय उसे और अधिक मजबूत ही करेगा। लेकिन इससे क्या हुआ? यह तो स्पष्ट ही है कि अपनी सामर्थ्य-भर समझदारीसे काम लेनेके बावजूद आखिर एक बडे महत्त्वकी बातको लेकर हमारे मार्ग भिन्न हो गये। जितना विचार करता हूँ, उतना ही मुझे लगता है कि कांग्रेस पटरी से उतर गई है। अपने पासकी पूंजी उसने खो दी है। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि "यह पूंजी कांग्रेसके पास थी ही नहीं, इसलिए खोनेकी क्या बात है? कांग्रेसकी अहिंसा केवल वर्त्तमान सरकारसे लडने-भरके लायक थी। बाकीके क्षेत्रोंके बारेमे कांग्रेसने कभी निर्णय नही किया था, निर्णय करनेका अवसर भी नहीं था। व्यक्तिगत बचावकी छूट तो कांग्रेसने गयामे ही दे दी थी।" इन दलीलोकी गुंजाइश तो है ही। लेकिन मैं देखता हूँ, काफी सख्यामे कांग्रेसी यह मानते हैं कि [कांग्रेस द्वारा स्वीकृत] अहिंसामें उपर्युक्त क्षेत्रोका भी अन्तर्भाव हो ही जाता है और इनके बिना अहिंसा सिरविहीन धडके समान निर्जीव मानी जायेगी। लेकिन जहाँ हृदयकी वीणा बज रही हो, वहाँ किसी भी पक्षका तर्क-रूपी शब्दजाल किस कामका?

ऐसी स्थितिमें सरदार आदिने जो मार्ग अपनाया है, वह उनके अनुरूप है, क्योकि यह उनका हृदय कहता है। वे कोई वक्ता नहीं हैं, वे तो कार्यकर्त्ता हैं। वे बिना आगा-पीछा देखे अपनी रुचिके अनुसार अपने काममें मस्त रहते हैं, भगवान् करे, वे सदा ऐसे ही रहे।

मेरे सामने मेरा मार्ग स्पष्ट है। लेकिन जो लोग आजतक हम दोनोको एक समझकर काम करते आये हैं, उनका क्या होगा? सचमुच उनकी स्थिति विषम है। यदि अहिंसा उनकी आत्माका अंग न बन गई हो, बल्कि केवल मेरी अहिंसाके सहारे निभ रही हो, तो उनका कर्त्तव्य है कि वे सरदारका अनुसरण करे। मै मानता हूँ कि सरदार भटक गये हैं अथवा यो कहिए कि मेरे मार्गपर चलना उनकी सामर्थ्यके

बाहर है। मेरी सम्मति और मेरे प्रोत्साहनसे ही उन्होंने भिन्न मार्ग अपनाया है। अत जिनके मनमे शकाकी गुजाइश है उन्हे सरदारके पीछे ही चलना चाहिए। मेरी मान्यता है कि सरदार अपनी भूल समझेंगे, अथवा जो शक्ति वे अपनेमे नही मानते वह उनमे आयेगी, और तब वे फिर मेरा मार्ग अपनायेंगे। जब वह सुअवसर आयेगा, तब अन्य लोग भी सरदारके साथ मेरे मार्गपर लौट आयेंगे। और यही उनके लिए निरापद मार्ग है।

लेकिन जिन्हे अपने मार्गके बारेमे कोई शंका नही है, जिन्होने अहिंसाको अपना लिया है, जिन्हे सब संकटोंसे केवल अहिंसा-रूपी शस्त्रके सहारे ही बचना है, उन्हे चुपचाप काग्रेससे अलग हो जाना चाहिए और विभिन्न अहिंसक कार्योमे जुट जाना चाहिए। यदि वे सच्चे अहिंसक होंगे तो काग्रेसमे दो पक्ष नही होने देंगे। अगर वे काग्रेससे अलग हो जायेंगे तो दो पक्षकी बात ही खत्म हो जायेगी। काग्रेससे बाहर निकलकर भी वे प्रतिपक्षी नही बनेंगे। काग्रेसके अनेक अहिंसक कार्योमे, जहाँ सरदार उनकी मदद चाहेंगे, वे मदद करेंगे, और जहाँ दगे-फसाद वगैरह होंगे, वहाँ मर-मिटने का प्रयत्न करेंगे। ऐसे अहिंसक लोगोका मेरी कल्पनाके अनुरूप अगर एक छोटा-सा मण्डल भी बन सके तो यह वाछनीय है, और ऐसा मण्डल बनना चाहिए। मेरी मान्यता है कि वह मण्डल अहिंसाकी पताकाको निरन्तर फहराता रख सकेगा, इतना ही नही, बल्कि वह काग्रेसियोके हृदयपर भी अपना प्रभाव डाल सकेगा। अनेक काग्रेसियोकी यह इच्छा तो है कि सभी क्षेत्रोंमे अहिंसाका प्रवेश हो, किन्तु उसकी शक्यताके बारेमे उन्हे शका है। इस शंकाका निवारण करना मेरा और जो मेरे सहधर्मी हों उनका कर्त्तव्य हो गया है।

सेवाग्राम, २९ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ३-८-१९४०

३७९. खादी-सेवकोंसे

एक बहन शिकायत करती है:

> **जो बहनें दरिद्रनारायणके नामपर कातना चाहती हैं, उन्हें खादी भण्डार मदद नहीं देते, इतना ही नहीं, बल्कि वे उनका तिरस्कार भी करते हैं। कोई-कोई भण्डार तो उन्हें पूनियाँ भी नहीं देता। कातना आरम्भ करने-वाली बहनोंको पूनियोंका प्रलोभन देने की आवश्यकता होती है। प्रत्येक भण्डार में पूनियाँ होनी चाहिए। कहीं-कहीं तो बहनोंने खादीकी हुंडी खरीदी, तो उन्हें उसकी रसीद नहीं दी गई। बारीक साड़ियोंकी माँग करते हैं, उसके लिए पहलेसे दाम दे देते है, किन्तु काफी दिनोंतक साड़ियाँ न मिलने से आखिर ग्राहक थक जाते हैं। यह सब मैं आपको अपने अनुभवसे लिख रही हूँ।**

यह बहन अपने काममें बहुत सावधान है। खादीकी बिक्रीका काम बहुत अच्छी तरह करती है। इस बहनने मुझे खादी-भण्डारोंके नाम भी दिये हैं, पर मैं जान-बूझकर नाम नहीं दे रहा हूँ। अगर मैं नाम दूं तो मुझे उन भण्डारोंके साथ पत्र-व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करनेके लिए फिलहाल तो मेरे पास समय भी नहीं है। इसलिए यह लिखकर ही सन्तोष कर लेता हूँ और आशा करता हूँ कि इसमें से जितना लेने या सुधारने लायक होगा, उतना सम्बन्धित भण्डार ले लेंगे या सुधार कर लेंगे। पूनियोंके बारेमें मेरे बड़े दृढ़ विचार हैं। पूनियोंकी माँग हम पूरी नहीं कर सकते। मुझे ऐसा लगता है कि यदि हम पूनियोंकी माँग पूरी करनेके फेरमें पड़े तो खादी-प्रवृत्ति ही बन्द हो जायेगी, क्योंकि ऐसा करना आर्थिक दृष्टिसे ठीक नहीं है। हम उसे कभी पूरी नहीं कर सकते। हाँ, इतना अवश्य हो सकता है कि प्रत्येक गाँवमें जहाँ लोग कातते हैं वहाँ कुछ लोग धुनाई करें और अन्य कातें। और उसमें भी काफी सोच-विचारकी गुंजाइश है। इसी तरह जो बहनें कातती हैं उनमें से कुछ धुनाई सीखकर अन्य बहनोंको धुनना सिखायें, या एक ही बहन धुनाई करके अपने संघ या क्लबको पूनियाँ मुहैया करे। पूनियाँ डाकसे नहीं भेजी जानी चाहिए और न एक केन्द्रसे दूसरे केन्द्रको जानी चाहिए। मगर मैं जानता हूँ कि इस सुनहरे नियम का पालन नहीं होता। मेरा खयाल है कि इस बारेमें चरखा संघने भी कोई एक नीति निश्चित नहीं की है। इसलिए अपनी रायपर अमल करानेका मैं आग्रह नहीं करता। लेकिन चूंकि सवाल उठा है, इसलिए चरखा संघसे इसपर विचार-विमर्श करनेके लिए कहूँगा, और हो सका तो कोई निश्चित नीति स्वीकार भी कराऊँगा।

सेवाग्राम, २९ जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३-८-१९४०

३८०. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
२९ जुलाई, १९४०

प्रिय पगली,

ऊपर[1] देखकर जान लोगी कि मैं मीरासे यहाँ आनेकी बजाय आदमपुर जानेके लिए कह रहा हूँ। तो तुम ६ को आओगी। बहुत ज्यादा जद्दो-जहद मत करना। अपना सारा काम अच्छी तरह, बिना किसी जल्दबाजीके पूरा करना। यहाँ तुम्हारा काम तुम्हारी राह देख रहा है, लेकिन रुका हुआ नहीं है। तुमपर तारीखोंकी कोई बन्दिश नहीं है — उसी तरह जैसे अपने घर जानेके लिए तुमपर ऐसी बन्दिश

१. गांधीजीने ऊपर एक दूसरा पत्र शुरू करते हुए लिखा था: "चि० मीरा, मैं कुल मिलाकर आदमपुरके पक्षमें हूँ।" बादमें इसे काट दिया था।

नही हो सकती। यदि यह तुम्हारा एकमात्र घर न हो तो दूसरा घर तो है ही। इसलिए यहाँ लौटनेकी तुम्हारी इच्छा प्रबल तो होगी, लेकिन उसकी खातिर अपनी सेहत और अपने कामपर आँच मत आने देना। मै शायद एक पत्र और लिखूँ। मै समझता हूँ कि तुम्हारे दाँतोमे कोई बड़ी खराबी नही होगी।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९९०)से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७२९९ से भी

३८१. पत्र: द० बा० कालेलकरको

२९ जुलाई, १९४०

चि० काका,

यह रहा ब्रेल्वीका[1] पत्र। बाकी कल चार बजे। तुमने जो लिखा है, यदि वह लम्बा हो गया तो कोई हर्ज नही। जब किस्मत ही टेढ़ी हो तो क्या किया जाये? कल राजाजीकी मण्डली आनेवाली है, इसलिए उससे जितना समय बचेगा, दूंगा। थोड़ा-थोड़ा करके हम काम पूरा करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९३४) से

३८२. सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरकी अतिशयोक्ति

देशी राज्योंके दर्जेके सम्बन्धमें अभी हालमें प्रकाशित सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके वक्तव्यका डॉ० काटजू द्वारा दिया गया ओजमय उत्तर मैंने देखा है।

मेरी रायमें, सर सी० पी० का कथन अपना खण्डन आप प्रस्तुत करता है। जब ब्रिटिश सरकार भारतकी स्वतन्त्रता स्वीकार करनेको तैयार हो जायेगी या घटनाक्रम उसे उसके लिए विवश कर देगा तब इन अतिशयोक्तिपूर्ण दावोंसे कोई फर्क पडनेवाला नही है। प्यारेलालने प्रामाणिक प्रलेखोंके हवाले देकर सिद्ध कर दिया है कि रियासतें जिस दर्जेका उपभोग कर रही हैं वह कितनी कमजोर बुनियादपर टिका हुआ है। उनको दिया गया वचन भारतकी माँगको अस्वीकार करनेका एक सुविधाजनक बहाना-भर है। लेकिन जिस दिन वह माँग दुर्निवार हो जायेगी उस

१. बॉम्बे क्रॉनिकलके सम्पादक एस० ए० ब्रेल्वी

दिन उस वचनका कोई अर्थ और औचित्य नही रह जायेगा। एक सविधान-विद् वकील और ब्रिटेनके इतिहासके अध्येताकी हैसियतसे सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरको निस्सन्देह यह सब मालूम है। डॉ० काटजूके इस कथनसे मैं पूर्णत महमत हूँ कि त्रावणकोरके दीवान अपने तथा अन्य देशी नरेशोंके मनमें यह विश्वास जगाकर उनकी बडी कुसेवा कर रहे हैं कि ब्रिटेन द्वारा दिये गये वचन देशी राज्यो और सम्पूर्ण भारतकी जनताकी न्यायसगत माँगके मुकाबले उनकी तथा उनके उत्तराधिकारियोकी निरकुशताको सदा कायम रखेंगे। मैं यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि उनके दर्जेकी सुरक्षाका सबसे अच्छा आधार ब्रिटिश सरकारके साथ हुई उनकी सन्धियाँ नही, बल्कि अपनी प्रजाकी सद्भावना, सन्तोष और सहयोग तथा गैर-रियासती भारतकी जनताकी मित्रता है। आज समयका प्रवाह भारतकी स्वतन्त्रताके अनुकूल है तथा जनता और उसकी आकाक्षाओके विरुद्ध पडनेवाले सभी हितोंके प्रतिकूल। इसलिए राणा साहब धोलपुरको सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरके उद्गारोको उतावलीमें प्रतिध्वनित करते देखकर मुझे बहुत दुख और आश्चर्य हुआ।

सेवाग्राम, ३० जुलाई, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३८३. इन्दौर रियासत और हरिजन

इन्दौर रियासतके सूचना-विभागकी ओरसे एक पत्रिका मिली है, जिसमें बताया गया है कि महाराजा साहबने गरीबोको राहत देनेके लिए अपने निजी कोषसे जो एक लाख रुपया निकाला है उसमें से ७९४४५ रु० हरिजनोंके लिए ९१ मकान बनवानेके लिए अलग रखा है। इसके लिए महाराजा साहब बधाईके पात्र है। आशा तो मुझे यह है कि महाराजाकी उदारता इस हदतक जायेगी कि उनकी रियासतमें एक भी आदमी बेकार या घी और दूधयुक्त खुराकके बिना नही रहेगा, और एक भी हरिजन हवादार और रोशनीवाले घरके बिना नही रहेगा। राजमहल और हरिजनके घरोंमें जो अन्तर आज पाया जाता है वह नहीं होना चाहिए।

सेवाग्राम, ३० जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३-८-१९४०

३८४. इंग्लैण्डसे एक साक्ष्य

भारतके अहिंसक आन्दोलनके विषयमें कुछ अंग्रेजोंके मनमें क्या विचार उठते हैं, इसके नमूनेके तौरपर महादेव देसाईको प्राप्त एक पत्र[1] नीचे दे रहा हूँ:

> ...'हरिजन'के पृष्ठोंको बार-बार पलटकर उनमें छलकते साहस और सत्य-प्रेमके रसका पान करते म अघाती नहीं हूँ। यूरोपमें मचे संहारके प्रति जब मन शोक-विह्वल हो उठता है तब यह सोचकर सान्त्वना मिलती है कि भारतका प्राचीन ग्राम्य जीवन इस प्रभंजनमें से उबर जायेगा और धरती सर्वथा सौन्दर्य-शून्य नहीं हो पायेगी।... नग्न पशुबलका दृश्य यद्यपि बहुत भयावह और बीभत्स है, तथापि वह एक वास्तविकताके रूपमें हमारे सामने मौजूद है। एक महान् राष्ट्रकी समस्त आध्यात्मिक शक्तिसे उसका प्रतिरोध जारी रखिए। यह अपनी जाति और मानवताकी आपकी सबसे बड़ी सेवा होगी।... भारतके एक ग्रामीण कविकी कृतिका मैंने अनुवाद करने की कोशिश की है, वह मैं आपको भेज रही हूँ। जिस पुस्तिकापर अनुवाद किया है वह भारतमें हाथके बने कागजकी है और उसपर खादीकी जिल्द चढ़ी हुई है।...

सेवाग्राम, ३१ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३८५. 'कताईके अलावा और क्या?'

उक्त शीर्षकसे प्रकाशित मेरी एक टिप्पणी[2] पढ़कर बम्बईके एक भाई लिखते हैं:[3]

इस पत्रमें नया कुछ नहीं है, फिर भी मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ, क्योंकि लेखक अपने सुझावोंपर खुद ठीक-ठीक अमल करता है। जो लोग बिना कारण नियम-भंग करते हैं, उन्हें समझानेकी जरूरत नहीं है। उनके नाम रजिस्टरमें से निकाल

१. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

२. देखिए पृ० ३४१-४२।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सत्याग्रहियोंके लिए कुछ नियम और कताईके साथ कुछ अन्य प्रवृत्तियोंका सुझाव दिया था। उसका यह सुझाव भी था कि जो लोग इन नियमोंका पालन न करें उनके खिलाफ अनुशासनकी कार्रवाई की जाये।

दिये जाने चाहिए, प्रायश्चित्त करनेके बाद भले ही पुन उनका नाम लिखा जाये। सिपाही द्वारा किया गया नियम-भग उतना ही भयानक होता है जितना किसी यन्त्र के एक भागका बिगड जाना। यदि मोटरका कोई पुर्जा टूट जाये तो उसमें बैठना खतरनाक होता है। कोई खास पुर्जा बिगड गया हो तो मोटर चलाई ही नहीं जा सकती। जो नियम मशीनपर लागू होता है, जो नियम शस्त्रधारी सेनापर लागू होता है, वही नियम कड़ाईसे सत्याग्रहपर लागू किया जाना चाहिए। हाँ, उसे लागू करनेकी रीतिमें जरूर फर्क होगा। सैनिकको नियम-भग करनेपर जेल जाना पड सकता है, उसे हटर लगाये जा सकते है, या उसका सिर भी काटा जा सकता है। सत्याग्रहीका तो रजिस्टरमे नाम-भर निकाल दिया जायेगा। सजा तो उसे वही मिलेगी जो उसका मन उसे देगा।

कातनेके अतिरिक्त अन्य कामोके बारेमें जो सुझाव लेखकने दिये है, वे सब बिलकुल ठीक है। देखा जाये कि काग्रेसकी नई नीतिके अधीन क्या परिवर्तन होते है। मेरी सलाहपर अमल करनेवाले कितने निकलते है, यह जान लेनेके बाद सगठनका विचार किया जा सकेगा। फिर भी इतना तो मुझे स्पष्ट लगता है कि सत्याग्रही-टुकड़ियाँ असख्य होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें मैं लिख चुका हूँ। उसका अनुसरण करते हुए उक्त लेखक जितने क्षेत्रमे पैदल पहुँच सकता हो उतने क्षेत्रमें रहनेवालोमें जितने सत्याग्रही मिले, उन्हे सगठित करे। यह टुकडी अन्य टुकडियोसे बिलकुल स्वतन्त्र होगी। उसपर नियम तो वही लागू होगे जो सबके लिए बनाये गये होंगे, लेकिन उसका तन्त्र औरोसे स्वतन्त्र होगा। ऐसा होनेसे अगर एक टुकड़ी टूट जाये तो भी उससे दूसरीको एकाएक नुकसान नही पहुँचेगा। प्राचीन कालमें ग्राम-रचनाका यही आधार था। जितने गाँव थे उतने ही स्वतन्त्र शासन-तन्त्र थे। ग्रामवासी अपने इस तन्त्रके सचालकोको चुन लेते थे और वही उनकी पचायत होती थी। पचायत कानून बनाती थी और उनपर अमल करवाती थी। लोग स्वेच्छासे उसके अधीन रहते थे। वह अहिंसक तन्त्र था। जैसे-तैसे वह अबतक चला आया है। उसे अब ब्रिटिश सत्ताने हिला दिया है, यद्यपि उसका पूर्णत नाश नही किया है। उस पुरातन तन्त्रको मैं पूर्णत अहिंसक तो नही कहता, फिर भी उसमे अहिंसाका बीज था। यह बात सही हो या न हो, लेकिन सत्याग्रही दलकी मेरी कल्पना वही है जो मैंने ऊपर बताई है। ऐसे दल स्वतन्त्र होनेके बावजूद मौका पड़ने पर मिलकर काम करनेवाले सिद्ध होंगे, क्योंकि अहिंसा ही उन्हे एक सूत्रमें बाँधनेवाली होगी। अत जिस प्रकार समान आकारकी ईंटे एक-दूसरेके साथ चुनकर सुन्दरसे-सुन्दर मकान बनाया जा सकता है उसी प्रकार अनेक सत्याग्रही दलोका एक सुदृढ दल बनाया जा सकता है।

सेवाग्राम, ३० जुलाई, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ३-८-१९४०

३८६. सविनय अवज्ञाके बारेमे

बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि श्री सॉरेनसनके अत्यन्त प्रासंगिक प्रश्नका भारत-मन्त्री ऐसा उत्तर दे गये जिससे भारतकी परिस्थितिकी गम्भीरताकी समझका अभाव प्रकट होता है। ब्रिटिश सरकार द्वारा युद्धकी घोषणा किये जाने के पूर्व कौन कह सकता था कि यूरोपकी परिस्थिति कितनी गम्भीर थी? लेकिन ब्रिटिश मन्त्रियोको मालूम था कि म्युनिख समझौतेके बादसे परिस्थिति कितनी गम्भीर हो गई थी। वे परिस्थितिकी गम्भीरतासे इतने त्रस्त थे कि जबतक उनसे बन पड़ा, वे युद्धकी घोषणा टालते रहे। इसी प्रकार सामान्य आदमीको भारतकी परिस्थितिकी गम्भीरताकी कोई जानकारी नही है। लेकिन भारत-मन्त्री सामान्य आदमी नही है। जो वे नही जानते, उसे जानने की आशा दूसरोंसे कैसे की जा सकती है? तथापि उनके उत्तरसे प्रकटत जो अर्थ निकलता है, वही यदि अभिप्रेत भी है, तो मै यह कहने की धृष्टता करता हूँ कि प्रश्नकर्त्ताने उनकी अपेक्षा परिस्थितिका अधिक सही अनुमान लगाया है।

कर्नल एमरीके उत्तरसे जैसा अज्ञान प्रकट होता है वह सामान्य समयमे कदाचित् क्षम्य हो, लेकिन इस घड़ी वह अक्षम्य है। मै जो-कुछ जानता हूँ, उस सबसे उन्हे अवगत कराने का मेरा कोई इरादा नही है। खतरेके सभी संकेतोंको सार्वजनिक रूपसे दिखाने की हिम्मत मै नही कर सकता। ऐसा करना अमैत्रीका काम होगा। जो चेतावनी दे रहा हूँ वह भी निजी तौरपर देता तो बेहतर होता। कई रात इस उत्तरके बारेमें सोचते हुए ही सोया हूँ। अन्तमे मै इस निष्कर्षपर पहुँचा कि मै जो-कुछ जानता हूँ उसे जनतासे पूरी तरह छिपाकर रखना भी अमैत्रीका कार्य होगा। कांग्रेससे अपनी निवृत्तिके बावजूद मै इस खुशफहमीमे हूँ कि जनताका एक बहुत बडा हिस्सा आज भी मुझसे मार्ग-दर्शन चाहता है और जबतक लोगोको यह विश्वास है कि मै भारतमे अन्य किसी भी व्यक्तिकी अपेक्षा सत्याग्रहकी भावनाका अधिक पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हूँ तबतक चाहता रहेगा।

ब्रिटेनके इतिहासके इस सबसे नाजुक दौरमे ब्रिटिश सरकारको किसी परेशानीमें न डालने के खयालसे सविनय अवज्ञाको स्थगित रखकर कांग्रेसने जिस सयमका परिचय दिया है, उसके मूल्यको कम आँककर कर्नल एमरीने गम्भीर भूल की है। संयमको सराहनाकी अपेक्षा नही रहती। सत्याग्रहमे तो वह सहज समाहित है। इसलिए वह एक कर्त्तव्य है। और जिस प्रकार ऋणकी अदायगी कोई पुण्य-कार्य नही है, उसी प्रकार कर्त्तव्य-पालन भी कोई ऐसा कृत्य नही है; तथापि सयमका उल्लेख यह दिखाने के लिए आवश्यक हो गया है कि उस सयमके अभावमे ऐसा विस्फोट हो सकता है जिसका परिणाम पहलेसे कोई नही बता सकता।

यह सच है कि कांग्रेस संगठनके आन्तरिक दोषोंके कारण भी सविनय अवज्ञा स्थगित है। लेकिन मैंने बार-बार कहा है कि अगर कोंच-कोंचकर कांग्रेसको मजबूर किया गया तो आन्तरिक दोषोंके बावजूद सविनय अवज्ञाके प्रयोगकी सूरत सत्याग्रह शास्त्र बखूबी निकाल सकता है। इसलिए स्थगनका अन्तिम और निर्णायक हेतु, निस्सन्देह, ब्रिटिश सरकारको अभी परेशानीमें न डालने की उसकी इच्छा ही है।

लेकिन इस संयमकी भी अपनी सीमाएँ हैं। कांग्रेसजनोंके मनमें यह सन्देह बढ़ता जा रहा है कि ब्रिटिश सत्ताधारी इस संयमका लाभ उठाकर कांग्रेसको कुचलना चाहते हैं। उदाहरणके तौरपर, वे अनेक कांग्रेसजनोंकी गिरफ्तारीका उल्लेख करते हैं। अ० भा० कांग्रेस कमेटीके इतने सारे सदस्यों द्वारा दिल्ली प्रस्तावके पुष्टीकरणका विरोध, जैसा कि मौलाना साहबने कहा है, उनके रोषका द्योतक है, क्योंकि उन्हें लगता है कि आला कमान ब्रिटिश सरकारको कांग्रेसपर हावी हो जाने का अवसर दे रही है। यदि यह सन्देह सही साबित हुआ तो किसी-न-किसी प्रकारके प्रभावकारी सत्याग्रहका सहारा लेने से दुनियाकी कोई ताकत मुझे रोक नहीं सकेगी। लेकिन मैं प्रभुसे प्रार्थना कर रहा हूँ और तदनुरूप प्रयत्न भी कर रहा हूँ कि जबतक ग्रेट ब्रिटेनके सिरपरसे बादल छँट नहीं जायें तबतक इसकी नौबत न आये। भारतकी स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए मैं ब्रिटेनको अपमानित होते नहीं देखना चाहता। ऐसी स्वतन्त्रता अगर प्राप्त भी की जा सके, तो मर्दानगीके साथ उसे सुरक्षित तो नहीं ही रखा जा सकता।

यहाँ मैंने खतरेके उस एक संकेतकी चर्चा की है जिसपर मैं विशेषज्ञके रूपमें लिख सकता हूँ। लेकिन बहुत-से और भी संकेत हैं, जिनका उल्लेख मैं आसानीसे कर सकता हूँ और जो कुछ कम गम्भीर नहीं हैं। लेकिन इनका उल्लेख करना मेरे लिए उचित नहीं होगा।

इस एक खतरेकी सार्वजनिक चर्चा मैंने इसलिए की है कि इससे कांग्रेसका सम्बन्ध है और कांग्रेसजनोंसे क्या अपेक्षा की जाती है, यह मुझे कहना है। १९३४में बम्बईमें मैंने कांग्रेससे अवकाश ग्रहण किया था तो उसकी अधिक सेवा करने के लिए ही। घटनाक्रमने सिद्ध कर दिया है कि मेरा अवकाश लेना बिलकुल उचित था। वर्तमान निवृत्तिके पीछे भी वही हेतु है। निकट भविष्यके बारेमें जहाँतक मैं अन्दाजा लगा सकता हूँ, उसके मुताबिक तो अगर सत्याग्रह किया गया तो उसमें वही लोग शरीक हो सकते हैं जिन्हें मैं चुनूँ, बाकी लोगोंसे, मैं जो रास्ता अख्तियार करूँ, उसमें कोई दस्तन्दाजी न करने की उम्मीद की जायेगी। अगर वे उनके निमित्त जारी किये गये निर्देशोंका पालन करेंगे तो यही उन सबकी ओरसे दी गई ठोस सहायता होगी। एक स्थायी निर्देश यह है - अगर रचनात्मक कार्यक्रममें, और खासकर कांग्रेस में निष्ठाके स्पष्ट प्रतीक-रूप कताई और खादीमें, आपका विश्वास नहीं है और यदि सत्य तथा अहिंसामें — उस सीमित अर्थवाली अहिंसामें जो कांग्रेसके हालके प्रस्ताव द्वारा उसे प्रदान किया गया है — आपकी आस्था नहीं है तो आप कांग्रेससे अलग हो जायें। अगर यह प्रारम्भिक शर्त पूरी नहीं की गई तो मैं जिस प्रकारका भी

सत्याग्रह छेड़ूँ, कांग्रेसको उससे कोई लाभ नहीं होगा। उससे मात्र मेरी सत्याग्रही आत्माकी ही तुष्टि होगी।

सेवाग्राम, ३१ जुलाई, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-८-१९४०

३८७. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

३१ जुलाई, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तीन दिनसे तुम्हें लिखनेकी सोच रहा हूँ, लेकिन 'हरिजन' के कामसे सिर ही नहीं उठा पाया। कंचनके साथ जी-भर कर बातें हुई हैं। अब तुम नहीं चाहते तो बातें करना बन्द किये देता हूँ। कंचनका और मेरा मत एक ही है। तुम्हें सेवाग्राम या बालकृष्णकी कुटी या जहाँ अच्छा लगे वहाँ, और जबतक के लिए तुम ठीक समझो, अपनी गृहस्थी जमानी चाहिए। कंचनको यही ज्यादा अच्छा लगेगा। यदि तुम यह कदम उठाने के लिए तैयार न हो और तुम्हें फिलहाल अकेले घूमना हो तो आनन्दसे घूमो। उस स्थितिमें कंचन यहाँ या जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ रहेगी। कंचन तुम्हारी इच्छानुसार चलना चाहती है। मेरा स्वतन्त्र मत यह है कि तुम्हें कंचनके बिना कहीं भी शान्ति नहीं मिलेगी। तुम कंचनके प्रति अपना प्रेम या मोह या तुम इसे जो भी कहते हो, छोड नहीं सकोगे। तुम्हें विषय-तृप्ति चाहिए। यदि मिल सके तो कंचनको भी यही चाहिए। लेकिन उसमें तुम्हारी-जैसी लोलुपता नहीं है। वैसे, सामान्यत विचार करते हुए, कंचनके प्रति तुम्हारे प्रेम अथवा तुम्हारी विषय-भोगेच्छामें कोई दोष नहीं है—तुम चाहते हो ऊँचे उडना, लेकिन वह तुम्हारी शक्तिके बाहरकी बात है। सम्भव है कि दो-एक वर्षमें तुम्हारी तृप्ति हो जाये और तुम वैराग्यका जो मार्ग लेना चाहते हो वह ले सको। अगर जाते हो तो जब तुम लौटकर आओगे, यहाँ तुम्हें अपनी जगह सुरक्षित मिलेगी। फिलहाल तुम कातते हो उसमें . . [1] मिलती हो और तुम [2] खादी-शास्त्रको . [3] सकते हो तो मुझे . . [4] सन्तोष है। केवल कंचनके बारेमें निर्णय हो जाना चाहिए।

मैं नहीं समझता कि अब कुछ रह गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३१) से। सी० डब्ल्यू० ७०९८ से भी; सौजन्य - मुन्नालाल गंगादास शाह

१, २, ३ और ४. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

३८८. पत्र : विजयाबहन म० पंचोलीको

१ अगस्त, १९४०

चि० विजया,

तू पगली है। अरी, जो मर गये वे तो जीत गये। फिर उनका[1] शोक क्या? जो लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करते हैं उनके लिए शोक नामकी कोई चीज ही नही रह जाती। तेरे न आनेका कारण मैं समझता हूँ। तेरा स्थान तो वही है। यहाँ तो विश्राम लेनेके लिए आ सके तो आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१३१) से। सी० डब्ल्यू० ४६२३ से भी, सौजन्य: विजयाबहन म० पंचोली

३८९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
१ अगस्त, १९४०

भाई वल्लभभाई,

साथका पत्र नडियादसे आया है। इसके बारेमें अगर कुछ सोचने-विचारने या करने लायक हो तो देखना।

तुम बीमार पड़ते रहते हो, यह ठीक नही है। थोड़ा आराम लो। घबराते क्यों हो? तुम जो करोगे उसे मैं उचित ही मानूँगा, क्योंकि अन्ततः मनुष्य अपनी प्रेरणा अथवा सामर्थ्यके अनुसार ही चल सकता है। अगर उससे भूल होती है तो भी आखिर भूल करके ही तो उसे सुधारा जा सकता है न? मैं राजाजीके साथ बातचीत कर रहा हूँ — उन्हें उनके रास्तेसे हटानेके लिए नही, बल्कि इस सम्बन्धमें कि अब क्या किया जाये। फिलहाल उनके विचार बदलनेका प्रयत्न नही करना है। वह तो अनुभव करेगा। मुझे जरा भी सन्देह नही है। राजनीति भी मेरे

१. तात्पर्य विजयाबहनके पिता नारणभाई पटेलकी मृत्युसे है; देखिए "पत्र : विजयाबहन म० पंचोलीको", पृ० २९६।

मार्गका अनुसरण करने मे ही है। लेकिन यह बात अभी नही बढ़ाऊँगा। जब तुम्हे आना हो तब चले आना।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८ मेरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृष्ठ २४१

३९०. पत्र : प्रभावतीको

सेवाग्राम, वर्धा
१ अगस्त, १९४०

चि० प्रभा,

पिताजीके बारेमे कुछ भी सुझाना मुश्किल है। मेरी सलाह है कि डाक्टरी इलाज बन्द कर दिया जाये। वे रामनाम रटते रहे और केवल फल और दूधपर रहे। बल्कि दूध भी छोडकर फलोका रस ले। दूध हजम हो तो जरूर ले। शान्तिपूर्वक आराम करे और अन्तकालकी बाट देखे। यह पत्र तू पिताजीको दिखा सकती है। लेकिन जैसा तू ठीक समझे वैसा करना।

जब तू आ सके, तब आ जाना। अपनी तबीयतका ध्यान रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४६) से

३९१. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
२ अगस्त, १९४०

प्रिय पगली,

तो तुमको [यहाँ आने मे] फिर देर होगी। मै कह ही चुका हूँ कि जल्दबाजी मत करना।[1] मै तुम्हारा गद्दा दुबारा भरवाने का काम तुम्हारे यहाँ लौट आने तक स्थगित रखूँगा।

तुमने जो भूले बताई है, वे बेशक उसमे है। तुम्हारे आ जाने पर उनसे बचा जा सकेगा। अंग्रेजी अनुवादोको मै जाँचता ही हूँ, हिन्दुस्तानीको जांच नही सकता।

१. देखिए "पत्र : अमृतकौरको", पृ० ३७५-७६।

खण्डेरियाका पत्र मैं देखूंगा। मौलाना वस आने ही वाले हैं।

कु० यहीं है। वह बिलकुल मेरे ही इलाजमें है, अ० स० भी। वह पड़ी हुई है। मैं उसे कुछ औम दूधके पथ्यपर रख रहा हूँ।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९९१) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७३०० से भी

३९२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सेवाग्राम, वर्धा
२ अगस्त, १९४०

प्रिय सतीश बाबू,

देखता हूँ कि गाँवकी सभा यहाँ १३ तारीखको होनेवाली है। इसीलिए वहाँ प्रतिष्ठान [और] अखिल भारतीय चरखा संघके लिए मैं १४ से १८ तककी तारीखें रख रहा हूँ। उस दौरान मुझे सचाईका पता चल जायेगा। उम्मीद है, हेमप्रभा तुम्हारे साथ आयेंगी। जब आओ, तब घरेलू दवाओंके बारेमें अपनी पुस्तककी तीन प्रतियाँ लेते आओ।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६३७) से

३९३. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

३ अगस्त, १९४०

चि० नरहरि,

ठक्कर बापाने जो पैसा मंजूर किया है वह मेरे नाम जमा रकममें से निकाल लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९१) से

३९४. एक सटीक दलील[1]

कार्य-समिति अपने जिस निर्णयमे आन्तरिक उपद्रवोसे निबटने के लिए अहिंसाका आग्रह रखते हुए भारतकी प्रतिरक्षाके लिए उसपर भरोसा करनेमे डर गई उसके सम्बन्धमे युद्धकी असलियतसे वाकिफ एक अंग्रेज महिलाने निम्न प्रकार लिखा है[2]

> . . . बाहरी हमलेका सामना करनेका मौका आने पर अहिंसाको ताक पर रख देना मुझे ठीक ऐसे क्षणमें उसे त्याग देने-जैसा लगता है जब उसकी शक्ति सबसे अचूक और मानव-जातिको उससे होनेवाला लाभ सबसे महान् होता है। . . . आन्तरिक अव्यवस्था . . . पर काबू पाने में ज्यादातर मन्दबुद्धि और निम्न कोटिके लोगोंसे निबटना पड़ता है। . . . लेकिन आक्रमणका प्रसंग उपस्थित होने पर हमारा वास्ता . . . राष्ट्रोंके विकसित-बुद्धि नेताओं तथा निरीह सैनिकोंके समुदायोंसे पड़ता है। इन दोनोंपर अहिंसाकी प्रतिक्रिया होना अनिवार्य है। . . . खासकर हिटलर-जैसे मेधावी लोग तो उसके वैभव से बहुत प्रभावित होंगे . . .।

यदि कार्य-समितिके सदस्योंने यह सोचा हो कि आन्तरिक मामलोंके हलके लिए अहिंसा आदर्श उपाय होनी चाहिए और हो सकती है तो विदेशी मामलोंके निबटारेके लिए तो वह और भी आदर्श उपाय होनी चाहिए और हो सकती है।

सेवाग्राम, ४ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-८-१९४०

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. यहाँ केवल कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया गया है।

३९५. त्रावणकोर

श्री पी० जे० सेवेस्टियनने त्रावणकोर सरकारकी प्रेस-विज्ञप्तिकी निम्नलिखित हू-ब-हू नकल[1] मुझे भेजी है

> त्रावणकोर सरकारने खेदपूर्वक देखा है कि अपने अखबार 'हरिजन' के स्तम्भोंमें श्री गांधीने सर्वश्री अच्युतन और जी० रामचन्द्रन्के वक्तव्योंको स्थान दिया है। श्री अच्युतन मृतप्राय त्रावणकोर राज्य कांग्रेसके सबसे नये अध्यक्ष और श्री जी० रामचन्द्रन् उसके प्रचारक हैं। स्पष्ट ही इन वक्तव्यों और इनपर श्री गांधीकी टिप्पणियोंके बलपर रियासतपर बाहरी तहकीकात और बाहरी मध्यस्थता थोपने की आशा की जा रही है।...जिनके साथ श्री गांधीका नाम जुड़ा हो उन वक्तव्योंको मिलनेवाली प्रसिद्धिको...ध्यानमें रखते हुए, त्रावणकोर सरकारका इरादा सर्वश्री अच्युतन और जी० रामचन्द्रन्के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करनेका है...।

इस विज्ञप्तिके पाठको मैंने हिज्जों या व्याकरणका कोई सुधार किये बिना छापा है। नकल भेजते हुए श्री सेवेस्टियनने लिखा है

> अबतक यह विज्ञप्ति मद्रासके किसी भी अखबारमें प्रकाशित नहीं हुई है। विज्ञप्तिका हेतु त्रावणकोरके अखबारोंको यह चेतावनी देना जान पड़ता है कि वे २८ जुलाईके 'हरिजन' में प्रकाशित लेखको[2] उद्धृत न करें। ध्यातव्य है कि त्रावणकोरके किसी भी अखबारने 'हरिजन' का २८ तारीखवाला लेख नहीं छापा है, हालाँकि दीवानके उत्तरके साथ २१ तारीखवाला लेख[3] प्रकाशित किया गया था।

त्रावणकोरके विषयमें प्राप्त हर महत्त्वपूर्ण चीजको मैं इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि मैं उसे सच मानता हूँ। श्री रामचन्द्रन् और अच्युतनके खिलाफ जिस कानूनी कार्रवाईकी धमकी दी गई है उसमें प्रकाशित वक्तव्य गलत साबित नहीं होनेवाले हैं। उससे तो इसी धारणाकी पुष्टि होगी कि त्रावणकोर राज्यके अधिकारी जन-अधिकारोंके इस आन्दोलनको हर सम्भव उपायसे कुचल डालने को कृतसंकल्प हैं। अगर अतीतके अनुभवके आधारपर कोई अनुमान लगाया जा सकता हो तो यही कहना होगा कि त्रावणकोरका यह दमन आन्दोलनको कुचल नहीं पायेगा। जरा देखिए कि

१. यहाँ कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया गया है।
२. देखिए पृ० ३५२-५६।
३. देखिए पृ० ३१३-१४।

प्रेस-विज्ञप्तिमे महत्त्वपूर्ण मुद्दोंको किस प्रकार टाल दिया गया है। न किसी "बाहरी तहकीकात" और न "बाहरी मध्यस्थता" की ही कोई माँग की जा रही है, और न किसी तरहकी जबरदस्तीका ही कोई सवाल है। खुद दीवान और बहुत-से अन्य लोग भी त्रावणकोरमे बाहरसे गये हैं। लेकिन जब महाराजा उन्हे राज्यकी सेवामे रख लेते हैं तब वे बाहरसे थोपे गये नही माने जाते, और इस तरह उनकी नियुक्ति करनेवाले के लिए "बाहरी" शब्दका प्रयोग निरर्थक हो जाता है। समाचार-पत्रो द्वारा दिये गये मैत्रीपूर्ण सुझावो या रियासतकी प्रजा द्वारा किये गये अनुरोधोके लिए "जबरदस्ती" शब्दका प्रयोग करना अथवा राज्यको बाहरसे निष्पक्ष न्यायाधीश लाने के लिए दिये गये सुझावोके लिए "बाहरी" और "बाहरी मध्यस्थ" शब्दोंका इस्तेमाल करना बेतुका है। जब जन-आन्दोलनके उत्तरमे सरकारने हटर समितिकी नियुक्ति की थी तब क्या न्यायमूर्ति हटर, जो खुद गैर-पजाबी थे, और उनके गैर-पजाबी सहयोगी पजाब सरकारपर थोपे गये थे? या जब विदुराश्वत्थम् गोली-काण्डकी जाँच करने के लिए विद्वान् न्यायमूर्ति रमेशम् बाहरसे बुलाकर नियुक्त किये गये थे तब क्या वे सर मिर्जा इस्माइलपर जबरदस्ती थोपे गये थे? त्रावणकोरके अधिकारियो द्वारा भाषाके इस घोर दुरुपयोगका जनता निश्चय ही अनिष्टसूचक अर्थ लगायेगी। और, यदि राज्य काग्रेसके कार्योके प्रति त्रावणकोरकी प्रजाका रुख विरोध या उपेक्षाका है तो राज्य काग्रेसके बुलेटिनो या अखबारी टिप्पणियोंपर पाबन्दीकी जरूरत ही कहाँ रह जाती है? सत्य तथा अहिंसाका पालन करते हुए चलाई जानेवाली न्यायसम्मत प्रवृत्तियाँ सदासे दमनको सफलतापूर्वक झेलती रही हैं और अप्रत्याशित क्षेत्रोंसे सहानुभूति प्राप्त करती रही हैं। ऐसी सहानुभूतिको मै दैवी सहायता मानता हूँ। ईश्वर अपना काम बड़े रहस्यमय ढगसे करता है। राज्य काग्रेसके पीड़ित लोगोको यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि ईश्वर उनके साथ है।

सेवाग्राम, ४ अगस्त, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १८-८-१९४०

३९६. एक पहाड़ी कबीलेकी ऋण-दासता[1]

विजगापट्टम जिलान्तर्गत मडुगोल एजेंसी क्षेत्रमें पहाड़ी लोगोंके बीच काम करनेवाले श्री मण्डेश्वर शर्मा लिखते हैं :

> मुझे आपको यह सूचित करते बड़ा हर्ष हो रहा है कि पहाड़ी कबीला संघ तथा प्रान्तीय जइम रैयत (खेतिहर) संघके प्रयत्नोंके फलस्वरूप हालमें मद्रास सरकारने उस ऋण-दासता प्रथाको समाप्त कर दिया जो इन क्षेत्रोंमें युगोंसे प्रचलित थी। ऋण-दासताका अर्थ यह है कि पहाड़ी क्षेत्रोंके मतादार और नियोजक कबायली लोगोंको ५०-६० रुपये या कुछ ऐसी ही राशियाँ पेशगी दे देते हैं और फिर ५, १० या २० वर्षों तक, बल्कि कभी-कभी तो पीढ़ियों तक, इन बेचारे पहाड़ी लोगोंसे पूरे दिन बेगार कराते हैं। इस नये विनियमके फलस्वरूप हजारों पहाड़ी लोग बन्धन-मुक्त हो गये हैं। इन सभी मामलोंके बारेमें पहाड़ी लोगोंसे सारी हलचल हम पूर्णतः अहिंसक रीतिसे करवा रहे हैं। वे खुद ही अहिंसक मूल्योंको समझें, इसमें मैं उनकी मदद कर रहा हूँ। जब तीन हजार लोग चरखे और तकलीको अपना ले तब आपको यह क्षेत्र दिखाने की हमारी अभिलाषा है। इसके लिए हमें आपके आशीर्वादकी जरूरत है। इन लोगोंकी संख्या लगभग बीस हजार है। अभी बारह सौ पहाड़ी लोग कातते हैं। हम उन्हें शराबसे भी विमुख करने की कोशिश कर रहे हैं।

जिस स्पष्ट अन्यायका यहाँ उल्लेख किया गया है उसका निराकरण यद्यपि मद्रास सरकारने बहुत देरसे किया है तथापि देर आयद दुरुस्त आयदके सिद्धान्तके मुताबिक वह धन्यवादकी पात्र है। अब श्री शर्मा-जैसे कार्यकर्त्ताओंके लिए पहाड़ी लोगोंकी अवस्थामें सुधार लाने की प्रवृत्ति चलाने में आसानी होनी चाहिए। मेरा आशीर्वाद तो उनके साथ है ही। कदाचित् ऐसी कोई आशा मैं उन्हें नहीं दिला सकता कि जब वे पहाड़ी लोगोंके बीच तीन हजार चरखे चलवाने में सफल हो जायेंगे तब भी मैं उनका क्षेत्र देखने जा पाऊँगा। अपनी मर्यादित आकांक्षाको फलीभूत करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

सेवाग्राम, ४ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-८-१९४०

1. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३९७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
४ अगस्त, १९४०

चि० अमृत,

तुम कहती तो हो कि चाहूँ तो तुम्हारा लेख तुम्हे डाकसे भेज दूँ, लेकिन अगर तुम ६ तारीखको चलनेवाली हो तो ऐसा करना गलत होगा। इसलिए लेख लखनऊ भेजा जा रहा है। सशोधन नही किया है। यह लेख खास अच्छा नही लगा। इसमे काफी मेहनत दरकार है। आने पर मुझसे इसके बारेमे बात करना।

तुम्हारा पुर्जा मै बाबलाको दे रहा हूँ।

राजेन बाबू बीमार है। ज्यादा नही।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९९२)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ७३०१ से भी

३९८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

४ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचन्द्र,

उत्तर अच्छा है। उसमे इतना और लिखो–तुझे बुलाती है उससे अच्छा तो यह होगा कि माताजी ही यहा आ जावे तो मै केसे सुखमे रहता हू वह देख सकेगी। पुत्रको मिलने की शाति भी मिलेगी और मुझे दर्शन का लाभ मिलेगा।

बापुके आ[शीर्वाद]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५५)से

३९९. आशाजनक

दैनिक पत्रोंमें यह समाचार पढ़नेको मिला है

> जनरल द गालने कल रात एक प्रसारणमें फ्रान्सके स्त्री-पुरुषोंसे अनाक्रामक प्रतिरोध करने का अनुरोध किया। उन्होंने फ्रान्समें रहनेवाले सब स्वतन्त्र फ्रान्सीसियोंसे आग्रह किया कि वे ब्रिटेनके विरुद्ध युद्धमें सहायता न करें।

मैं जानता हूँ कि यह हृदय-परिवर्तनका उदाहरण नहीं है। बहादुर जनरलको जब भी मौका मिलेगा और उनसे जहाँतक बन पड़ेगा, वे 'शत्रु'का सर्वनाश करने की चेष्टा करेंगे। और अर्थकी चाहे जितनी खींचतान करके भी इस अनाक्रामक प्रतिरोधको अहिंसात्मक भी नहीं कहा जा सकता। अपने देशवासियोंको दी गई जनरल द गालकी सलाहको तो मैं केवल यह दिखाने के लिए उद्धृत कर रहा हूँ कि संसार दुर्निवार और अचेतन रूपसे अहिंसात्मक कार्रवाईकी ओर आकृष्ट हो रहा है।

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-८-१९४०

४००. क्या अहिंसा असम्भव है?

इस पत्रमें[1] लेखकने जो शंकाएँ उठाई हैं, वे बहुत-से लोगोंके मनमें उत्पन्न होती हैं। मैंने इन शंकाओंका समाधान करने का छिटफुट प्रयत्न भी किया है। लेकिन कांग्रेसकी कार्य-समितिके प्रस्तावने समाजको इस प्रश्नपर पुनः विचार करनेको बाध्य कर दिया है, इसलिए इस समय उपर्युक्त शंकाओंकी चर्चा करनेकी आवश्यकता मालूम होती है।

इस पत्रकी ध्वनि यह है कि अहिंसाका समाज-व्यापी विस्तार असम्भव है और ऐसा नहीं लगता कि उसका अनुसरण करके समाजने कोई प्रगति की हो। बुद्ध-जैसे सुधारक आये, उन्होंने कुछ प्रयास किया। अपने जीवन-कालमें उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भले मिली हो, लेकिन समाज तो जहाँ था वहीं आज भी खड़ा है। अहिंसा व्यक्तिगत धर्म हो सकती है, लेकिन समाजके लिए वह निरर्थक है, और हिन्दुस्तानको भी अपनी मुक्तिके लिए हिंसाका मार्ग ही अपनाना पड़ेगा।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका कहना था कि अहिंसामें शक्ति तो है पर सामान्य जनोंके लिए अपने जीवनमें वैसी अहिंसा सिद्ध करना अशक्य है।

मुझे लगता है कि इस तर्कके मूलमे ही दोष है। और अन्तिम वाक्य तो सही है ही नही, क्योंकि काग्रेसने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए तो अहिंसाका स्थान ज्यो-का-त्यो कायम रखा है। इतना ही नही, बल्कि वह एक कदम आगे बढी है। आन्तरिक झगडे को शान्त करने के लिए भी अहिंसाकी नीति कायम रखी गई है या नही, इस विषयमे जब शका उत्पन्न हुई तो अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने स्पष्ट निर्णय किया कि वैसी स्थितिमे भी अहिंसाका ही उपयोग किया जाये। उसने केवल बाह्य आक्रमणोका मुकाबला करने के लिए सेनाकी आवश्यकता स्वीकार की है। वैसे वहाँ भी हमने देखा कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सदस्योंकी काफी बडी सख्याने उस प्रस्तावके खिलाफ विरोध प्रदर्शित किया था। ऐसे सिद्धान्तके प्रश्नपर यदि विरोध हो तो उसका खयाल तो रखना ही पडता है। काग्रेसकी नीतिका निर्णय तो बहुमत ही कर सकता है, लेकिन इससे अल्पमतकी रायका उच्छेद नही हो जाता। उसकी वह राय तो बनी ही रहती है। जहाँ किसी कार्यक्रमपर अमल करने की बात होती है, वहाँ अल्पमतके सामने बहुमतका अनुसरण करने का कर्त्तव्य उपस्थित होता है। लेकिन जहाँ सिद्धान्त-भेद है वहाँ तो वह भेद बना ही हुआ है, और अवसर आने पर उसके अनुसार आचरणमे भी भेद होगा। मतलब यह कि सर्वांगीण अहिसाको भी समाजमें स्थान मिला है। इससे प्रकट होता है कि सामाजिक अहिसाने ठीक कदम बढाये है। ये कदम जहाँ-के-तहाँ जमे रहेगे या नही, और आगे बढेगे या नही, यह एक अलग सवाल है। इसलिए लेखककी शकाको काग्रेसके प्रस्तावसे तो कोई सहारा नही मिलता, बल्कि उलटे उससे उनकी शकाका कुछ अशमे निवारण हो जाना चाहिए।

मै एक असाधारण व्यक्ति हूँ, मेरे प्रभावमे पडकर समाजने कुछ किया है, लेकिन मेरे बाद वह सब विलुप्त हो जायेगा —— यह कहना भी कतई ठीक नही माना जा सकता। काग्रेसमे अनेक विचारशील लोग है। मौलाना साहब खुद भी महान् विचारक हैं। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण है और अध्ययन विस्तृत है। अरबी-फारसीके अध्ययनमे उनका जोड मिलना मुश्किल है। अनुभवने उन्हे सिखाया है कि अहिंसासे ही हिन्दुस्तान आजाद होगा। उनका आग्रह था कि आन्तरिक विग्रहमे भी अहिंसा ही काम आयेगी। पण्डित जवाहरलाल ऐसे नही है कि किसीसे चौंधिया जाये। उनका अग्रेजीका अध्ययन किसीसे कम नही है। बहुत विचार करने के बाद अन्तमें उन्होने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अहिंसाको स्वीकार किया है। उन्होंने यह अवश्य कहा है कि यदि अहिंसासे स्वराज्य मिलना असम्भव हो और हिंसासे मिल सके तो वे हिंसाको स्वीकार करने मे हिचकिचायेंगे नही। लेकिन प्रस्तुत समस्याके बारेमे यह बात अप्रासगिक है। ऐसे और भी अनेक प्रौढ व्यक्तियोके नाम गिनाय जा सकते है जो स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अहिंसाको ही एकमात्र साधन माननेवाले हैं। वे सब मेरी मृत्युके बाद अहिंसाका मार्ग छोड देंगे, यह सोचना भी उनका और मनुष्य-स्वभावका अपमान करना माना जायेगा। यह मानकर चलना ही हमारे लिए उचित है कि प्रत्येक मनुष्यमे उसकी अपनी एक खुदी होती है। यदि एक-दूसरेके प्रति इतना सम्मान मनमे रखें तो हम आगे बढेंगे और निर्बल होंगे तो एक-दूसरेकी सहायतासे ऊपर चढ़ेगे। लेकिन लेखक अथवा दूसरे

सज्जन ऐसा तो कदापि नहीं मानते होंगे कि कांग्रेस या बहुत-से नेताओंने अहिंसाको अन्तिम नमस्कार कर लिया है। ऊपर मैंने जो सीमाएँ बताई हैं वहाँतक तो कांग्रेसकी नीति और भी स्पष्ट हो गई है और अक्षुण्ण रह गई है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि हम अहिंसाके विराट् रूपका विचार करे तो कांग्रेस द्वारा आँकी गई सीमा अहिंसाको बहुत सकुचित कर देती है, और इससे उसकी भव्यता आच्छादित हो जाती है। लेकिन प्रस्तुत तर्कके सन्दर्भमें तो कांग्रेसकी सीमित अहिंसा पूरा काम देती है, क्योंकि यहाँ मैं इतना ही बताने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि अहिंसाका क्षेत्र बढता जा रहा है। और कांग्रेसका अहिंसाको मर्यादित रूपमे स्वीकार करना काफी हदतक मेरी स्थितिका समर्थन करता है।

ज्ञात इतिहासके आरम्भसे लेकर आजतक के कालपर यदि हम दृष्टिपात करे, तो हम देखते है कि मनुष्य अहिंसाके मार्गपर ही चला आ रहा है। हमारे पूर्वज एक-दूसरेको खा जाते थे। बादमे वे शिकारपर गुजारा करने लगे। एक-दूसरेको खाने मे उन्हें घृणा होने लगी। इसके बाद केवल शिकारके सहारे जीवन बिताने में शर्म आने लगी, इसलिए आदमीने खेती करना शुरु किया। वह उससे अनेक प्रकारका भोजन प्राप्त करने लगा। जगलमे मगल करने लगा। घुमक्कड जिन्दगीके बदले उसने स्थिर होकर एक जगह रहना पसन्द किया। उसने गाँव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जागी, जो आगे चलकर सामाजिक हो गई। ये सब उत्तरोत्तर बढती अहिंसाके ही चिह्न है। हिंसा-वृत्ति कम होती गई। यदि ऐसा न हुआ होता तो आजतक तो मनुष्य-जाति उसी प्रकार समाप्त हो गई होती जिस प्रकार निम्न प्राणियोंकी बहुत-सी जातियाँ नष्ट हो गई है। अनेक पैगम्बर और अवतार हो गये है, उन्होंने भी न्यूनाधिक प्रमाणमे अहिंसाका ही प्रवर्तन किया। किसीने हिंसाका प्रवर्तन करने का दावा ही नही किया। करते भी कैसे? हिंसाका प्रवर्तन करने की जरुरत ही नही है। पशुके रूपमे मनुष्य हिंसक ही है, आत्माके रूपमे ही अहिंसक है। आत्माका भान होने पर वह हिंसक रह ही नही सकता। वह या तो अहिंसा सीखेगा या नष्ट हो जायेगा। इसीलिए पैगम्बरो तथा अवतारोने सत्य, ऐक्य, भ्रातृभाव, सयम, न्याय आदिकी शिक्षा दी। तथापि ससारमे हिंसा बनी हुई है। यहाँतक कि उक्त पत्र-लेखक-जैसे विचारशील व्यक्ति भी हिंसाको ही अन्तिम उपाय मानते है। लेकिन, जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, इतिहास और अनुभव उसके विरुद्ध है।

यदि हम इतना मान ले कि आजतक अहिंसा उत्तरोत्तर बढती आई है, तो हम यह माननें को भी सहज ही बाध्य हो जाते है कि उसे आगे भी बढना ही है। इस ससारमे कुछ भी स्थिर नही है, सब गतिमान है। यदि प्रगति नही हुई तो पिछडना ही पडेगा। गति-चक्रके बाहर तो कोई जा ही नहीं सकता। उसके बाहर तो बस एक ईश्वर है—सो भी अगर हो तो।

आज जो युद्ध चल रहा है, उसे हिंसाकी पराकाष्ठा माना जा सकता है। लेकिन मेरी नजरमें यह हिंसाकी होली है। यह तो मैं देखता ही रहता हूँ कि लोगोमे अहिंसाके प्रति जितना सम्मान आज है उतना कभी नही था। पश्चिमसे मुझे

जो प्रमाण मिल रहे हैं वे भी यही बताते हैं। ऐसे शुभ मुहूर्तमें कांग्रेसने जैसे भी हो, अहिंसाकी शपथ ली है। पत्र-लेखक तथा उन-जैसे दूसरे शंकालुओंको मैं शंकाका त्याग करके, श्रद्धापूर्वक इस अहिंसा-यज्ञमें कूद पड़ने के लिए आमन्त्रित करता हूँ।

मोतीके लिए गोताखोर समुद्रमें गोता लगाता है
मृत्युके मुँहमें जाकर मुट्ठी भर लाता है मोतियोंसे
और निकाल फेंकता है मन के जंजालको
कगारपर खड़े देखते हैं तमाशा जो
उनके हाथ कानी कौड़ी भी नहीं लगती
प्रेमपंथ पावककी ज्वाला है जिसे देख पीछे भागते हैं लोग
उसके बीच जो पड़े हुए वे उसे महासुख मानते हैं
जलते हैं वे जो तमाशबीन हैं।[1]

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०
[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १०-८-१९४०

४०१. अहिंसाकी परीक्षा[2]

जो अपने-आपको पूर्ण अहिंसा-भक्त मानते हैं, और राजाजी आदिने जो कदम उठाया है, उसे गलत समझते हैं, उनकी कड़ी परीक्षा होनेवाली है।[3] मैंने तो अपना मत बिलकुल स्पष्ट भाषामें व्यक्त किया है। मैं मानता हूँ कि राजाजी भटक गये हैं, और राजाजी मानते हैं कि मैं भटक गया हूँ। राजाजी की मान्यता सच्ची हो और मेरी झूठी, यह उतना ही सम्भव है, जितना कि मेरी मान्यताका सच्चा होना और राजाजी की मान्यताका झूठा होना। सच और झूठका आखिरी निर्णय तो भविष्य ही करेगा।

लेकिन चूँकि अपनी मान्यताकी सचाईके विषयमें मुझे लेशमात्र शंका नहीं है, इसलिए जो लोग मेरी तरह सोचते हैं, उन्हें कांग्रेस छोड़ देने की सलाह देते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं हुआ। तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें तत्काल कांग्रेससे निकल जाना चाहिए — इतना काफी है कि निकलने की उनकी तैयारी हो। निकलने की तारीखका निर्णय वे लोग मुझपर छोड़ दें। निकलने से पहले उन्हें इतना विचार अवश्य करना होगा कि उनके निकलने से साथियोंको आघात नहीं पहुँचना चाहिए। कांग्रेससे निकलने की बात उनकी समझमें न आये तो धैर्यपूर्वक मुझे उन्हें समझाना

१. गुजराती कवि प्रीतमके प्रसिद्ध पदकी कुछ पंक्तियाँ; मूल पंक्तियोंके लिए देखिए खण्ड ४४, पृ० ४६७।

२. यह "नोंध" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३. देखिए "दिल्ली प्रस्ताव", पृ० २८८-९०।

होगा। कांग्रेसमें से इन लोगोंको निकल जानेकी सलाह देनेमें कांग्रेसका ही हित है, यह उन्हें समझाना होगा। हम दोनों ही मानते हैं कि बाहरी आक्रमणसे देशकी रक्षा अहिंसाके द्वारा की जा सके तो ज्यादा अच्छा होगा। इसलिए एक ऐसा वर्ग हो जो अपना जीवन अहिंसाकी सफलताको सिद्ध करनेमें लगा दे, तो उसका होना वाछनीय है। अगर ऐसे वर्गका होना हितकर हो, तो यह स्पष्ट है कि वह वर्ग कांग्रेससे बाहर ही रह सकता है और कांग्रेसको चाहिए कि वह उस वर्गको केवल सहन ही न करे बल्कि उसका स्वागत करे, जहाँतक हो सके, उसकी मदद करे और उसे अपनाये। अर्थात्, कांग्रेस और इस वर्गके बीच जरा भी वैमनस्य न हो, कोई गलतफहमी न हो। इसके विपरीत, जैसा पहले था, उससे भी ज्यादा अच्छा सम्बन्ध होना चाहिए।

ऐसा शुभ परिणाम लानेके लिए यह आवश्यक है कि अहिंसाके भक्त अपने पुराने साथियोंकी आलोचना करनेकी बात मनमें भी न लायें। उन्होंने पहले क्या कहा है, उसकी याद उन्हें न दिलायें। यदि पिछले कथनोंमें कोई भूल रही हो तो उन्हें सुधारना मनुष्यका धर्म है। मगर यह भी सम्भव है कि उनके उन वचनोंका जो अर्थ दूसरे करते हैं, वह अर्थ वे स्वयं उन वचनोंमें न देखते हों। इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि एक-दूसरेके मतभेदोंको प्रेमपूर्वक सहन किया जाये। एक-दूसरेको बरदाश्त करनेकी खातिर दोनों अलग-अलग काम करें, और ऐसा करते हुए जहाँ सम्भव हो वहाँ एक-दूसरेकी मदद करें।

ऐसा वातावरण बननेमें कुछ देर लगना सम्भव है। हम सब इस दिशामें प्रयत्न करेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी।

इस दौरान सब लोग मेरे सुझाये रचनात्मक कामोंमें लगे रहें। उनमें अधिक प्रगति करें। पूर्ण अहिंसा-भक्तोंकी सूची हरएक प्रान्तमें एकाधिक नेता तैयार करें। वक्त आने पर हरएक प्रान्तके मुख्य अहिंसा-भक्तोंको एकत्र करनेका मेरा इरादा है। मगर मैं एक भी कदम पक्की तरह विचार किये बिना नहीं उठाऊँगा।

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १०-८-१९४०

४०२. चरखा-जयन्ती

श्री नारणदास गाधी चरखा-जयन्तीके सम्बन्धमे लिखते है

चरखा-जयन्तीका ७१ दिनका कार्यक्रम २०-७-१९४० को प्रातःकालीन प्रार्थना और "वैष्णव जन" वाले भजनके बाद कातने से शुरू हुआ है। कताईका वातावरण अच्छा जमा है। बहुत-से लोग सवेरे चार बजेसे कातने लगते हैं। अमृतलाल सवेरे साढ़े तीन बजे उठते हैं और चार बजे कातने बैठ जाते हैं। दिनके साढ़े तीन बजेतक (भोजनका समय छोड़कर) सात आँटियाँ पूरी कर लेते हैं। ११ घंटेमें करीब ६००० गज सूत कात लेते हैं। साढ़े तीनके बाद संगीत सीखते हैं, घूमते हैं और आराम करते हैं। उन्होंने ७१ दिनमें चार लाख गज कातने का संकल्प किया है।

हर रोज शामको साढ़े छह बजे प्रार्थना होती है। प्रार्थनामें आनेवालों की संख्या ७५ होती है। इसके साथ दरिद्रनारायणकी थैलीके पाँच वर्षके आँकड़े भेजता हूँ।

आँकडे नीचे लिखे अनुसार है।[1]

साधारणत आँकडे नीरस होते हैं। मै तो उन्हे बहुधा प्रकाशित भी नही करता। करता भी हूँ, तो केवल योगफल ही देता हूँ। लेकिन ये आँकडे मुझे बहुत रोचक और नजरमे जँचने लायक मालूम हुए है। एक आदमीकी अनन्य भावना तथा कार्यदक्षतासे कितना काम हो सकता है, यह ये आँकडे स्पष्ट बताते है। यह यज्ञ बिना किसी आडम्बर तथा बिना किसी विज्ञापनके होता रहता है। इसका अनुकरण सर्वत्र होना उचित है, क्योंकि इस प्रकार खादीका प्रचार सहज ही हो सकता है।

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु १०-८-१९४०

१. आँकडे यहाँ नहीं दिये जा रहे है। दरिद्रनारायणकी थैलीमें अर्पित राशिका उपयोग हरिजन-कार्य, खादी-कार्य, शिक्षा और दुर्भिक्ष-निवारणमें किया गया था।

४०३. एक कदम आगे[1]

अक्तूबर १९३९ मे पूनामे आयोजित प्रथम बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्के अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी विवरणकी बडी सुन्दर रीतिसे बँधी दो जिल्दे मेरे सामने पडी हुई है। अंग्रेजी जिल्दका शीर्षक है 'वन स्टेप फॉवर्ड' [एक कदम आगे]। अंग्रेजी विवरण २९२ पृष्ठोका और हिन्दुस्तानी २९० पृष्ठोका है। एक प्रतिकी कीमत ½ रुपया है। उपयोगी जानकारीसे भरी प्रस्तावनाके अतिरिक्त विवरण तीन भागोमे बँटा हुआ है। पहलेमे आम भाषण और चर्चाएँ दी गई है। दूसरेमें बुनियादी शिक्षा की विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई है, और तीसरेमें बुनियादी शिक्षा-सम्बन्धी उस प्रदर्शनीका वर्णन किया गया है जिसका श्रेय मुख्यत आशादेवीको[2] था। परिशिष्टमें प्रतिनिधियो तथा आमन्त्रित अतिथियोंके नाम-पते दिये गये है। उसकी छोटी-सी प्रस्तावनाके अन्तमे श्री आर्यनायकम् कहते है[3]

> परिषद् और नुमाइश (प्रदर्शनी)ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षाकी योजना को आखिर बहस-मुबाहसे (वाद-विवाद) के दर्जेसे ऊपर उठा दिया है, और तालीमी दुनियाको यह बतला दिया है कि बुनियादी उसूलो, अन्दरूनी बातो और तरीकोंके बारेमें इस नई तालीमका दावा एक सालके कामके तजरबे (अनुभव) से सही साबित हो गया है।

परिषद्की कार्यवाही इस दावेकी सचाईका प्रमाण है। विवरणके पाठमें से उद्धरण देने का लोभ मुझे सवरण करना चाहिए। शिक्षामें रुचि रखनेवालो के पास इसकी एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। मेरे लिए यह सन्तोषकी बात है कि मेरे इस सबसे ताजे उद्यमका, जो अन्तिम नही है, लगभग सर्वत्र अनुमोदन किया गया है। एक सालकी प्रगति इस प्रयोगके उज्ज्वल भविष्यका सूचक है। वार्षिक विवरणकी समीक्षा मैं किसी अगले अंकमें करूँगा।

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-८-१९४०

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. आशादेवी आर्यनायकम्

३. यहाँ प्रस्तावनाका जो अंश दिया जा रहा है वह हरिजनबन्धु, (२४-८-१९४०) में "एक कदम आगे" शीर्षकसे प्रकाशित गुजराती टिप्पणीके अनुवादसे लिया गया है। अनूदित टिप्पणीमें यह अंश हिन्दुस्तानी संस्करणसे मूल रूपमें ही उद्धृत किया गया है।

४०४. मेरा बड़ा पुत्र[1]

प्र० : आप अपने लड़केको ही अपने साथ नहीं रख सके, वह पथभ्रष्ट हो गया है; तो क्या यह ज्यादा ठीक नहीं होगा कि आप बस अपना घर सँभालें और उसीसे सन्तोष करें?

उ० इसे ताना माना जा सकता है। लेकिन मै इसे ताना नही मानता, क्योकि यह प्रश्न किसी औरके मनमे उठे, उससे पहले मेरे मनमे उठ चुका था। मै पूर्वजन्म और पुनर्जन्ममे विश्वास करता हूँ। सारे सम्बन्ध पूर्वके सस्कारोके फल होते है। ईश्वरके नियम अगम्य है। वे अखण्ड शोधका विषय है। उनका पार कोई पा नही सकता। अपने पुत्रके बारेमे मै जो समझा हूँ वह यह है। मेरे घर कुपुत्रका जन्म हुआ। इसे मै अपने पापका फल मानता हूँ। मेरे पहले पुत्रका जन्म मेरे मोहकी दशाका फल है। फिर, वह ऐसे समयमे बडा हुआ, जब मै स्वय गढ़ा जा रहा था और अपने-आपको बहुत कम जानता था। आज भी मै यह दावा नही करता कि स्वयको पूरी तरह जानता हूँ, लेकिन मै मानता हूँ कि उस समयकी अपेक्षा आज मै अपने को अधिक जानता हूँ। फिर वह बहुत समय तक मुझसे अलग भी रहा। उसका निर्माण पूरी तरह मेरे हाथमे नही था। इसलिए उसका जीवन कहीका न रहा। मेरे खिलाफ उसकी हमेशा यही शिकायत रही है कि जिसे मैने भूलसे परमार्थ माना, उसमे उसकी और उसके भाइयोकी बलि दे दी। इस प्रकारका आरोप न्यूनाधिक प्रमाणमे मुझपर अन्य पुत्रोने भी दबी जबानसे लगाया है, लेकिन उदार हृदयसे उन्होने मुझे माफ भी कर दिया। मेरे बडे पुत्रने मेरे जीवनमे घटित विविध परिवर्तनोका प्रत्यक्ष अनुभव किया है, इसलिए जिन्हे उसने मेरे अपराध माना है उन्हे वह भूल नही सका। इस स्थितिमे यह समझकर कि उसे खो देनेका कारण मै ही हूँ, मै गम खाकर बैठ गया हूँ। फिर भी यह वाक्य सर्वथा सही नही है, क्योकि प्रभुके चरणोमे ऐसी प्रार्थना तो मै सदा करता ही रहता हूँ कि भगवान् उसे सद्बुद्धि दे और मुझसे उसके लालन-पालनमे जो त्रुटि रह गई हो उसके लिए मुझे क्षमा करे। मनुष्य स्वभावसे ही ऊर्ध्वगामी है, मेरा यह दृढ विश्वास होनेके कारण मैने यह आशा बिलकुल नही छोडी है कि कभी-न-कभी वह अपनी अज्ञान-निद्रासे जागेगा। अत जैसे सारा ससार मेरी अहिंसाका क्षेत्र है, वैसे ही यह भी है। इसमे सफलता कब मिलेगी अथवा मिलेगी भी या नही, इसकी चिन्ता मैने कभी नही की। मुझे जो सूझता है वह कर्त्तव्य करने मे मै शिथिल न पडूं, यही मेरे सन्तोषके लिए काफी है। "मनुष्य कर्त्तव्यका अधिकारी है, फलका कदापि नहीं", गीताके इस वाक्यको मै कुदन-जैसा मानता हूँ।

सेवाग्राम, ५ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १०-८-१९४०

१. यह "प्रश्नोत्तरी" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

४०५. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

५ अगस्त, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा विचार ठीक है। तो क्या कचन जो मेरा स्पर्श करती है उसे भी तुम वर्ज्य मानते हो? यदि किसी पुरुषकी सेवा करने के लिए उसका स्पर्श करना पड़े तो क्या वह भी छोड़ देना चाहिए? जैसी तुम्हारी इच्छा हो, निस्संकोच लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५३०)से। सी० डब्ल्यू० ७०९९ से भी, सौजन्य : मुन्नालाल ग० शाह

४०६. 'कमजोर बहुमत'का क्या हो?

इस्लामिया कॉलेज (पेशावर)के प्रो० तैमूर लिखते हैं[1]:

> . . . हथियारोंके इस्तेमालके बिना विदेशी हमलावरोंसे भारतकी रक्षा का जो प्रयोग आप करना चाहते हैं वह युग-युगान्तरोंमें सबसे साहसपूर्ण नैतिक प्रयोग माना जायेगा। ऐसा मार्ग अपनाने के दो परिणाम हो सकते हैं। या तो आक्रान्त लोगोंके प्रेमसे आक्रमणकारियोंकी अन्तरात्मा जग जाये और वे अपने पापका प्रायश्चित्त करें या गर्वसे चूर आक्रमणकारी अहिंसाको शारीरिक दुर्बलता और पतनका लक्षण समझकर ऐसे कमजोर राष्ट्रपर कब्जा और शासन करना तथा उसका शोषण करना ही उचित मानें। यह नीत्शेका सिद्धान्त है, जिसका आचरण हिटलर करते हैं। शारीरिक दृष्टिसे सबल राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रको इस तरह जीत ले, इसमें एक भारी हानि है। विजित राष्ट्रके कुछ दृढ़ संकल्पवाले लोग विजेताओंकी प्रभुता मानने से इनकार कर दे सकते हैं, लेकिन बड़ा बहुमत तो हमेशा घुटने टेक ही देता है। . . . सुरक्षाकी आवश्यकता कमजोर बहुमतको है। प्रश्न यह है कि अहिंसक तरीकोंसे उसकी रक्षा कैसे की जाये? . . .

इसमें सन्देह नहीं कि कमजोर बहुमतको सुरक्षाकी आवश्यकता है। यदि सभी लोग अहिंसक या हिंसक सिपाही ही होते तो इन स्तम्भोंमें जैसे प्रश्नोंकी चर्चाकी जरूरत पड़ती है वैसे प्रश्न उठते ही नहीं। ऐसा एक कमजोर बहुमत तो हमेशा रहता है जिसे मनुष्यकी दुष्प्रवृत्तियोंसे सुरक्षाकी आवश्यकता रहती है। सुरक्षाको दृढ़

१. यहाँ कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

पद्धतिसे हम अवगत है। नाजीवाद उसका तर्कसम्मत परिणाम है। वह एक निश्चित आवश्यकताकी पूर्तिके लिए उद्भूत हुआ है। एक सम्पूर्ण राष्ट्रके साथ किया गया भयंकर अन्याय चीख-चीखकर प्रतीकारकी माँग कर रहा था। यही वैर भँजाने के लिए हिटलरका उदय हुआ। युद्धका अन्तिम परिणाम चाहे जो हो, जर्मनीका अपमान दुवारा नही होनेवाला है। ऐसे दूसरे अत्याचारको मानव-जाति सहन नही कर सकेगी। लेकिन प्राय पूर्णताकी सीमातक विकसित कर दी गई हिंसाके गलत तरीकेसे अन्याय का प्रतीकार करने का प्रयत्न करके हिटलरने न केवल जर्मनोको, वल्कि मानव-जातिके एक वहुत वड़े हिस्सेको वर्वर वना दिया है। अभी हमने उसका अन्त नही देखा है। कारण, ब्रिटेन जवतक रूढ़ पद्धतिपर आरूढ़ है तवतक सफल प्रतिरक्षाके लिए उसे नाजियोके तौर-तरीकोकी नकल करनी पडेगी। इस प्रकार हिंसक पद्धतिका तर्कसगत परिणाम तो मनुष्यका — और उस "कमजोर वहुमत" का भी — उत्तरोत्तर अधिकाधिक पाशवीकरण ही है। "कमजोर वहुमत" का पाशवीकरण इसलिए होगा कि उसे प्रतिरक्षकोको अपेक्षित सहयोग देना है।

अव कल्पना कीजिए कि उसी वहुमतकी रक्षा अहिंसक पद्धतिसे की जाये तव क्या होगा। चूँकि इसमे मलिनता, फरेव और दुर्भावनाके लिए कोई स्थान नही है, इसलिए इससे रक्षकोकी नैतिक वृत्ति ऊपर उठेगी। इसलिए जिस "कमजोर वहुमत" की रक्षा की जानी है उसकी नैतिक वृत्तिका भी तदनुरूप उत्थान होगा। इसमे सन्देह नही कि इसमे प्रमाणका अन्तर होगा, लेकिन प्रकारका कदापि नही।

लेकिन असली कठिनाई तव उपस्थित होती है जव हम अहिंसक पद्धतिपर अमल करने के साधनो और तरीकोपर विचार करने वैठते है। हिंसक पद्धतिके अमलमें मानव-रूपी सामग्री प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होती। इसलिए वह तरीका आसान लगता है। अहिंसक प्रतिरक्षक जुटाने में हमे देख-परखकर चुनाव करना होता है। उन्हे पैसेसे नही खरीदा जा सकता। अहिंसक पद्धति उस पद्धतिसे सर्वथा भिन्न है जिसकी जानकारी हम सवको है। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि अहिंसक कार्रवाईके संगठनके अपने आधी सदीके अनुभवके विषयमे सोचकर मेरा मन भविष्य के प्रति आशासे भर जाता है। "कमजोर वहुमत" की रक्षा करने मे इसने स्पष्ट सफलता प्राप्त की है। लेकिन इस शक्तिकी छिपी हुई सम्भावनाओकी खोज करने और उनको अमलमे लाने की दृष्टिसे आधी सदीका काल कुछ भी नही है। इसलिए अहिंसाकी ओर आकृष्ट इन पत्र-लेखक भाई-जैसे लोगोको अपनी-अपनी सामर्थ्य और सुलभ अवसरके अनुसार इस प्रयोगमें योग देना चाहिए। अव यह वहुत ही दिलचस्प, लेकिन साथ ही अत्यन्त कठिन, अवस्थामे प्रवेश कर चुका है। मै खुद भी ऐसे महा-समुद्रमें अपनी नाव खे रहा हूँ जिसका मेरे पास कोई नक्शा नही है। मुझे हर घडी जलकी गहराईकी थाह लेनो पड़ती है। मगर कठिनाई मुझमे सघर्ष करने के उत्साहका संचार कराती है।

सेवाग्राम, ६ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-८-१९४०

४०७. बीसवां-काण्ड

इस दुर्भाग्यपूर्ण मामलेपर अपनी राय देने का जो वादा मैंने किया था उसे देरमे ही सही, मुझे पूरा करना है। मध्य प्रान्तके पाँच मन्त्रियो और खासकर मुख्य मन्त्रीके प्रति रोष-भरा विरोध प्रकट करते हुए लोगोंने मुझे पत्र लिखे हैं। मैंने दोनो निर्णयोको ध्यानपूर्वक पढा है — उसे भी जो सुविज्ञ मुख्य न्यायाधीशने दिया और उसे भी जो उनसे सहमति प्रकट करते हुए अन्य न्यायाधीशने दिया। इसमे कोई सन्देह नही कि पुलिसकी घपलेबाजीके कारण न्यायकी हत्या हुई है। मै पण्डित शुक्ल[1] और उनके सहयोगी मन्त्रियोको सर्वथा निर्दोष मानता हूँ। पण्डित शुक्लके बारेमें मुख्य न्यायाधीशका कथन निम्न प्रकार है :

> **बहसके दौरान स्वयं तत्कालीन मुख्य मन्त्रीने निस्संकोच भावसे "हत्या" शब्दका प्रयोग किया था और इस बातका संकेत दिया था कि यह मामला दंगेका नहीं, बल्कि ऐसी हत्याका था जिसकी योजना सोच-विचारकर बनाई गई थी और जिसे निर्ममतापूर्वक अंजाम दिया गया था।**

इस कथनमें मुझे कोई भी बात आपत्तिजनक नही दिखाई देती। पण्डित शुक्ल ने बहसमें उस जानकारीका उपयोग किया जो उस समय उन्हे उपलब्ध थी। "हत्या" के पहले वे रूढ विशेषण "कथित" का प्रयोग करते और सावधानी-भरी भाषाका उपयोग करते तो शायद बेहतर होता। लेकिन उनके कथनमें ऐसा कुछ नही है जिसके आधारपर उनके सिर जितना क्रोध उतारा जा रहा है वह उचित ठहरता हो। लेकिन न्यायाधीशोका निष्कर्ष है कि हत्या की गई और वह निन्दाके योग्य है। उन्हे स्वभावत दुःख इस बातका था कि विश्वस्त साक्ष्यके अभावमें अपराधका दण्ड नही दिया जा सकता। इसलिए मै यह बात समझ नही पाया हूँ — और इसकी सराहना तो क्या कर सकता हूँ — कि न्यायकी इस स्पष्ट विफलतापर यह हर्षकी लहर क्यो दौड गई है। जहाँतक कैदियोकी रिहाईका सम्बन्ध था, वह कुछ लोगोंके लिए नही, बल्कि सभीके लिए हर्षका विषय था। जबतक निर्णायक साक्ष्य सामने न हो तबतक किसी भी व्यक्तिको कष्ट न सहना पडे। अपीलके उच्चतम न्यायालयके स्पष्ट निर्णयको सबको स्वीकार करना चाहिए। लेकिन इस बातपर सबको दुःख भी होना चाहिए था कि न्याय अपना काम करने मे विफल रहा। किसी हत्यारेको आड देनेमे किसी भी समुदायको लाभ नहीं हो सकता। पण्डितजी ने मौलाना साहबको इस मामलेके बारेमे एक लम्बा पत्र लिखा है। पत्र मैंने पढा है। मुझे नही मालूम कि उनके सम्बन्धमें मौलाना साहबने क्या कहा है। पत्रमें कही गई बातें

[1] रविशंकर शुक्ल

मुझे पूरी तरह जँचती है। पत्रमे उन्होंने एक मुसलमानकी साक्षी उद्धृत की है, जो नीचे दे रहा हूँ।[1]

मुझे आशा है कि मेरे यह राय जाहिर करने से उस दुर्भाग्यपूर्ण विवादके बुझते हुए अगारे फिरसे न सुलग उठेंगे जो कभी उठना ही नही चाहिए था। यदि दोनो कौमोके लिए लडना जरूरी ही है तो क्या वे ईमानदारीसे नही लड़ सकती? निराधार आरोपोसे तो कटुता और भी बढ़ेगी।

सेवाग्राम, ६ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-८-१९४०

४०८. औंध

उस नन्ही-सी रियासत औंधको कौन नही जानता? आमदनी और विस्तारमें वह नन्ही है, मगर औंध-नरेशने अपनी प्रजाको बिना माँगे पूर्ण स्वशासनकी नेमत बख्शकर अपनी और अपने राज्यकी कीर्ति चारो तरफ फैला दी है। औंधके दीवान श्री अप्पासाहब पन्तने नौ पृष्ठका एक आकर्षक पत्रक छपवाया है, जिसमे औंध राज्य के इस प्रयोगका वर्णन दिया गया है। उसमे से मै निम्न भाग उद्धृत करता हूँ:

> नये संविधानकी नींव ग्राम्य प्रजातन्त्र है। हर गाँव वयस्क मताधिकारसे पाँच आदमियोंकी एक पंचायत चुनता है। इन पाँचमें से एकको पंचायत सर्वसम्मतिसे अपना प्रमुख चुनती है। अगर पंचायत इस तरहसे एकमत न हो सके तो गाँवकी पूरी बालिग जनता पंचायतमें से एकको अपना प्रमुख चुनती है।
>
> गाँवोंके एक समूहके विधिवत् निर्वाचित प्रमुखोंको मिलाकर ताल्लुका-पंचायत बनती है। अपनी आमदनीका खर्च कैसे किया जाये, इसका फैसला ताल्लुका-पंचायत अपनी बैठकें करके करती है। ताल्लुकेमें जितनी आमदनी हो, उसमें से यथासम्भव आधी पंचायतको मिलती है। गाँव अपने-अपने बजट खुद तैयार करते हैं और अपने प्रमुखके माध्यमसे ताल्लुका-पंचायतके सामने पेश करते हैं। इन सबपर पंचायतमें बहस होती है और इस तरह सारे ताल्लुकेका बजट तैयार किया जाता है। जो रकम गाँवके हिस्से आती है, उसे ग्रामीण लोग अपनी मर्जीके मुताबिक खर्च कर सकते हैं। अभीतक खर्चकी मुख्य मदें शिक्षा और सार्वजनिक निर्माण-कार्य ही हैं।

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रके अनुसार शुक्ल विधान-सभाके कुछ हिन्दू और मुसलमान सदस्योंके साथ बीसवा गये। वहाँसे खामगाँव जाकर मुस्लिम हाई स्कूलमें चाय-पान किया, और जब इसपर कुछ लोगोने आपत्ति की तो उन्होने दोनों कौमोसे मेल-जोल और सद्भावना कायम करने की अपील की। इस सबपर खान साहब अब्दुल रहमानने बड़ी खुशी जाहिर की।

विधान-सभाके सदस्य न सिर्फ केन्द्रीय सरकारके मामलोंसे वाकिफ रहते हैं, बल्कि गाँवके रोजके कारोबारसे भी निकटका सम्बन्ध रखते हैं। ताल्लुका-पंचायतकी बैठकोंमें शरीक होकर वे ताल्लुकेके दूसरे गाँवोंके काम-काजकी भी जानकारी हासिल करते हैं। इस तरह विधान-सभाके सदस्योंको लगभग दिनके बारहों घण्टे सक्रिय सेवामें रत रहना पड़ता है। वह चुनावके लिए खड़ा हो, अमुक समस्याओंके समाधानका वचन देकर चुनाव जीत जाये और फिर अगले चुनावतक उनकी कोई फिक्र न करे — इस तरहकी बात यहाँ नहीं चलती। उसे हर रोज ग्रामवासियोंको जवाब देना पड़ता है। संविधानमें ग्रामवासियोंको यह अधिकार दिया गया है कि वे जब चाहें विधान-सभासे अपने प्रतिनिधिको वापस बुला लें। ४/५ के बहुमतसे फिरसे पंचायतके चुनावकी माँग की जा सकती है।

पंचायतें न्याय करने का काम करती हैं। ग्रामवासीको फरियादकी सुनवाई के लिए पैसा खर्च करने और गाँवसे दूर ताल्लुकेके मुख्य कस्बेमें कई-कई दिन बिताने की जरूरत नहीं पड़ती। पंचायत वहीं-की-वहीं उसके मुकदमेका फैसला कर देती है। किसान गाँवमें से ही अपने गवाह जुटा सकता है और अगर कोई कठिन मुकदमा दरपेश हो, जिसमें कानूनके पेचीदा मुद्दे उठते हों, तो एक उप-न्यायाधीश गाँवमें आ जाता है और पंचायतको इन्साफ करने में मदद देता है। वह न सिर्फ पंचायतको बतौर विधि-विशेषज्ञके अपनी प्रौढ़ सलाह देता है, बल्कि अकसर जब गाँवकी गरीब प्रजाको अपने कानूनी हकोंकी खबर नहीं होती तो उनकी रहनुमाई भी करता है, ताकि अपना उल्लू सीधा करने की फिक्रमें लगे रहनेवाले गुण्डे उन्हें उलटे रास्तेपर न डाल दें।

इस सबका नतीजा यह है कि औंधमें कम खर्चमें और बहुत जल्दी ठीक न्याय मिल जाता है। अभी दो ही ताल्लुकोंकी पंचायतोंमें १९७ दीवानी और फौज-दारी मुकदमे तय किये जा चुके हैं। ५० प्रतिशत फौजदारी और ७५ प्रतिशत दीवानी मुकदमोंमें कोई वकील नहीं रखा गया। चूँकि साक्षी सब स्थानीय थे, उन्हें कुछ देना नहीं पड़ा। इस तरह पैसे और समय दोनोंकी बहुत बचत हुई। अधि-कांश मुकदमोंके एक ही पेशीमें फैसले हुए। पेशीके समय सारे-के-सारे गाँवके लोग अदालतमें आ जुटते हैं। इसलिए झूठ बहुत कम बोला जाता है, क्योंकि वह फौरन पकड़ा जाता है। इसी वजहसे बहुत-से मुकदमे अदालतसे बाहर समझौते द्वारा तय हो जाते हैं। न्याय करने का यह तरीका खुद ही एक जबरदस्त प्रौढ़ शिक्षा है।

७२ गाँवोंमें ८८ पाठशालाएँ हैं। वयस्क मताधिकार शुरू होने के बाद वयस्क जनताके ३५ प्रतिशत लोग पढ़ना-लिखना सीख चुके हैं। बुनियादी तालीम एवं शारीरिक विकासपर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाता है। अपनी प्रजाके शारीरिक विकासमें खुद राजासाहब खूब रस लेते हैं। इसके लिए सूर्य-नमस्कार किया जाता है। यह व्यायामकी एक खास पद्धति है।

यह तो रहा इस प्रयोगका उजला पहलू। इसका यह मतलब नही कि कठिनाइयाँ और मुसीबते है ही नही। अप्पासाहबने उनका भी वर्णन अपने पत्रकमे किया है, मगर मै उनकी चर्चा छोड़ देता हूँ, क्योंकि वे तो इस किस्मके सब प्रयोगोंमे हमेशा सामने आती ही है। अगर जनताके नेता अपनी श्रद्धा कायम रखेंगे तो वे उन कठिनाइयोपर निश्चय ही पार पा लेगे। पत्रकके अन्तिम वाक्य इस प्रकार है:

> **अभी बहुत कम काम हुआ है; बहुत बाकी है। हम एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। हमें सहानुभूति और सलाह चाहिए।**

मुझे यकीन है कि हर किसीकी सहानुभूति औधकी प्रजाके साथ होगी। अगर किसीके पास भेजने को कुछ विचार हो, तो वह अप्पासाहबको लिख भेजे। मगर पहले इतनी बात पक्की कर लेनी चाहिए कि वे विचार सही और प्रासगिक है।

सेवाग्राम, ६ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-८-१९४०

४०९. नाजीवादका नग्न रूप

एक डच मित्र लिखते है [१]

> **आपको शायद याद होगा कि १९३१ में रोमाँ रोलाँके घर मैंने आपका एक चित्र बनाया था। . . . मै डच हूँ और कई वर्ष जर्मनीमें रहा हूँ, जहाँ एक कलाकारके रूपमें जीविकोपार्जन करता था। जब सात वर्ष पूर्व जर्मनीपर नाजीवादकी सत्ता स्थापित हुई तब मेरी अन्तरात्मा तरह-तरहकी शंकाओंसे ग्रस्त हो उठी। . . .**
>
> **ठीक साल-भर पहले म्यूनिखका अपना घर छोड़कर कुछ समय हॉलैण्डमें बिताने आ गया था। . . . १० मईको, हर सम्भव छल-छद्मका उपयोग करके, हॉलैण्डको परास्त कर दिया गया। चार दिनोंकी अत्यन्त निर्ममतापूर्ण बमबारीके बाद हम भागकर इंग्लैण्ड चले गये, और अब जावा जा रहे हैं, जहाँ मेरा जन्म हुआ था और जहाँ मैं कोई काम पाने की आशा रखता हूँ। . . .**
>
> **. . . हिटलरका उद्देश्य समस्त नैतिक मूल्योंका विनाश है, और अधिकतर जर्मन युवकोंके सम्बन्धमें तो वे अपने इस उद्देश्यमें सफल भी हो चुके हैं।**
>
> **जर्मनीवासी यहूदियोंकी समस्याके सम्बन्धमें 'हरिजन' में प्रकाशित आपका लेख मुझे खास तौरसे रुचा था, क्योंकि वहाँ बहुत-से यहूदी मेरे मित्र थे।**

१. यहाँ कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

उसमें आपने कहा है कि अगर कोई लड़ाई उचित मानी जा सकती है तो वह जर्मनीके खिलाफ यह लड़ाई है। लेकिन उसी लेखमें आपने यह भी लिखा है कि अगर आप यहूदी होते तो अहिंसा द्वारा नाजियोंके हृदयको द्रवित करने का प्रयत्न करते।[1] हालमें आपने ब्रिटेन तथा ब्रिटेनवासियोंको भी यही सलाह दी कि सैन्यबलसे प्रतिरोध किये बिना वे अपना सुन्दर द्वीप इस जर्मन आक्रमणकारीके हवाले कर दें, और बादमें अहिंसा द्वारा उसपर विजय प्राप्त करें।[2] पूरे इतिहासमें शायद एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ है जिसे अहिंसाके आचरणका आपसे बेहतर ज्ञान हो। आपके विचारोंने न केवल भारतमें, बल्कि बाहरी दुनियामें भी लाखों लोगोंके हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा और प्रेमके भाव जाग्रत कर दिये हैं। . . .

नाजीवादके कारण जर्मन युवा-जगत् विचार तथा भावनाकी समस्त व्यक्तिगत विशेषता गँवा बैठा है। युवकोंका बहुत बड़ा वर्ग हृदयका गुण खो बैठा है और पतित होकर यन्त्रकी अवस्थामें पहुँच गया है। जर्मन युद्ध-संचालन पूर्णतः यान्त्रिक है। यन्त्रोंका संचालन ऐसे लोग करते हैं जो हृदयके गुण खोकर सचमुच यन्त्र-मानव बन चुके हैं। स्त्रियों और बच्चोंको अपने टैंकोंके नीचे कुचलते, खुले शहरोंपर बमबारी करके लाखों स्त्री-बच्चोंकी हत्या करते और प्रसंग आने पर अपनी आगे बढ़ती सेनाके लिए रक्षावरणके रूपमें उनका उपयोग करते, या जहर-मिला भोजन वितरित करते उनकी अन्तरात्मा उन्हें कभी नहीं कचोटती। ये सब तथ्य हैं, जिनकी सचाईकी मैं साक्षी भरता हूँ। जर्मनोंके विरुद्ध अहिंसाके प्रयोगकी सम्भावनाके विषयमें मैंने आपके बहुत-से अनुगामियोंके साथ चर्चा की है। मेरा एक मित्र है, जिसका काम इंग्लैण्डमें जर्मन युद्ध-बन्दियोंसे जिरह करना है। पूछताछके दौरान इन युवकोंकी मानसिक संकीर्णता तथा हृदयहीनताकी जानकारी पाकर उसके मनको गहरा आघात लगा और उसे मेरी इस बातसे सहमत होना पड़ा कि इन यन्त्र-मानवोंके खिलाफ अहिंसाका प्रयोग तनिक भी सफल नहीं हो सकता। . . .

इन मित्रने अपना नाम और पता भी भेजा है। लेकिन नाम-पता मैं नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि मुझे आशंका है कि उनके अनावश्यक प्रकाशनसे वे मुसीबतमें पड़ सकते हैं। पत्रका मूल्यांकन उसके अपने वास्तविक गुण-दोषोंके आधारपर होना चाहिए।

लेकिन उनके नाजीवादके वर्णनमें मेरा उतना सरोकार नहीं है जितना उनकी इस मान्यतासे कि हिटलर या जर्मनोंपर, जिन्हें हिटलरने यन्त्र-मानव बना दिया है, अहिंसात्मक कार्रवाईका शायद कोई असर न हो। अगर अहिंसक कार्रवाई अपेक्षित प्रमाणमें की जाये तो हिटलरपर भी उसका असर अवश्य होगा और भ्रममें डाल

१. देखिए खण्ड ६८, पृ० १५३-५७।
२. देखिए पृ० २६१-६४।

दिये गये जर्मनोपर तो बहुत आसानीसे होगा। किसी भी मनुष्यको सदाके लिए यन्त्र नही बनाया जा सकता। अपने सिरसे सत्ताके भारी बोझके उतरते ही वह सामान्य रीतिसे काम करने लगता है। मेरे मित्रने जैसी सर्वसामान्य ढगकी मान्यता प्रस्तुत की है उस तरहकी मान्यता पेश करने से अहिंसाकी कार्य-पद्धतिसे उनकी अनभिज्ञता प्रकट होती है। ब्रिटिश सरकार ऐसा कोई खतरा नही उठा सकती, ऐसा कोई प्रयोग नही कर सकती जिसमे उसका कमसे-कम कामचलाऊ विश्वास न हो। लेकिन अगर मुझे कभी अवसर दिया गया तो अपनी शारीरिक अक्षमताके बावजूद मै उस असम्भव प्रतीत होनेवाली चीजको आजमाकर देखने मे सकोच नही करूँगा। कारण, अहिंसाके क्षेत्रमे अहिंसाका उपासक अपनी शक्तिसे काम नही करता है। शक्ति तो उसे ईश्वरसे प्राप्त होती है। इसलिए अगर मेरे लिए रास्ता खोल दिया जाये तो वही मुझे शारीरिक सहन-शक्ति देगा और मेरे शब्दोको आवश्यक शक्तिसे अनुप्राणित करेगा। जो भी हो, मै जीवन-भर इसी श्रद्धासे काम करता रहा हूँ। मैने ऐसा कभी नही माना कि मुझमे स्वतन्त्र रूपसे कोई शक्ति है। जिनका खुद अपनी शक्तिसे किसी उच्चतर शक्तिमे विश्वास नही है वे इसे शायद मेरा एक दोष और मेरी असहायावस्थाका द्योतक माने। अगर इस वृत्तिको अहिंसाकी कमजोरी ही माना जाये तो मै स्वीकार कर लूंगा कि उसमे यह कमजोरी है।

सेवाग्राम, ६ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-८-१९४०

४१०. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको

६ अगस्त, १९४०

चि० मनुडी,[1]

मुझसे पत्र पाने की आशा करना तेरे लिए स्वाभाविक है। लेकिन मेरे पास वक्त कहाँ है? हाँ, इतना सच है कि मै यह मानकर चलता हूँ कि यदि मै तुझे पत्र न लिखूं तो भी तेरा मन मुझे दोषी नही मानेगा। तेरी खबर तो मुझे मिलती ही रहती है। कभी तू यहाँ आनेवाली भी है न? मेरे बुलाने की राह मत देखना। बा बुला रही है, इसीको काफी समझ। फिलहाल तो बा बुलाये तो भी मत आना। मौसम सुधरने देना।

बापूके आशीर्वाद

श्री मनुबहन मशरूवाला
'बालकिरण'
सान्ताक्रूज
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६७७)से। सौजन्य . कनुभाई मशरूवाला

१. गाधीजी की पौत्री, हरिलाल गांधीकी पुत्री

४११. प्रश्न[1] और उत्तर

६ अगस्त, १९४०

प्र० : आप कहते हैं कि दुनियाकी सृष्टिमें ईश्वरका हाथ है। उसीकी दयापर दुनिया टिकी है। तब क्यों आज संसारमें भीषण युद्ध हो रहा है? उन्हें ईश्वरकी ओरसे क्यों नहीं प्रेरणा मिलती है? लाखों-करोड़ों मनुष्यों और सुकोमल बच्चोंका संहार हो रहा है। इनसे लगता है, ईश्वरको वह पसंद है। ईश्वर किन-किन चीजोंमें प्रेरणा पहुँचाता है? ईश्वर क्या बुरे कामोंको नहीं रोक सकता?

उ० अगर यह सब हम जान सके तो ईश्वर ही बनें ना। यह सब बुद्धि [के परे है]।

प्र० : रामायणमें तुलसीदासजी ने कहा है :

रामहिं केवल प्रेम पियारा।
जानि लेहु जो जाननिहारा।।

इसमें प्रेम क्या चीज है, क्या आप इसे समझायेंगे?

उ० रामकी सृष्टिपर जो प्रेम करता है वह राममे करता है।

चि० प्रभुदयाल,

उत्तर ऊपर है।

बापुके आशीर्वाद

एक नकलसे प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

1. प्रश्न प्रभुदयाल विद्यार्थीने पूछे थे।

४१२. चर्चा: अ० भा० कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके साथ[1]

[७ अगस्त, १९४० के पूर्व][2]

अभी हालमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके कुछ सदस्य, जिनका अहिंसामें पूर्ण विश्वास है, सेवाग्राम आये थे। इनमें से कुछ लोग दिल्ली प्रस्तावके सम्बन्धमें तटस्थ रहे थे और कुछने उसका विरोध किया था। सही रुख क्या है? उन्हें आगे क्या करना है? उनके सामने अब क्या कार्यक्रम है? क्या उन्हे अविलम्ब कांग्रेससे अलग नहीं हो जाना चाहिए? ये और कुछ दूसरे सवाल उनके मनको मथ रहे थे, और उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। उत्तरमें गांधीजी कुछ प्रकट चिन्तन करने लगे। उन्होंने कहा:

जो-कुछ हो उसे भगवान्‌का नाम लेते हुए धीरजसे देखते रहिए। मै हर हफ्ते जो-कुछ लिखता हूँ उसे ध्यानपूर्वक पढते रहिए। क्या आपकी अहिंसा कसौटीपर खरी उतर सकती है? अपने मनमे इस बातको दुहराते रहिए कि कोई दगा भडक उठने पर आप क्या करेगे। जिन लोगोका हमसे मतभेद हुआ है वे कोई कायर नही है। अगर वे कहते है कि हम सेना और पुलिसके बिना अपना काम नही चला सकते तो भी हमे उनकी बात यथेष्ट सम्मानके साथ सुननी चाहिए। कोई कठिन परिस्थिति उपस्थित होने पर मुझे क्या करना चाहिए, यह तो खुद मैं भी नही जानता। आपको मालूम है कि पुलिस-बल रखने की वाछनीयताके प्रश्नपर मैंने हथियार डाल दिया। लेकिन मै यह कह सकता हूँ कि अवसर आने पर मैं अहिंसक रीतिसे काम लेने की आशा रखूँगा। मृत्युके पूर्व ही मैं मर जाना नही चाहूँगा। मैं भारतको सैनिक प्रतिरक्षाके लिए आजसे ही तैयार नही करना चाहता। हमे यह कभी नही भूलना चाहिए कि सारा भारत हम ही नही है। इसमे सन्देह नही कि काग्रेस एक सशक्त सस्था है, लेकिन काग्रेसका मतलब पूरा भारत नही है। काग्रेस सेना न रखना चाहे तो न रखे, लेकिन जिनका अहिंसामे विश्वास नही है वे रखेंगे। और अगर काग्रेस भी हार मान लेती है तो फिर असैनिक मानसिकताका प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई नही रह जायेगा। सक्षेपमे, यही मेरी दलील थी। लेकिन मैं सदस्योको अपनी बातका कायल नही कर सका। इसलिए मुझे दोप अपने साथियोको नही, बल्कि अपने-आपको देना है। मेरी दलीलमे जरूर कोई कमजोरी रही होगी, और इसलिए जो लोग मुझसे असहमत है उनसे अपनी बात मनवाने के लिए मुझे तैयारी करनी चाहिए।

१ और २. महादेव देसाई द्वारा ७-८-१९४० को लिखे "द लाइव इशू" (ज्वलन्त प्रश्न) शीर्षक लेखसे उद्धृत

लेकिन मै विषयान्तर कर गया हूँ। आपको और मुझे जो करना है वह यह कि जब दगा या ऐसे ही अन्य उपद्रव हो तब हमें अपनी अहिंसाका परिचय देना चाहिए। अगर हममे से हरएक, वह चाहे जहाँ हो, ऐसा करना शुरू कर दे तो अहिंसक सेना स्वत तैयार हो जायेगी। जिस सीमित अहिंसाको सब मान रहे है, यदि हमने उसको सफल होते न देखा होता तो उसका अस्तित्व भी कायम नही हो पाता। इसलिए भले ही समय आने पर हम विफल हो जाये, परन्तु हमे अपनी श्रद्धापर दृढ रहना चाहिए। जो साथी हमसे असहमत हुए है—और आशा है, अस्थायी रूप से ही हुए है—उनसे दलील करने का कोई फायदा नही है। प्रश्न सिर्फ अपनी श्रद्धाका परिचय देने का है, और अगर हम यह नही दिखाते कि हममें द्वेष नही है, कटुता नही है, दूसरोको दोष देने की वृत्ति नही है तो इसका मतलब यह होगा कि हम अपनी श्रद्धाका परिचय नही दे रहे है। हमे उस भयकर अग्नि-परीक्षाके लिए खुदको तैयार करना है। जिस समय हम परीक्षाकी उस घडीके आने की आशा रखते है, सम्भव है, उससे पहले ही वह आ जाये। मै ऐसे महासमुद्रमें अपनी नौका खे रहा हूँ जिसका कोई मानचित्र मेरे पास नही है। मेरे पास कोई पका-पकाया कार्यक्रम नही है और मै हर क्षण सोचमे डूबा रहता हूँ। इस बीच आप मेरे साप्ताहिक लेखो पर ध्यान दीजिए और रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल कीजिए। अभी त्यागपत्र देने का समय नही आया है। हमे ऐसा कुछ नही करना है जिससे लोग हमे गलत समझे।

एक कार्यकर्त्ता : लेकिन आपने तो हमसे अविलम्ब निवृत्त हो जाने को कहा है, और हम सब उसके लिए तैयार है।

गांधीजी आप तैयार है, यह बहुत अच्छी बात है, और फिलहाल आपका तैयार रहना ही मेरे लिए काफी है। अगर आपने अपनी अन्तरात्माकी आवाजपर दिल्ली प्रस्तावके खिलाफ मत दिया तो कुछ भी गलत नही किया। जो लोग अहिंसाके अतिरिक्त किसी और कारणसे प्रस्तावको गिराने की कोशिश कर रहे थे, यदि आपने उनके साथ हाथ बँटाया होता तो आप जरूर गलतीपर होते। कारण, वर्धा प्रस्तावके पक्षमे अपना मत देने और उसमे पराजित हो जाने के बाद आप दिल्ली प्रस्तावके खिलाफ मत नही दे सकते थे, क्योकि वह वर्धा प्रस्तावका स्वाभाविक प्रतिफल था।

एक कार्यकर्त्ता : लेकिन वह तो एक संयोग था कि दिल्ली प्रस्तावके खिलाफ मत देनेवालो ने वैसा किया।

गा० : नही, वैसा सोच-विचारकर किया गया था। अहिंसामें जिस हदतक आपका विश्वास है उस हदतक उनका नही है, लेकिन वे प्रस्तावको अपनी नीतिकी खातिर गिराना चाहते थे।

प्र० : लेकिन तब हमें कबतक कांग्रेसमें रहना है?

गा० . मै निश्चित उत्तर नही दे सकता। मै मौलाना साहबसे बात करूँगा। हमें मौलाना साहब और कार्य-समितिके साथ अधीरतासे काम नही लेना चाहिए।

यदि वे पायेंगे कि पूर्ण अहिंसावादी लोग ही कांग्रेसके स्तम्भ-रूप है तो अपना कदम वापस ले लेगे।

प्र० : तब हमें कबतक प्रतीक्षा करनी होगी?

गां० : जबतक मैं इस सम्बन्धमे कुछ करने को न कहूँ तबतक।

एक कार्यकर्ता : लेकिन वर्धा प्रस्ताव मुझे नापसन्द था और मैं तत्काल त्याग-पत्र देना चाहता था।

गां० : आप बखूबी वैसा कर सकते थे। उस समय आपका वैसा करना वाजिब होता। लेकिन अब वैसा करते है तो उससे हिंसा और इस अभिमानकी गध आ सकती है कि मुझ-जैसा कोई नही। आपको याद रखना चाहिए कि मैंने साल-भर प्रतीक्षा करने के बाद ही अन्तिम कदम उठाया और सो भी कार्य-समितिके मित्रोकी पूरी सहमतिसे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-८-१९४०

४१३. हरिजन नहीं

श्री रामचन्द्रन्ने मेरा ध्यान इस बातकी ओर दिलाया है कि [अपने लेखमे] श्री अच्युतन्को हरिजन नही बताना चाहिए था। स्वयं श्री अच्युतन् तो इतने महान् व्यक्ति है कि इसका बुरा नही ही मानेंगे, लेकिन उनके एजवा बन्धु बुरा मान सकते है। मुझे यह मालूम होना चाहिए था। कारण, जब मैं त्रावणकोरका दौरा कर रहा था उस समय यह नाजुक बात मेरे ध्यानमे लाई गई थी। मेरे इस शब्दका इस्तेमाल करने से जिन लोगोकी भावनाको चोट पहुँची है, मैं उन सबसे कहूँगा कि वे सच मानें, उसमे मेरा मंशा किसीका दिल दुखाने का नही था। मैंने इस शब्दको कभी भी तुच्छता-वाचक नही माना है। लेकिन मैं जानता हूँ कि ऐसे बहुत-से लोग है जिनकी दृष्टि मेरी-जैसी नही है।

सेवाग्राम, ७ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-८-१९४०

४१४. प्रस्तावना : तुलसीकृत रामायणके तमिल अनुवादकी

सेवाग्राम, वर्धा
७ अगस्त, १९४०

श्रीमती अम्बुजम् अम्मालसे[1] मेरा जो परिचय है, सब जानते है। बड़े प्रेमसे उन्होने हिंदीका अभ्यास किया है। इतने ही प्रेमसे 'रामायण'का किया है। अब उन्होने उस अद्वितीय ग्रथका तामीलमे अनुवाद किया है। मेरी आशा है कि तामील जनता उसे प्रेमसे पढेगी। अम्बुजम् अम्मालको मै धन्यवाद देता हू।

मो० क० गाधी

सी० डब्ल्यू० ९६१३ से। सौजन्य एस० अम्बुजम्माल

४१५. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

सेवाग्राम, वर्धा
७ अगस्त, १९४०

प्रिय अम्बुजम्,

इतने दिनोकी चुप्पीके बाद तुम्हारा पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई, भले ही पत्र मुझे यह याद दिलाने के लिए ही हो कि मैने अपने वादेके मुताबिक तुम्हे प्रस्तावना[2] नही भेजी। इन दिनो मेरी याददाश्त सचमुच मुझे धोखा दे जाती है। मै जो करने का इरादा रखता हूँ, अकसर मान लेता हूँ कि उसे कर चुका हूँ। चूँकि तुम्हे पिछला पत्र नही मिला, इसलिए मुझे लग रहा है कि यह भी शायद मेरी याददाश्तकी एक और धोखेबाजी ही है। मुझे तबतक चैन नही मिलेगा जबतक तुम्हारा यह सूचित करनेवाला पत्र नही मिल जाता कि प्रस्तावना तुम्हे मिल गई है। बिलकुल गैर-इरादतन हुई इस देर के लिए मुझे अफसोस है।

बड़ी अच्छी बात है कि तुम माता-पिताकी सेवामें लगी हो। आशा है, दोनो भले-चगे होगे।

स्नेह।

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६१४)से। सौजन्य. एस० अम्बुजम्माल

१. एस० श्रीनिवास अय्यंगारकी पुत्री
२. देखिए पिछला शीर्षक।

४१६. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम
७ अगस्त, १९४०

चि० नारणदास,

तुम्हारे आँकड़े आदि भेज दिये है। ये तीनो पत्रिकाओंमे प्रकाशित होगे।[1] तुमने आँकड़े जल्दी क्यो नही भेजे?

साथमे बदस्तूर प्रेमाका पत्र है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४१७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेवाग्राम
७ अगस्त, १९४०

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। यदि सच्ची अहिंसा प्रकट होनी होगी तो अभी ही होगी। पहले तो हमे अपना घर व्यवस्थित करना चाहिए। हमारा पहला कर्त्तव्य तो यह है कि जो बिछुड गये है उनके प्रति हमे उदारताका व्यवहार करके दिखाना है। यदि हम इसमे सफल होगे तो दूसरा कदम आसान मालूम पडेगा। और अगर इसमे असफल रहे तो दूसरा कदम उठाया ही नही जा सकेगा। यह साफ समझमे आता है या नही? 'हरिजन' और 'हरिजनबन्धु' खूब ध्यानपूर्वक पढती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४१०) से। सी० डब्ल्यू० ६८४९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१. देखिए "चरखा जयन्ती", पृ० ३९६।

४१८. पत्र : मंजुलाबहन म० मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
७ अगस्त, १९४०

चि० मंजुला,

तेरा पत्र मिला। यहाँ गुजराती शिक्षक नही मिलेगा। तुझे वहीसे लाना चाहिए। मेरी सलाह यह है कि तू एक बार यहाँ आ जा, महीना-पन्द्रह दिन यहाँ रह जा, और तब निश्चय कर कि तुझे कहाँ सुभीता होगा। यदि तू यहाँ आयेगी तो यह मुझे अच्छा लगेगा। शायद तेरे आने से मगन भी आ जाये। मैं नही समझता कि पत्रोका उसपर बहुत असर पड़ेगा। जैसा तू लिखती है, मैंने नही सोचा था कि वह ऐसा निकलेगा। लेकिन तू बहादुर है, सयानी है, इसलिए मैं धीरज धरे बैठा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६०४)से। सौजन्य मंजुलाबहन म० मेहता

४१९. पत्र : उर्मिला म० मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
७ अगस्त, १९४०

चि० उर्मि[1],

तेरा पत्र पढकर मैं तो गद्गद हो गया। अब तो तू कितनी बडी हो गई है? मैं तो तुझे पहचान भी नही पाऊँगा। मैं आशा तो करता हूँ कि हम जल्दी मिलेंगे। मुझे लिखती रहना। अहमदाबादकी इमारतोका तूने सुन्दर वर्णन किया है। क्या तूने भद्रकी खिडकियाँ देखी?[2]

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६०५)से। सौजन्य मंजुलाबहन म० मेहता

१. मगनलाल मेहताकी पुत्री

२. भद्रकालीके मंदिरके पास बनी मसजिदकी खिडकियाँ जो अपनी कलात्मक सुन्दरतामें अद्वितीय हैं।

४२०. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
७ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचन्द्र,

रसोईघरमे नास्ता नही होना चाहिए। मै वहनोंसे कहूँगा।
कपड़े धोने चाहिए। पुनीया वनानी चाहिए।
पीसना, सफाई, माजना लाजमी होना चाहिये।
गडवडीको देखुगा।
भारतानदजी का कुत्ताको विदाय करना चाहिये।
धीरेनका किया तो है लेकिन देखुगा।

बापुके आ[शीर्वाद]

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५०)से

४२१. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
८ अगस्त, १९४०

राजकुमारी
मैनरविला
समर हिल
शिमला

खान साहव मेहरताजको अर्विन कॉलेजमे दाखिल कराना चाहते हैं।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३९९३)से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७३०२ से भी

४२२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
८ अगस्त, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

मौलाना साहबने मुझे हैदराबादकी प्रारम्भिक रिपोर्ट दी है। रिपोर्ट दर्दनाक है। मेरे लिए इसमें कोई नई बात नही है। परन्तु आदमी अपनी घोरतम दुःशकाओंकी पुष्टि नही चाहता। इसका हल ढूंढने के लिए हर क्षण चिन्तामग्न हूँ। कल मैं कार्यकर्त्ताओसे मिलूंगा। यदि तुम्हे कोई बात सूझी हो तो मुझे सूचित करो।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च]

युद्धके लिए जबरन वसूलीका तुम्हारे पास कोई प्रामाणिक साक्ष्य हो तो मेरे पास भेज दो।[1]

[अंग्रेजीसे]
गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०, सौजन्य. नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४२३. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
८ अगस्त, १९४०

चि० मुन्नालाल,

मैं कचनके बारेमें देख लूंगा। जिनमें सच्चा उत्साह होगा उनके लिए कुछ करूँगा। तुम्हारे लिए जो पत्र कहो सो मँगा लूं। इस विषयमें अगर तुम करो तो मुझे तुमसे काम भी लेना है। भाषाके बारेमें तुम्हारी समालोचना भी चाहिए।

मैं भारतानन्दजी से बात करूँगा।

प्यारेलालके नामसे जो-कुछ आता है, सबपर वह अपना नाम लिख लेता है। वह पुस्तिका मैं प्राप्त कर लूंगा।

१. जवाहरलाल नेहरूके उत्तरके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

एक ही देहाती कार्यकर्त्ता क्या कर सकता है, यह सभी देहातोंके लिए लिखा गया है, और उसमें सेवाग्राम भी आ गया। लेकिन उसमें आश्रम सम्मिलित नहीं है। जो मैं लिखता हूँ, उसे मुझे अपने ऊपर लागू करना ही चाहिए न? इसलिए उस लेखमें मैंने अपनी कमियाँ दिखलाई हैं। यदि केवल सेवाग्रामका ही काम मेरे पास होता और मैं अकेला ही काम करनेवाला होता तो मेरा लेख मुझपर अक्षरशः लागू होता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५२९) से

४२४. पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा
९ अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपका कृपापूर्ण तार बुधवारको मिला, और आज वह पत्र भी जिसका जिक्र आपने तारमें किया था। दोनोंके लिए धन्यवाद।

आपकी घोषणाको[1] मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है, और मनमें उसीकी चिन्ता लिये हुए सोने गया हूँ। उससे मेरा मन बहुत खिन्न हो गया है। उसके फलितार्थोंके विषयमें सोचकर काँप उठता हूँ। न चाहते हुए भी मुझे महसूस होता है कि एक भारी भूल हुई है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि आपके सिर जिम्मेदारी बहुत बड़ी है और आप वही करेंगे जो आपको ठीक लगेगा। लेकिन चूँकि आपने मुझे यह गौरव प्रदान किया है कि मैं आपको अपने विचार बताता रहूँ और चूँकि मैं यह मानता हूँ कि भारतके एक महत्त्वपूर्ण हिस्सेके बारेमें जितना आप जान सकते हैं उससे मैं ज्यादा जानता हूँ, इसलिए मैंने अपना कर्त्तव्य समझा है कि आपकी घोषणापर अपनी प्रतिक्रिया मैं आपको बता दूँ। मेरा मन भारी आशंकाओंसे ग्रस्त है। लेकिन आशा है, घटनाक्रम यही सिद्ध करेगा कि ऐसी आशंकाओंका कोई कारण नहीं था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे: लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. देखिए परिशिष्ट ७।

४२५. पत्र : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणीको

सेवाग्राम, वर्धा
९ अगस्त, १९४०

भाई काकुभाई,

डॉ० वैद्य तुम्हारे पास पहुँच गये, इसके लिए उन्हे मेरी ओरसे धन्यवाद देना। उनकी सहायता तुम्हे अवश्य मिलेगी। तुमने प्रदर्शनीका दायित्व अपने जिम्मे लेकर ठीक ही किया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४७)से। सौजन्य पुरुषोत्तम का० जेराजाणी

४२६. पत्र : नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्टको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
९ अगस्त, १९४०

भाई नानाभाई,

मैं नही जानता कि आजकल पृथ्वीसिंह कहाँ हैं। यदि वे उस तरफ हो और तुम्हे ठीक लगे तो इतना करना। मीराबहन उन्हे पतिके रूपमें ही देखती है। वह ऐसा मानती है कि उसका उनके प्रति प्रेम पूर्वजन्मका फल है। उसने अपना सर्वस्व उन्हे समर्पित कर दिया है। पृथ्वीसिंह उसे बहन मानते है। इस बातको स्वीकार करवाने में मेरा हाथ है। वे जब यहाँ आये तो मैंने तुरन्त उनसे कह दिया कि यहाँ रहनेवाली सभी महिलाओको बहन मानें। इसके फलस्वरूप उसे वे किसी अन्य रूपमें नही देखते। यहाँ मीराबहन उनके लिए तरस रही है। पृथ्वीसिंह विवाह नही करेंगे, ऐसी कोई बात नही है। मै ऐसा मानता हूँ कि यदि किसी स्त्रीको बहन मान लिया जाये किन्तु वह सगी बहन न हो और उसमें धर्म-हानि न होती हो तो बहन माननेवाला व्यक्ति बन्धन-मुक्त हो जाता है। यहाँ मीराबहनके लिए जीवन-मरणका सवाल है। मीराबहन हर तरहसे उपयुक्त तो है ही। वह पृथ्वीसिंहके लिए बडी सहायक हो सकती है। मीराबहन एक बालक चाहती है और सो भी पृथ्वीसिंहसे। ऐसी स्थितिमें मेरा यह कर्त्तव्य है कि मै पृथ्वीसिंहसे आग्रह करूँ और यदि उनके सम्मुख

१. भावनगरमें दक्षिणामूर्ति नामक शिक्षण-संस्थाके संस्थापक

कोई धार्मिक बन्धन न हो तो मीराबहनका हाथ थामना उनका कर्त्तव्य है। यदि पृथ्वीसिंह तत्काल इस तरफ आनेवाले हो अथवा तुम्हे उनसे इस सम्बन्धमे कहने में सकोच हो तो इसमे मत पडना। यदि उनके इस तरफ आने मे विलम्ब हो और तुम्हे उनसे कहने मे सकोच हो तो मुझे सूचित करना कि वे कब आयेंगे।[1]

आशा है, तुम्हारा काम-काज ठीक चल रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० १०८६१)से। सौजन्य . पृथ्वीसिंह

४२७. पत्र : पुरातन बुचको

सेवाग्राम, वर्धा
१० अगस्त, १९४०

चि० पुरातन,

तूने भगी भाइयोको जो सलाह दी है वह बिलकुल ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

श्री पुरातन बुच
हरिजन आश्रम
साबरमती
बी० बी० एण्ड सी० आइ० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१७८)से

४२८. पत्र : पृथ्वीसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
१० अगस्त, १९४०

भाई पृथ्वीसिंह,

तुमारा खत मिला। मै पाता हूं कि तुमारे और मेरे विचारमें फरक पड रहा है। इसमें कोई हानि नही है। प्रत्येक मनुष्यको विचार स्वातन्त्र्य होना चाहीये। तुमारे विचारमे तो मै दोष पाता ही हू। और तुमको लगता है कि मेरे विचारमें है। सभव है कि मेरे विचारमे दोष है। क्योंकि मैंने स्वीकार कर लिया है कि मुझे हिंसाका प्रत्यक्ष अनुभव नही है। इसलिये तुमने अगर अब अहिंसाको सचमुच अपना ली है तो तुमारी अहिंसा ज्यादा शुध्ध होवे तो मुझे कोई आश्चर्य नहि होगा। बल्की

१. इस घटनाके सम्बन्धमें मीराबहनके बयानके लिए देखिए द स्पिरिट्स पिलग्रिमेज, अध्याय ५१।

आनद ही होगा। इसलिये तुमको मैं तुमारे विचार स्पष्टतासे मेरे समक्ष रखने के लिये धन्यवाद देता हू।

गुरुका बागके[1] बारेमें तुमारी कल्पना ठीक नही है क्योंकि वे लोग मेरे पास आ गये थे और मैंने उनको बताया था कि उनके काममें दोष था। उन्होंने कबूल किया था। खुदाई खिदमतगारोंके बारेमें भी तुमारा अनुमान गलत है। न खानसाहब मानते है न मैं मानता हू कि उन लोग सचमुच अहिंसक बने हैं। मैं नहिं मान सकता हू जैसे तुमने निरूपण किया है वैसे नाथजी मानते है। मैं तलाश करुगा। लेकिन ऐसा ही तो भी मेरे विचारमें इससे फरक नहिं हो सकता है। ५० वर्षसे जो विचारने मेरा कब्जा कर रखा है वे शीघ्र नही फिर सकते है।

तुमने जो कहा है कि मैंने वर्धामें शिक्षा देने का कहा है सो स्मृति-दोष है। मैंने तो कहा था कि आश्रममें प्रथम तो तुमारे प्रयोग करो और उसके बाद अगर मैं मान जाऊं तो तुमारे पास वर्धाके लडके तो है ही।

तुमारा आखरका वचन सूचक है। सरकारकी नोटोससे तुमारी कल्पना छुट जाती है ऐसे कहते हो। इसीमें तुमारे कल्पना दूषित होती है। क्योंकि सत्याग्र[ह]की तैयारी कोई रोक नही सकते हैं। इतना लबा खत वक्त न होते हुए भी लिखा है कि तुमारे विचार-दोषका थोडा-सा दर्शन करा दू।

वह तीन भाई जो बड़ोदरामें सीखते है भले सीखें। मैं समजा हू उनका तीन मासका क्रम है। अगर हमारा कार्यक्षेत्र अलग होना है तो मेरी जिम्मेदारी नही रहेगी। तदपि इन भाईओंका तीन मासका खर्च रु० १८० तक मैं दूगा।

तुमारे आने से और बातें करेंगे।

अच्छा हुवा नलिनीकी[2] सेवामें तुम रहे और वह अच्छी हो गई।

मैंने एक जरूरी खत[3] नानाभाईको भेजा है सो वहा जाओगे तब शाय[द] मिलेगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६४२) से। सी० डब्ल्यू० २९५३ से भी, सौजन्य : पृथ्वीसिंह

१. अमृतसरके निकट एक जगह, जहाँसे अकाली सिखोंने गुरुद्वारेपर कब्जा पाने के लिए सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया था।

२. गोपालराव कुलकर्णी नामक नई तालीमके एक कार्यकर्ताकी पत्नी

३. देखिए "पत्र : नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्टको", पृ० ४१७-१८

४२९. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके ३१ जुलाईके कृपा-पत्रके सम्बन्धमें, अब मैं आपको कुछ कागजात भेजने की स्थितिमे हूँ। मैंने भेजने के लिए एक ऐसे व्यक्तिका एक पत्र चुना है जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ और जिसने मुझे कभी धोखा नही दिया है। उस पत्रपर (ए)[1] चिह्न अंकित है। दूसरा हिंगनघाट (जिला वर्धा, म० प्रा०)से आया है। लिखनेवाले को मैं नही जानता। लेकिन जो जानकारी उन्होने दी है उसके सच-झूठका पता आसानीसे लगाया जा सकता है। उसपर (वी)[2] चिह्न अंकित है। (सी)[3] एक धमकी-भरे नोटिसकी नकल है। ये मात्र कुछ नमूने हैं। शिकायतें तो सभी जगहोके लोगोको है।

जो नये पद कायम किये गये हैं उनपर नियुक्त लोगोंके वेतनमें हुई वृद्धिके वारेमें नमूनेके तौरपर एक सूची भेज रहा हूँ। इस तरहकी जानकारी मैं अपनी मर्जीके मुताविक खुद हासिल नही कर सकता। जो आँकड़े मैं दे रहा हूँ वे मुझे ऐसे लोगोसे प्राप्त हुए हैं जो जानकार होने का दावा करते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च :]

लॉर्ड होपटनके वारेमें शुभ समाचार पाकर प्रसन्नता हुई।

मो० क० गां०

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. यह गांधीजी के नाम हीरालाल शर्माके १५ जुलाईके पत्रका अनुवाद था। पत्रमें उन्होंने युद्ध-कोषके लिए चन्दा एकत्र करने में अधिकारियों द्वारा अख्तियार किये जानेवाले अन्यायपूर्ण तरीकोंका वर्णन किया था।

२. इसमें बताया गया था कि चूँकि मिल-मालिकसे युद्ध-कोषमें एक भारी रकम देने की आशा की जाती थी, इसलिए मजदूरोंके वेतनसे ही रकमें काट ली गई थीं।

३. यह एक तहसीलदार द्वारा एक अवैतनिक मजिस्ट्रेटको, जो युद्ध-कोषके सिलसिलेमें हुई सभामें शरीक नहीं हो पाया था, लिखा गया पत्र था। तहसीलदारने उसके "अनुशासनहीन रुख"को सरकारके ध्यानमें लाने की धमकी दी थी।

४३०. पत्र : डॉ० सैयद महमूदको

सेवाग्राम, वर्धा
११ अगस्त, १९४०

प्रिय महमूद,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। मैं तुम्हारी पुस्तिका पढ़ रहा हूँ। जब भी इच्छा हो जरूर आओ। आशा है, तुम ठीक होगे।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०८६)से

४३१. नैतिक सहायता

एक भाई लिखते हैं :

> लड़ाईके आरम्भमें आपने ब्रिटेनको नैतिक सहायता देनेकी बात कही थी। इसका अर्थ सब लोग नहीं समझ सके। आपने शायद इसका अर्थ स्पष्ट किया भी नहीं है। मैं नियमित रूपसे 'हरिजनबन्धु' पढ़ता हूँ। मगर उसमें मुझे नैतिक सहायताका स्पष्ट अर्थ नजर नहीं आया। अनेक लोग अनेक अर्थ करते हैं। गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें खुद नेता लोग ही कहते थे कि बापू स्वयं ब्रिटेनको नैतिक सहायता देनेको तैयार तो थे, तो कांग्रेसने नया प्रस्ताव पास करके उससे ज्यादा क्या देनेका निश्चय किया है? कांग्रेस तो ज्यादा लेकर थोड़ा देनेवाली है। बापू तो ऐसे हैं कि सब-कुछ ही दे दें। अगर लड़ाई अपने-आपमें अनीतिपूर्ण है तो उसे नैतिक सहायता या आशीर्वाद भी कैसे दिया जा सकता है? महाभारतमें जो सहायता भगवान् कृष्णने अर्जुनको दी थी वह नैतिक थी या शस्त्रबलसे भी अधिक नाशक थी?

अंग्रेजी लेखमें तो मैंने नैतिक सहायताकी मर्यादा स्पष्टतापूर्वक बताई थी। हो सकता है, 'हरिजनबन्धु' में वह पूरी तरह स्पष्ट न की गई हो। फिर, अंग्रेजी लेखोंमें बहुत-कुछ अध्याहार होता है। यदि गुजराती अनुवादमें उसे पूरा कर लिया जाये तभी स्पष्ट अर्थ निकल सकता है।

मोटे तौरपर अर्थ यह था कि नैतिक सहायता प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजोको कुछ करना चाहिए था। मेरी इस बातमे सौदेबाजीकी कोई भावना नही थी, क्योकि उक्त सहायता किसी माँगके विनिमयमे नही दी जानी थी।

मान लीजिए, मेरे भाईके पास नैतिक बल है, जो उसने तपस्या करके प्राप्त किया है। और मान लीजिए कि उसमे से कुछ अंश मुझे चाहिए। अपने भाईसे माँगने से वह मुझे नही मिलेगा। भाई तो देनेको बिलकुल तैयार है, लेकिन अगर मुझमें लेनेकी योग्यता ही न हो तो मै कैसे ले सकता हूँ? नैतिक बल देना चाहने पर भी दिया नही जा सकता। वह लेनेकी इच्छा होने पर लिया जा सकता है और जिसमें लेनेकी योग्यता हो वह इसे लूट ले।

कांग्रेसके पास ऐसा नैतिक बल है। कांग्रेसने सत्य और अहिंसाका मार्ग स्वीकार किया है, यह उसकी तपश्चर्या है। इससे उसे जगत्-मान्य प्रतिष्ठा मिली है। कांग्रेस यदि अंग्रेज सरकारको आशीर्वाद दे तो जगत् यह मानेगा कि अंग्रेज सरकारकी लड़ाई मे न्याय है। हिन्दुस्तानके जिन करोड़ो लोगोपर कांग्रेसका प्रभाव है, वे भी मानेंगे कि न्याय अंग्रेज सरकारके पक्षमे है। इस सारी प्रक्रियामे कांग्रेसको कुछ देना नही पड़ता। सरकार अपने ही कृत्यसे नैतिक प्रतिष्ठा अर्थात् बल प्राप्त करेगी। यद्यपि इसमे कांग्रेसने एक भी आदमी या एक भी पैसेकी मदद न दी हो, फिर भी उसकी नैतिक सहायता, उसका आशीर्वाद अंग्रेज सरकारको विजय प्राप्त करनेमें निर्णायक योगदान दे सकता है। यह मेरा अनुमान है। कांग्रेसके पास नैतिक बल है, यह भी केवल मेरी मान्यता ही है न? ऐसा भी हो सकता है कि यथार्थमे यह बल न हो। लेकिन यहाँ यह प्रश्न उपस्थित नही होता।

लेकिन यह अवसर तो बीत गया कहा जायेगा। कांग्रेस यह मार्ग ग्रहण नही कर सकी। यह मार्ग ऐसा है भी नही कि कृत्रिम रीतिसे ग्रहण किया जा सके। इसके लिए सत्य और अहिंसाकी शक्तिमे जीवन्त विश्वास होना चाहिए। कांग्रेसका सबसे बड़ा गुण यह है कि जो उसके पास नही है उसके होनेका ढोंग या दावा उसने कभी नही किया। और इसलिए उसके प्रस्ताव शोभान्वित हो उठते है और उनमें शक्ति होती है।

कांग्रेसका हालका प्रस्ताव जैसी सहायता प्रदान करनेकी इच्छा व्यक्त करता है, वह तो मुख्यत: आर्थिक है। वह सौदेबाजी भी है। लेकिन उसमे कोई बुराई या अनीति है, मेरे कहनेका यह आशय बिलकुल नही है। कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया है वह कांग्रेसके बहुमतकी मनोवृत्तिको सूचित करता है, इसलिए उसे शोभा देता है। लेकिन कांग्रेसके पास प्रतिष्ठाकी जो पूँजी थी अथवा मानी जाती थी, वह इससे नष्ट अवश्य हो गई है। बहुतेरे कांग्रेसी यह कहते है कि हमने यह तो माना था कि हम अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य लेंगे, लेकिन इसका यह अर्थ नही था कि अहिंसाके मार्गसे ही हम उसकी रक्षा भी करेंगे। लेकिन संसार तो शुरूसे यही मानता रहा है कि कांग्रेसने युद्धको सदाके लिए समाप्त करनेका स्वर्णिम मार्ग ढूँढ निकाला है। हिन्दुस्तानके बाहर किसीकी यह मान्यता नही थी कि कांग्रेस अहिंसाके

बलपर महान् साम्राज्यके हाथमें सत्ता तो प्राप्त कर लेगी किन्तु उसकी रक्षा वह अहिंसाके मार्गसे नहीं करेगी।

भगवान् कृष्णकी सहायता मेरे अर्थमें नैतिक नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनके पास तो सेना थी और वे स्वयं युद्धकी कलासे परिचित थे। दुर्योधनने मूर्खतावश कृष्ण की सेना ली और अर्जुनको जो चाहिए था वह मिल गया — अर्थात् सेनापतिका कौशल। इसलिए 'महाभारत'का स्थूल अर्थ करें तो कृष्ण भगवान्का बल अवश्य ही अधिक विनाशकारी था, क्योंकि दुर्योधनके पास जो ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी उसका विनाश कृष्णके युद्ध-चातुर्यके कारण सात अक्षौहिणी सेनाके हाथों हुआ। लेकिन सब जानते हैं कि मैंने 'महाभारत'को स्थूल काव्य नहीं माना। स्थूल युद्धका वर्णन करके कविने व्यक्ति और समष्टिमें सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा, नीति और अनीतिके बीच चल रहे सनातन युद्धका वर्णन किया है। स्थूल दृष्टिसे काव्यकी परीक्षा करें तो भगवान् व्यासने सिद्ध कर दिया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें जीतनेवाले भी हारे-जैसे ही होते हैं। असंख्य योद्धाओंमें से अन्तमें सात ही जीवित बचे, और उन सातकी भी क्या दशा हुई, इसका हू-ब-हू चित्रण महाभारतकारने किया है। महाभारतकारने यह सिद्ध कर दिया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें दोनों पक्ष छल-कपट तो करेंगे ही। अवसर आने पर युधिष्ठिर-जैसे व्यक्तिको भी असत्यका आश्रय लेना पड़ा था।

अब लेखकके केवल एक प्रश्नपर विचार करना बाकी रह जाता है। यदि युद्ध अपने-आपमें अनीतिपूर्ण है तो किसीको नैतिक सहायता अथवा आशीर्वाद कैसे दिया जा सकता है? मैं मानता हूँ कि युद्ध अपने-आपमें नीति-विरुद्ध है। लेकिन दोनों पक्षोंके हेतुपर विचार करें तो यह हो सकता है कि एकका हेतु शुद्ध हो और दूसरेका अशुद्ध हो। उदाहरणके लिए 'क' 'ख' का देश छीनना चाहता है, तो यहाँ 'ख'का पक्ष सत्यका है। दोनों तलवारसे ही लड़ रहे हैं। यद्यपि मैं तलवारकी शक्ति को नहीं मानता, फिर भी 'ख' निश्चय ही मेरी सहायता तथा आशीर्वादका अधिकारी है।

सेवाग्राम, १२ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १७-८-१९४०

४३२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१२ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचंद्र,

गलती तो हुई लेकिन इसका दु ख नही मानना। अगर सु[शीला] इजाजत देगी तो हाजर रहूंगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५६)से

४३३. रचनात्मक कार्य किसलिए?

एक भाई लिखते हैं·

> . . .रचनात्मक कार्य द्वारा लोगोंमें किस गुणका विकास करना है? रचनात्मक कार्य करनेवाले में ऐसा कौन-सा गुण होना चाहिए जिससे उसका कार्य सुगम हो और चमके?

रचनात्मक कार्यक्रमके अन्तर्गत बहुत-से कार्य आते है. (१) हिन्दू-मुस्लिम अथवा साम्प्रदायिक एकता, (२) अस्पृश्यता-निवारण, (३) मद्यपान-निषेध, (४) खादी, (५) अन्य ग्रामोद्योग, (६) गाँवोंकी सफाई, (७) नई या बुनियादी शिक्षा, (८) प्रौढ़-शिक्षण, (९) स्त्री-सेवा, (१०) आरोग्य-शिक्षण, (११) राष्ट्रभाषा-प्रचार, (१२) मातृभाषा-प्रेम तथा (१३) आर्थिक समानता। इसमें और भी कार्य जोडे जा सकते हैं। लेकिन यह सूची इतनी व्यापक है कि यह सिद्ध किया जा सकता है कि जो छूट गया मालूम होता है, वह भी इसमें आ जाता है।

आप देखेंगे कि ये सारी बाते ऐसी हैं जिनका अभाव ही हमारी पराधीनता के मूलमे है। आप यह भी देखेंगे कि कांग्रेसके रचनात्मक कार्योमें इन सबकी गिनती नही होती। उनमें तो बस पहले चार, या चूँकि कांग्रेसने ग्रामोद्योग संघ और तालीमी संघ खोले हैं इसलिए दो और जोडे तो, छह गिने जा सकते है। लेकिन अब हमें आगे बढना है, अहिंसाको सुदृढ़ करना है, उसे पूर्ण बनाना है, इसलिए रचनात्मक कार्यक्रमका विस्तार करना है। वास्तवमे, यदि हम अहिंसाके बलपर स्वराज्य प्राप्त करें, तो उसकी रक्षा भी हम इसीके बलपर कर सकेंगे, इस बारेमें हमारे मनमे कोई शंका नही होनी चाहिए। अहिंसाकी शक्तिसे स्वराज्यकी प्राप्ति और अहिंसाके द्वारा उसकी रक्षा रचनात्मक कार्यक्रमके अमलपर निर्भर है। जिस क्रमसे मैंने इन

कार्योंको रखा है, वह इनके उत्तरोत्तर महत्त्वका सूचक नही है। मैंने तो उन्हें यहाँ उसी क्रममें गिना दिया है जिस क्रमसे वे मेरी कलमपर आते गये। सामान्यत आजकल मैं खादीकी ही बात करता हूँ, क्योंकि इसमें करोडो व्यक्ति नित्य अपना योगदान दे सकते है, उसका हिसाब दिखाया जा सकता है और उसका परिणाम भी बताया जा सकता है। साम्प्रदायिक एकता अथवा अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें ऐसा नही कहा जा सकता। ये बातें तो एक बार हमारे जीवनमें उतर आयें तो फिर कुछ विशेष करने को नही रह जाता।

अब जरा सारे कार्यक्रमपर नजर डाले। हिन्दू-मुस्लिम अथवा साम्प्रदायिक एकताके बिना हम सदा पगु रहेंगे और पगु हिन्दुस्तान स्वराज्य कैसे प्राप्त कर सकेगा ? हिन्दू-मुस्लिम एकताका अर्थ है हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी सबके बीच एकता। इन सबको मिलाकर ही हिन्दुस्तान बनता है। इनमें से किसी भी अंगकी जो उपेक्षा करता है वह रचनात्मक कार्य करना नही जानता।

अस्पृश्यताका भूत जबतक हिन्दू जातिकी हड्डियोमें समाया हुआ है, तबतक दुनियाकी नजरमें वह स्वय अस्पृश्य रहेगी, और अस्पृश्यको अहिंसक स्वराज्य नही मिल सकता। अस्पृश्यता-निवारणका मतलब है जो अस्पृश्य माने जाते है, उन्हें अपने सगे भाई-बहनोंके समान मानना। ऐसा माननेवाले और इसके अनुसार आचरण करने-वाले के मनमें ऊँच-नीचकी भावना नही हो सकती, छूठ-मूठका जातिभेद नही हो सकता। उसके लिए सारा संसार एक कुटुम्ब है। अहिंसक स्वराज्यमें किसी भी देशके प्रति कोई विरोध नही होगा।

जो लोग शराब या नशीली वस्तुओके गुलाम रहे है या आज है, वे सच्चा स्वराज्य प्राप्त नही कर सकते। ससारका यह अनुभव है कि नशेबाज नीतिका पालन नही कर सकता, इसे कभी नही भूलना चाहिए।

यह तो अब सब मानने लगे है कि खादीके अतिरिक्त करोडो 'लोगोकी भुख-मरीका कोई इलाज ही नही है। इसलिए इस सम्बन्धमें यहाँ कुछ अधिक कहने की जरूरत नही है। बस इतना कहूँगा कि खादीके उद्धारमें गाँवोंके बरबाद हो गये कारीगरोका पुनरुद्धार भी समाविष्ट है। बढई और लुहारके बिना खादी-उत्पादनके औजार नही बन सकते, और यदि गाँवोमें ही ये औजार बनें, तभी गाँव स्वावलम्बी और समृद्ध हो सकते हैं।

खादीके साथ अन्य ग्रामोद्योग भी होने ही चाहिए। इस बातपर आवश्यक जोर नही दिया गया, इसलिए खादी पहननेवाले को विदेशी अथवा मिलकी अन्य सब चीजें व्यवहारमें लाने में कुछ भी अटपटा नही लगता। कहा जा सकता है कि ऐसे लोगोंने खादीका रहस्य नही समझा। खादीके अतिरिक्त विदेशी या मिलकी अन्य वस्तुएँ इस्तेमाल करनेवाले यह भूल जाते है कि ग्रामोद्योग सघकी स्थापना करके काग्रेसने ग्रामोद्योगोंको खादीके साथ स्थान दिया है। जैसे सूर्यके बिना ग्रह व्यर्थ है, वैसे ही ग्रहोंके बिना सूर्य भी निस्तेज हो जायेगा। ससारका समूचा चक्र पारस्परिक

अवलम्बनके सहारे ही चल सकता है। गाँवोंके उद्धारके बिना हिन्दुस्तानका उद्धार असम्भव है।

ग्रामोद्धारके काममे अगर गाँवोंकी सफाईको शामिल नही किया गया तो हमारे गाँव घूरे-जैसे ही बने रहेगे। गाँवोंकी सफाईका प्रश्न ग्रामीणोके जीवनका अविभाज्य अग है। यह प्रश्न जितना आवश्यक है उतना ही कठिन भी है। अनादि कालसे चली आ रही अस्वच्छताकी आदतको बदलने के लिए बडे पराक्रमकी जरूरत है। जो ग्राम-सेवक गाँवकी सफाईकी कला नही जानता, स्वयं भगी नही बन जाता, वह ग्राम-सेवाके योग्य नही बन सकता।

अब इस बातको सर्वमान्य माना जा सकता है कि नई शिक्षाके बिना हिन्दुस्तानके करोड़ों बालकोंकी शिक्षा असम्भव है। इसलिए ग्राम-सेवकको उसका ज्ञान होना चाहिए। उसे नई शिक्षा-पद्धतिका शिक्षक होना चाहिए।

इस शिक्षाके साथ प्रौढ़-शिक्षा अपने-आप आयेगी। जहाँ नई शिक्षाने स्थान बना लिया होगा, आगे चलकर वहांके बालक ही अपने माता-पिताके शिक्षक बनेंगे। लेकिन चाहे जो हो, ग्राम-सेवकमे प्रौढ-शिक्षा देने का उत्साह होना चाहिए।

स्त्रीको अर्धांगिनी माना गया है। जबतक कानूनमे स्त्री और पुरुषके अधिकार समान नही माने जाते, जबतक लडकीका जन्म उतना ही स्वागत-योग्य नही माना जाता जितना लड़केका माना जाता है, तबतक समझना चाहिए कि हिन्दुस्तानको लकवेका रोग है। स्त्रीका तिरस्कार अहिंसाका विरोध है। इसलिए ग्राम-सेवकको प्रत्येक स्त्रीको अपनी माँ, बहन या लडकी मानना चाहिए और उसके प्रति आदरका भाव रखना चाहिए। ऐसा ग्राम-सेवक ही गाँवके लोगोका विश्वास प्राप्त कर सकेगा।

रोगी नागरिक स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे, इसे मैं असम्भव मानता हूँ। इसलिए आरोग्य-शास्त्रकी जो उपेक्षा हम करते हैं, वह दूर होनी चाहिए। अत ग्राम-सेवकको आरोग्य-शास्त्रका सामान्य ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

राष्ट्रभाषाके बिना राष्ट्र टिक नही सकता। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दूके झगड़ेमें न पड़कर ग्राम-सेवकको यदि उसे राष्ट्रभाषाका ज्ञान न हो तो वह प्राप्त करना चाहिए। उसकी बोली ऐसी होनी चाहिए जो हिन्दू, मुसलमान सब समझ सकें।

अंग्रेजीके मोहमें पड़कर हम लोगोने अपनी मातृभाषाओंसे द्रोह किया है। इस द्रोहके प्रायश्चित्तके रूपमें भी राष्ट्र-सेवक लोगोंमे मातृभाषाओंके प्रति प्रेम जाग्रत करेगा। उसके मनमें हिन्दुस्तानकी सब भाषाओंके प्रति आदर होगा, और उसकी खुदकी मातृभाषा चाहे जो हो, पर वह जहाँ रहेगा वहाँकी मातृभाषा खुद सीखकर उस प्रदेशके लोगोंमें उनकी अपनी भाषाके प्रति प्रेमका भाव बढायेगा।

लेकिन यह सब व्यर्थ माना जायेगा, यदि इसके साथ ही आर्थिक समानताका प्रचार भी नहीं किया गया। आर्थिक समानताका यह अर्थ कदापि नही है कि सबके पास समान धन होगा। हाँ, इसका यह अर्थ अवश्य है कि सबके पास आरामसे रहने लायक घरबार, वस्त्र और भोजन होगा। यह भी कि आज जो घातक असमानता

विद्यमान है, वह केवल अहिंसक उपायोंसे ही नष्ट हो सकेगी। लेकिन इस विषयके लिए एक स्वतन्त्र लेखकी आवश्यकता है। वह फिर कभी।

सेवाग्राम, १३ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १७-८-१९४०

४३४. प्रश्नोत्तर

पूर्ण अहिंसामें विश्वास करनेवाले क्या करें?

प्र० : आपकी इच्छा है कि प्रत्येक प्रान्तमें पूर्ण अहिंसाके माननेवाले लोग हों। यदि ऐसा है तो क्या उनका संघ बनाना उचित नहीं होगा? अथवा आप अहिंसाको ऐसी शक्ति मानते हैं जो अपने बलपर अकेली चल सकती है?

उ० : पूर्ण अहिंसाको न वाणीकी आवश्यकता है, न लेखनीकी। और अगर इन दोनों साधनोंकी आवश्यकता न हो, तो संघ-शक्तिकी आवश्यकता होगी ही नहीं। इस सत्यको मेरी कल्पना स्वीकार करती है कि अहिंसामय स्त्री या पुरुषका संकल्प-मात्र काम करता है। ऐसा मैंने शास्त्रोंमें पढ़ा भी है, लेकिन इसका अनुभव बहुत कम किया है। इतना कम कि उसे प्रमाण-स्वरूप मानने को मैं किसीसे नहीं कहूँगा। इसलिए मैंने इच्छा और आशा की है कि अहिंसकोंके सुसंगठित दल हों। साथ ही मैंने यह भी माना है कि यदि प्रत्येक प्रान्तमें पूर्ण अहिंसाके छिटपुट भक्त हों तो उनमें अकेले खड़े रहने की शक्ति अवश्य होनी चाहिए। अर्थात् सभी सैनिक हों और सेनापति भी। यदि ऐसे अहिंसकोंका संगठन हो जाये तो अहिंसाकी शक्तिके बारेमें आज जो अविश्वास बना हुआ है, वह तुरन्त मिट जाये और कांग्रेस सहज ही पूर्ण अहिंसामें विश्वास करनेवाली संस्था हो जाये।

कांग्रेसमें भरती कैसे की जाये?

प्र० : मैं पूर्ण अहिंसामें विश्वास करनेवाला कांग्रेसका एक सदस्य हूँ। उसकी समितियोंमें भी हूँ। आपने मुझ-जैसोंको कांग्रेससे अलग हो जाने का सुझाव दिया है। गाँववालोंसे मेरा अच्छा सम्पर्क है। तो उन्हें मुझे कांग्रेसमें लाना चाहिए या अभी बाहर रहने देना चाहिए?

उ० : यह प्रश्न ठीक नहीं कहा जा सकता। जबतक आप कांग्रेसमें हैं तब तक आपको जितने लोग कांग्रेसमें आयें उतनोंको लेना चाहिए। उन्हें कांग्रेसकी नीति भी समझानी चाहिए। जो लोग भरती होंगे यदि वे हिंसा-अहिंसाका भेद बारीकीसे समझते होंगे, तो वे सब-कुछ समझ-बूझकर ही भरती होंगे। वे या तो कांग्रेसको पूर्ण अहिंसाकी ओर मोड़ेंगे या उसकी वर्तमान नीतिका पूर्ण समर्थन करेंगे। आपका

कर्त्तव्य है कि सब-कुछ समझा देने के बाद जो आयें उन्हे उदारतापूर्वक ले ले। काग्रेससे आप अलग तो तभी होगे जब मैं अलग होने की तारीख निश्चित करूँगा। तबतक तो आपको पहलेके समान ही काम करते जाना चाहिए।

ब्रिटेनवासी क्या करें, क्या न करें?

प्र० : "हर ब्रिटेनवासी से" शीर्षक अपने वक्तव्यमें आप लिखते हैं : "अपनी आत्मापर अधिकार मत होने देना, अपने मनपर अधिकार मत होने देना, उनकी अधीनता कभी स्वीकार मत करना।" ब्रिटेनवासी क्या करें, क्या न करें, यह बताते हुए क्या अपने लेखका अर्थ स्पष्ट करेंगे? क्योंकि आपका लेख तो ऐसा है जो सभी सत्याग्रहियोंपर लागू हो सकता है।

उ० : "आत्मापर अधिकार मत होने दो", अर्थात् जो आपकी आत्मा स्वीकार न करे ऐसा काम मत करो। यदि शत्रु आपसे कहे, 'कान पकडो, नाक रगडो, उठो-बैठो' तो आप इसमे से कुछ न करें। लेकिन यदि कोई आपका घर-बार लूटे, तो उसे लुटने दे, क्योकि जब आप अहिंसाके पुजारी बने थे, तभी आपने निर्णय कर लिया था कि आपकी आत्माके साथ आपके घर-बारका कोई सम्बन्ध नही है। जिसे आप अपनी सम्पत्ति मानते है उसपर अपना अधिकार आप तभीतक मानेंगे जब तक ससार सहज ही रहने दे। "मनपर अधिकार मत करने दो" का अर्थ यह है कि आप किसी प्रलोभनमे न फँसें। मनुष्यका मन प्राय इतना निर्बल होता है कि कोई आदमी उससे अनेक तरहकी मीठी बाते करे या लालच दे तो वह उसकी बातो में आ जाता है। इसका अनुभव हम सामाजिक व्यवहारमे रोज करते है। कमजोर मनका आदमी सत्याग्रही नही हो सकता। उसकी 'नही' सदा 'नही' रहती है, 'हाँ' सदा 'हाँ' रहती है। ऐसा व्यवहार करनेवाला मनुष्य ही सत्यनिष्ठ हो सकता है और वही अहिंसाका पालन कर सकता है।

यहाँ हठ और दृढ़ताके बीचका भेद समझ लेना उचित है। यदि अपनी बुद्धि स्वीकार कर ले, फिर भी जो एक बार भूलसे 'नही' कह दिया तो उसीपर अडे रहना हठ है, मूर्खता है। 'नही' या 'हाँ' कहने से पहले ही मनुष्यको पक्का विचार कर लेना चाहिए।

"उनकी अधीनता कभी स्वीकार मत करना" का अर्थ तो स्पष्ट है। उसके आगे झुका न जाये, उसका उद्देश्य सफल न होने दिया जाये। हिटलर महोदय स्वप्नमें भी ब्रिटेनपर कब्जा करना नही चाहते। वे तो उससे हार स्वीकार करवाना चाहते है। हारे हुए से तो जीतनेवाला चाहे जो माँगे उसे वह देना पडता है। लेकिन जो हार नहीं मानता, उससे तो जबतक वह मर न जाये तबतक शत्रुको लडना पडता है। इसीलिए सत्याग्रहीने यह निर्णय किया कि 'शत्रु' मारे, उससे पहले ही मर जाना चाहिए, अर्थात् शरीरका मोह छोड़ दे और आत्माकी विजय प्राप्त करे। और फिर जब मरने का सकल्प कर लिया तो फिर मारकर क्यो मरे? मारते हुए मरने का अर्थ है हारकर मरना। क्योकि यदि हम शत्रुको जीते-जी कब्जा न लेने दें, तभी तो वह

हमारी जान लेकर कब्जा लेने की हीम रखेगा। लेकिन जिसने विपक्षीको मारकर जीने का विचार ही छोड दिया हो, उनको मारने में शत्रुको मजा नही आयेगा। प्रत्येक शिकारीको इस बातका अनुभव होता है। गाय-भैंसका शिकार किसीने किया हो, ऐसा सुनने में नही आया।

यह लेख पढकर आपके मनमें अनेक उपप्रश्न उठेंगे। आप शायद सोचेंगे कि आपके मनमें उठे सब प्रश्नोका उत्तर इसमें नही आया। लेकिन यह उत्तर लिखते हुए मैंने यह सोचा ही नही था कि जितने प्रश्न उठ सकते हैं मैं उन सबकी गहराईमें जाऊँगा। इसलिए मैंने तो विनम्र प्रयत्न ही किया है। कुछ जाने-बूझे उदाहरण दिये हैं। इनके आधारपर आप अपने मनमें उठनेवाले प्रश्नोके उत्तर दे सकेंगे। आत्म-सम्मान अथवा स्वमानका अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग करेगा। 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' होती ही है। यह मेरी जानी हुई बात है कि आत्म-सम्मानका अर्थ करने में कई बार भूले हुई हैं। जो लोग बहुत नाजुक-मिजाज बनकर हर बातमें अपनी मान-हानि समझते हैं वे आत्म-सम्मानका अर्थ नही समझते, यह मैंने बहुत बार अनुभव किया है। लेकिन जिसे आप आत्म-सम्मान समझते हैं, उसके लिए मर-मिटने का आपको अधिकार है, मारने का कदापि नही।

सेवाग्राम, १३ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १७-८-१९४०

४३५. तार: 'न्यूज क्रॉनिकल' को[1]

सेवाग्राम
१३ अगस्त, १९४०

कांग्रेसकी राजनीतिसे अलग हो जाने के कारण मैं वाइसरायकी हालकी घोषणापर[2] अपने विचार प्रकट करने से रुका रहा हूँ। परन्तु इंग्लैण्डमें रहनेवाले दोस्तो और यहाँके साथियोंके दबावके कारण यह जरूरी हो गया है कि मैं कुछ उत्तर दूँ। वाइसरायकी घोषणा अत्यन्त पीडाजनक है। इससे कांग्रेस जिस भारतका प्रतिनिधित्व करती है उसके और इंग्लैण्डके बीचकी खाई और बढ गई है। कांग्रेससे बाहरके विचारशील भारतीयोंने भी इस घोषणाका स्वागत नहीं किया है। भारत-मन्त्रीकी टिप्पणी कानोको तो मधुर लगती है, परन्तु सन्देहको दूर नही करती। आज जो असन्तोषकी आग अन्दर-ही-अन्दर सुलग रही है, घोषणामे उसकी भी उपेक्षा की गई

1. यह १४-८-१९४० के **हिन्दुस्तान टाइम्स** में भी छपा था।
2. देखिए परिशिष्ट ७।

है। मुझे तो आशका है कि लोकतन्त्रकी जड़ खोदी जा रही है। ब्रिटेन यदि भारतके साथ न्याय नही कर पाता है, तो वह न्यायका पक्षधर होने का दावा नही कर सकता। भारतका रोग इतना गम्भीर है कि दिखावेके लिए या बेमनसे किये गये उपायोसे उसका इलाज नही हो सकता।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-८-१९४०

४३६. पत्र : मंगलदास पकवासाको

सेवाग्राम, वर्धा
१४ अगस्त, १९४०

भाई मंगलदास,[1]

यह पत्र केवल क्षमा-याचनाके लिए है। आज फिर जब तुम्हारे पत्रकी खोज की तो वह प्यारेलालके हाथ लगा। यह पत्र यहाँ ३१ जुलाईको पहुँचा होगा। पत्र महत्त्वका होते हुए भी असावधानीके कारण अनुत्तरित रह गया, यह शर्मिन्दा होने की बात है। ऐसी भूले अनेक बार हो जाती है और उस समय खेद भी होता है। फिर भी, ऐसी भूल भविष्यमे कभी नही होगी, ऐसा विश्वासपूर्वक कहा ही नही जा सकता। वह टेलिग्रामका फार्म वापस भेज रहा हूँ।

जयन्तीलालको जब आना हो तब आ जाये। तुम आना चाहो तो तुम भी आ जाना।

आय-करके बारेमें पहला कदम तो ठीक उठाया। अब दूसरा भी ऐसा ही उठाया जाये तो अच्छा हो। प्रयत्न तो पूरा करोगे, यह मैं जानता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४६८५)से। सौजन्य मगलदास पकवासा

१. बम्बई विधान-परिषद्के अध्यक्ष

४३७. पत्र : एडमण्ड और इवॉन प्रिवाको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ अगस्त, १९४०

प्रिय आनन्द और भक्ति,

इतने लम्बे अर्सेके बाद तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। सच ही, तुम लोग बडे कठिन समयसे गुजर रहे हो। इस अँधेरेमें से प्रकाशका उदय होगा।

स्नेह।

बापू

श्री एडमण्ड प्रिवा
सान वियाजियो
लोकार्नो (तेस्से)
स्विट्जरलैण्ड

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८०१) से

४३८. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ अगस्त, १९४०

हा, तुमारी तारीख कायम है।[1]

चि० हेमप्रभा,

अच्छा है तरलिकाको भी ला रही है। चारुको जल्दी कहीं भेजना चाहीये। यहीं लाना चाहती है तो ला सकती है। आने के समय सतीशबाबुकी किताबकी[2] ५ नकल लाना।

बापुके आशीर्वाद

श्री हेमप्रभादेवी
खादी प्रतिष्ठान
१५, कॉलेज स्क्वेअर
कलकत्ता

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६३८) से

१. यह वाक्य पत्रके ऊपरी सिरेपर लिखा हुआ है।
२. घरेलू दवाओंके बारेमें लिखी पुस्तक; देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", पृ० ३८७।

४३९. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचंद्र,

मैंने तो नियम बना दिया। अब जो शक्य है, उस मुताबिक अमल करवाना तुमारे काम है। उसमे मेरी मदद चाहीये सो लेना।

नोकरोकी वात सही है। हम इस बारेमे कुछ कर नही सकेंगे। जितनी अंतरशुद्धि होगी उतनी ही प्रगति इस बारेमे होगी।

इस सस्थाके बारेमें इसलिये कभी बोज नहिं लगता था। तुमको यह अनुभव नही होता है या कम। लेकिन जैसे श्रद्धापूर्वक आगे बढते रहोगे, अपने-आप दूसरे तुमको साथ देंगे और कुछ बोज लगेगा हि नहिं। आत्मन्येवात्मनातुष्ट रहना है। सब-कुछ सरल हो जावेगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५७)से

४४०. चर्चा : बाल गंगाधर खेर तथा अन्य लोगोंके साथ[1]

[१५ अगस्त, १९४०][2]

आज क्यो मैं आपके प्रश्नोके उत्तर वेझिझक दे पा रहा हूँ? इसलिए कि इस चीजको मैं सम्पूर्णत. घोलकर पी गया हूँ, और इसका उत्तर मेरे मनको मिल चुका है।

१. यह चर्चा महादेव देसाईके लिखे "एक रोचक संवाद" शीर्षक लेखसे ली गई है। महादेव देसाईकी ही तैयार की हुई चर्चाकी अंग्रेजी रिपोर्ट ".एन इंटरेस्टिंग डिस्कोर्स" शीर्षकसे **हरिजन**के २५-८-१९४० और १-९-१९४० के अंकोमें भी प्रकाशित हुई थी। किन्तु जहाँ गुजराती लेखकी पहली किस्तकी लेखन-तिथि २० अगस्त, १९४० दी गई है वहाँ अंग्रेजीकी पहली किस्तकी तारीख २१-८-१९४० है। इसके अतिरिक्त, बहुत सम्भावना है कि बाल गंगाधर खेरके साथ गाधीजी की बातचीत गुजरातीमें हुई हो, क्योंकि खेर गुजराती अच्छी तरह जानते थे। इसलिए हम गुजराती रिपोर्टसे ही अनुवाद प्रस्तुत कर रहे है। लेखकके अनुसार बम्बईके भूतपूर्व मुख्य मन्त्री खेर तथा अन्य लोग, जो "अहिंसाके पुजारी थे, . . .सम्पूर्ण अहिंसामें अपनी निष्ठा स्थिर करने के इरादे से आये थे।"

२. तिथि **बापू स्मरण**, पृ० १९७ से ली गई है।

प्र० : अहिंसाका प्रयोग मनुष्यतक ही सीमित रखना है या उसकी परिधि में मनुष्येतर प्राणी भी आते हैं?

उ० इस प्रश्नके लिए मैं तैयार नहीं था। कांग्रेसके लिए तो अहिंसा राजनीतिक क्षेत्रके निमित्त ही है, इसलिए वह मनुष्यतक ही सीमित हो सकती है। इसलिए हमारे प्रयोजनके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका मतलब राजनीतिक क्षेत्रमें हर प्रकार की अहिंसा ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि कौटुम्बिक सम्बन्धमे, सरकारके साथ अपने सम्बन्धमें, समाजमें उपद्रव हो तब और विदेशी हमलेमें सामना पडने पर हमें अहिंसाका प्रयोग करना है। तात्पर्य यह कि मनुष्य-मनुष्यके सम्बन्धकी हदतक हमारा व्यवहार अहिंसामय हो, इतना काफी है।

प्र० : मासाहारी या अण्डाहारी अहिंसक कहला सकते हैं या नहीं?

उ० इससे अहिंसामें कोई बाधा नही पडती, क्योकि अगर पडेगी तो हमें मुसलमानो और ईसाइयो तथा बहुत-से हिन्दुओंको अपने अहिंसा-क्षेत्रके साथियोंके रूपमें त्याग देना होगा। मैंने देखा है कि बहुत-से मासाहारी शाकाहारियोसे अधिक अहिंसक हैं।

प्र० : लेकिन अगर बहुत-से मासाहारियोका साथ छोड भी देना पडे तो क्या?

उ० हाँ, छोड सकते हैं, अगर छोडना ही धर्म हो तो। लेकिन इसमें तो धर्म-पालन और व्यवहार दोनो साथ-साथ हो जाते हैं, क्योकि धर्म क्या है, यह मैं पिछले प्रश्नके उत्तरमें बता चुका हूँ।

प्र० : आपने एक बार लिखा था कि जर्मनीके विरुद्ध पोल लोगोंने जो प्रतिकार किया उसे लगभग अहिंसक कहा जा सकता है। अगर ऐसा है तो कार्य-समितिके वर्धा प्रस्तावका आपने क्यों विरोध किया?

उ० यह प्रश्न भी नही पूछना चाहिए, क्योकि दोनो मामलोमें कोई साम्य नही है। कोई अकेला व्यक्ति सैकडो सशस्त्र डाकुओंसे जूझते हुए तलवार चलाये तो उसके लिए मैं यही कहूँगा कि उसने लगभग अहिंसाका पालन किया। स्त्रियोंमे तो मैं कह ही चुका हूँ कि अपनी शील-रक्षा करते हुए वे नाखूनोका उपयोग करे या दाँतोका, बल्कि भालेका भी इस्तेमाल करे तो भी उनके आचरणको मैं अहिंसक ही कहूँगा। कारण, हिंसाके लिए उनकी कोई तैयारी नही थी। हिंसा-अहिंसाका भेद वे समझती हैं। लेकिन तत्काल जो सूझा वही करके वे अपने शीलकी रक्षा करती हैं। मान लीजिए, कोई चूहा बिल्लीके हमलेका मुकाबला करते हुए अपने नुकीले दाँतोका उपयोग करता है तो क्या हम उसे हिंसक कहेंगे? इसी अर्थमें मैंने पोल लोगोंके लिए उस वाक्यका उपयोग किया था। संख्या-बलमें अपनेसे कई गुनों अधिक और अनेक गुनी सुसज्जित जर्मन वाहिनीका शूरवीरोकी तरह सामना करने में पोल लोगोंने लगभग अहिंसासे काम नहीं लिया तो और क्या किया? अपनी उस बातपर मैं आज भी कायम हूँ और भविष्यमें भी रहूँगा। 'लगभग' का पूरा भाव आपको समझना चाहिए।

लेकिन हम तो यहाँ ४० करोड है। हममे थोडा-सा भी सहयोग हो तो हम दुश्मनसे टक्कर ले सकते है। हम विशाल सेना खडी करके लडने को तैयार हो जायें तो उसे 'लगभग' अहिंसा कैसे कहा जा सकता है? पोल लोगोंको खबर भी नही थी कि किस रीतिसे जर्मन वाहिनी उनपर टूट पडेगी। हम जब शस्त्रास्त्रोकी तैयारी की बात करते है तब हमारा हेतु यह होता है कि चाहे जितना शक्तिशाली शत्रु आ जाये, उसे उसकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली सेनासे परास्त करेंगे। अगर हिन्दुस्तान ऐसी तैयारी करता है तो वह दुनियाके लिए एक मुसीबत बन जायेगा। यह तो हिंसाकी पराकाष्ठा होगी। जिस प्रकार यूरोपने दूसरे देशोको चूसने के तौर-तरीके को स्वीकार किया है उसी प्रकार हम भी उसे स्वीकार कर लेगे और जगत्का सहार करने के पैरोकार बन जायेंगे। इसीलिए मै बार-बार दु खके साथ कहता हूँ कि सरदार और राजाजी को मै क्यो नही रोक पाया। ईश्वरने मेरे शब्दोंको उनको समझाने लायक शक्ति क्यो नही दी? कारण, यह प्रस्ताव करके तो हमने दुनियाके सामने जाहिर कर दिया है कि आजतक हम जिस अहिंसाका उच्चार कर रहे थे वह हमारे होठोपर ही थी, हृदयमें नही।

प्र० : आपको शासनका संचालन करना हो तो अहिंसाके सहारे कैसे करेंगे?

उ० : आप यह समझ रहे है न कि इस सवालमें आपने एक बात स्वीकार कर ली है? अगर हमने अहिंसक रीतिसे स्वराज्य प्राप्त किया होगा तो इसका अर्थ यह होगा कि हम पूरी तरह अहिंसक हो गये है और हमारा देश अहिंसक रीतिसे संगठित हो गया है। इसलिए अगर हमने स्वराज्य प्राप्त करने योग्य अहिंसक तैयारी की होगी तो अहिंसक रीतिसे उसकी रक्षा करने मे भी कठिनाई नही होनी चाहिए। कारण, अहिंसक स्वराज्य कोई ऊपरसे टपक पड़नेवाली चीज नहीं होगी। वह तो हमें लोगोंके बहुमतका साथ मिलने का ही परिणाम होगा। अगर हमे ऐसा स्वराज्य मिले तो इसका अर्थ यह होगा कि गुण्डे भी हमारे अकुशमे आ गये है। उदाहरणके लिए, अगर सेवाग्रामकी सात सौकी बस्तीमे पाँच-सात गुण्डे हों और बाकीके लोगोको अहिंसाका प्रशिक्षण प्राप्त हो तो वे गुण्डे या तो बाकीके लोगोका अकुश स्वीकार करेंगे या गाँव छोड़कर चले जायेंगे।

लेकिन आप देखेंगे कि इस प्रश्नकी मैं बडी सावधानीसे चर्चा कर रहा हूँ। मेरी सत्यकी भावना मुझे यह कहने को प्रेरित करती है कि हम शायद पुलिसके बिना अपना काम न चला सकें। इसका परिणाम यह निकलता है कि अगर फिर बाला-साहबके हाथमें शासन आये तो वे पुलिसका उपयोग तो करेंगे, लेकिन सेनाका विचार तक नही करेंगे। और पुलिस भी जैसी अग्रेज शासक रखते है वैसी नहीं, बल्कि अपने नये ढंगकी होगी। फिर, हमारी कल्पनाके अनुरूप वयस्क मताधिकार होगा, इसलिए २१ वर्षके युवाका भी राज-काजमें हिस्सा होगा। इसीलिए मैंने कहा है कि पूर्ण अहिंसक राज्य तो राजाके बिना भी व्यवस्थित ही रहेगा। इसलिए जिसमें पुलिस आदिकी व्यवस्था कमसे-कम हो वही राज्य उत्तम होगा। लेकिन बात यह है कि

राज्यकी लगाम मेरे हाथमें सौंप कौन रहा है? सौंपे तो मैं राज्य चलाकर दिखा दूं। मैं पुलिस रखूंगा तो वह कांग्रेसमें से लिये गये समाज-सुधारकोंका समूह होगी।

प्र० : लेकिन सत्ता तो आपके पास थी न?

उ० थी तो, लेकिन वह तो कागजकी नाव थी। और आप यह न भूलें कि तब भी कांग्रेसी मन्त्रियोंकी आलोचना मैं करता ही रहता था। मुंशीजी और पन्तजी पर मैंने कितनी ही बार प्रहार किये हैं। सच बात यह है कि हमने आशा की थी कि हम धीरे-धीरे अहिंसाको प्राप्त कर लेंगे। जैसे नालेका पानी गंगामें मिलकर गंगाजल-जैसा पवित्र हो जाता है उसी प्रकार अहिंसक कांग्रेसके शासनके नीचे आकर गुण्डा भी सज्जन बन जायेगा, ऐसी आशा हमने की थी। लेकिन हमारे मन्त्रियोंमें गंगाजलकी तरह दूसरोंको भी पावन बनानेवाला पवित्र प्रभाव आया ही नहीं था।

बा० गं० खेर : लेकिन कांग्रेसके मन्त्री अहिंसक सत्ता लेकर नहीं आये थे। ५०० गुण्डे तूफान खड़ा करें और उन्हें रोका न जाये तो वे हाहाकार मचा दे सकते हैं। मुझे भय है कि ऐसे लोगोंसे सामना पड़ने पर आप भी कोई और व्यवहार न करते।

उ० लेकिन ऐसी कल्पना तो मैं हमेशा करता था, और आपको क्या करना चाहिए, यह भी कहता रहता था। मन्त्री ऐसे प्रसंगपर घर या कार्यालयसे निकल-कर गुण्डोंके सामने खड़े होकर अपने प्राण तो दे सकते थे। लेकिन यह सच है कि हममें ऐसी अहिंसा नहीं थी। ऐसी अहिंसा न होने पर भी हमने सत्ता ग्रहण की, लेकिन भले ग्रहण की, क्योंकि इस सत्ताको बीचमें ही छोड़ते हमें कोई देर नहीं लगी। हां, इतना जरूर कहूँगा कि दो वर्षके मन्त्रित्व-कालमें यदि हम अखण्ड अहिंसाका परिचय दे पाते तो कांग्रेस अहिंसा और स्वराज्यकी दिशामें बहुत आगे बढ़ चुकी होती।

बा० गं० खेर : लेकिन चार-पांच वर्ष पहले जब ऐसा प्रसंग आया था तब मैंने कांग्रेसके नेताओंसे कहा था कि निर्भीक होकर निकल पड़िए और इस ज्वालाकी भेंट चढ़ जाइए। लेकिन तब कोई तैयार नहीं हुआ था।

उ० : यह तो आप मेरी ही दलीलका समर्थन कर रहे हैं। मैं यही कह रहा हूँ न कि हमारी अहिंसा हृदयमें नहीं, बल्कि हमारे होठोंपर ही थी। लेकिन निष्कर्ष तो यह निकालना है कि यदि कच्ची अहिंसाके बलपर भी हम इतना आगे बढ़ पाये तो सच्ची अहिंसा होती तो कितना आगे बढ़ते। सम्भव है, शायद हम अपना ध्येय प्राप्त करके भी बैठ गये होते।

प्र० : क्या यह समझायेंगे कि बाहरी आक्रमणका मुकाबला आप अहिंसक रीतिसे कैसे करेंगे?

उ० इसकी पूरी तसवीर मैं आपके सामने पेश नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे पास पूर्व अनुभव नहीं है, और आज आक्रमणका सामना करने का प्रसंग भी बिल्कुल

सामने नहीं है। फिर, आज तो सिखों, गोरखों और पठानोंकी सरकारी सेना पड़ी हुई ही है। मेरी कल्पना यह है कि मैं अपनी हजार-दो हजारकी अहिंसक सेना आपसमें जूझ रही दोनों सेनाओंके बीच झोंक दूँ। ऐसा करके मैं और कुछ हासिल न भी कर पाऊँ, लेकिन शत्रुकी हिंसाका प्रमाण तो जरूर कम कर दूँगा।

कल्पना तो बहुत की जा सकती है। लेकिन कल्पना किसलिए करें? मुद्देकी बात यह है कि अहिंसक सेनाके सेनापतिको ईश्वर प्रत्येक परिस्थितिका मुकाबला करने का बुद्धियोग दे ही देता है। कारण, अहिंसक सेनापतिमें हिंसक सेनापतिकी अपेक्षा अधिक तीव्र बुद्धि और समयकी पहचान होनी चाहिए। लेकिन वह पहलेसे ही पूरा चित्र खींच सके, इतनी शक्ति उसे ईश्वर दे देगा तो वह अभिमानी बन जायेगा। और ईश्वर इतना कृपण है कि आवश्यकतासे अधिक शक्ति मनुष्यको देता ही नहीं है।

बा० गं० खेर. सारा संसार द्वन्द्वमय है — हर्ष-शोक, सुख-दुःख, भय-साहस। जहाँ भय होगा वहाँ साहस भी आयेगा ही। लेकिन भय कोई व्यर्थकी चीज नहीं है। पहाड़पर डर मानकर न चलें तो कहीं घाटीमें जा गिरेंगे। तो क्या आपकी अहिंसक सेना द्वन्द्वातीत होगी, गुणातीत होगी?

उ० : नहीं, जरा भी नहीं। कारण, मेरी सेना भी द्वन्द्वमें से ही एकका — अहिंसाका — वरण करनेवाली होगी। मैं या मेरे सैनिक न केवल द्वन्द्वातीत नहीं, बल्कि त्रिगुणातीत भी नहीं होंगे। 'गीता'का त्रिगुणातीत तो हिंसा-अहिंसा दोनोंसे परे होता है।[1] डरका उपयोग है, लेकिन डरपोकपनका नहीं। डरसे मैं साँपके मुँहमें उँगली नहीं दूँगा, लेकिन डरपोकपन दिखाकर मैं साँपसे दूर नहीं भाग जाऊँगा। बात यह है कि हम तो मृत्युके आने से पहले ही अनेक बार मरते हैं। डर तो सिर्फ ईश्वरका ही हो सकता है।

लेकिन मेरी सेना कैसी होगी, यह मैं समझाता हूँ। इन सभी सैनिकोंमें सेनापति की बुद्धि होगी, ऐसी कल्पना तो नहीं है, लेकिन इन सबमें सेनापतिके एक-एक आदेशका पालन करने की निष्ठा और अनुशासन अवश्य होगा। सेनापतिमें ऐसा गुण अवश्य होना चाहिए जिसके कारण सब उसका हुक्म मानें। लाखोंके दलसे तो वह केवल आज्ञा-पालनकी ही माँग करेगा। दाँडी-कूच केवल मेरी कल्पना थी। पहले तो मोतीलालजी ने उसका मजाक उड़ाया, और जमनालालजी ने भी कहा कि इससे तो अच्छा है कि हम वाइसरायके महलपर कूच करें। लेकिन मुझे तो नमकके सिवाय कुछ सूझता ही नहीं था। कारण, मुझे करोड़ोंका विचार करके निर्णय करना था। यह कल्पना ईश्वर-प्रदत्त थी। पण्डित मोतीलालजी ने थोड़ी दलील की, लेकिन अन्तमें कहा : आप सरदार हैं, इसलिए आप जो कल्पना करें सो ठीक, उसमें मैं कोई परिवर्तन नहीं सुझा सकता, मुझे विश्वास रखना है। उसके बाद जब वे जम्बुसरमें मुझसे मिलने आये तब उनकी आँखें खुल गईं। लोगोंमें उन्होंने जो

१. भगवद्गीता, १४/२५

जागृति देखी उसमें वे चकित रह गये। और वह कैसी जागृति थी! हजारों स्त्रियोंने जिस शान्त साहसका परिचय दिया था उसका दूसरा उदाहरण क्या इतिहासमें मिलेगा?

और यह सब तब हुआ जब सत्याग्रहमें भाग लेनेवाले हजारों लोग कोई असाधारण मनुष्य नहीं थे। उनमें से बहुत-से तो व्यसनी और भूल करनेवाले रहे होंगे। लेकिन ईश्वरको तो जो कच्चा-पक्का साधन मिलता है उसका उपयोग कर लेता है और खुद अलिप्त रहता है क्योंकि वही ऐसा गुणातीत है।

और खरी सेना कौन-सी है? 'रामायण' में भालुओंकी सेना, बन्दरोंकी सेनाको सेना तो कहा है, लेकिन खरी सेनाका वर्णन तो रामचन्द्रजी के मुखसे करवाया है।[1]

अतः जीतनेवाली सेना तो यह है। मैं कोई संसारसे विरक्त नहीं हो गया हूँ, होना भी नहीं चाहता। ऐसा कोई विरक्त मैंने देखा भी नहीं। मैं तो सेवाग्राममें रहकर जो-कुछ काम कर सकता हूँ उतना करके और जो मेरी सलाह लेने आयें उन्हें सलाह देकर सन्तोष मानता हूँ। बात यह है कि हम लोगोंको श्रद्धाकी जरूरत है। और सत्यके पन्थपर चलने में खोना क्या है? बहुत होगा तो कुचल जायेंगे। लेकिन हार जाने से कुचल जाना क्या बेहतर नहीं है?

लेकिन अगर हिंसक तैयारी करनी हो तब तो मेरी बुद्धि कुण्ठित हो जायेगी। यह हवाई जहाजों, टैंकों आदिकी तैयारीका विचार करते ही मुझे चक्कर आने लगता है। इसके मुकाबले मेरी अहिंसक तैयारी तो इतनी आसान है कि पूछिए मत। और फिर उसमें हमें ईश्वर-जैसा सारथी मिला है, जो हमें कभी उलटी राह ले ही नहीं जा सकता। फिर डरने की क्या बात है?

प्र० : अहिंसामें विश्वास करनेवाला व्यक्ति क्या रुपया-पैसा रख सकता है? और रख सकता है तो क्या उसकी रक्षा अहिंसापूर्वक कर सकता है?

१. महादेव देसाई बताते हैं कि सम्बन्धित दोहा-चौपाइयाँ गांधीजी ने सुनाईं नहीं, केवल उनका उल्लेख ही किया। लेकिन स्वयं महादेव देसाईने रामायणका सम्बन्धित अंश उद्धृत करके गुजरातीमें उसका अनुवाद भी दिया है। मूल अंश निम्न प्रकार है:

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

उ० : अपना मानकर वह कोई संग्रह नही कर सकता, कोई परिग्रह नही कर सकता। भले ही उसके पास लाखो रुपये हो, लेकिन उसके लिए उनकी कोई कीमत नही होनी चाहिए। उसपर वह अपना स्वामित्व नही मान सकता, और फिर जितना रख सके उतना रखे। यदि वह चोर-डाकुओके बीच रहता हो तब तो उसे लँगोट-भरसे सन्तोष मानना चाहिए, और जब वह ऐसा करेगा तो चोर-डाकुओ से भी उसका परिचय कायम होगा और वे उसे साष्टांग प्रणाम करेगे।

लेकिन इसपर से आप कोई व्यापक निष्कर्ष न निकाले। अहिंसक राज्य होगा तो उसमे बहुत चोर-डाकू नही होंगे, ऐसा हमे मानना चाहिए। व्यक्तिके विषयमे इतना ही कहा जा सकता है कि वह परिग्रह न करे। मान लीजिए, मै जरायमपेशा कही जानेवाली टोलियोके बीच रहता होऊँ। उस हालतमे मै पासमे कुछ रखे बिना रहूँगा, खाना भी उन्हीसे माँगूँगा और न मिले तो भूखा रह जाऊँगा। जब उन्हे लगेगा कि यह आदमी हमारे बीच इस तरह सेवावृत्तिसे ही रहता है तो वे मेरे मित्र बन जायेंगे। इस वृत्तिमे उच्च प्रकारकी अहिंसा समाई हुई है।

प्र० : स्त्रियोंके शीलकी रक्षा कैसे की जाये?[1]

उ० : लगता है, आप 'हरिजन' नही पढ़ती। इस प्रश्नकी मैंने वर्षो पहले चर्चा की थी और उसके बाद भी कई बार कर चुका हूँ। यह चर्चा दो भागोमें हो सकती है. (१) स्त्री अपने शीलकी रक्षा कैसे करे? (२) उसके सगे-सम्बन्धी —पिता, भाई आदि—रक्षा करने मे उसकी मदद कैसे करे?

जहाँ अहिंसाका शिक्षण हो, अहिंसामय वातावरण हो वहाँ स्त्रीको अपनेको पराधीन या अबला नही मानना चाहिए। अगर उसमे सच्ची पवित्रता होगी तो वह अपनेको अबला नही मानेगी, क्योंकि पवित्रता ही उसका कवच है, उसकी सामर्थ्य है। मै तो हमेशासे मानता आया हूँ कि किसी स्त्रीकी इच्छाके बिना उसका शील-भंग हो ही नही सकता। वह डरके मारे वश हो जाती है, या अपनी पवित्रताकी सामर्थ्यका भान उसे नही रहता, तभी वह राक्षसी वृत्तिके मनुष्यका भोग बनती है। यदि उसकी तुलनामें पुरुषमे शारीरिक शक्ति बहुत अधिक हो तो वह स्त्रीको अपने बसमे करे, इसके पूर्व ही स्त्रीकी पवित्रता उसे मर-मिटने का बल दे देगी। वह अपनी योगाग्निसे जलकर भस्म हो जायेगी। सीता रावणके वशीभूत नही हुई तो वह उनकी ओर विषय-भरी दृष्टि भी न डाल सका। उसने दूरसे ही तरह-तरहके उपाय किये। राक्षसियोका भी भय दिखाया, लालच दिया, लेकिन एक भी उपाय काम न आया। (रावणकी तुलनामे) उनमे शारीरिक बल तो नही के बराबर ही था, लेकिन उनकी पवित्रता उनकी रक्षाकी ढाल बन गई। उनकी इच्छाके बिना रावण उनके पास आ ही कैसे सकता था? एकाकी स्त्रीके लिए तो यह आदर्श है।

भाई या किसी और सगे-सम्बन्धीके लिए तो रास्ता साफ ही है। वह उस बहन और उसपर हमला करने के लिए आनेवाले के बीचमे खडा हो जायेगा। वह या

१. पिछले प्रश्नसे लेकर आगे 'गीता' के सम्बन्धमें जो प्रश्न पूछा गया है उससे पहलेके सारे सवाल एक स्त्रीने पूछे थे।

तो उस व्यक्तिको समझायेगा या न समझा पायेगा तो उसे रोकते हुए अपने प्राण दे देगा। इस तरह उसके प्राण देने से ही उस दूसरे व्यक्तिकी विषय-वासना शान्त हो जायेगी। मरकर उसने अपना धर्म तो निभा ही लिया होगा, और साथ ही उस बहनमें भी उसके बलिदानसे अपूर्व बल आ जायेगा और भगवान् उसकी मदद करेगा।

प्र० : लेकिन इस तरह प्राण देना आसान है क्या?

उ० हाँ, पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीमें प्राण देने की अधिक शक्ति है। शील-रक्षाके लिए ही नहीं, इससे लघुतर हेतुओंके लिए भी स्त्रियोंके आत्म-बलिदान देने की बात सुनी गई है। थोड़े ही दिन पूर्व मुझसे परिचित एक बीस वर्षीया बालाने अपने प्राण दे दिये। बात सिर्फ इतनी थी कि उसका पति और सगे-सम्बन्धी जबरदस्ती उसे पढ़ाना चाहते थे। उसकी पढ़ने की इच्छा नहीं थी। बस उसने पूजा करते-करते नन्हा-सा घी का दिया उठाकर अपनी साड़ीमें आग लगा ली और बिना चीख-पुकार मचाये शान्तिसे जल मरी। पासके कमरेमें पुरुष बैठे हुए थे, लेकिन उन लोगोंको उसके पूरी तरह जल जाने तक कोई खबर नहीं पड़ी। मैं यह नहीं कहना चाहता कि यह कदम प्रशंसनीय था, लेकिन इसमें अपार शान्त साहस था, इसमें तो कोई शंका ही नहीं है। मुझमें तो अपने कच्छेमें आग लगाकर मरने की शक्ति नहीं है। बाकी यह सही है कि इस तरह जल मरने के लिए बाहरकी आगकी अपेक्षा अन्तरकी आग ज्यादा दरकार होती है।

प्र० : बच्चे बहुत परेशान कर रहे हों तो उन्हें बिलकुल मारे बिना कैसे काम चलेगा? एकाध चपत लगाकर चुप कर दें तो तुरन्त चुप हो जायेगा। न लगायें तो बराबर रोता ही चला जाये।

उ० वह सूत्र तो जानती हैं न कि

लालयेत्पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

प्र० : लेकिन मारने की बात छोड़िए। गुस्सा आयेगा, उसका क्या किया जाये?

उ० भले अपने इस गुस्सेको आप अहिंसक क्रोध कहें। लेकिन मैं समझदार माँकी बात कर रहा हूँ, अज्ञानी माँ की नहीं। कुछ अज्ञानी माताएँ तो माँ होने लायक ही नहीं होतीं।

प्र० : 'गीता' का मुख्य उपदेश क्या है — अनासक्ति या अहिंसा?

उ० अनासक्ति ही है। आप शायद जानते होंगे कि मैंने एक छोटी-सी पुस्तिकाके रूपमें 'गीता' का जो गुजराती भाषान्तर प्रस्तुत किया है उसका नाम 'अनासक्तियोग'[1] रखा है। अनासक्ति अहिंसासे आगे तक जाती है। जिसे अनासक्त बनना है उसे तो अहिंसा सीखनी और आचरित करनी ही है। इसलिए अहिंसा अनासक्तिके अन्दर आ जाती है, उससे आगे नहीं जाती।

१. देखिए खण्ड ४१, पृ० ९९-१६७।

प्र० : तो 'गीता' हिंसा-अहिंसा दोनोंकी शिक्षा देती है?

उ० : 'गीता'मे मुझे यह ध्वनि नही दिखाई देती। यह सम्भव है कि यह अहिंसा सिखाने के लिए न लिखी गई हो, लेकिन काव्यका व्याख्याता जिस प्रकार किसी काव्यसे अनेक अर्थ निकालता है उसी प्रकार मैं इसमें से यह अर्थ निकालता हूँ कि इसका मुख्य उपदेश अनासक्ति है, तथापि यह अहिंसा तो सिखाती ही है। अहिंसा लौकिक वस्तु है। परलोकमे हिंसा-अहिंसाका सवाल नही उठता।

बा० गं० खेर : लेकिन अर्जुनने तो अहिंसा-हिंसाका प्रश्न उपस्थित किया था न?

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥

और कृष्णने इसका नकारात्मक उत्तर देकर हिंसा करने को कहा।[1]

उ० : यह तो प्रज्ञावाद था। श्रीकृष्णने अर्जुनका संशय मिटाते हुए कहा "कलतक तो तूने शत्रुओंका शस्त्रसे हनन किया, उसमे तुझे कोई कठिनाई नही आई। आज भी ये शत्रु यदि अनजाने या अजनबी हो तो उनके विरुद्ध तू रण चढेगा। लेकिन तेरे सामने आज प्रश्न यह है कि तू सगे-सम्बन्धियोका हनन करे या न करे।"[2] इस प्रकार उसके सामने हिंसा-अहिंसाका प्रश्न ही नही था।

इसके बाद ये भाई फिरसे रोजमर्राके कामके प्रश्नोंकी चर्चापर आ गये। अहिंसा-वादियोंको क्या करना चाहिए, कबतक राह देखनी चाहिए, पूनाके प्रस्तावका सरकारकी ओर से कोई उत्तर न मिले तब भी कांग्रेसमें से निकल जाना चाहिए क्या?

उ० : मैंने निकलने के लिए तो कहा ही है, लेकिन जबतक यह न कहूँ कि अब निकल जाइए, तबतक मत निकलिए। मुझे तो अब भी उन लोगोंको समझाना है, उनके सामने ऐसी चीज पेश करनी है जिससे वे अपना कदम वापस ले लेना अपना कर्त्तव्य समझें। मुझे उन्हे यह समझाना है कि यदि वे इस कदमपर डटे रहेंगे तो कांग्रेस निस्तेज हो जायेगी। कांग्रेसके प्रस्तावपर अमल हुआ है या नहीं, यह तो अप्रासंगिक बात है। कारण, प्रस्ताव करने का मतलब अमल करने के बराबर है, क्योंकि उनकी नीति तो उसमे स्पष्ट हो गई है। लेकिन हमे उतावली करने की जरूरत नही। पूना प्रस्ताव तो स्पष्टत भूल थी और है। बाहरी आक्रमणसे बचावके लिए अगर शस्त्र-प्रयोगकी स्वीकृति दे तो आन्तरिक झगडे के लिए तो उसकी मंजूरी देने मे ही निस्तार है। जो हमला दुश्मन करेगा उसकी तो हमे खबर पड़ेगी, उसका अहिंसक सामना करने की हम तैयारी भी कर सकते है। लेकिन रातमें हमे नींदसे जगाकर यदि कोई चोर-डाकू हमला करे तो उस समय तो हममें पराकाष्ठाकी अहिंसा होगी तभी हम प्रतिकार किये बिना रह पायेंगे।

१. भगवद्गीता, १/४६
२. वही

प्र० : एक ही मनुष्यके प्रतिनिधि और व्यक्तिके रूपमें क्या दो कर्त्तव्य होगे ?

उ० होगे, पर वे एक-दूसरेके विरोधी नही होगे। जनताका प्रतिनिधि नेता होगा, इससे क्या ? नेताको जनताके पीछे चलना है, या जनताको नेताके पीछे ? नेता तो जनताको अपने पीछे ही ले जायेगा। वर्त्तमान पत्रकार भले दोनो काम करे, लेकिन नेताओको यह नही पुसा सकता।

प्र० : लेकिन सरदारके बारेमें तो अखबारोमें यह खबर छपी थी न कि उन्होने कहा, व्यक्तिके रूपमें तो मै महात्माके पीछे चलूंगा, लेकिन बाकी तो मुझे अपने प्रान्तके प्रतिनिधिके रूपमें काम करना पड़ेगा ?

उ० मै नही मानता। फिर, सरदारने क्या कहा, वह नही, बल्कि वे क्या करते है वह देखने की चीज है। क्या सरदार गुजरातके प्रतिनिधिके रूपमें तलवार उठायेंगे और व्यक्तिके रूपमें उसे त्याग देंगे ?

प्र० : आपने बताया है कि हुल्लड़ होने पर कैसा आचरण करना चाहिए। १९२१ में युवराज आये थे उस समय जब हुल्लड़ हुआ था तब आपने कैसा व्यवहार किया था ?

उ० दो प्रसग मुझे याद है। एक तो रौलट अधिनियमके समयका वह तूफान था। मुझे मैरीन लाइन स्टेशनके सामने मुक्त किया गया था। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि पायधुनीके सामने तूफान मचा हुआ है। मै एक गाडीमें बैठकर वहाँ पहुँचा और लोगोको शान्त करने में सफल हुआ।

दूसरा प्रसग युवराजके आने के समयका है। लोग मोटर और ट्रामगाडियोको आग लगा रहे थे, उस समय मै वहाँ पहुँचा था और उन्हे शान्त किया था। लेकिन उसके बाद भायखला और दूसरी जगहोमें उपद्रव हुए। काग्रेसियोके प्रति क्रोध था। मै खुद वहाँ नही गया, लेकिन काग्रेसके नेताओको भेजा। वहाँ मेरा जाना तो आसान था, लेकिन मुझे लगा कि मेरे वहाँ जाने से लोग उत्तेजित हो जायें और कोई मुझे चोट पहुँचाये तो उपद्रव शान्त होने के बजाय और बढेगा और आगमें घी पडेगा।

लेकिन इसका मतलब यह नही कि मै बहादुर हूँ। मै स्वभावसे तो डरपोक हूँ, लेकिन ईश्वर हमेशा मेरी सहायताके लिए आया है, और हर प्रसगपर जितनी चाहिए उतनी हिम्मत उसने मुझे दी है। मेरी हिम्मतकी सबसे बडी कसौटी १३ जनवरी, १८९७ को हुई थी। मै अनेक यात्रियोको लेकर भारतसे आफ्रिका पहुँचा था। गोरे मुझे उतरने नही देना चाहते थे। वहाँके प्रधान श्री एस्कम्बने मुझे सलाह दी कि बाकी सब लोग उतर जायें और मै अँधेरा होने के बाद उतरूँ। लेकिन मै उतरा और मुझे कुचल देने के लिए तडप रही भीडमें से होकर चल पडा। हजारो लोग मेरे पास पहुँचे और मुझपर टूट पड़े। मुझपर पत्थरो, अण्डो आदिकी बौछार की गई, बादमें लाते भी पडी। मै बेहोश हो गया, लेकिन वहाँसे भागा नहीं। यह हिम्मत

कहाँसे आई, यह मै नही जानता, लेकिन आई, यह जानता हूँ। ईश्वर परम कृपालु है, समर्थ है।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २४-८-१९४० और ३१-८-१९४०

४४१. पत्र : तारासिंहको

सेवाग्राम
१६ अगस्त, १९४०

प्रिय सरदारजी,

मुझे खुशी है कि आपने मौलाना साहबको लिखे अपने पत्रकी[1] एक नकल मुझे भेजी। जैसा कि मैने आपको बताया है, मेरी रायमे काग्रेसके साथ आपकी कोई बात नही मिलती और न काग्रेसकी आपके साथ। आप तलवारके नियममें विश्वास करते है, काग्रेस नही करती। आपके दिमागमे हर समय 'मेरा सम्प्रदाय' रहता है, काग्रेसका अपना कोई सम्प्रदाय नही है, वह तो पूरे राष्ट्रको ही अपना मानती है। आपकी सविनय अवज्ञा विशुद्ध रूपसे हिंसाकी ही एक शाखा है। मेरे दिमागमे यह बात बिलकुल साफ है कि काग्रेसमे रहकर आप 'अपने सम्प्रदाय'को कमजोर बनाते है, काग्रेसको कमजोर बनाते है। आपकी मनोवृत्ति जैसी है, उसके लिहाजसे तो आपको अपनी सेवाएँ, बिना किसी शर्तके, ब्रिटिश सरकारको अर्पित करनी चाहिए और 'अपने सम्प्रदाय'के हकोकी रक्षाके लिए उसीकी ओर देखना चाहिए। आप एक क्षणके लिए भी ऐसा न माने कि ब्रिटिश लोग आपकी शर्तो पर आपके रगरूट रख लेगे। यदि वे ऐसा करेगे तो आत्महत्या करेगे। आपको या तो पूरी तरह राष्ट्रवादी होना है, या स्पष्ट रूपसे साम्प्रदायिक बनकर ब्रिटिश या अन्य विदेशी ताकतपर निर्भर रहना है।

यह एक ऐसे व्यक्तिकी सुविचारित राय है जो आपको और सिखोको उतना ही प्यार करता है जितना कि अपने-आपको और वास्तवमे तो उससे भी ज्यादा — क्योकि मैने अपने-आपको प्यार करना बन्द कर दिया है।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २९-९-१९४०

१. अपने पत्रमें तारासिंहने कहा था कि कांग्रेसको सेनामें भरतीके काममें रुकावट नहीं डालनी चाहिए।

४४२. पत्र : लीलावती आसरको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ अगस्त, १९४०

चि० लीला,

मैं तो तुझे पत्र लिखता रहता हूँ। राखी मिली। तू घूमने नहीं जाती, यह बिलकुल ठीक नहीं करती। तू पछतायेगी। अन्य निश्चयोंके साथ सवेरे-शाम घूमने का नियम भी रख। उससे तेरा दिमाग ताजा रहेगा और पढ़ा हुआ अधिक फलीभूत होगा। प्राणि-विज्ञानकी पुस्तक यहाँ नहीं है। तुझे कौन-सी चाहिए? तू जब यहाँ आयेगी तब विज्ञानमें तुझे मदद मिलेगी। शकरीबहन नहीं आई। अभी नहीं आयेगी। सुशीला सितम्बरसे पहले तो नहीं ही आयेगी। दमयन्तीका बच्चा ठीक हो जायेगा। बच्चेको पालना कोई सरल काम नहीं है। राजकुमारी आ गई है। मीराबहन अभी यहीं है।

बापूके आशीर्वाद

श्री लीलावतीबहन उदेसी
कानजी खेतसी छात्रालय
६५ मिंट रोड
फोर्ट, बम्बई

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९९३७)से। सौजन्य लीलावती आसर

४४३. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१७ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

तुमने ठीक कहा है। जितना हो सके इतना अपने-आप कर लो लेकिन जो मुश्केल हल करनी ही चाहीये उस बारेमें मुझे अवश्य पूछो।

बा का मामला सनातन है। वह सहन करने योग्य है। मुझे बताते रहना। जितना मेरेसे हो सकेगा मैं कर लूगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५८)से

४४४. पत्र : हीरालाल शर्माको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
१७ अगस्त, १९४०

चि० शर्मा,

मैंने तुमारे खतका पूरा उपयोग किया है।[1] अब मुझे पूछते है जो नमूने तुमने दिये है उनके नाम-ठाम भेजे जायं। मगनी तो ठीक लगती है। तुमने लिखा है जो लोग तुमारी शिकायतके बारेमे तहकीकात करना चाहे तुमारे पास आवें। अब मुझे सब हकीकत भेज दो — शीघ्रातिशीघ्र।

तुमारे पैरका क्या हूआ: तुमने बहूत बेदरकारी बताई है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारे अपने बारेमे क्या हुआ?[2] उसका पूरा हाल भी लिखो। क्या कलेक्टर के पास गये थे?

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २८८

४४५. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
१८ अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके १५ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद।

नगला नवाबादसे प्राप्त सारी जानकारी मैंने दे दी। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि आपने जो तफसीलें माँगी हैं उनके बिना उल्लिखित मामलोंकी तहकीकात मुश्किल होगी। मैं उन सज्जनको तुरन्त लिख रहा हूँ[3] जिन्होंने मुझे पत्र भेजा था। अपेक्षित तफसीलें पेश करना शायद उनके लिए मुश्किल हो। हिंगनघाटके मामले-जैसे अपवादको छोड़कर, इन मामलोंका प्रत्यक्ष प्रमाण जुटाना कदाचित् असम्भव हो। लेकिन जितनी तफसीलें मिल सकती हैं, हासिल करनेकी कोशिश करूँगा।

१. हीरालाल-शर्माने युद्ध-कोषके लिए चन्दा एकत्र करने में अधिकारियों द्वारा जबरदस्ती किये जाने की शिकायत करते हुए उसके कुछ उदाहरण भी दिये थे। देखिए "पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको", पृ० ४२०।

२. पुलिस द्वारा कथित उत्पीड़नके बारेमें

३. देखिए पिछला शीर्षक।

आप मुझसे एक और पत्रकी आशा रख सकते हैं, जिसमें इन मामलोंके बारेमें और जानकारी दी जायेगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे . लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य राष्ट्रीय अभिलेखागार

४४६. पत्र : बहरामजी खम्भाताको[1]

१८ अगस्त, १९४०

आपने पत्र लिखकर अच्छा किया। मैं सोच ही रहा था कि आपकी ओरसे कोई पत्र क्यों नहीं आया। अल्सरको भगवान्की देन समझकर उसे आनन्दपूर्वक सहन कीजिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५६१) से। सी० डब्ल्यू० ५०३६ से भी, सौजन्य . तहमीना खम्भाता

४४७. आर्थिक समानता

पिछले सप्ताहके लेखमें[2] रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी तेरह मुद्दोंमें मैंने आर्थिक समानता भी गिनाई थी। उसके बारेमें हम यहाँ विचार करें।

आर्थिक समानताका मतलब है संसारके सब मनुष्योंके पास समान सम्पत्ति होना, अर्थात् सबके पास अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओंको पूरा करने लायक सम्पत्तिका होना। उदाहरणके लिए, यदि प्रकृतिने ही किसी मनुष्यको कोमल आमाशय दिया हो तो वह पाँच तोला आटा ही खा सकेगा, जबकि दूसरेको बीस तोले चाहिए, तो आर्थिक समानताकी दृष्टिसे दोनोंको अपने-अपने आमाशयके अनुसार आटा मिलना चाहिए। पूरे समाजका निर्माण इस आदर्शका अवलम्बन करके होना चाहिए। अहिंसक समाज और किसी आदर्शका पोषण नहीं कर सकता। पूर्ण आदर्श तक तो हम कभी नहीं पहुँच सकते, लेकिन उसे दृष्टिमें रखकर हमें अपना विधान बनाना और व्यवस्था करनी चाहिए। जिस हदतक हम अपने आदर्श तक पहुँचेंगे, उसी हदतक सुख

१. बहरामजी खम्भाताको लिखे महादेव देसाईके पत्रके नीचे ही गांधीजी ने अपनी ओर से यह पत्र लिख दिया था।

२. देखिए पृ० ४२४-२७।

और सन्तोष प्राप्त करेंगे, और उतने ही अंशमे माना जायेगा कि हमने सामाजिक अहिंसाको सिद्ध कर लिया।

आर्थिक समानताके इस धर्मका पालन एक मनुष्य भी कर सकता है, उसका पालन करने के लिए उसे दूसरोंके साथकी आवश्यकता नही है। और जब एक व्यक्ति उसका पालन कर सकता है तो यह स्पष्ट ही है कि एक समूह या समुदाय भी पालन कर सकता है। यह कहने की जरूरत इसलिए है कि अपने धर्म-पालनमें किसी को भी तबतक रुके रहने की जरूरत नही होती जबतक दूसरे उसका पालन न करने लगें। फिर, जबतक ध्येयके अन्ततक पहुँचने की आशा न हो, तबतक कुछ भी त्याग न करने की वृत्ति भी बहुधा लोगोमे देखी जाती है। यह वृत्ति भी हमारी प्रगतिको रोकती है।

अब इस बातपर विचार करे कि अहिंसाके द्वारा आर्थिक समानता कैसे लाई जा सकती है। पहला कदम यह है जिसने इस आदर्शको अपनाया हो, उसे अपने जीवनमे आवश्यक परिवर्तन करने चाहिए। वह हिन्दुस्तानके गरीबोको अपने समान मानकर अपनी जरूरतें कम करे, अपनी धन कमाने की शक्तिको सयमित करे, जो धन कमाना हो उसे प्रामाणिकताके साथ कमाने का निश्चय करे, यदि सट्टा खेलने की आदत हो तो उसे त्याग दे, घर भी अपनी मामूली जरूरतके लायक ही रखे, और सब प्रकारसे अपने जीवनको सयमित बनाये। और इस प्रकार जब वह अपने जीवनमें सभी सम्भव सुधार कर ले, तब इस समानताके आदर्शका प्रचार अपने साथियो और पडोसियोके बीच भी करे।

आर्थिक समानताके आधारकी यह मान्यता है कि धनिक लोग ट्रस्टी है। इस आदर्शके अनुसार धनी व्यक्तिको अपने पडोसीसे एक कौडी भी ज्यादा अपने पास रखने का अधिकार नही है। तो क्या उसके पास जो अधिक धन है, वह उससे छीन लिया जाये? यदि हम ऐसा करेंगे तो हमे हिंसाका आश्रय लेना पडेगा, और हिंसाके सहारे ऐसा करना सम्भव हो तो भी उससे समाजको फायदा नही होगा, क्योकि ऐसा करके समाज एक ऐसे मनुष्यकी शक्तिको खो बैठेगा जिसमे द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति है। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि धनिक व्यक्तिकी जितनी जरूरतें मान्य हो सकती है उतनी जरूरते पूरी करके बाकीके लिए वह समाजका ट्रस्टी बने। यदि वह प्रामाणिकताके साथ सरक्षक बनेगा तो जो द्रव्य वह उत्पन्न करेगा उसका सद्व्यय भी करेगा। फिर जब मनुष्य अपनेको समाजका सेवक मानेगा, समाजके लिए धन कमायेगा, समाजके कल्याणके लिए उसका उपयोग करेगा, तो उसकी कमाई मे शुद्धता आयेगी और उसके व्यावसायिक साहसमे भी अहिंसा होगी। सारी कार्य-प्रणालीकी व्यवस्था यदि इस प्रकार की जाये तो समाजमे बिना किसी सघर्षके ही मूक क्रान्ति हो जाये।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या इतिहासमे मनुष्यके स्वभावमे ऐसा परिवर्तन होने का उदाहरण मिलता है। व्यक्तियोंमे तो ऐसा परिवर्तन हुआ ही है। बडे पैमाने पर समाजमे परिवर्तन हुआ हो, यह शायद सिद्ध नही किया जा सकता। इसका अर्थ

इतना ही हुआ कि व्यापक अहिंसाका प्रयोग आजतक हुआ ही नहीं है। हम लोगोंमें यह झूठी मान्यता घर कर गई है कि अहिंसाका पालन व्यक्ति ही करे और वह उन्हीं तक सीमित रहे। सचमुच देखा जाये तो ऐसा नहीं है। बल्कि, अहिंसा सामाजिक धर्म है और सामाजिक धर्मके रूपमें ही उसका पालन किया जा सकता है, यह समझाने के लिए ही मेरा प्रयत्न और मेरा प्रयोग है। प्रयोग नया है, इसलिए गलत मानकर इसे छोड दिया जाये, ऐसा तो इस युगमें कोई नहीं कहेगा, और कठिन है इसलिए असम्भव है, ऐसा भी इस युगमें कोई नहीं कहेगा। क्योंकि जो पहले कभी नहीं हुआ ऐसा भारी परिवर्तन होते हमने अपनी आँखों देखा है। जो पहले असम्भव लगता था उसे सम्भव होते भी हमने देखा है। मेरी मान्यता है कि जितना साहस हमने हिंसाके क्षेत्रमें सम्भव होते देखा है उससे बहुत अधिक साहस अहिंसाके क्षेत्रमें सम्भव है, धर्मोके इतिहास इस बातके प्रमाणोंसे भरे पड़े हैं। समाजमें से धर्मको उखाड फेंकने का प्रयत्न वन्ध्यासे पुत्र उत्पन्न करने की तरह ही व्यर्थ होगा और यदि कहीं सफल हो गया तो समाजका नाश हो जायेगा। धर्मके रूपान्तर हो सकते हैं। उसमें विद्यमान अन्धविश्वास, कुरीतियाँ और अपूर्णता दूर हो सकती है, हुई भी है और होती ही रहेगी। लेकिन धर्म तो जबतक संसार है, चलेगा ही, क्योंकि संसारका आधार एकमात्र धर्म ही है। धर्मकी अन्तिम परिभाषा ईश्वरका नियम है। ईश्वर और उसका नियम दोनों परस्पर भिन्न नहीं हैं। ईश्वर अर्थात् अटल, जीवन्त नियम। उसका पार किसीने नहीं पाया, लेकिन अवतारों और पैगम्बरोंने तपस्याके द्वारा उसके नियमोंके कुछ अंशोंकी झाँकी संसारको दिखाई है।

लेकिन बहुत प्रयत्नके बावजूद यदि धनिक लोग सच्चे संरक्षक न बनें और अहिंसाके नामपर भूखों मर रहे करोडों लोग अधिकाधिक कुचले जायें, तो क्या किया जाये? इस पहेलीका हल खोजने में ही अहिंसात्मक असहयोग और अहिंसक अवज्ञाके साधन हाथ लगे हैं। कोई भी धनिक गरीबोंके सहयोगके बिना धन नहीं कमा सकता। मनुष्यको अपनी हिंसक शक्तिका भान है, क्योंकि वह तो उसे लाखों वर्ष पूर्व विरासतमें मिली थी। चार पाँवकी जगह जब वह दो पाँव और दो हाथका प्राणी हुआ, तभी उसमें अहिंसाकी शक्ति भी आई। हिंसाकी शक्तिका तो उसे आरम्भ से ही भान था, लेकिन अहिंसाका भान उसमें धीमे-धीमे किन्तु निश्चयपूर्वक रोज बढ़ने लगा। यह भान गरीबोंमें फैले, तो वे बलशाली बनें, और जो आर्थिक असमानता वे भोग रहे हैं, उसे अहिंसाके मार्गसे मिटाना सीखें। असहयोग और अहिंसक अवज्ञाके बारेमें भी क्या मेरे लिखने की जरूरत है? 'हरिजनबन्धु' का कौन पाठक इन बातोंको नहीं जानता?

सेवाग्राम, १९ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २४-८-१९४०

४४८. पत्र : जमनालाल बजाजको

१९ अगस्त, १९४०

चि० जमनालाल,

इसके साथ पत्र[1] सुधारकर वापस भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०१३)से

४४९. पत्र : अबुल कलाम आजादको

१९ अगस्त, १९४०

मेरे इस कथनसे कि मैं आपका विश्वासपात्र कुत्ता हूँ, आपको दुःख नहीं करना चाहिए। कुत्ता भी बडी कुलीनता दिखानेवाला हमारा चौपाया भाई है।...[2]

भाष्यकारोंकी दृष्टिमें वह कुत्ता तो धर्म था।[3] लेकिन अगर कुत्ता पागल हो जाये, तो आप उसे अलग कर सकते हैं, अलग कर देना चाहिए। अब मेरा सुझाव यह है कि मुझसे जो भूल हो गई है उसे सुधार दीजिए। जनरलके रूपमें मैंने अपने अधिकारका अतिक्रमण किया। राजाकी अहिंसाके अपने अर्थको विकृत करके प्रस्ताव[4] पेश करने दिया, मेरी यह भूल या तो आप सुधार दीजिए या फिर मुझे अलग कर दीजिए। अगर सुधारें तो क्या किया जाये, इसका नक्शा मेरे मनमें है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य : नारायण देसाई

१. वाइसरायको लिखा गया यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. साधन-सूत्रके अनुसार

३. **महाभारत,** स्वर्गारोहण पर्व

४. जुलाईका दिल्ली प्रस्ताव; देखिए परिशिष्ट ३ और ४। देखिए "दिल्ली प्रस्ताव", पृ० २८८-९० भी।

४५०. पुलिसकी मर्यादा

एक मित्र लिखते हैं :[1]

इस लेखमें उठाये गये प्रश्न महत्त्वके हैं और प्रत्येक जिम्मेदार सत्याग्रहीके लिए विचारणीय हैं।

यदि हममें सच्ची अहिंसाका आविर्भाव हो गया होता, यदि हमारी अहिंसक मानी जानेवाली लड़ाइयाँ सचमुच अहिंसक होतीं तो ऐसे प्रश्न उठ ही नहीं सकते थे, क्योंकि उनका निबटारा अपने-आप हो गया होता।

पृथ्वीके ठेठ उत्तरी ध्रुवके आगेके प्रदेशका हमें अनुभव नहीं है, इसलिए उसके कल्पना-चित्र ही हम खींच सकते हैं, लेकिन उसमें प्रत्यक्ष देखने-जैसी तृप्ति हो ही नहीं सकती। यही बात अहिंसा-सम्बन्धी प्रश्नोंके बारेमें है।

यदि सभी कांग्रेसी प्रामाणिक रहे होते तो आज हमारी स्थिति त्रिशंकु-जैसी न होती। हम सर्वत्र अहिंसाके चिह्न देखते, हममें साम्प्रदायिक एकता होती, छुआछूत का भूत हमारे बीचमें से निकल गया होता और समाज बहुत-कुछ सुव्यवस्थित हो गया होता। लेकिन हम इसमें से कुछ भी नहीं देखते, इतना ही नहीं, बल्कि उलटे देखते हैं कि अनेक स्थानोंमें कांग्रेसके प्रति द्वेष व्यक्त किया जाता है। हमारे वचनोंपर अनेक लोग विश्वास नहीं करते। मुस्लिम लीग और बहुत-से राजाओंका कांग्रेसमें विश्वास नहीं है, बल्कि उनके प्रति आज तो वैरका भाव ही है। यदि हममें सच्ची अहिंसा काम कर रही होती तो आज कांग्रेसको किसीका डर न होता बल्कि वह सबकी प्रेम-भाजन बन गई होती। अत: जिनका अहिंसामें अटल विश्वास है, उनके लिए फिलहाल तो मैं काल्पनिक चित्र ही खींच सकता हूँ।

जबतक हममें सच्ची अहिंसाका प्रादुर्भाव नहीं होगा तबतक हम अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जब अहिंसकोंका बहुमत हो जायेगा तभी हम सत्ता प्राप्त कर सकेंगे, इसका अर्थ यह हुआ कि तब जनताका बहुत बड़ा भाग अहिंसाका अनुयायी हो गया होगा। जब ऐसी स्थिति होगी तब हिंसाकी वृत्ति बड़ी हदतक समाप्त हो गई होगी और हिंसक उपद्रव भी काबूमें आ गये होंगे।

इसके बावजूद मैंने स्वीकार किया है कि अहिंसक शासनमें सीमित रूपमें पुलिस की शक्तिके लिए स्थान होगा। यह मान्यता मेरी अपूर्ण अहिंसाकी द्योतक है, क्योंकि मैं यह कह सकता हूँ कि हम फौजके बिना अपना काम चला सकेंगे, तथापि मुझमें

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बाह्य आक्रमणोंका सामना करनेके लिए अहिंसाकी सार्थकताको मानते हुए भी यह तर्क प्रस्तुत किया था कि जबतक सामाजिक अन्याय और गरीबी मौजूद है, तबतक आन्तरिक उपद्रव तो होंगे ही, और इसलिए पुलिस-दलकी आवश्यकता भी रहेगी। उन्होंने गांधीजी से पूछा था कि क्या वे सोचते हैं कि पुलिस-दल हमेशा रखा जायेगा।

यह कहने की हिम्मत नही है कि हम पुलिसके बिना भी चला लेंगे। हाँ, मैं ऐसी स्थितिकी कल्पना अवश्य करता हूँ जब पुलिसकी भी जरूरत नही पडेगी। लेकिन इसका सच्चा पता तो अनुभवसे ही लगेगा।

लेकिन वह पुलिस आजकी पुलिससे बिलकुल अलग प्रकारकी होगी। उसमें अहिंसाको माननेवालो की भरती होगी। वे जनताके सेवक होंगे, सरदार नही। लोग उनकी मदद करते होगे और रोज-रोज कम होते जाते उपद्रवोंका वे पुलिसके साथ मिलकर आसानीसे सामना कर सकेगे। पुलिसके पास कुछ शस्त्र होगे, लेकिन उनका प्रयोग शायद ही होगा। सच पूछे तो उस पुलिसको सुधारकोका दल मानना चाहिए। ऐसी पुलिसका उपयोग मुख्य रूपसे चोरो-डाकुओपर काबू पाने-भरके लिए होगा। अहिंसक शासनमे मजदूरो और मालिकोंके झगड़े क्वचित् ही होगे, हडताले शायद ही होगी, क्योकि अहिंसक बहुमतकी प्रतिष्ठा सहज ही इतनी होगी कि समाजके आवश्यक अग उसके शासनका सम्मान करनेवाले होगे। इसी प्रकार इस व्यवस्थामें साम्प्रदायिक झगड़े भी नही होने चाहिए। हाँ, इतना याद रखना चाहिए कि कांग्रेसके हाथमे सत्ता होगी तो इक्कीस वर्ष तथा उससे ऊपरके अधिकतर स्त्री-पुरुष मताधिकारी होगे। आजके सकुचित विधानके लिए इस काल्पनिक चित्रमे स्थान नही है।

सेवाग्राम, १९ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ३१-८-१९४०

४५१. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
२० अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मेरे ९ तारीखके पत्रकी प्राप्तिकी सूचना मुझे अबतक नही मिली है, जो आपके लिए बडी असामान्य बात है। इसलिए यह सोचकर कि कही वह भटक न गया हो, साथमे आपको उसकी एक नकल भेजकर खुदको पूरी तरह आश्वस्त कर लेता हूँ।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे. लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. इस पत्रपर अपने निजी सचिवके नाम वाइसरायने यह टिप्पणी लिखी थी: "पत्रकी प्राप्ति सूचित करनेवाले पत्रकी पहुँचकी सूचना देने के लिए फिर पत्र लिखा जाये, यह शायद अनावश्यक ही माना जायेगा। लेकिन हम उदारतासे काम लेते हुए कह सकते है कि आपका पत्र मिला, जिसके लिए आभारी हूँ। यह पत्र स्पष्ट ही अधिक खुलने का निमन्त्रण और परेशानीका लक्षण है, लेकिन हम कुछ नहीं करेंगे।"

४५२. पत्र : भोलानाथको

सेवाग्राम
२० अगस्त, १९४०

भाई भोलानाथ,

मेरा खयाल है मैंने तुमको आशीर्वाद भेजे है लेकिन तुम्हारा पत्र मेरे सामने है इसलिए यह लिखता हूँ। तुम्हारे कार्यमें सफलता मिले।

बापुके आशीर्वाद

गांधीजी और राजस्थान, पृष्ठ २७५

४५३. फिर डॉ० लोहिया

श्री अच्युत पटवर्धनने न्यायालयके समक्ष डॉ० लोहियाके वक्तव्य और उनके अभियोगकी सुनवाई करनेवाले मजिस्ट्रेटके निर्णयकी नकल मुझे भेजने की कृपा की है। डॉ० लोहियाका सम्पूर्ण वक्तव्य युक्तिसगत है, किन्तु उसे पूरा-का-पूरा उद्धृत करने का लोभ सवरण करता हूँ। तथापि उसके प्रासगिक अश नीचे दे रहा हूँ

> अपनी समस्त प्रवृत्तियोंमें हमें अहिंसाका पालन करना होता है। अहिंसा की माँग केवल हमारे देशकी परिस्थितियाँ ही नहीं, बल्कि विश्व-भरमें व्याप्त परिस्थितियाँ कर रही हैं। यह केवल व्यावहारिक दृष्टिसे ही आवश्यक नहीं, वरन् नैतिक दृष्टिसे भी इष्ट है। गलत रिपोर्ट देने के कारण इस मुद्देपर यदि थोड़ी-बहुत गलतफहमी हुई भी होगी तो स्वयं रिपोर्ट देनेवाले ने अब उसे दूर कर दिया है। रिपोर्टके अनुसार मेरा कथन इस प्रकार था: "हथियारोंका सहारा लेते ही हमारा हृदय दुर्बल हो जाता है। जो हथियारोंपर भरोसा करते हैं वे अपने हृदयपर भरोसा नहीं रख सकते। वे अपने ही हथियारोंके गुलाम हो जाते हैं। उनमें अपनी कोई शक्ति नहीं रह जाती।"
>
> मैं लाठीके पुराने सिद्धान्त और उसके आधुनिक प्रतिरूप बमवर्षक विमान के सिद्धान्तका विरोधी हूँ। इन दोनो सिद्धान्तो और मानव-जीवनके अस्तित्वके बीच एक सहज अन्तर्विरोध है—ऐसा अन्तर्विरोध जो प्रति-दिन अधिकाधिक भीषण होता जा रहा है। अगले बीस वर्षोंमें यह तय हो जायेगा कि किसकी विजय होती है। यह द्वन्द्वकी स्थिति अधिक कालतक चलनेवाली नहीं है।

यदि मानव-जीवनको कायम रहना है तो उसके लिए केवल एक ही प्रकारकी व्यवथा सम्भव है। सारी दुनियामें सभी वयस्क लोगोंकी साझेदारीवाला लोक-शासन स्थापित होना चाहिए, और उसमें साम्राज्यवाद या पूँजीवादके लिए कोई स्थान नहीं होगा। यह शासन-व्यवस्था भारतीय जनताको जिस रूपमें प्रभावित करेगी, उसका मैंने अपने भाषणमें संकेत दिया है। सभी वयस्कोंकी साझेदारीवाले लोक-शासनके इस सिद्धान्तपर जोर देने के उद्देश्यसे ही मैंने महात्मा गांधीको तत्काल कार्यान्वित की जानेवाली एक शान्ति-योजना सुझाई थी। इस योजनाके सम्बन्धमें मैं किसी मौलिकताका दावा नहीं करता। योजनाकी तफसीलें इस प्रकार हैं:

१. सभी राष्ट्र स्वतन्त्र होंगे। नव-स्वतन्त्र राष्ट्र अपने संविधान अपनी-अपनी संविधान-सभाओंके माध्यमसे बनायेंगे।

२. सभी प्रजातियाँ समान हैं, और विश्वके किसी भी भागमें कोई प्रजातिगत विशेषाधिकार नहीं होगा। किसीके भी अपनी इच्छानुसार कहीं भी बसनेपर कोई राजनीतिक प्रतिबन्ध नहीं होगा।

३. एक देशके राष्ट्रिकों या सरकारके दूसरे देशमें जो भी ऋण या विनियोग होंगे वे या तो रद्द कर दिये जायेंगे या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरणो के निष्पक्ष निर्णयके लिए सौंप दिये जायेंगे। उस स्थितिमें उनका स्वामित्व व्यक्तियोंके नही, बल्कि राज्यके हाथमें होगा।

जब विश्वके सभी राष्ट्र ये तीन सिद्धान्त स्वीकार कर लेंगे तब चौथा अपने-आप अमलमें आ जायेगा।

४. पूर्ण निःशस्त्रीकरण होगा।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि महात्मा गांधीने इस शान्ति-योजना का अनुमोदन किया है।

अन्तमें मैं यह बता दूँ कि किसी भी राष्ट्रके प्रति मेरे मनमें कोई दुर्भावना नहीं है। मैं जर्मन लोगोंके बीच रहा हूँ, और उनकी सम्यक् शोधवृत्ति, वैज्ञानिक मानसिकता तथा कार्य-कुशलता मुझे बहुत रुची है। मुझे इस बातका दुःख है कि आज उन्हें एक ऐसे तन्त्रको ढोना पड़ रहा है जिसका परिणाम युद्ध और देश-विजय होता है। ब्रिटेनकी जनताको मैं इतने निकटसे नहीं जानता। मैं बेधड़क कहूँगा कि उनमें भी अनेक गुण हैं। यहाँ मैं अपने भाषण की दो पंक्तियाँ उद्धृत करने की अनुमति चाहूँगा: "मैं ब्रिटेनका विनाश नहीं चाहता। ब्रिटेनवालों ने हमारा बुरा किया है, लेकिन मैं उनका बुरा नहीं करना चाहता।" इस प्रसंगमें भी, मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि ब्रिटेनके लोगोंको एक ऐसे तन्त्रको ढोना पड़ रहा है जिसने विश्वके अनेक राष्ट्रोंको गुलाम बनाया है।

डॉ० लोहियाके बारेमें न्यायालयका कथन इस प्रकार है

> अभियुक्त एक उच्च कोटिका बौद्धिक और सुसंस्कृत व्यक्ति है। शायद उसने किसी यूरोपीय विश्वविद्यालयसे डॉक्टरेटकी उपाधि भी प्राप्त की है। वह ऊँचे सिद्धान्तों और नैतिक मान्यताओंवाला व्यक्ति है, और इसमें सन्देह नहीं कि उसके हेतुके पीछे पूरी ईमानदारी है। अपनी मान्यताओंके लिए कष्ट उठाने की उसे चिन्ता नहीं है और अपनेको दिये जानेवाले दण्ड अथवा उसकी अवधिकी वह बहुत परवाह नहीं करता। बेशक हम उसे कोई इसलिए सजा नहीं दे रहे हैं कि वर्तमान सरकारके सम्बन्धमें उसके अमुक राजनीतिक विचार हैं, क्योंकि सरकारका दावा है कि वह लोकतान्त्रिक है तथा उसका संचालन लोकमतका खयाल करके किया जाता है, और यह दावा जनताको यह अधिकार देता है कि वह अपनी समझके अनुसार, संवैधानिक रीतिसे, सरकारकी आलोचना कर सकती है। लेकिन जन-साधारणके साथ उस सरकारके सम्बन्धों के सन्दर्भमें उसे परेशानीमें पडने से बचाना हमारा कर्तव्य है। अभियुक्तने दोस्तपुरमें जो भाषण दिया उससे सरकारके प्रति जन-साधारणमें विरक्ति पैदा होगी, और सो भी ऐसे समयमें जब ब्रिटिश राष्ट्र तथा साम्राज्य एक ऐसे शत्रुसे जूझ रहा है जिसे उचित-अनुचितका कोई विचार ही नहीं है। इसलिए मैं मानता हूँ कि उसको लम्बे अर्सेतक या इन बादलोंके छँट जाने तक जेलमें नजरबन्द रखना वांछनीय है, और इस उद्देश्यको ध्यानमें रखकर मैं उसे दो वर्षके कठोर कारावासका दण्ड देता हूँ। उसे जेलमें 'बी' वर्गमें रखने की सिफारिश करता हूँ।

फिर उन्हें कठोर कारावास क्यों दिया गया है? सजाकी अवधिको तो समझ सकता हूँ, क्योंकि उन्हें जो अनिष्ट करने के योग्य माना गया है उसे करने से उन्हें रोकना ही चाहिए। इस कारावाससे क्या और भी अनिष्ट नहीं होगा? इसका निर्णय तो खैर सरकारको ही करने देना चाहिए। लेकिन लोग यह याद रखेंगे कि जिस देशमें राज्य जनताके प्रति उत्तरदायी नहीं होता उसमें देश-प्रेम और स्पष्टवादिता अपराध हैं। डॉ० लोहिया और अन्य कांग्रेसजनोंमें से एक-एकका कारावास हथौड़ेकी वह चोट है जो भारतकी गुलामीकी जंजीरको कमजोर बनाती है। सरकार कांग्रेसको सविनय अवज्ञा छेड़ने और वह अन्तिम प्रहार करने को आमन्त्रित कर रही है जिसे कांग्रेस कोई बेहतर समय — अर्थात् स्वयं ब्रिटेनवासियोंके लिए बेहतर समय — आने तक खुशीसे स्थगित रखती। यह बड़े अफसोसकी बात है।

सेवाग्राम, २१ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-८-१९४०

४५४. अनुचित उपयोग[1]

कश्मीरमे गजू हाउस नामक एक पेढी है। मै उसके किसी साझेदारको नही जानता और न यह जानता हूँ कि पेढी कौन-सा व्यवसाय करती है। श्री एच० कोटक, जो कुछ समय साबरमती आश्रम और बादमे अखिल भारतीय चरखा संघमे थे, संघ से अलग होने के बाद गजू हाउसमे काम करने लगे। उन्होंने गजू हाउसका और उसके साथ अपने सम्बन्धका विज्ञापन करने मे मेरी इजाजतके बिना मेरी एक चिट्ठीका उपयोग किया, जो मैने उन्हे निजी तौरपर और व्यक्तिगत रूपसे लिखी थी। इस अनुचित उपयोगकी ओर मेरा ध्यान दिलाया गया है। मैने अपनी चिट्ठीके ऐसे उपयोगके लिए श्री कोटकको फटकारा। उन्होने अपनी गलती मान ली है और लाहौरके 'ट्रिब्यून' मे निम्नलिखित नोटिस प्रकाशनार्थ भेजा है।[2]

मुझे खुशी है कि श्री कोटकने अपनी भारी भूल सुधार ली है।

सेवाग्राम, २१ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-८-१९४०

४५५. कांग्रेस कार्य-समितिके लिए प्रस्तावका मसौदा[3]

वर्धा
२१ अगस्त, १९४०

कार्य-समितिने भारतीय परिस्थिति के सम्बन्धमे वाइसरायकी इसी ८ तारीखकी घोषणा[4] और कॉमन्स सभामे भारत-मन्त्री द्वारा दिये गये वक्तव्यपर विचार किया है। कार्य-समितिकी राय है कि दोनो बहुत असन्तोषजनक और उत्तेजनात्मक हैं, क्योंकि इनमे स्पष्ट तथ्योकी उपेक्षा की गई है। भारतके साथ की गई ज्यादतियोंकी शृंखलामे इनसे एक और कडी जुड गई है। तमाम प्रत्याख्यानोके बावजूद यह

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

२. यहाँ नही दिया जा रहा है। नोटिसमें कोटकने स्वीकार किया था कि उनकी कार्रवाई बहुत ही अनुचित और सर्वथा अनधिकृत थी।

३. कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक वर्धामें १८ से २२ अगस्त तक हुई थी। प्रस्ताव सम्पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया था। जिस रूपमें वह पारित हुआ उसके लिए देखिए परिशिष्ट ८।

४. देखिए परिशिष्ट ७।

एक निर्विवाद तथ्य है कि देशमें कांग्रेस ही एक ऐसी राष्ट्रीय सस्था है जो असाम्प्रदायिक, गैर-वर्गीय और पूर्णत लोकतान्त्रिक है। यही एक सस्था है जो गत पचपन वर्षोंसे भारतके करोडो मूक जनोंका उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रतिनिधित्व करती आई है, और यह बात उसके अस्तित्व-कालमें बार-बार सिद्ध हो चुकी है। इसका सबसे जँचनेवाला प्रमाण, जो दुनियाकी समझमें आ सकता है, यह है कि ग्यारहमे से चारको छोडकर बाकी सभी प्रान्तोंमें कांग्रेसका निर्णायक बहुमत है, जो उसे भारतपर ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपे गये अधिनियमकी व्यवस्थाके अनुसार निर्वाचकोंकी सख्या बहुत सीमित होने के बावजूद प्राप्त हुआ। उक्त अधिनियममे यदि निर्वाचकोंकी सख्या सीमित रखने के लिए जोड-तोड न किया गया होता और यदि प्रतिनिधियोका निर्वाचन वयस्क मताधिकारके अनुसार हुआ होता तो सभी मानते है कि कांग्रेसको चुनावोंमें भारत-भरमे — और भारतीय रियासतोंमें भी — भारी विजय प्राप्त होती। भारतकी और कोई भी सस्था ऐसा दावा पेश नही कर पाई है। इस सबके बावजूद 'मुस्लिम लीग, दलित वर्गों तथा देशी नरेशो' का उल्लेख 'अलग-अलग घटक तत्त्वो' के रूपमें करके भारत-मन्त्रीने ब्रिटेनकी जनता तथा विश्व-मतको गुमराह किया है। इसमें सन्देह नही कि मुस्लिम लीग एक सशक्त सगठन है, जिसका पूरा-पूरा खयाल रखा जाना चाहिए। भारतके मुसलमानोंको सन्तुष्ट करना कांग्रेसका पहला काम है। ब्रिटिश सरकारने जो किया है वह यह कि अपनी सत्ताको सुदृढ करने तथा अपने स्वार्थके लिए भारतके विशाल ससाधनोंका दोहन करने के निमित्त वह मुसलमानोको हिन्दुओंके खिलाफ और हिन्दुओंको मुसलमानोंके खिलाफ भडकाती रही है। उसीने पृथक् निर्वाचक-मण्डलोका जहर घोलकर अन्तमे राष्ट्रको दो शिविरोमें बाँट दिया। इसलिए कांग्रेस ब्रिटेनके इस दावेका खण्डन करती है कि जहाँतक मुसलमानोंके हितोको हिन्दू बहुमतमे खतरा हो सकता है, उनकी रक्षा करना वह अपना विशेष दायित्व मानता है। कांग्रेसने यह दावा किया है कि दोनोकी राजनीतिक और आर्थिक अवस्था एक-सी है। कांग्रेसने मुसलमानोके धार्मिक तथा सास्कृतिक अधिकारोकी पूरी रक्षा करने का वचन दिया है। जहाँतक दलित वर्गोंका सम्बन्ध है, निर्विवाद तथ्य यह है कि ब्रिटिश सरकार उनकी हिफाजत करने में असमर्थ है। सभी स्वीकार करते हैं कि जो अन्याय उन्होंने सहा है और सह रहे है वह राष्ट्रके और किसी हिस्सेको नहीं सहना पडा है। लेकिन उनके मार्गकी कठिनाइयाँ सामाजिक तथा धार्मिक हैं। उनका निराकरण किसी भी विदेशी सरकारकी सामर्थ्यसे बाहरकी चीज है। ब्रिटिश सरकारने कुल यही किया है कि हिन्दुओंके बीच — जिनके कि दलित वर्ग अभिन्न अग हैं — फूटके बीज बोये हैं। दलितोके एक अलग वर्ग-जैसी तो कोई चीज ही नही है। विशेष रूपसे उन्हीके हितोकी रक्षाका ध्येय लेकर चलनेवाला कोई भी एक सगठन उन सबका प्रतिनिधित्व नही कर सकता। उनमें कोई वर्ग-चेतना नही है। अगर ब्रिटिश सरकारका बस चलता तो जिस तरह उसने मुसलमानोके लिए पृथक् निर्वाचक-मण्डल की सृष्टि की उसी प्रकार उनके लिए भी ऐसे निर्वाचक-मण्डलकी व्यवस्था करके

हिन्दू समाजके टुकडे कर दिये होते और सवर्ण हिन्दुओं तथा अवर्ण हिन्दुओ, अर्थात् दलित वर्गो, दोनोंको बरबाद कर दिया होता। ब्रिटिश सरकारको यह भली-भाँति मालूम है कि कांग्रेसके मन्त्रित्व-कालमे इन वर्गोके कानूनी दर्जेमे अभूतपूर्व सुधार हुआ। उसे यह भी मालूम है कि अस्पृश्यता-निवारण कांग्रेसके कार्यक्रमका एक अग है। वह जानती है कि उनकी सामाजिक अवस्थामे सुधार लाने के लिए कांग्रेस सतत प्रयत्न करती रही है। इसलिए ब्रिटिश सरकारका कांग्रेसके विरुद्ध उनके सरक्षककी यह मुद्रा अपनाना झूठा और पाखण्डपूर्ण है। उतना ही झूठा उसका यह दावा है कि वह कांग्रेसके विरुद्ध देशी नरेशोके हितोकी रक्षक है। ब्रिटिश सरकार जानती है कि ये नरेश उसीकी सृष्टि है, जिनके अस्तित्वको वह पूरे भारतपर अपना आधिपत्य जमाये रखने के लिए कायम रखे हुए है। भारतकी स्वतन्त्रताकी माँगके खिलाफ इन लोगोके हितोकी दुहाई देना किसी भी तरहसे उचित नही हो सकता।

ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस प्रस्तावका[1] ठुकराया जाना इस बातका प्रमाण है कि वह भारतकी इच्छाके विरुद्ध अपनी तलवारके जोरपर उसपर अपना आधिपत्य कायम रखने को कृत-सकल्प है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वह जन-समर्थनसे सर्वथा विरहित भारत रक्षा अधिनियमके अधीन कांग्रेसके कतिपय उत्कृष्ट कार्यकर्त्ताओको जेलोमे डालकर धीरे-धीरे कांग्रेसकी शक्तिकी जडे काट रही है।

कांग्रेस प्रस्ताव इसी सरकारको मुखातिब था, और आशा की जा रही थी कि कांग्रेसकी सद्भावनाको, उसके दोस्तीके लिए बढे हाथको वह पहचानेगी, उसकी कद्र करेगी और स्वय वैसी ही भावनाओका परिचय देगी। मगर इसके बजाय उसे ऐसे कारणोसे ठुकरा दिया गया जो, जैसा कि दिखाया जा चुका है, झूठे और पाखण्डपूर्ण है।

यह सर्वविदित है कि यह पेशकश गाधीजी की सलाहके खिलाफ की गई थी। उन्होंने कार्य-समितिके सदस्योको आगाह किया था कि स्वतन्त्रताकी घोषणा और निर्वाचित विधान-मण्डलके प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय कार्यकारिणीके अविलम्ब गठन के बदले युद्धमे सक्रिय रूपसे सहयोग करने का वचन देकर कांग्रेस अपनी नैतिक स्थिति का परित्याग कर रही है। इस प्रस्तावका यह कोई जवाब नही होगा कि वर्तमान अधिनियमके अधीन ऐसा किया ही नही जा सकता था। युद्धकी दृष्टिसे अविलम्ब की जानेवाली कार्रवाईके रूपमे वाछित परिवर्तन घटे-भरके अन्दर किया जा सकता था, लेकिन ब्रिटिश सरकार भारतपर अपना कब्जा छोडना नही चाहती थी, और न अब चाहती है। घटनाक्रमने कार्य-समितिको यह मानने पर विवश कर दिया है कि गाधीजी के नैतिक दृष्टिकोणसे न सही, कमसे-कम विशुद्ध राजनीतिक धरातल पर तो उनकी नीति बिलकुल दुरुस्त थी। जो कांग्रेस ब्रिटिश सत्ताको देशसे बाहर निकालने के लिए पिछले २० वर्षोसे अहिंसाका आग्रह करती रही है उसे यदि युद्धके

१. जिसमें युद्ध-प्रयत्नोंमें सहयोग देने का वचन दिया गया था, बशर्ते कि ब्रिटेन भारतकी स्वतन्त्रताको स्वीकार कर ले और केन्द्रमें एक राष्ट्रीय सरकार बनाये। यह प्रस्ताव पूनामें २७ और २८ जुलाईको आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें पास किया गया था।

यन्त्रके रूपमें परिवर्तित किया जायेगा तो निश्चित रूपसे वह अपनी मूल प्रकृतिसे वंचित हो जायेगी और उस मूक जन-साधारणके साथ अन्याय करेगी जो आजतक उसके हर आह्वानका अनुकूल उत्तर देता रहा है। इसलिए कार्य-समिति ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस प्रस्तावकी अस्वीकृतिको एक अटपटी और विषम स्थितिसे उबरने का ईश्वर-प्रदत्त अवसर मानती है। अतएव कार्य-समिति बता देना चाहती है कि इस प्रस्तावको मंसूख माना जाये। अब से यह अमल-बाहर है। कार्य-समितिको फिरसे गांधीजीवाली स्थिति अपनानी है, और जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, उसे एक अहिंसात्मक समाजकी रचनाका प्रयत्न करना है और गांधीजी की भाँति यह विश्वास लेकर चलना है कि एक ऐसे राज्यका निर्माण करना सम्भव है जो एक लोकतान्त्रिक पद्धतिके अधीन - जिसमें किसी प्रकारकी हिंसाके लिए कोई स्थान नहीं होगा और जो अपनी सरल आचार-संहिताके ही कारण किसी आक्रमणकारीके समक्ष आक्रमण करने का कोई प्रलोभन उपस्थित नहीं करेगी - काम करते हुए समग्र मानव-जातिके प्रति अपनी सद्भावना-मात्रके बलपर पूरे विश्वके विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा कर पायेगा।

इसका स्वाभाविक अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसको अब अपनी स्थितिकी न्याय्यता सिद्ध करनी है, और उस धीमी मृत्युसे अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करना है जिसके लिए ब्रिटिश सरकारने वे उपाय अख्तियार किये हैं जिनसे वह काम ले रही है।

कार्य-समितिको इस बातका गहरा दुख है कि कांग्रेसकी ब्रिटिश सरकारको परेशान न करने की इच्छाका उस सरकारने तिरस्कार किया है और इस प्रकार कांग्रेसको अपने आमूल राजनीतिक विनाशसे अपनी रक्षा करने के उपाय करने को विवश कर दिया है। इसलिए कार्य-समिति गांधीजी को इस कामके लिए आमन्त्रित और नियुक्त करती है कि कांग्रेस तथा राष्ट्रीय सम्मानकी सुरक्षाके लिए वे जो उपाय करना ठीक समझें सो करें, और वह सभी कांग्रेस-संगठनों तथा कांग्रेसजनोंसे अनुरोध करती है कि गांधीजी स्वयं, या कार्य-समितिके माध्यमसे, अथवा अन्य प्रकारसे जो निर्देश जारी करें उसका वे पालन करें।

कार्य-समिति यह विदित कराना चाहती है कि मुस्लिम लीग या मुसलमानों या किसी भी अन्य संगठन अथवा व्यक्तिसे उसका कोई झगड़ा नहीं है। और देशी नरेशोंके प्रति भी उसमें मात्र सद्भावना ही है। उसकी अहिंसा यदि अहिंसा शब्द को सार्थक करनेवाली है तो वह उसके लिए इस बातकी गुंजाइश ही नहीं छोड़ती कि कांग्रेस उस राष्ट्रके किसी भी हिस्सेके प्रति कोई दुर्भावना रखे जिसका सेवक कहलाने में वह गौरवका अनुभव करती है। और ब्रिटेनकी जनताके प्रति भी कांग्रेसके मनमें सद्भावना-ही-सद्भावना है। इस जीवन-मरणके संघर्षमें प्रवृत्त होते हुए — और उसे इसमें प्रवृत्त तो होना ही है — कांग्रेसके मनमें भारतके करोड़ों मूक और मेहनतकश मानवोंके और उनके माध्यमसे विश्वके समस्त दीन-दुखी जनोंके परम कल्याणके अतिरिक्त और किसी बातका विचार नहीं हो सकता है। उस कल्याणको

साधने के लिए काग्रेसने सबसे अहानिकर और सबसे शक्तिशाली तरीका चुना है—विशुद्ध अहिंसाका तरीका।

कार्य-समिति इस काममे ससार-भरकी अच्छाईकी सारी ताकतोका सहयोग चाहती है।

[अग्रेजीसे]

ए० आई० सी० सी० फाइल न० १२५१, १९४०। सौजन्य: नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

४५६. हिन्दी पाठकोंसे

जबसे मैने 'हरिजनबधु'मे गूजराती लिखना शरू किया है तबसे भले मीठे लब्जोमें सही लेकिन पाठकोंके तरफसे शिकायत आ रही है कि मैंने गूजरातीका पक्षपात किया। मैंने इस शिकायतका उत्तर तो दिया लेकिन पाठकोंको उससे सतोष नही मिला है। इसलिये वियोगीजी[1] लिखते है कि कुछ न कुछ तो 'हरिजनसेवक' के लिये ही मुझे लिखना चाहिये। इस बारेमे मुझे समजाने की आवश्यकता ही नही है, क्योंकि राष्ट्रभाषामे लिखना मुझे प्रिय है। इसलिये इतना ही कहू कि मैं कोशीश करूगा। काग्रेसने राष्ट्रभाषाको हिंदुस्तानी माना है। हिन्दुस्तानी वह भाषा है जो उत्तरमे हिंदु-मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या उर्दू लिपिमे लिखते है। मेरी कोशीश ऐसी हिन्दुस्तानीमे लिखने की रहेगी।

सेवाग्राम, वर्धा, २१ अगस्त, १९४०

सूचनाकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६३)से

१. वियोगी हरि, **हरिजनसेवकके** सम्पादक

४५७. पत्र : कन्हैयालालको

सेवाग्राम, वर्धा, सी० पी०
२१ अगस्त, १९४०

भाई कन्हैयालाल,

मीरावाई इस वक्त दूसरे इरादेसे आ रही है। कुच्छ खास कारण जो विल्कुल निर्दोप है। वह तपश्चर्या करना चाहती है। किसी प्रवृत्तिमे हिस्सा लेना नही चाहती है। सिर्फ भगवद्भजन और कातने मे अपना समय कई[1] अर्से तक व्यतीत करना चाहती है। मै जानता हू तुमने मीरावाईको वहुत मदद दी है। तुमको मीरावाईका सत्सग प्रिय है ऐसा समझकर ही उनको वहा जाने देता हू। तुमको कुच्छ भी असुविधा लगे तो मुझे लिखो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १००५१)से। सी० डब्ल्यू० ६४५६ से भी

४५८. सलाह : मैसूरके कांग्रेसियोंको[2]

[२२ अगस्त, १९४० के पूर्व]

वताया गया है कि गांधीजी ने इस बातपर जोर दिया है कि कोई भी शत-प्रतिशत अहिंसावादी कांग्रेसी, चाहे वह रियासती कांग्रेसका हो या ब्रिटिश भारतके किसी प्रान्तका, अपने रुपये-पैसेसे किसी ऐसे काममें सहयोग नहीं दे सकता जिसमें वर्वरता का व्यवहार करना पड़ता हो। गांधीजी ने यह भी कहा वताते हैं :

यह निश्चय करना मैसूर काग्रेसका ही काम है कि क्या उसमें अपने विश्वास के अनुरूप आचरण करने का इतना साहस है या नही कि वह मेरा साथ दे सके। १९१७ की घटनाका उदाहरण देने से कोई फायदा नही हो सकता। उस समय मेरे पास देने को कोई सन्देश नही था। अब मुझमे अपने इस विश्वासपर अमल करने का साहस है कि कोई अहिंसावादी व्यक्ति युद्ध-प्रयत्नोमे सहयोग नही दे सकता। उस

१. कुछ

२. मैसूरके काग्रेसजनोंकी अलग-अलग प्रकारकी रायोको देखते हुए सर्वश्री के० टी० भाष्यम और के० सी० रेड्डीने गाधीजीसे पूछा था कि यदि मैसूर रियासत अपनी प्रजासे वायदा करे कि वहाँ जिम्मेदार सरकार स्थापित की जायेगी तो क्या रियासती काग्रेस युद्धकी कोशिशोमें सहयोग दे सकती है।

समय यह मेरा केवल व्यक्तिगत विश्वास था। हालके अनुभवोंसे मुझे इस विश्वासको और विस्तृत क्षेत्रमें — प्रतिरक्षाके क्षेत्रमें भी — लागू करने का साहस मिला है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-८-१९४०

४५९. पत्र : ग० वा० मावलंकरको

२४ अगस्त, १९४०

भाई मावलंकर,[1]

भाई प्रभाशंकर[2] यहाँ आये हैं। उन्होंने अपनी दुःखकी गाथा मुझे सुनाई। यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई कि यह काम तुम्हारे हाथमें सौंपा गया है। मैं जानता हूँ कि तुमसे जो-कुछ हो सकेगा वह तुम करोगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२४८) से

४६०. अ० भा० कां० कमेटीके लिए प्रस्तावकी रूपरेखा

२५ अगस्त, १९४०

कार्य-समिति और अ० भा० कांग्रेस कमेटीको नीचे लिखे ढंगका एक प्रस्ताव पास करना चाहिए

१ ब्रिटिश सरकारके वक्तव्यों और निर्णयको ध्यानमें रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके पूना प्रस्तावमें[3] की गई पेशकश मंसूख हो गई है और अब वह लागू नहीं है। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे किये गये प्रस्ताव अस्वीकार किये जाते हैं और कांग्रेसको, जिसने गत नवम्बर महीनेमें ब्रिटिश सरकारसे असहयोग करते हुए एक कदम उठाया था, भारतीय जनताके सम्मान और अधिकारोंकी रक्षाके लिए, उस दिशामें और भी कदम उठाने चाहिए और ब्रिटिश सरकारकी

१. कांग्रेसी नेता, बम्बई विधान-सभाके अध्यक्ष और बादमें लोकसभाके अध्यक्ष

२. प्रभाशंकर पट्टणी, भावनगर राज्यके दीवान

३. अपनी २७ और २८ जुलाईकी बैठकमें अ० भा० कां० कमेटीने कार्य-समितिके उस दिल्ली प्रस्तावका अनुमोदन किया था जिसमें भारतकी पूर्ण स्वतन्त्रताकी स्पष्ट घोषणा और केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकारके गठनकी शर्तपर ब्रिटिश सरकारको उसके युद्ध-प्रयत्नमें सहयोग देने की तत्परता बताई गई थी। एक अन्य प्रस्तावमें कार्य-समितिने आन्तरिक अव्यवस्थासे निबटने और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साधनके रूपमें अहिंसामें अपनी आस्था प्रकट करते हुए बाहरी आक्रमणसे देशकी रक्षा करने में इस साधनका सहारा लेने में असमर्थता व्यक्त की थी।

उन कारगुजारियोका प्रतिरोध करना चाहिए जो राष्ट्रके लिए नुकसानदेह है। अ० भा० का० कमेटी जनतासे अनुरोध करती है कि वह युद्धमें अथवा युद्धके लिए पैसा या आदमी सुलभ कराने मे किसी प्रकारका सहयोग न करे।

२ प्रस्तावमे ब्रिटिश सरकारकी दमनात्मक कार्रवाइयोका — कांग्रेसजनोकी गिरफ्तारी आदि, भारत रक्षा अधिनियमके अमल और भारतीय राष्ट्रको दबाने, उसपर तलवारके जोरपर शासन करने तथा अपनी इच्छा थोपने और आपसी फूट पैदा करने की सरकारी कोशिशोका — उल्लेख होना चाहिए।

३ इस प्रकार जो स्थिति उत्पन्न हो गई है वह असह्य है और यदि उसे स्वीकार कर लिया गया तो उसका मतलब राष्ट्रका अपमान, उसकी सतत दासता होगा।

४ इसलिए अब कांग्रेसको रामगढ प्रस्तावके अनुसार काम करना चाहिए और इस प्रयोजनके लिए सत्याग्रह आरम्भ करना चाहिए। समिति महात्मा गाधीसे अनुरोध करती है और उन्हे अधिकार देती है कि वे राष्ट्रका मार्ग-दर्शन करें और इस बातके लिए जनताका आह्वान करती है कि इस सत्याग्रहको प्रभावकारी बनाने और इसे कांग्रेसके सिद्धान्तोके अनुरूप रखने के लिए वह गाधीजी के निर्देशोका पालन करे।

५ पहलेके प्रस्तावोमे इसके विपरीत चाहे जो भी बाते कही गई हो, लेकिन अब अ० भा० कांग्रेस कमेटी अहिंसाकी नीति और आचरणमें अपनी आस्था नये सिरेसे घोषित करती है। इस सिद्धान्तमे वह केवल स्वराज्यके सन्दर्भमें ही नही, बल्कि स्वतन्त्र भारतके सन्दर्भमे भी उस हदतक विश्वास करती है जिस हदतक तब इसका प्रयोग सम्भव हो सकता है। अ० भा० कांग्रेस कमेटीको पूरा विश्वास है कि विश्व की घटनाओसे सिद्ध होता है कि यदि विश्वको पुन बर्बर अवस्थामें नही लौट जाना है तो विश्वमें पूर्ण निशस्त्रीकरण और एक ऐसी नई राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की स्थापना आवश्यक है जिसमे स्वतन्त्र राष्ट्र आपसमे एक-दूसरेसे सहयोग करेंगे। इसलिए स्वतन्त्र भारत अपना सारा जोर विश्व-निरस्त्रीकरणके पक्षमें लगायेगा, और खुद उसे इस मामलेमें विश्वका मार्ग-दर्शक बनने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसा मार्ग-दर्शन स्पष्ट रूपसे बाहरी तथा आन्तरिक परिस्थितियोपर निर्भर होगा। लेकिन राज्यको निरस्त्रीकरणकी इस नीतिको कार्यान्वित करने के लिए अपनी ओरसे भरसक प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।[1]

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८८०)से। सौजन्य सी० आर० नरसिंहन्

१. अ० भा० का० क० की १५ और १६ सितम्बर, १९४० को बम्बईमें हुई बैठकमें पास किये गये प्रस्तावके लिए देखिए खण्ड ७३, पृ० १-३।

४६१. प्रश्नोत्तर

चरखा संघके मुलाजिम

भिवानी कांग्रेस कमेटीके मन्त्री पूछते हैं :

प्र० : जो सज्जन चरखा संघके खादी-आश्रममें मुलाजिम हैं, क्या उनके लिए कोई हिदायत आपकी तरफसे ऐसी है कि वे सत्याग्रहके फारमपर दस्तखत न करें? बाकी तमाम नियम सत्याग्रहियोंके वे सज्जन पूरे करते हैं, सिर्फ वे चरखा संघकी इजाजतके बिना जेल नहीं जा सकते, इसलिए सत्याग्रहके फारमपर दस्तखत नहीं कर सकते। क्या वे कांग्रेस वर्किंग कमेटीके मेम्बर रह सकते हैं या उनको अलग हो जाना चाहिए?

उ० : चरखा संघका नियम जैसा कि आप पूछते हैं, ऐसा ही है। मुलाजिम दो काम एक साथ नहीं कर सकते। चरखा संघका काम भी कांग्रेसका ही है। चरखा संघका काम बिगाडकर कोई मुलाजिम जेल नहीं जा सकता। इसलिए जैसा कि आप लिखते हैं ऐसा नियम है। जाहिर है कि यदि ऐसा नियम योग्य है, तो कोई मुलाजिम कांग्रेस कमेटीमें नहीं रह सकते। क्योंकि कमेटी गिरफ्तार हो सकती है और कमेटी चाहे तो उस सदस्यको हुक्म कर सकती है कि वह जेल जाये।

अप्रमाणित खादी

वही मन्त्री महोदय यह भी पूछते हैं

प्र० : कांग्रेस कमेटीकी वर्किंग कमेटीके मेम्बर अप्रमाणित खादी बेचते हैं। लेकिन वे कताई-बुनाईकी मजदूरी चरखा संघके मुताबिक देकर खद्दर बनवाते हैं। सिर्फ उनके पास प्रमाणपत्र नहीं है। क्या कांग्रेस वर्किंग कमेटीके मेम्बर रहते हुए ऐसा करना कांग्रेस शासनके अन्दर है या उनको अलग हो जाना चाहिए?

उ० मेरा अभिप्राय है कि वह कांग्रेस कमेटीके सदस्य नहीं हो सकते। यदि यह सही है कि वह सज्जन मजदूरी नियमके मुताबिक देते हैं, तो क्या वजह है कि वह चरखा संघसे प्रमाणपत्र नहीं लेते?

नास्तिक आस्तिक कैसे बनें?

प्र० : नास्तिकवादीका ईश्वर और धर्मके प्रति विश्वास कैसे बैठाया जाये?

उ० इसका एक ही उपाय है। ईश्वर-भक्त अपनी पवित्रता और अपने कर्मोंके प्रभावसे नास्तिक भाई-बहनोंको आस्तिक बना सकता है। यह काम बहससे नहीं हो सकता। अगर ऐसा हो सकता तो जगत्में एक भी नास्तिक न रहता, क्योंकि

ईश्वरके अस्तित्वपर एक नही अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। इसलिए आज एक भी नास्तिक नहीं होना चाहिए। लेकिन देखते है उससे उलटा। पुस्तके भी बढ़ती रहती हैं और नास्तिकोकी संख्या भी बढ़ती चली जाती है। हकीकतमें जो नास्तिक माने जाते हैं या अपनेको मनवाते हैं वे नास्तिक नही है और जो आस्तिक माने जाते हैं वे आस्तिक नही हैं। नास्तिक कहते हैं, "अगर तुम आस्तिक हो तो हम नास्तिक हैं।" ऐसा कहना ठीक भी है, क्योंकि अपनेको आस्तिक माननेवाले सब सचमुच आस्तिक नहीं होते। ईश्वरका नाम या तो रूढ़िवश होकर लेते है या जगत्को धोखा देने के लिए। ऐसे लोगोंका प्रभाव नास्तिकोपर कैसे पड़ सकता है? इसलिए आस्तिक विश्वास रखें कि यदि वे सच्चे है, तो उनके नजदीक नास्तिक नही होगे। सारे जगत्की वे फिक्र न करें। अगर कोई नास्तिक जगत्में है तो वे भी ईश्वरकी दयासे होते है न? ईश्वर चाहता तो जगत्में कोई नास्तिक होता ही नही। कहा गया है कि ईश्वरका नाम लेनेवाले आस्तिक नही, परन्तु ईश्वरके काम करनेवाले आस्तिक हैं।

जीवन-निर्वाह

प्र० : आपने एक बार 'हरिजन' में लिखा था कि गाँवमें ग्रामवासियोंके अन्दर आपसमें सूत कतवाकर खरीदने में जीवन-निर्वाह मजदूरीका सवाल नहीं आता और चरखा संघ इसमें हस्तक्षेप न करे। परन्तु क्या ऐसा खादीधारी कांग्रेसके नियमानुसार प्रमाणित खादीधारी होकर प्रतिनिधि बन सकता है?

गाँवमें ग्रामसेवक इसपर क्या करेगा? वह तो जीवन-निर्वाह मजदूरीका प्रचार करता है और गाँवमें कई लोग चरखा संघकी खादी खरीदते हैं। परन्तु ऐसे बहुत-से हैं जिनके लिए जीवन-निर्वाह मजदूरी देकर खादी पहनना सम्भव नहीं है और साथ-साथ कत्तिनको भी बेकारीसे रिहाई मिलती है और गाँवमें खादी स्थायी-सी बन जाती है। ग्रामसेवक इसे प्रोत्साहित करेगा क्या? इसपर आप अपनी सविस्तार राय जाहिर करें।

उ० . एक बात याद रखने से ऐसे प्रश्न पैदा नही हो सकते। वाक्यका अर्थ भी ऐसा न किया जाये, जिससे वक्ताका हेतु निष्फल हो जाये। इस न्यायसे दोनो प्रश्न देखें। जिधर मजदूरी दी नही जाती और अपने-आप ही कोई कात लेते हैं उनको प्रतिबन्ध नही होना चाहिए। हाँ, इतना आवश्यक है कि कोई स्वावलम्बनका बहाना निकालकर खादीके नियमका भंग न करें।

जो ग्रामसेवक है उसे भी वही नियम लागू होता है। आपके प्रश्नमें एक कठिन वस्तु है सही। कत्तिनको काम चाहिए। जीवन-निर्वाह मजदूरी उसे नही मिल सकती है। सेवक भी इतनी मजदूरी देकर निजी कामके लिए खादी नही पहन सकता। ऐसी हालतमें खादी तो वह अवश्य बनवाये, कत्तिनोको काम भी दे, लेकिन वह कांग्रेसका सदस्य न बने। बाहर रहकर कांग्रेसकी सेवा करे। बाहर रहनेवाले बाज वक्त ज्यादा सेवा करते है और लालचसे मुक्त रहते हैं। इस तरह नियमके बाहर जो खादी बने, उसे देहातके बाहर नही ले जाना चाहिए। खादीका उपयोग उसी

देहातमें हो जाना चाहिए। अगर उसे बाजारमे निकाले, तो नियमका भग होगा और खादीको धक्का लगेगा। कत्तिनोंकी मजदूरी बढाकर चरखा सघ बडी कठिनाइयों के बीचमे से अपना रास्ता निकाल रहा है। कही भी बगैर माँगके एकाएक हजारो मजदूरोकी मजदूरी एक या दो पैसेसे आठ या बारह पैसे की गई है, ऐसा मैंने नही सुना है।

सेवाग्राम, २६ अगस्त, १९४०

हरिजनसेवक, ३१-८-१९४०

४६२. तार: कार्ल हीथको[1]

वर्धागज
२६ अगस्त, १९४०

कार्ल हीथ
फ्रेड्स हाउस
यूस्टन रोड
लन्दन

स्थिति चिन्ताजनक है। काग्रेसजनोका खयाल है कि सरकारी दमनचक्रका लक्ष्य काग्रेस ही है। इससे तो सविनय अवज्ञा अनिवार्य हो जायेगी यद्यपि मैं सकटको टालने की कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन सम्भव है, खुद मैं उसमे उलझ जाऊँ। परेशान न करने की नीति मेरे कहने पर स्वीकार की गई थी। उसका उपयोग काग्रेसको कुचलने के लिए नही करने दिया जा सकता। वाइसरायसे मिलने की कोशिश किये बिना कुछ नही करूँगा। काग्रेस और मेरे बीचके मौलिक मतभेद दूर हो रहे है।

गाधी

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४०)से

१. कार्ल हीथ और एगथा हैरिसनने १३ अगस्तको गाधीजीको तार भेजा था: "सरकारी प्रस्तावों और काग्रेसकी माँगका अन्तर हम समझते हैं। परन्तु हमें लगता है कि आमने-सामने बैठकर स्पष्ट व्याख्या करने पर बहुत-कुछ निर्भर है। एन्ड्र्यूजके देहान्तपर आपने जो शब्द कहे थे वे हमें याद आ रहे है। आपको और काग्रेसको हम यह सुझाव देने का साहस करते हैं कि यह समय एन्ड्र्यूजकी विरासतपर अमल करने का है।"

४६३. प्रश्नोत्तर

क्या कांग्रेस निष्फल होगी ?

प्र० : आप कहते हैं कि आज कांग्रेसमें पूरी अहिंसक शक्ति नहीं है। अगर कांग्रेस आज सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करे तो उसे निष्फल ही होना है न ?

उ० . काग्रेस-जैसी लौकिक सस्था कभी पूर्णतया अहिंसक नही वन सकती, क्योकि सव सदस्य एक समान अहिंसक नही हो सकते। मगर काग्रेसके पास पूर्ण अहिंसाको पहचाननेवाले और पूर्ण अहिंसाका पालन करनेवाले सदस्य हो तो उनकी सरदारीके नीचे काग्रेस अवश्य सफल सत्याग्रह कर सकती है। काग्रेसने आजतक तो ऐसा करके दिखा भी दिया है।

शूरवीरोंकी अहिंसा

प्र० : आप कहते हैं कि अहिंसा शूरवीरोंके लिए है, कायरोंके लिए नहीं। मगर मेरी मान्यताके अनुसार तो हिन्दुस्तानमें शूरवीर हैं ही नहीं। हम शायद शूरवीर होने का दावा करें भी, किन्तु जगत् इस दावेको कैसे स्वीकार कर सकता है? क्योंकि सारा जगत् जानता है कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्र हैं ही नहीं, इसलिए वह अपनी रक्षा आप करने में असमर्थ है। तो फिर शूरवीरोंकी अहिंसाका विकास करने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

उ० आपका यह मानना कि हिन्दुस्तानमे शूरवीर है ही नही, ठीक नही है। विदेशियोने हमें एक वार कायर ठहरा दिया, इसलिए हम भी अपने-आपको कायर मानने लगें, यह हमारे लिए शर्मकी वात है। वहुत वार ऐसा होता है कि आदमी जैसा अपने-आपको मानता है, वैसा ही वन जाता है। अगर मै हमेशा यह रटता रहूँ कि अमुक काम मुझसे हो ही नही सकता तो सम्भव है कि आखिर मै वह काम करने के अयोग्य वन जाऊँ। इसके विपरीत अगर मै यह विश्वास रखूं और मानूं कि मै तो यह करूँगा ही, तो आरम्भमें मुझमे भले ऐसी शक्ति न हो तो भी मै उसे प्राप्त कर लूंगा। फिर, आप कहते है कि ससार हमे आज कायर मानता है। यह भी सही नही है। सत्याग्रहकी लडाईके वाद ससारने हिन्दुस्तानको कायर मानना छोड दिया है। पश्चिममें काग्रेसकी प्रतिष्ठा पिछले वीस सालमे वहुत वढी है। हमारे पास शस्त्र नही है, फिर भी हम स्वराज्य प्राप्त करने की आशा कर रहे है और स्वराज्यके वहुत नजदीक पहुँच गये है। जगत् यह सव आश्चर्यचकित होकर देखा करता है, और हमारे आन्दोलनमे ससार शान्तिकी और रक्तकी वैतरणीमें से उसके उद्धारकी आशाकी किरणे देखता है। दुनियाके अधिकाश लोग यह मानने लगे है कि यदि

जगत्से वैर-भाव मिटना है, और खूनी लडाइयाँ बन्द होनी हैं तो यह काग्रेसकी अपनाई हुई नीति द्वारा ही होगा। इसलिए आपकी शका और डर निराधार है।

अब आप देख सकते है कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्रोका न होना अहिंसाके मार्गमें विघ्न-रूप नही है। यह सच है कि अग्रेज सरकारने बलपूर्वक हमारे शस्त्र छीनकर महा दोष और अन्याय किया। पर अगर ईश्वर प्रसन्न हो या यों कहिए कि हममें बुद्धि हो तो उस अन्यायसे भी लाभ उठाया जा सकता है। यही हिन्दुस्तानके बारेमें हुआ है।

अहिंसाके शिक्षणके लिए शस्त्रोकी आवश्यकता नही होती। अगर शस्त्र हो भी तो उन्हे फेक देना चाहिए, जैसे कि खान साहबने फेक दिये है। जो लोग यह कहते है कि अहिंसा सीखने से पहले हिंसा सीखनी चाहिए, उनकी बात तो ऐसी ही हुई जैसे यह कहना कि पापी ही पुण्यवान बन सकता है।

जैसे हिंसाकी तालीममे मारना सीखना जरूरी है, इसी तरह अहिंसाकी तालीममे मरना सीखना पडता है। हिंसामे भयसे मुक्ति नहीं मिलती, वह भयसे बचने का इलाज ढूंढने का प्रयत्न है, जबकि अहिंसामे भयको स्थान ही नही है। भयमुक्त होने के लिए अहिंसाके उपासकको उच्च कोटिकी त्याग-वृत्ति विकसित करनी चाहिए। जमीन जाये, धन जाये, शरीर भी जाये, इसकी वह परवाह ही न करे। जिसने सब प्रकार के भयोको नही जीता वह पूर्ण अहिंसाका पालन नही कर सकता। इसलिए अहिंसा के पुजारीको एक ईश्वरका ही भय होता है, दूसरे सब भयोको वह जीत लेता है। ईश्वरकी शरण ढूंढनेवाले को, आत्मा शरीरसे भिन्न है, यह भान होना ही चाहिए। और आत्माका भान होते ही क्षण-भगुर शरीरका मोह उतर जाता है। इस तरह अहिंसाकी तालीम हिंसाकी तालीमसे सर्वथा उलटी होती है। बाहरकी रक्षाके लिए हिंसाकी जरूरत पडती है, आत्माकी, स्वमानकी रक्षाके लिए अहिंसा की आवश्यकता है।

ऐसी अहिंसा घरमे बैठे-बैठे नही सीखी जा सकती। उसके लिए साहसकी आवश्यकता है। हम भयमुक्त हुए है या नही, यह जानने के लिए हमे जगलमे मगल करना सीखना चाहिए, श्मशानमे भटकना चाहिए, शरीरका दमन करके अनेक कष्ट सहन करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। दो आदमियोको लडते देखकर जो मनुष्य काँपने लगता है या भाग जाता है, वह अहिंसक नही, बल्कि कायर है। अहिंसक ऐसे झगडोंको रोकने मे अपनेको कुरबान कर देगा। जोखिम उठाकर अहिंसक अपनी परीक्षा करता है। सक्षेपमे, अहिंसककी बहादुरी हिंसककी बहादुरीसे बहुत आगे जाती है। हिंसककी निशानी उसके हथियार है, फिर वह भाला हो या बर्छी, तलवार हो या तमंचा। अहिंसकका हथियार तो रामनाम है। इतना लिखकर मैंने अहिंसा सीखनेवालों को कोई पाठ्यक्रम नही दिया, मगर इसके आधारपर पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है।

इससे आप देख सकेंगे कि इन दोनों प्रकारकी वीरताओमे कोई समानता ही नही है। एकका अन्त है, दूसरीका अन्त ही नहीं है। 'सेरके लिए सवा सेर' वाला

न्याय अहिंसापर लागू ही नहीं होता। अहिंसा अजेय है। ऐसा बल हम प्राप्त कर सकेंगे या नहीं, इस तरहकी शंका मनमें मत लाइये। पिछले बीस वर्षका इतिहास हमें विश्वास दिलाने के लिए काफी होना चाहिए।

सेवाग्राम, २७ अगस्त, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३१-८-१९४०

४६४. एन्ड्रयूज-स्मारक

एक मित्रने, जो खुद एन्ड्रयूज-स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करने की कोशिश कर रहे हैं, मुझे एक पत्र लिखा है। उसमें से प्रासंगिक अंश मैं नीचे दे रहा हूँ

> अपीलको[1] पढकर जैसा मेरी समझमें आया है (यदि गलत समझा होऊँ तो आप सुधार देंगे), उसके मुताबिक उसके चार हेतु हैं:
>
> (१) आजकी सतत आर्थिक चिन्तासे मुक्त रहकर शान्तिनिकेतन एन्ड्रयूज की उन ऊँची आशाओंको, जो वे इस संस्थाके सम्बन्धमें रखते थे, पूरा कर सके, इसके लिए उसे पर्याप्त धन सुलभ कराकर उसके मौजूदा जमे-जमाये कामको स्थायी आधार प्रदान करना।
>
> स्पष्ट ही, यह पहली आवश्यकता है, क्योंकि जो संस्था स्वयं ही असुरक्षित अवस्थामें है, उसमें नई प्रवृत्तियाँ जोडना कोई समझदारीका काम नहीं होगा। लेकिन साथ ही इस प्रयोजनके लिए आवश्यक राशिका कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।
>
> यदि अपीलका उत्तर लोगोंने काफी उदारतासे दिया और इतना पैसा जुट गया जो इस पहली आवश्यकताके लिए अपेक्षित राशिसे अधिक हो तो योजनाके निम्नलिखित अन्य तीन हिस्सोंके बारेमें कुछ करना सम्भव होगा.
>
> (२) एक छोटा लेकिन सुसज्जित अस्पताल;
> (३) जिलोंमें 'दीनबन्धु कूपों' की व्यवस्था;
> (४) ईसाई संस्कृति कक्षकी व्यवस्था।
>
> अब अगर मेरा ऐसा सोचना ठीक है, तो निश्चय ही अपील पढनेवाले हर व्यक्तिके मनमें यह बात आनी चाहिए कि यदि संस्थाको अपने निर्वाह-कोषके निमित्त एक भारी राशि चाहिए — और लगता तो यही है कि चाहिए — तो इस बातकी बहुत कम सम्भावना है कि अभी सचमुच जो भी धन इकट्ठा हो पायेगा उसमें से कुछ भी योजनाके दूसरे, तीसरे या चौथे हिस्सेके

१. अपीलके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट २।

लिए सुलभ हो पायेगा। यह नहीं बताया गया है कि चन्दा देनेवालों को यह निर्दिष्ट करने की अनुमति है या नहीं कि उनकी राशियाँ योजनाके अमुक विशिष्ट उद्देश्यके लिए हैं। और स्पष्ट है कि यदि चन्दा देनेवालों का एक बड़ा हिस्सा ऐसा करेगा तो अपीलका मुख्य उद्देश्य — अर्थात् शान्तिनिकेतनको ठोस आर्थिक आधार प्रदान करना — ही विफल हो जायेगा।

मेरी दूसरी कठिनाई अपीलके उद्देश्य जिस रूपमें वर्णित किये गये हैं उसके सम्बन्धमें थी। मेरी दृष्टिमें विशेष रूपसे ईसाई संस्कृति कक्षसे, जिसमें स्वभावतः मेरी विशिष्ट रुचि है, सम्बन्धित उद्देश्य थे।

जिस प्रकार 'चीन-भवन' चीनके साथ भारतके वैचारिक आदान-प्रदानके साधनका काम करता है उसी प्रकार कक्षका पहला उद्देश्य भारतीय चिन्तनको पाश्चात्य संसारका सम्पर्क सुलभ कराना बताया गया है। इससे कुछ ऐसी ध्वनि निकलती है कि 'ईसाई संस्कृति' तथा 'पाश्चात्य' संस्कृति दोनों एक ही चीज हैं, जो शायद सही नहीं है।

इसके बाद (क) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके समाधानमें ईसाकी शिक्षा और चरित्रके उपयोग, और (ख) प्राच्य चिन्तन-पद्धतियोंके अनुसार ईसाकी मूल भावना और मानसकी व्याख्याके कार्यका उल्लेख किया गया है।

इसलिए लगता यह है कि दरअसल हमारे तीन अलग-अलग लक्ष्य हैं, लेकिन तीनों-के-तीनों बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक। शायद यह आवश्यक हो कि इसे किसी हदतक इस व्यापक रूपमें ही रहने दिया जाये; तथापि मैं ऐसा सोचे बिना नहीं रह सकता कि यदि शब्दोंके चयनमें अधिक सावधानी बरती जाती तो जिसका वर्णन 'मुख्य प्रयोजन' के रूपमें किया गया है उसके साथ इस उद्देश्यके अन्य दो पहलुओंका सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो जाता।

तीसरे, मैंने न्यासियों और योजनाको भविष्यमें सुचारु रूपसे चलाने का विश्वास दिलानेवाले ठोस आधारका भी प्रश्न उठाया। यदि मैंने आपके पत्र का अर्थ सही समझा है तो इस विशेष कोषके न्यासी वही लोग होनेवाले हैं जो अपीलके अन्तमें उल्लिखित शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके न्यासी हैं। अपील इस बातको स्पष्ट करती प्रतीत नहीं होती।

क्या इसका मतलब यह है कि संग्रह किये गये विशेष कोषकी व्यवस्था और वितरण सीधे शान्तिनिकेतनके इन न्यासियोंके हाथोंमें रहेगा? अगर ऐसा है तब तो यह कोष न्यासकी निधिका ही अतिरिक्त हिस्सा बन जायेगा न?

मुझे लगा कि अपीलमें जितनी महत्त्वपूर्ण और व्यापक योजनाकी तजवीज है उसके लिए कोई एक ऐसी विशेष समिति या न्यासियोंका मण्डल

नियुक्त किया जायेगा जो इस अपीलकी परिधिमें आनेवाले खास लक्ष्यों और व्यापकतर हितोंसे तनिक अधिक स्पष्ट रूपसे सम्बद्ध रहेगा।

जो पूछताछ की गई है वह बहुत उचित और ऐसी है जिसका उपयुक्त जवाब दिया जाना चाहिए। चूँकि मैं कोषके लिए जारी की गई अपीलपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें से हूँ, इसलिए मैं जो-कुछ लिखूँगा उसे अधिकृत माना जा सकता है। शान्तिनिकेतनसे जो तीन चीजें निश्चित रूपसे जोड़ी जानेवाली हैं उनके सम्बन्धमें होनेवाले खर्चोंका वर्तमान स्वामियोंने एक मोटा हिसाब लगाया है। उनके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था कर देने के बाद एक अतिरिक्त राशि बच रहने की आशा की जाती है। यह राशि आम निधिमें डाल दी जायेगी। लेकिन स्वभावतः इन तीन चीजोंको प्राथमिकता दी जायेगी। फिर भी चन्दा देनेवालों को यह छूट रहेगी कि वे अपनी राशियोंको इन तीन नई चीजोंमें से किसीके लिए भी रेखांकित कर दें, और फिर उन राशियोंका उपयोग तदनुसार ही किया जायेगा। इसलिए चन्देकी राशियाँ चाहे रेखांकित की जायें या नहीं, इन तीनों नई चीजोंके बारेमें किसी प्रकारसे आशंकित होने की जरूरत नहीं है। एक रहस्यकी बात बताने में कोई हर्ज न हो तो कहूँगा कि आम ढंगकी अपील जारी करने का विचार मेरा था। स्मारकको शान्तिनिकेतनके साथ एक कर देने का खयाल सबसे पहले गुरुदेवके मनमें आया, लेकिन उनके दिमागमें दो ही चीजें हैं — अस्पताल और कक्ष। इनमें से कक्ष का विचार उन्हें एक ईसाई मित्रने सुझाया। दीनबन्धु कूप शान्तिनिकेतनकी निधिसे बनवाये जानेवाले थे। गुरुदेवके उक्त विचारसे मुझे मार्गका संकेत मिल गया, और मुझे लगा कि पूरे शान्तिनिकेतनको एन्ड्रयूज-स्मारकके साथ एक कर देने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। गुरुदेव तो अकेले सौ के बराबर हैं। उनकी एक सुप्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है, जो समयके साथ और भी बढ़ेगी। फिर भी शान्तिनिकेतनके सबसे अच्छे प्रचारक एन्ड्रयूज थे। गुरुदेवमें प्रचारकी क्षमता नहीं है। वे तो बस काम करते हैं और कामनाएँ करते हैं, और अपनी कामनाओंकी पूर्ति भाग्यके भरोसे छोड़ देते हैं। लेकिन वह व्यवहार-कुशल अंग्रेज ऐसा नहीं था। उन्होंने कविगुरुके प्रति आकर्षण अनुभव किया और अपनी शान्ति और स्थायी आश्रयस्थल उन्हें शान्तिनिकेतनमें मिला। इंग्लैण्ड उनकी जन्म-भूमि थी, उससे उन्होंने अपना सम्बन्ध कभी नहीं तोड़ा। लेकिन उनको आत्माकी अपनी पूरी अभिव्यक्ति, अपना सच्चा गेह शान्तिनिकेतनमें मिला, और उनका साथी कार्यकर्ता होने के नाते मैं मानता हूँ कि शान्तिनिकेतनके लिए कोष एकत्र करने के लिए वे सचमुच दर-दरकी खाक छानते फिरे। वे मुझसे अक्सर कहा करते थे 'शान्तिनिकेतनकी बात छोड़िए, लेकिन आपको मेरे लिए तो इतना पैसा जुटाना ही है। आप जानते हैं कि शान्तिनिकेतन मेरे लिए क्या अर्थ रखता है और गुरुदेव विश्वके लिए।' और वे जब भी इस तरह के अनुरोध करते थे, मैं मानने को विवश हो जाता था, हालाँकि उनके लिए मेरे पास समय नहीं होता था। शान्तिनिकेतनमें रहनेवालोंमें से किसीके मनको चोट पहुँचाने का कोई इरादा रखे बिना मैं कहता हूँ कि शान्तिनिकेतनके प्रति उनका प्रेम उन सबसे महानतर था। निश्चय

ही वह उतना ही महान था जितना स्वय कविगुरुका है, और आज शान्तिनिकेतनका जो रूप है उसका जितना श्रेय कविगुरुको है उतना ही एन्ड्रयूजको भी है। शायद एन्ड्रयूज उनसे कुछ ज्यादा लगनशील थे।

इन सारी बातोसे अभिज्ञ होने के कारण मुझे यह सुझाव देने मे कोई सकोच नही हुआ कि अपील आम ढगकी होनी चाहिए। इसलिए मैं भावी दाताओंसे कहूँगा कि यदि वे तीन नई चीजोंको शान्तिनिकेतनसे अलग करके देखेंगे तो इसका मतलब यह होगा कि उन्होंने स्मारकके मर्मको ही नही समझा। कारण, अगर शान्तिनिकेतन नही रह जायेगा तो ये तीनो मिलकर दीनबन्धुके अति तुच्छ स्मारक ही होंगे। और साथ ही मैं यह भी कह दूँ कि शान्तिनिकेतन अपने स्थायित्वके लिए कभी भी उस पाँच लाख रुपयेकी राशिका मुखापेक्षी नही होगा जो इकट्ठी की जा सकती है। वह स्थायी होगा तो इसलिए कि कविगुरुने उसमे प्राण फूंके है और उसके ऊपर एन्ड्रयूजकी आत्माका साया है। अगर यह अपना वह रूप कायम रखेगा जो उसे उसके सस्थापकोने, जिनमे एन्ड्रयूज भी शामिल है, प्रदान किया है तो इसका अन्त कभी नही होगा।

दूसरी शंकाका समाधान आसान है। ईसाई सस्कृति कक्षमे ईसाकी व्याख्या पर कविगुरुकी सर्वग्राही आत्माकी छाप होगी, और इसलिए शान्तिनिकेतनमे फूलने-फलनेवाली ईसाई सस्कृति कभी भी एकान्तिक नही होगी। बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर होगा कि किस प्रकारके ईसाई शान्तिनिकेतनकी ओर आकृष्ट होंगे। ईसाई सस्कृति कक्षके प्रयोजनको परिभाषित करने में शब्दोका अधिक सावधानी-भरा चयन सम्भव नही था, और न वैसा कोई इरादा ही था। पत्र-लेखकसे मैं कहूँगा कि ऐसी चीजोंको अनिश्चित अवस्थामे छोड देना ही अच्छा होता है। कौन कह सकता है कि किसी भी महान् वस्तुके लिए भविष्यके गर्भमे क्या छिपा हुआ है?

तीसरी शकाका निवारण भी आसान है। खयाल तो मेरे मनमे भी आया था, लेकिन मुझे लगा कि स्मारक-कोषके लिए अलग न्यास बनाना ठीक नही होगा। वर्तमान न्यासियोंके नाम अपीलमे दे दिये गये है। अगर वे इतने अच्छे है कि शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन-जैसी विशाल अन्तर्राष्ट्रीय सम्पदाकी व्यवस्थाके लिए जिम्मेदार बनाये जा सकते है तो स्मारकके निमित्त एकत्र किये जानेवाले कोषके प्रबन्धका अतिरिक्त दायित्व उन्हे सौपने मे कोई हर्ज नही होना चाहिए।

अन्तमे मै कह दूँ कि स्मारकके लिए जारी की गई अपीलका अबतक जो उत्तर मिला है वह बहुत असन्तोषजनक है। मैं जानता हूँ कि कोष-सग्रहके कार्यके सगठनका भार मुख्यत मेरे सिर है। मैंने इसी आशासे अबतक कुछ नही किया है कि दीन-दुखी मानवताके लिए एन्ड्रयूजने जो पुख्ता काम किया है उसे देखते हुए सगठित प्रयत्नकी आवश्यकता नही पडेगी और लोग सहज ही अपीलका उत्तर देंगे। अब भी मेरी वह आशा कायम है। अबतक प्राप्त चन्दोकी क्षीण-सी सूची मैं प्रकाशित कर रहा हूँ। मेरी ही तरह पाठक भी देखेंगे कि अबतक विद्यार्थी-जगत्की

ओरसे कोई संग्रह नहीं किया गया है, और न श्रमिक जगन्ने ही अपने हिस्सेका पाई-पैसा दिया है।

सेवाग्राम, २७ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-९-१९४०

४६५. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

अपने इसी ११ तारीखके पत्रके क्रममें मैं कथित जबरन वसूली और ऊँची तनख्वाहोंके बारेमें शिकायतोंका एक दूसरा पुलिन्दा भेज रहा हूँ। ऊँची तनख्वाहों-सम्बन्धी शिकायतोंमें आपको यत्र-तत्र नामोंकी पुनरावृत्ति देखने को मिलेगी। कारण यह है कि उन नामोंके सामने आपको उनके सम्बन्धमें अतिरिक्त जानकारी देखने को मिलेगी। कथित जबरन वसूलियोंसे सम्बन्धित नोट[1] पण्डित नेहरूने भेजा है। तनख्वाहोंसे सम्बन्धित सूची मुख्यतः भारतीय व्यापार मण्डल, कलकत्ता, से सुलभ हुई है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे : लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

४६६. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ अगस्त, १९४०

प्रिय सी० आर०,

जूरी द्वारा तैयार किया गया मसौदा[2] इसके साथ है। अन्तिम अनुच्छेदमें मैंने जो हिस्सा अपने हाथसे जोड़ा है, उसका सुझाव मैंने दिया था और वह जबानी स्वीकार कर लिया गया था। मसौदेकी पृष्ठभूमिका विवरण देने को मेरे पास समय नहीं है, मगर उसे समझने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। महमूद, रा० बाबू, जमनालाल और कोकिला[3] भी उपस्थित थीं। १३ को[4] क्या होगा, कह नहीं सकता।

१. देखिए परिशिष्ट ६।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. सरोजिनी नायडू
४. १३ सितम्बरको बम्बईमें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक होनेवाली थी।

यदि सब ठीक रहा तो शायद मुझे बम्बई भी जाना पड़े। जो-कुछ हो रहा है उससे मैं बहुत खुश नहीं हूँ, परन्तु ईश्वरमें मेरी आस्था मुझे उल्लाससे भर देती है।

स्नेह।

बापू

[पुनश्च]

क्या इस बार पापाको[1] अपने साथ ला सकते हैं?

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८०)से

४६७. टिप्पणियाँ

सिन्ध

सिन्धमें कांग्रेसियोंकी स्थिति किसी तरह भी ईर्ष्याजनक नहीं कही जा सकती। वे बहुत मुश्किलका सामना कर रहे हैं। अगर कांग्रेसजनोंमें कुछ अहिंसा है भी तो वह वहाँके उन लोगोंके कुछ काम नहीं आई है जिन्हें आज अपनी जानके लाले पड़े हुए हैं। यह सच है कि और किसीसे भी उन लोगोंको मदद नहीं मिली है। मैंने शुरूमें ही सिन्धवासियोंको आगाह कर दिया था कि या तो उन्हें औरोंकी तरह हथियारसे अपनी हिफाजत करना सीखना है, या जैसा कांग्रेसियोंके बारेमें माना जाता है या जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है वैसी अहिंसक रीतिसे। कई जगह राष्ट्रीय संरक्षक दल खड़े किये जा रहे हैं। जो लोग ऐसे दल बना रहे हैं वे कांग्रेसियोंसे मदद और सलाहकी उम्मीद रखते हैं, क्योंकि अबतक उन लोगोंको कांग्रेसकी सलाह और मदद मिलती आई है। कुछ कांग्रेसजनोंको लगता है कि खुद हथियार उठानेका कोई इरादा न रखते हुए भी वे लोगोंको सशस्त्र या निःशस्त्र आत्म-रक्षाका प्रशिक्षण देकर उनमें साहसका संचार कर सकते हैं। हालमें पूनामें हुई अ० भा० का० कमेटीकी बैठकमें जो स्पष्ट प्रस्ताव पास हुआ है उसको देखते हुए यह सवाल बड़ा अहम बन गया है और इसका अविलम्ब उत्तर देना आवश्यक हो गया है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोई भी कांग्रेसजन जबतक कांग्रेसका चवन्निया सदस्य भी है तबतक आत्म-रक्षक दलोंके संगठनमें न भाग ले सकता है और न उसमें कोई सहायता दे सकता है, और अगर वह ऐसा-कुछ करता है तो उसका मतलब पूना प्रस्तावका भंग होगा। लेकिन मेरे मनमें इस सम्बन्धमें भी कोई सन्देह नहीं है कि जिन कांग्रेसजनोंको लगता है कि आत्म-रक्षक-दलोंको सहायता देनेकी जरूरत है और उनमें ऐसी सहायता देनेकी क्षमता है उनका यह कर्त्तव्य है कि वे आतंकित लोगोंके त्राणके लिए आगे बढ़ें। ऐसा वे कांग्रेसकी सदस्यतासे त्यागपत्र

१. राजगोपालाचारीकी सबसे बड़ी लड़की

देकर कर सकते हैं। त्यागपत्र देकर वे राष्ट्रसकी प्रतिष्ठा और अपनी उपयोगितामें भी वृद्धि करेंगे। वे सहायता देनेकी आवश्यकता महसूस करते हैं, यही उनके लिए अपना रास्ता चुननेका निर्णायक तत्त्व है।

शान्तिपूर्ण उपाय?

एक भाईने मुझे मद्रास प्रान्तीय युद्ध-समिति द्वारा प्रकाशित और सरकारी प्रेसमें मुद्रित एक इश्तहार भेजा है, जिसमें उन सात "महान् आदर्शों"का वर्णन है जिनके लिए इंग्लैण्ड आज "यह युद्ध लड रहा है।" उनमें से दूसरा आदर्श निम्न प्रकार है

> जिन आदर्शोंके लिए इंग्लैण्ड लड रहा है वे वही हैं जो भारतके हैं। हमारा जीवन-दर्शन, हमारी घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय नीतिकी परम्पराओंका आदर्श रहा है:
>
> भगवान् बुद्ध और महात्मा गांधीकी शिक्षामें पल्लवित शान्ति।
>
> राजनीतिक प्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके साधनके रूपमें शान्तिपूर्ण उपाय और सहिष्णुता, जिनका प्रतीक भारतके आदर्श सम्राट् अशोककी नीति है।
>
> इंग्लैण्डके साथ मिलकर लड़नेमें हम वस्तुतः उन चीजोंके लिए लड़ेंगे जिन्हें हम अपनी राष्ट्रीय विरासतकी सबसे मूल्यवान निधियाँ मानते हैं।

पत्र-लेखकका कहना है कि ये इश्तहार प्रान्तीय भाषाओंमें प्रकाशित किये गये हैं और इन्हें ग्रामवासियोंके बीच व्यापक रूपमें प्रचारित किया गया है। मद्रास युद्ध समितिको मेरा सुझाव यह है कि वह इश्तहारकी धारा २ को बिलकुल निकाल दे। कारण, ब्रिटेनकी जनताके सामने मैंने अपना आदर्श जिस रूपमें रखा है वह तो सर्वविदित है। और यदि भगवान् बुद्ध आज इस धरतीपर सदेह उपस्थित होते तो ऐसा युद्ध असम्भव होता। अंग्रेजोंके तरीकोंको शान्तिके तरीके कहना सत्यकी विडम्बना है। अशोकका उदाहरण किसी महान् राजा द्वारा युद्धके मार्गका स्वेच्छासे त्याग कर शान्तिके तरीके अपनानेका शायद एकमात्र दृष्टान्त है।

ब्रिटेनके लोग यदि मेरी सलाहको नहीं मानते या अशोककी राहपर नहीं चलते तो यह उनके लिए कोई अपयशकी बात नहीं है। ये चीजें आन्तरिक विश्वास के बिना यान्त्रिक रीतिसे नहीं की जा सकतीं। लेकिन जिस श्रेयके वे पात्र नहीं हैं और न जिसके लिए वे लालायित ही हैं वह श्रेय उन्हें देना ठीक नहीं है। आश्चर्य नहीं यदि इस पुस्तिकाको पढनेवाले ब्रिटेनवासियोंके मुखसे ये शब्द फूट पड़ें 'हमें हमारे मित्रोंसे बचाओ।'

सेवाग्राम, २८ अगस्त, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-९-१९४०

४६८. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२९ अगस्त, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

आपके २३ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। याद दिलाने के लिए जो पत्र मैंने भेजा था वह मेरी इस चिन्ताका सबूत था कि पत्र कही भटक न जाये।

मेरी व्यथा गहरी होती जा रही है। हालकी घटनाओसे मेरा मन अशान्त हो उठा है। 'जबरन वसूलियो' और वेतनोंमे भारी वृद्धि-सम्बन्धी मेरी शिकायत तो आपके सामने है ही। मुझे डर है कि अब जल्दी ही लोकमतकी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को कठोरतापूर्वक दबाया जायेगा।[1] कोई भी विरोधी स्वर उठने नही दिया जायेगा। शायद लडाइयाँ और किसी तरीकेसे चलाई भी नही जा सकती। जिन कारणोसे लडाइयाँ कुत्सित बन जाती है उनमे से यह भी शायद एक है।

अगर यह सब इसी तरह चलता रहा और कांग्रेस निष्क्रिय बैठी रही तो वह धीरे-धीरे निष्प्राण हो जायेगी।[2]

राजनीतिक विषयोंकी चर्चामे आपके द्वारा प्रयुक्त शब्दोसे मुझे भय लगने लगा है। मै स्वीकार करूँगा कि उनमे से कुछ तो मेरी समझमे नही आते।

मेरे और कांग्रेसजनोके बीचके गहरे मतभेद लगभग दूर हो गये है।[3] वे लगभग महसूस करने लगे है कि पहलेसे ही ऐसा तय कर लेना गलत था कि सेनाके बिना राज्य चलाया ही नही जा सकता। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध था, ऐसा लगता था कि संसारके लिए अब कोई आशा नही रह गई है। अगर कांग्रेसके आन्तरिक किस्सेके इस हिस्सेमे आपकी कोई रुचि हो तो वह आपको बताया जा सकता है।

अगर मै ब्रिटिश सरकारकी मदद नही कर सकता तो उसे परेशान भी नही करना चाहता। लेकिन इस इच्छाको हारा-किरी करने की हदतक नही जाने देना चाहिए।[4]

१. यहाँ हाशियेपर वाइसरायकी यह टिप्पणी है: "एक-दूसरेसे सर्वथा असम्बद्ध बातोंको आपसमें मिला दिया है। इस प्रसंगमें इस चीजके लिए कोई स्थान नहीं है।"

२. वाइसरायकी टिप्पणी है: "यही तो असली कठिनाई है।"

३. हाशियेपर वाइसरायने टिप्पणी की है: "क्या मैं ऐसा मानूँ कि वे कांग्रेसके नेताकी हैसियतसे आ रहे है?"

४. हाशियेपर वाइसरायकी टिप्पणी है: "मुझे नही मालूम था कि सन्तोंकी मण्डली भी अपनी पारमार्थिक प्रवृत्तियोंकी सीमा बाँधने की अभ्यस्त होती है!"

कोई कदम उठाने से पहले मैं अपने हृदय और मनको आपके सामने खोलकर रख देना चाहता हूँ और अगर मैं अन्धकारमें घिरा हुआ हूँ तो आपसे प्रकाश पाना चाहता हूँ। इसलिए अगर आप सोचते हों कि हमारी मुलाकात योग्य[1] है तो कृपया तारसे मुलाकातका समय सूचित करें। यह मुलाकात मैं १३ तारीखको ध्यानमें रखकर माँग रहा हूँ, क्योंकि उसी दिन कार्य-समितिकी बैठक होनेवाली है।

अगर हमारी मुलाकात १३ तारीखके इतनी पहले हो जाये कि उस दिनसे पहले-पहले मैं वर्धा पहुँच जाऊँ तो अच्छा हो। अगर आपको मुझसे मिलने में परेशानी हो या किसी और कारणसे न मिलना चाहते हों तो मुझे तार देने की जरूरत नहीं है। आपकी चुप्पीका मतलब मैं यह लगाऊँगा कि जो मसले मैंने उठाये हैं उनके बारेमें आप मुझे मुलाकात नहीं दे सकते। अगर न दे सकें, तो मैं आपको गलत नहीं समझूँगा। आपके सामने जो काम है उसकी ओरसे आपका ध्यान बँटाना जब उचित नहीं है, ऐसे समयमें मैं आपको तकलीफ दे रहा हूँ, इसके लिए आप मुझे क्षमा कर सकेंगे, ऐसी आशा रखता हूँ। आपसे मुलाकातका समय माँगने में मेरा उद्देश्य यह है कि अव्वल तो निर्णयकी किसी भूलकी सम्भावनाको टालने के लिए, और दूसरे, जिसे वापस न लिया जा सके ऐसा कदम उठाने के पूर्व अपना पक्ष आपके सामने प्रस्तुत कर देने के लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखना चाहता।[2]

खुर्जासे मुझे पत्र लिखनेवाले सज्जनसे मैंने जो उत्तर माँगा था,[3] अब उसका अनुवाद आपको भेज पा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे : लॉर्ड लिनलियगो पेपर्स। सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. हाशियेपर वाइसरायकी टिप्पणी इस प्रकार है : "योग्य है या नहीं, यह तो श्री गांधी ही तय करें। मैं तो उस वक्तव्यकी सीमाके अन्दर रहकर ही मामलोंकी चर्चा कर सकता हूँ। अगर उन्हें यह मंजूर हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक मुलाकातका समय दूँगा, और उनकी सहायता करने की भरसक कोशिश करूँगा।"

२. वाइसरायने अपने निजी सचिवके लिए यहाँ यह टिप्पणी की है : "उन्हें आना अवश्य चाहिए। मेरे उत्तरमें इस बातके लिए दुःख प्रकट किया जाना चाहिए कि मौलानाने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया और जनताको भी यह विदित कर देना चाहिए कि श्री गांधीने निमन्त्रणकी माँग की है।"

३. तात्पर्य हीरालाल शर्माके एक पत्रसे है, जिसमें उन्होंने लोगोंको डरा-धमकाकर उनसे युद्ध-ऋण प्राप्त किये जाने और युद्ध-कोषके लिए जबरदस्ती पैसा वसूल किये जाने की शिकायत की थी।

४६९. एक पुर्जा

२९ अगस्त, १९४०

उपर्युक्तसे मुझे सन्तोष नही है। इससे तुम लोगोंको सन्तोष हो गया, यह भी ठीक नही है। हम लोगोंमे किसीको भी जल्दीसे सन्तुष्ट नही होना चाहिए।

बापू

मुन्नालालकी आपत्तिके बारेमे कहना यह है कि स्थायी आश्रमवासियोकी बैठके समय-समयपर कहाँ की जाये, इसका निश्चय कर लिया जाये और उनके सुझावो अथवा निर्णयोंका लेखा रखा जाये। इसमे क्या कुछ अव्यावहारिक लगता है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०४)से

४७०. पत्र : प्रभावतीको

३० अगस्त, १९४०

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। जब आना हो, तब आ जाना। उस समयके इन्तजारमे मत रुकी रहना जब कमजोरीके कारण बिस्तर पकडने की नौबत आ जाये।

भगवतीका पत्र उसे दे देना और समझा भी देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

राजेन्द्र बाबू सीकर गये है। वे एक महीना वहाँ रहेगे। जमनालालजी उनके साथ है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४७)से

४७१. पत्र : वियोगी हरिको

[३० अगस्त, १९४०][1]

भाई वियोगी हरि,

तुमारा खत मिला। तुमारी अति कोमल भाषामें भी तुमारा दुःख तो प्रगट होता ही है। लेकिन धर्म तो यही है तुमारी ही कृति होते हुए तुमारे उसकी पुष्टि के कारण उसका वियोग सहन करना। आखरमें नायक या कामका यश ऐसा गुण भी हममें न हो। तुमारेमें तो है। देखें अब मेरे हाल क्या होते है? तुमको अब हरिजन-सेवामें ज्यादा ध्यानावस्थित होने का मौका मिला है। एक चीज माग लू। कुछ-न-कुछ लेख प्रति सप्ताह मुझे 'ह० से०' के लिये भेजा करो। 'ह० से०' की भाषा इ० की टीका भेजो।

बापुके आ[शीर्वाद]

श्री वियोगी हरि
हरिजन निवास
किंग्जवे, दिल्ली

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९०)से

४७२. पत्र : मगनलाल प्रा० मेहताको

सेवाग्राम, वर्धा
३१ अगस्त, १९४०

चि० मगन,

तू परीक्षामें सफल होना। मंजुलाको सन्तुष्ट करने की अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना। वह तो बेचारी गाय है।

बापूके आशीर्वाद

श्री मगनलाल प्रा० मेहता
मारफत वाई० एम० सी० ए०
नई दिल्ली

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६०७)से। सौजन्य मंजुलाबहन म० मेहता

१. डाककी मुहरसे

४७३. पत्र : मंजुलाबहन म० मेहताको

सेवाग्राम,
३१ अगस्त, १९४०

चि० मंजुला,

तेरा पत्र मिला। मैं समझता हूँ। जब आ सके, तब आ जाना। मगनका पत्र आया था। वह पश्चात्ताप तो करता है। तेरे पुण्यसे वह अवश्य सुधर जायेगा।

मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्री मंजुला मेहता
व्रज भुवन
एलिस ब्रिज
अहमदाबाद, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६०६)से। सौजन्य. मंजुलाबहन म० मेहता

४७४. पत्र : डॉ० वरियावाको

३१ अगस्त, १९४०

भाई वरियावा,

चि० कुँवरजी मेरी पौत्री रामीबहनके पति है। इन्हे क्षयका रोग था। क्षय-विशेषज्ञ डॉ० डेविड कहते है, अब इन्हे कुछ नही है। अब यदि आप पन्द्रह-बीस दिन बाद इनकी जांच करके अपनी रिपोर्ट भेज सकें तो मैं आपका आभारी होऊंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२१)से

४७५. पत्र : मदनमोहन मालवीयको

सेवाग्राम
३१ अगस्त, १९४०

भाई साहब,

आपके हस्ताक्षर देखकर खुश हो गया। कोनवोकेशन नामसे ही मैं भडकता हू।[1] विद्वानके लायक मेरे पास पुजी ही कहा है? लडकोंके सामने मैं कैसे खडा हो सकता हू? और समयका अभाव तो बडी बात है ही। इसलिये आप मुझे क्षमा करे। मैं जानता हू आपका और मर राधाकृष्णका प्रेम मुझे बुलाता है। लेकिन मैं लाचार हू।

आप अच्छे होंगे।

आपका छोटा भाई,
मो० क० गाधी

मूल पत्रसे प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य प्यारेलाल

४७६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
३१ अगस्त, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

तुमारे सब प्रश्न महत्वके हैं।

केशव कभी चोरी करके खायगा नही। तुम लोगोका शक ही सही है। उसे सहन करना। ताला-कुजी रखने में कोई हरज नही पाता हू। फलकी चाबी तुमारे पास ही होनी चाहीये।

साफ-साफ कह देना कि खाट सिर्फ बीमारोंके लिये और भयवाली जगहमें सोनेवालो के लिये है। कहो तो मैं नोबपोथीमें लिखु?

रामनारायणजी साधनाके लिये आये हुए हैं। उनकी तबीयतकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। नौकरोंके बारेमें कठिन समस्या है। नौकरोको हटाने से हम नहीं सुधरेंगे। नौकरोके कामकी मर्यादा करने से काम चलेगा।

१. मदनमोहन मालवीयने अपने २८ अगस्तके पत्रमें गाधीजी को ३० नवम्बर, या उनके लिए सुविधाजनक किसी और दिन बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें दीक्षान्त भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया था।

आटा न मीले तो अवश्य दलीया बनाया जाय।

हमाम सोप इ० का त्याग होना चाहिये।

रामायण मंगाया है। हिंदी भजनावली छपेगी। तुम्हे तीनो पत्र मिलने चाहिये। बदोबस्त कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३५९)से

४७७. भाषण: ग्रामवासियोंके समक्ष[1]

[१ सितम्बर, १९४०][2]

प्राचीन भारतमे व्यक्तिकी सम्पत्तिका अनुमान उसकी गायोकी संख्यासे लगाया जाता था, न कि उसके सोने-चाँदीसे। माँ की तरह गायकी पूजा की जाती थी, क्योंकि वह हमे दूध देकर हमारा पोषण करती थी और उसके बछडे हमारे जीवन के आधार खेती-बाडीमे हमारी मदद करते थे। गायें पश्चिममे भी है, और निस्सन्देह वहाँ वे बडी अच्छी तरह रखी जाती है। लेकिन उनके बछडे खेतीके काममें नही लाये जाते, 'बीफ' के रूपमे वे उनके भोजनके काम आते है। लेकिन हमे यह चीज पुरातन कालसे ही बुरी लगती रही है, और हमने गाय और उसकी सन्तानकी पूजा की है। हमारे गाँवोमे सब जगह बैल परिवहनके साधन है और शिमला-जैसी जगहमे भी उनका यह उपयोग अभी बन्द नही हुआ है। वहाँ रेल-गाड़ियाँ और मोटरे जाती है, लेकिन पहाडी सडकपर पूरे रास्ते मैंने बैलोको भारी गाडियाँ ऊपर और नीचे खीचकर ले जाते पाया। ऐसा लगता है कि परि-वहनका यह साधन मानो हमारे जीवन और हमारी सभ्यताका अंश है। और यदि हमारी हस्तशिल्प-प्रधान सभ्यताको कायम रखना है तो हमे बैलोको भी अपने इस उपयोगी रूपमे कायम रखना होगा।

लेकिन आजकल हम दुर्भाग्यके दौरसे गुजर रहे है। धनके बारेमें हमारे विचार बदल गये है। अब तो हम ठोस नकदीको ही धन मानते है, अपने पशुओकी उपेक्षा करने लगे है और उनकी दशा बराबर बिगड़ती जा रही है। मुझे खुशी है कि आप यह दिन मना रहे है, लेकिन आपको इसके असली अर्थ समझने चाहिए। यदि बाकी साल आप उनकी उपेक्षा करते है तो इस एक दिनके उत्सवका कोई अर्थ नही होगा। आपको यह पता लगाना चाहिए कि आपमें से किसके जानवर सबसे अच्छे है और वह उन्हे इतना अच्छा कैसे रख पाता है। आपको यह पता लगाना होगा

१ और २. महादेव देसाई द्वारा लिखित "सेवाग्राम नोट्स" (सेवाग्रामकी टिप्पणियाँ), ९-९-१९४० से उद्धृत। ग्रामवासियोंने गांधीजीको १ सितम्बरको अपना 'पोला' का उत्सव देखने के लिए बुलाया था। उस दिन बैल सजाये जाते है, उनकी पूजा होती है और उनसे कोई काम नहीं लिया जाता।

कि किसकी गाय सबसे ज्यादा दूध देती है और यह जानना होगा कि वह उसे कैसे रखता और खिलाता-पिलाता है। आप गांवमें सबसे अच्छे बैल और सबसे अच्छी गायके लिए कोई इनाम रख सकते हैं। हम यहाँ आपकी सेवाके लिए हैं। अपेक्षित योग्यतासे युक्त डेरी-विशेषज्ञ पारनेरकरजी और जानवरोंके प्रति प्रेम रखने और उनकी देख-रेख करने के लिए प्रसिद्ध बलवन्तसिंह आपकी मददके लिए तत्पर हैं। आश्रमकी डेरीकी ओर से गांवके लाभके लिए एक साँड रखा जा रहा है। आपको उन सभी सुविधाओंका लाभ उठाना चाहिए जो हमने दे रखी हैं। लेकिन आप ऐसा तभी कर सकते हैं जब आपको अपने जानवरोंसे सच्चा प्रेम हो। इसे देखिए।[1] यह एक ऐसी चीज है, जिसके लिए आपको और मुझे शर्मिन्दा होना चाहिए। मान लीजिए कि मैं आपके किसी बच्चेको यह आर चुभाता तो क्या आप मुझे वैसा करने देते? और यदि नहीं तो फिर इन उपयोगी जानवरोंके साथ ऐसा बरताव आप कैसे करते हैं? मेरे जानते, संसारमें और कहीं भी ऐसा कष्ट देनेवाला साधन काममें नहीं लाया जाता है। आपको या तो ऐसा करना छोड़ देना चाहिए या फिर मुझे इन त्योहारोंमें नहीं बुलाना चाहिए। आपको उनके साथ इतनी दयासे बरताव करना चाहिए और उनके साथ इतनी नरमीसे पेश आना चाहिए कि वे आरके प्रयोगके बिना ही आपके एक-एक शब्द या संकेतको समझ लें। आप आजसे ही इस काममें लग जाइए और देखिए कि अगले त्योहार तक आप कितनी प्रगति कर पाते हैं। हमारा उद्देश्य सेवा-ग्रामको एक आदर्श गाँव बनाना है। अन्य अवसरोंपर मैंने आपको बताया है कि अन्य मामलोंमें क्या करना चाहिए। आज मैं आपको बता रहा हूँ कि आदर्श पशुओंके बिना आदर्श गाँव नहीं हो सकता। हमारी सेवाएँ आपके लिए प्रस्तुत हैं, लेकिन आपके सहयोगके बिना उनसे भी बहुत लाभ नहीं हो सकता। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप तुरन्त आपसमें मिल-बैठकर तत्काल अमलमें लाने के लिए एक कार्यक्रम बना लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-९-१९४०

1. यहाँ गांधीजी ने उन्हें एक आर दिखाई।

४७८. बातचीत : भारतानन्दसे[1]

[२ सितम्बर, १९४० के पूर्व][2]

भारतानन्द : आप कहते हैं कि पोल लोग 'लगभग अहिंसक' थे। मैं ऐसा नहीं समझता। पोल लोगोंके हृदयमें तीव्र घृणा थी और मैं नहीं समझता कि वे इस प्रशंसाके योग्य हैं।

गांधीजी : मैं जो-कुछ कहता हूँ, उसका इतना शब्दश: अर्थ मत लगाइए। यदि दस सिपाही पूरी तरह शस्त्रास्त्रोंसे लैस एक हजार सिपाहियोंका प्रतिरोध करते हैं तो वे लगभग अहिंसक ही हैं, क्योंकि उनमें उन हजार सिपाहियोंके अनुपातमें तो हिंसाकी कोई क्षमता है ही नहीं। लेकिन मैंने जो लड़कीका दृष्टान्त दिया है वह अधिक उपयुक्त है। एक लड़की, जो अपने ऊपर हमला करनेवाले पर यदि उसने नाखून बढ़ा रखे हों तो नाखूनोंसे, या दाँत हों तो अपने दाँतोंसे हमला करती है, लगभग अहिंसक ही है, क्योंकि उसमें पहलेसे सोची हुई कोई हिंसा नहीं है। उसकी हिंसा बिल्लीके मुकाबले चूहेकी हिंसा है।

भारतानन्द : तब बापूजी, मैं आपको एक उदाहरण दूँगा। एक जवान रूसी लड़कीपर एक सिपाहीने हमला किया। उसने अपने नाखूनों और दाँतोंका प्रयोग किया और कहना चाहिए कि उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। क्या वह लगभग अहिंसक थी?

महादेव देसाई : यदि उसने जो-कुछ किया वह उससे तत्क्षण जो बन पड़ा सो ही था तो उसके इस आचरणको, महज इसलिए कि वह अपने प्रयत्नमें सफल हो गई, अहिंसाका नाम देने में कोई बाधा क्यों होनी चाहिए?

गांधीजी : नहीं, कोई बाधा नहीं है।

भारतानन्द : यह सुनकर तो मैं चकरा गया। आप कहते हैं कि कोई पहलेसे सोची हुई हिंसा नहीं होनी चाहिए और हिंसा कर सकने की वैसी क्षमता नहीं होनी चाहिए। लेकिन इस मामलेमें तो अपनी सफलतासे उसने सिद्ध कर दिया कि उसमें क्षमता थी।

गां० : मुझे खेद है कि मैंने असावधानीके कारण महादेवसे सहमति प्रकट करते हुए 'नहीं' कह दिया। उसमें हिंसा थी और मात्रामें वह बराबरी की थी।

१ और २. महादेव देसाई द्वारा लिखित "अहिंसा इन डेली लाइफ" (दैनिक जीवनमें अहिंसा) २-९-१९४० से उद्धृत।

भा० : लेकिन तब क्या अन्ततोगत्वा हिंसा और अहिंसाकी कसौटी आचरणके पीछे विद्यमान इरादा ही नहीं है? एक शल्य-चिकित्सक अपने चाकूका प्रयोग अहिंसक भावसे करता है। इसी तरह, जिसपर समाजमें शान्ति बनाये रखने की जिम्मेदारी है वह भी समाजकी रक्षाके लिए दुराचारियोंके विरुद्ध शक्तिका प्रयोग करता है। कहना होगा कि वह भी यह कार्य अहिंसक भावसे करता है।

गा० इरादेका निर्णय कौन करेगा? हम नहीं कर सकते। हमारे लिए तो ज्यादातर बाहरी कार्य ही कसौटी होता है। साधारणतया हम कार्यको देखते हैं, इरादे को नहीं। इरादा तो केवल ईश्वर ही जानता है।

भा० : तब तो सिर्फ ईश्वर ही जानता है कि हिंसा क्या है और अहिंसा क्या है।

गा० . हाँ, केवल ईश्वर ही अन्तिम निर्णायक है। ऐसा हो सकता है कि हम जिसे अहिंसाका कार्य समझते हों वह ईश्वरकी निगाहमें हिंसाका हो। लेकिन हमारे लिए रास्ता निर्धारित है। और फिर आपको मालूम होना चाहिए कि अहिंसाके सच्चे आचरणका अर्थ यह भी है कि उसका आचरण करनेवाले मनुष्यकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र और अन्तरात्मा खूब जागरुक होनी चाहिए। ऐसे मनुष्यके लिए गलती करना कठिन है। जब मैंने पोलैण्डके लिए उन शब्दोंका प्रयोग किया और जब मैंने अपने-आपको लाचार माननेवाली लड़कीको यह सुझाव दिया कि वह हिंसाकी दोषी बने बगैर अपने नाखूनों और दाँतोंका प्रयोग कर सकती है तब आपका ध्यान इस बातपर होना चाहिए कि मेरे मनमें मेरे उक्त कथनका क्या अर्थ है। ये दोनों आक्रमणकारीकी जबरदस्त ताकतके आगे यह जानते हुए भी झुकने से इनकार करते हैं कि इसका परिणाम अनिवार्य मृत्युके सिवा और कुछ नहीं है। पोल लोगोंको मालूम था कि वे धूलमें मिला दिये जायेंगे, फिर भी उन्होंने जर्मन सेनाओंका मुकाबला किया। इसलिए मैंने इसे लगभग अहिंसा कहा।

भा० : लेकिन बापूजी, चाहे जिस कारणसे भी हो, मैं यह नहीं भूल पाता कि निर्णय तो ईश्वर ही करता है और ईश्वर हिंसा होने देता है। मैं आपको एक पौराणिक कथा सुनाना चाहता हूँ। एक बार भगवान् शिव और पार्वती बातचीत कर रहे थे। भगवान् शिव बीचमें अचानक गायब हो गये। लेकिन शीघ्र ही वे फिर प्रकट हो गये। जब उनसे पूछा गया कि आप कहाँ गये थे, तो उन्होंने कहा कि वे एक भक्तको, जिसपर हमला किया गया था, बचाने गये थे। लेकिन यह देख-कर कि भक्तने आक्रमणकारीको एक पत्थर मारकर अपनी मदद खुद ही कर ली वे लौट आये।

गा० ठीक है, ठीक है। बात यह है कि चाहे जितना भी तर्क करें, वह हमें अहिंसा नहीं सिखा सकता। और आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि जबतक योगमें पारंगत पतंजलि-जैसे व्यक्ति द्वारा निर्धारित आध्यात्मिक साधनाका पूरा रास्ता कोई

तय न कर ले तबतक वह अपने इरादेकी शुद्धताके बारेमे भरोसा नही कर सकता। पूर्ण चित्तशुद्धि किसी और तरहसे नही प्राप्त हो सकती।

भा० : अहिंसा, ब्रह्मचर्य, कताई ये सब साधनाएँ हैं और हो सकता है कि इनमें से कोई एक किसी एकको माफिक आये, लेकिन दूसरेको नहीं। आपने अहिंसा को सार्वत्रिक नियम क्यों बना दिया है?

गां० . कोई वैज्ञानिक जब किसी साधनकी परीक्षा करता है और इस परिणाम पर पहुँचता है कि उसमें अचूक सामर्थ्य है तब उसे सबके सामने रखता है। आपको यह वचन तो मालूम ही है कि "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।" जो बात किसी एक व्यक्तिके लिए सही है वह विश्वके लिए भी उतनी ही सही है।

भा० : लेकिन आप एक साधु और एक डाकूके लिए एक ही नियम रखते हैं!

गा० · नियम तो दोनोके लिए एक ही है, लेकिन रास्ता डाकूके लिए साधुकी अपेक्षा ज्यादा कठिन हो सकता है। नियम तो आदर्श है, व्यक्ति उस आदर्शसे चाहे जितनी दूर रह जायें।

भा० : लेकिन आप आदर्शके आगे वास्तविकताको भूल जाते हैं।

गा० : नही, ऐसा नही है। वास्तविकता हमेशा हमारे सामने रहती है, लेकिन मेरा प्रयत्न सदैव आदर्शतक पहुँचने का रहता है। यूक्लिडकी सीधी रेखा केवल हमारी कल्पनामे ही है, लेकिन हमे हमेशा उसे मानकर चलना है। हमें हमेशा यूक्लिडकी काल्पनिक रेखा-जैसी सच्ची रेखा खीचने का प्रयत्न करना है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-९-१९४०

४७९. प्रश्नोत्तर

एक लक्षण

प्र० : आप कहते हैं कि अहिंसकको सब-कुछ खो देने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि उनका सम्बन्ध आत्मासे नहीं है, किन्तु शरीरसे है। यदि हम सब-कुछ खोने को हर घड़ी तैयार रहें, तो फिर हिंसक या अहिंसक युद्धकी आवश्यकता ही क्या है? युद्ध तो इसीलिए करना पड़ता है न कि हम अपने धन-जनको आक्रमणकारीके हमलेसे बचायें।

साथ ही आप यह भी कहते हैं कि यदि अपने धन-जनकी हिफाजतकी इच्छा हमारे मनमें होगी तो हमारी अहिंसा अशुद्ध हो जायेगी। इन दोनोंका मेल कैसे होगा?

उ० आपका प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेनाके लिए है। हिन्दुस्तानको ही लीजिए। करोड़ों लोग अहिंसक सेनामें भर्ती नहीं होंगे। लेकिन उनकी रक्षाके लिए जो सत्याग्रही बनेंगे, उनको सर्वस्वका मोह छोड़ना होगा।

खादी और पवित्रता

प्र० : मेरे पास खादी तो है लेकिन मेरा हृदय पवित्र नहीं है। इस हालतमें खादी कैसे पहनी जाये?

उ० आप अखबार नहीं पढ़ते हैं क्या? मैंने हजारों बार लिखा है, कहा है कि खादी लिबासके रूपमें तो सबके लिए है। शराबी, व्यभिचारी, चोर, डाकू सब पहनें। लेकिन खादीमें एक अधिक गुण माना गया है। वह हमारी स्वतन्त्रताकी निशानी है। इसलिए जो स्वतन्त्रता हासिल करना चाहें, उनको तो खादी पहनना ही है। उनके लिए आप जो-कुछ कहते हैं, वह नहीं है, क्योंकि सत्याग्रहीका हृदय पवित्र होना चाहिए। वह शराब नहीं पीयेगा, न व्यभिचारी होगा और उसके लिए खादीका लिबास फर्ज है।

धर्म-संकट

प्र० : मैं एक बार स्टेशनसे दूर रेलके नजदीकसे जा रहा था। मैंने एक नवयुवकको ठीक रेलके पास खड़ा हुआ देखा। मुझे शक आया कि वह रेलगाड़ीसे कटकर आत्महत्या करना चाहता है। इसलिए मैंने उसे वहांसे हट जाने को कहा। वह मेरी थोड़े ही माननेवाला था? मैंने बहुत मिन्नत की। लेकिन उसने एक न सुनी। मैंने उसकी जान बचाने का निश्चय किया। मैंने उससे लड़ाई की। उसे कुछ खून निकला। मुझे थकान मालूम होने लगी। लेकिन रेलगाड़ीके चले जाने तक मैंने उसको पकड़े रखा। अगर मैं नहीं लड़ता, तो वह मरनेवाला था ही। मैंने क्या किया — हिंसा या अहिंसा? जब मैंने लड़ाई शुरू की, तब मुझे कुछ ख्याल नहीं था कि मैं हिंसा कर रहा हूँ या अहिंसा। और अब भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता हूँ।

उ० अच्छा ही हुआ कि आपने उस समय हिंसा-अहिंसाका ख्याल नहीं किया। जगत् इस तरह नहीं चलता है। अभ्याससे हमारेमें एक आदत हो जाती है। मुझे तो कुछ शक नहीं कि आपका वह कार्य अहिंसक और बहादुरीका था। आपने उस नवयुवककी जान बचाई, इसलिए आप उसके सच्चे दोस्त सिद्ध हुए। जैसे एक सर्जन अपने मरीजकी जान बचाने के लिए मरीजको दर्द होते हुए भी चीर-फाड़ करके उसे बचाता है, ऐसा आपने किया। धन्यवाद।

सेवाग्राम, २ सितम्बर, १९४०

हरिजनसेवक, ७-९-१९४०

४८०. 'एक जिज्ञासु' को जवाब

'एक जिज्ञासु' का प्रश्न पाठक इस अंकमें देखेंगे। ऐसा प्रश्न तो सबको सूझा होगा। लेकिन इस प्रश्नकी खूबी उसे प्रस्तुत करने के ढगमें है। 'एक जिज्ञासु' ने इस समय फैल रही दावाग्निके कदर्य रूपका ऐसा चित्रण किया है कि इसे पढकर हमारे मनमे हिंसासे घृणा हुए विना नही रह सकती। इसे पढते हुए ऐसा उद्गार पाठकके मनमे सहज ही आयेगा कि "ऐसी हिंसासे यदि सारे ससारका राज्य मिलता हो तो वह भी नही चाहिए।"

लेकिन ऐसे उद्गारोसे थोडे ही यह दावाग्नि ठंडी पडनेवाली है। अपने-आप तो यह किसी दिन अवश्य बुझ जायेगी। लेकिन इसका अर्थ तो यह हुआ कि यादवो के संहारकी तरह इसमें भी संहार होना ही है। यादव एक-दूसरेके साथ लडकर मर मिटे और पृथ्वीका भार हल्का हुआ। दावाग्नि सुलगती ही रहे, इसकी अपेक्षा वह उपर्युक्त ढंगसे शान्त हो जाये, यह भी एक हदतक खुशीकी वात ही होगी। लेकिन ऐसा कोई नही चाहेगा। इच्छा करने-जैसी वात तो यह है कि सर्वनाश होने से पहले किसी शक्तिशाली अहिंसक प्रयोगके द्वारा यह दावाग्नि रुक जाये। अब यह खोजना हमारा काम है कि यह प्रयोग कब और किस प्रकार किया जाये। ऐसी खोज होने पर ही 'एक जिज्ञासु' की तृप्ति होगी। मेरे मतानुसार यह खोज हो चुकी है। इस दावाग्निके दौरान यदि हिन्दुस्तानको अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य मिल जाये तो वह ठण्डी पड जायेगी। यह मेरा दृढ विश्वास है, इसीलिए मैं वर्धा प्रस्तावके विरुद्ध जूझा था और अन्तमें मैंने कांग्रेससे मुक्ति पा ली। मुक्ति मैंने अपने अहंकारका पोषण करने के लिए नही, प्रयोगकी सफलताके लिए ही ली है। और अगर यह मुक्ति वापस लेनी पडी — जो सम्भव है — तब भी उद्देश्य तो वही होगा।

अपने धार्मिक ग्रन्थोमें हम पढते हैं कि प्राचीन कालमे जब किसी क्लेश अथवा उपद्रवसे साधारण उपचारों द्वारा छुटकारा नही मिलता था तो लोग तपस्या करते थे, अर्थात् सचमुच जल मरते थे। इन वातोंको मैं दन्तकथा नही मानता। तपस्या के अनेक प्रकार होते हैं। मूर्ख भी तपस्या कर सकता है। आज भी हम उसे तपस्या करते देखते हैं। ज्ञानी भी तपस्या करता है। तपस्याका अर्थ भी समझने लायक है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोने जो अनेक आविष्कार किये वे केवल तपस्याके बलपर किये हैं। तपस्या केवल वनमे जाकर, अपने आस-पास अग्नि जलाकर उसके बीचमे बैठ जाने से ही नही होती। ऐसी तपस्यामे खालिस मूर्खता ही हो सकती है। इसलिए उचित है कि हम तपस्याका व्यापक अर्थ करें।

'एक जिज्ञासु' का प्रश्न निराशाके कारण उत्पन्न नही हुआ; बल्कि उसका उद्देश्य अहिंसा-मार्गके अनुयायियोको जाग्रत करना है। मार्ग तो मैंने बताया ही है,

और वह है तेरह मुद्दोंवाला रचनात्मक कार्यक्रम। जो एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक और चुपचाप उसका आचरण करेंगे वे दावाग्निको शान्त करने की तपस्यामें भाग लेनेवाले होंगे। इस कार्यक्रममें ज्ञानपूर्वक भाग लेनेवाले दो उद्देश्य एक साथ सिद्ध करेंगे —हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र करेंगे और दावाग्निको शान्त करेंगे। हो सकता है कि ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े हों, इतने थोड़े कि उनका कोई असर ही न हो। मैंने कहा है कि एक ही व्यक्ति, यदि वह लगभग पूर्णत अहिंसक हो, तो दावाग्निको शान्त करने मे समर्थ होगा। लेकिन मैंने तो ऐसी तपस्या सुझाई है जो साधारण व्यक्तिके लिए भी सुलभ है। जन-शक्तिके इस युगमें अनेक मनुष्योंके साहसके बूते शुभ कार्य हों, यही उचित है। एक महान् व्यक्तिके बलपर मिली हुई वस्तुसे, भले ही वह हितकर हो, किन्तु उसमें समाजको अपनी शक्तिका भान नहीं होता, और इसलिए उसी परिमाणमें, एक व्यक्तिके बलपर प्राप्त किया गया हित यद्यपि त्याज्य नहीं होता, तथापि उससे समाजका तेज नहीं बढता। यह वैसा ही होगा जैसे एक धनाढ्य दानी द्वारा लाखो भूखोंको मुफ्त अन्न देना। इसलिए हमारे प्रयत्नका झुकाव तेरह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रमको सफल बनाने की ओर होना चाहिए, फिर भले ही उक्त प्रयत्न करने के बावजूद सफलता मिले या न मिले। कार्यक्रम पूरा करते हुए आत्मतोष तो मिलेगा ही।

'एक जिज्ञासु'की एक चेतावनीकी ओर ध्यान आकर्षित करूँ। उसका भावार्थ यह है यह कितने दु खकी बात है कि लोग दोनो पक्षोंके संहारकारी पराक्रमोंके समाचार रात-दिन रसपूर्वक पढते है और उन समाचारोको पढकर उन्हे ऊब नहीं होती!

जिन्हे शान्तिके प्रचारमें भाग लेना है, उनका कर्त्तव्य है कि वे ऐसे रससे बचे। यदि वे नही बचते तो वे अहिंसाका दावा नही कर सकते, वे तेरह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रममें भाग नहीं ले सकते, क्योंकि उसमें उनकी श्रद्धा जमेगी ही नहीं।

लेकिन चाहे जो हो, यह बात दिनके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट है कि यदि पुरुषार्थसे दावाग्निको शान्त होना होगा तो वह हिन्दुस्तानके किये ही होगी।

सेवाग्राम, २ सितम्बर, १९४०

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ७-९-१९४०

४८१. पाठकोंसे

जब तय हुआ कि 'हरिजनसेवक' मे भी मुझे लिखना है, तो मैंने सोचा कि 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु' और 'हरिजनसेवक' तीनो एक ही जगह छपने से मुझे सुभीता होगा। श्री वियोगी हरिने भी यह सूचना पसन्द की। कई महीनोसे 'हरिजनसेवक' के बारेमे उनका भार हलका करने की बात चल रही थी। उनका प्रधान यानी एक ही कार्य हरिजन-निवासको हरिजनोका आदर्श शिक्षालय बनाना है। उनको इस दिशामे काफी सफलता भी मिली। 'हरिजनसेवक' का भार उनपर खासा पड़ता था। उसे कम करने की कोशिश चल रही थी। उसमे कुछ सफलता भी मिली थी। अब 'हरिजनसेवक' शाया[1] करने का स्थान बदलने से वह और भी कम होगा। उनको 'हरिजनसेवक' के कामसे सर्वथा मुक्ति तो नही मिल सकती है। दूसरे भी सम्पादक वे ही रहेगे। उससे भी मुक्ति देने की मैंने कोशिश तो की। अच्छा हुआ मुझे सफलता न मिली। 'हरिजनसेवक' वियोगीजी की कृति है। उनके ही उत्साहसे चलता था। ग्राहक भी वे ही बनाते थे। इसलिए उचित है कि 'हरिजनसेवक' से उनका सम्बन्ध कुछ-न-कुछ बना रहे। उनके लेख तो 'हरिजनसेवक' मे आते ही रहेगे।

'हरिजनसेवक' की भाषा अवश्य बदलेगी। मेरा हिन्दुस्तानीका ज्ञान बहुत कच्चा है, उसका अभ्यास कुछ भी नही। बोलते-सुनते जो सीख सका वही है। इसलिए व्याकरणके दोष मेरी भाषामें रह जायेंगे। ऐसे दूसरे भी साथी है जो लिखते रहेंगे। इस त्रुटिको पाठक लोग उदारतासे बरदाश्त करेंगे, ऐसी आशा रखता हूँ। इसका अर्थ यह होता है कि 'हरिजनसेवक' कोई भाषाकी दृष्टिसे नही लेगें। जो लेगें या पढ़ेंगे वे उसमे जो विचार आयेंगे उन्हे जानने के लिए। पाठकोके आग्रहके वश होकर मैंने 'हरिजनसेवक' में भी लिखने का निश्चय किया है। गुजराती लेखोके अनुवादसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता सन्तुष्ट रहेगी, ऐसा मैंने मान लिया था। लेकिन इतनेसे उसकी तृप्ति नही हुई। एक बात है सही। जब अनुवाद दिल्लीमे होता था, उसपर मेरा अंकुश नही रहता था। अब निश्चय यह हुआ है कि अनुवाद भी मेरी देखभालके नीचे होगे। इसलिए जो अनर्थ कई बार 'हरिजनसेवक' में रह जाते थे, वे अब नही रहेगे या नही-से हो जायेंगे।

सेवाग्राम, २ सितम्बर, १९४०

हरिजनसेवक, ७-९-१९४०

१. प्रकाशित

४८२. बीसवामें न्यायकी विफलताकी पुनः चर्चा

भारतके सबसे बडे प्रान्त बगालके मुख्य मन्त्री मौलवी साहब फजलुल हकने मेरे नाम एक खुला पत्र लिखकर मुझे सम्मानित किया है। उसमें उन्होंने राष्ट्रीय काग्रेसकी, जिसके वे किसी समय खुद भी उत्साही अनुयायी और प्रशसक थे, सार्वजनिक रूपसे खिल्ली उड़ाई है। उनकी रायमें, काग्रेसने मुसलमानोंकी भावनाको चोट पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। मौलवी साहबके ही शब्दोंमें

> असंख्य मुसलमानों तथा अन्य अल्पसख्यकोंकी अनुभूतियों और भावनाओं को कांग्रेसके लोकतन्त्रके रथचक्रने किस प्रकार बेरहमीसे — और कई प्रसगो पर तो आपके मूक समर्थन, अनुमोदन और सहमतिसे — रौंदा है, इसके दृष्टान्त मैं अनेक बार प्रकाशित कर चुका हूँ।

जहाँतक इस आरोपका सम्बन्ध मुझसे है, मुझे कहना होगा कि मैं निर्दोष हूँ। मैंने दावा किया है कि मेरे ध्यानमे जो भी कथित अन्यायके मामले लाये गये, मैंने सबकी जाँच की है। जब भी तथ्योंने काग्रेसके कार्योंकी निन्दाका तकाजा किया है, उनकी निन्दा करने मे मैंने कभी सकोच नहीं किया है।

लेकिन बगालके मुख्य मन्त्रीने अपने आरोपके समर्थनमें जो सबसे ताजा दृष्टान्त दिया है, अभी हम उसीपर विचार करें। बीसवामें न्यायकी विफलताके कुख्यात काण्ड की चर्चा उन्होंने विस्तारसे की है। मुझसे उसपर अपनी राय देने को कहा गया है। स्पष्ट है कि जब मौलवी साहबने अपना यह खुला पत्र लिखा उस समयतक उन्होंने इस मामलेपर मेरी राय नहीं देखी थी। वे पिछले महीनेकी ११ तारीखका 'हरिजन' (पृ० २४४) देखें तो उन्हे उसमें मेरी राय मिल जायेगी। उस रायके हर शब्दपर मैं आज भी कायम हूँ।

उनके द्वारा उद्धृत अन्यायके मामले यदि बीसवा-काण्डके ही समान रहे हैं तब तो उनका आरोप बुरी तरह विफल हो जाता है। न्यायकी उस विफलतामें काग्रेस मन्त्रिमण्डलका उससे कुछ अधिक सम्बन्ध नहीं था जितना कि स्वय मौलवी साहबका हो सकता था। किसी भी न्यायाधीशने ऐसा तो नहीं कहा है कि पुलिस काग्रेस मन्त्रिमण्डलके प्रभावमें थी और मन्त्रिमण्डलने न्यायको विफल बनाने के लिए उसका उपयोग किया। सचाई यह है कि मन्त्रिगण पुलिसके आचरण और अभियोग-पक्षके लिए किसी प्रकार जिम्मेदार नहीं थे। न्यायकी विफलताकी ऐसी और भी घटनाएँ भारतमें पहले हुई हैं। लेकिन सिवाय ऐसे प्रसगके जब उसमें सरकार की साँठ-गाँठ स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर दी गई, हर मामलेमें पुलिस दोष दिये जाने योग्य मानी गई, न कि सरकार। मौलवी साहबने अपने इस कथनके समर्थनमें

कोई प्रमाण पेश नही किया है कि मन्त्रियोंने मुकदमेकी कार्यवाहीमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप किया।

उन्होने मध्य प्रान्त विधान-सभामे पण्डित शुक्लके भाषणपर न्यायालयकी कतिपय टिप्पणियोके हवाले दिये है। लेकिन इन टिप्पणियोका अर्थ इससे अधिक कुछ नही है कि ऐसा भाषण देना जो मामलेको किसी प्रकारसे प्रभावित करता प्रतीत हो सकता है राजनीतिक बुद्धिमत्ताका काम नही था। न्यायालयकी आलोचनात्मक टिप्पणीमें पुलिस या अभियोग-पक्षसे भी श्री शुक्लका कोई सम्बन्ध नही बताया गया है। इसके अतिरिक्त यह एक आनुषगिक टिप्पणी थी, जिसका कोई न्यायिक मूल्य नही है। मुझे तो इसमें सन्देह है कि पण्डित शुक्लसे अपने भाषणका स्पष्टीकरण देने को कहे बिना यह टिप्पणी करके न्यायालयने कोई समझदारीका काम किया। लेकिन पण्डित शुक्लने काग्रेस-अध्यक्षके नाम अपने पत्रमे यह स्पष्टीकरण दे दिया है।

मौलवी साहबने इस स्पष्ट तथ्यका कोई उल्लेख नही किया है कि वास्तवमें अपील अदालतने यह पाया है कि जगदेवरावकी हत्या की गई और कई लोग गम्भीर रूपसे घायल हुए। अदालतको दु:ख इस बातका है कि दोषी बिलकुल बच निकले। निश्चय ही मुसलमान लोग इस अवाछनीय परिणामके लिए मन्त्रियोपर कोई आरोप नही लगा सकते। अगर शिकायत करने का उचित आधार किसीके पास हो सकता है तो हिन्दुओके पास। जहाँतक मुझे मालूम है, किसी भी हिन्दूपर मुकदमा नही चला और किसी भी मुसलमानको गम्भीर चोट नही आई। हो सकता है, साक्ष्योके मूल्याकनमे सत्र न्यायाधीशसे भूल हुई हो। लेकिन उन्होने छह मुसलमानो को फाँसी की सजा दी, यह चीज ऐसी है जिसपर सभी न्याय-प्रिय लोगोको गम्भीरतासे विचार करना चाहिए। कारण, अगर दण्डित लोग दोषी नही थे तो कोई और मुसलमान दोषी थे।

मौलवी साहबके खुले पत्रमे इस चीजका अभाव बहुत खटकता है कि उन्होने एक हिन्दू नेताकी हत्या और कई हिन्दुओके गम्भीर रूपसे घायल होने पर तथा हत्या और चोटें पहुँचाने के लिए जिम्मेदार असली अपराधियोके बच निकलने पर कोई खेद प्रकट नहीं किया है। पण्डित शुक्ल एक पडोसी प्रान्तके उनके सहयोगी मुख्य मन्त्री थे। बगालके मुख्य मन्त्रीसे मेरा निवेदन है कि शिष्टताका तकाजा था कि पण्डित शुक्लकी निन्दा करने से पहले उन्हे उनसे स्पष्टीकरण माँगना चाहिए था।

सेवाग्राम, ३ सितम्बर, १९४०

[अग्रेजीसे]
हरिजन, ८-९-१९४०

४८३. पत्र : कुलसुम सायानीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
४ सितम्बर, १९४०

प्रिय कुलसुम,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत खुशी हुई। देखूँगा कि तुम्हारे भेजे विवरणका[1] क्या उपयोग कर पाता हूँ, लेकिन तुम्हारे कामके लिए और तुम्हारे यहाँके और इंग्लैण्डके स्वजनोंके निमित्त भी मेरा आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त है।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजीसे कु० सायानी पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४८४. पत्र : अमृतलाल नानावटीको

४ सितम्बर, १९४०

चि० अमृतलाल,

जब काकासाहब आयें तो उनके सामने यह पत्र[2] पेश करना। वे अन्तिम अनुच्छेदके बारेमें भी मेरे साथ चर्चा करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८००)से

१. कुलसुम सायानी बम्बईमें महिलाओंके बीच साक्षरताके प्रसारके लिए कक्षाएँ चला रही थीं।
२. यह सुन्दरलालका गांधीजी के नाम लिखा पत्र था, जो उपलब्ध नहीं है।

४८५. पत्र : विजयाबहन म० पंचोलीको

४ सितम्बर, १९४०

चि० विजया,

लगता है, तू तो बडी मेहनती हो गई है। पत्र ही नही लिखती। हर हफ्ते तीन पैसेका खर्च किया कर। तेरी तबीयत बिलकुल ठीक नही हुई क्या? नानाभाई कैसे है? मनुभाई काफी घी लेते है क्या? यहाँ सब ठीक है। सुशीला अभी दिल्ली मे ही है। यहाँ कुछ नये लोग आ गये है। दिवालीपर तेरी राह देखूंगा। लेकिन मै यह नही चाहता कि तू वहाँके कामकी उपेक्षा करके यहाँ आये।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१३२) से। सी० डब्ल्यू० ४६२४ से भी, सौजन्य : विजयाबहन म० पचोली

४८६. पत्र : मुन्नालाल गंगादास शाहको

सेवाग्राम
४ सितम्बर, १९४०

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र तुम्हारी अहिंसा-वृत्तिको शोभान्वित करता है। मेरा उद्देश्य इस पूरे मामलेकी छानबीन करना नही था, मुझे तो बगालके मन्त्रीके भयंकर आरोपोका उत्तर देना था।[1] सी० पी० के प्रतिनिधिका दिलचस्पी लेना एक बात है और वह झूठे गवाह तैयार करे, यह बिलकुल दूसरी बात है। बीसवामें हिन्दुओपर बडा अत्याचार हुआ, यह तथ्य ही यहाँ प्रासगिक है। लेकिन बादमे कैदियोके साथ जो दुर्व्यवहार हुआ, वह तथ्य तो है, किन्तु प्रासगिक नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५२८) से। सी० डब्ल्यू० ७१०१ से भी, सौजन्य · मुन्नालाल गं० शाह

१. देखिए "बीसवामें न्यायकी विफलताकी पुनः चर्चा", पृ० ४८९-९०।

४८७. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
४ सितम्बर, १९४०

चि० कृष्णचद्र,

सब इतनी दिलचस्पीसे मेरे लेखोका सग्रह नही करते है जितना तुम। इसलिये तुमारे ह० से० लेने में मैं कुछ दोष नहि पाता।

बाकी समझा हू।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४३६०)से

४८८. पत्र : हीरालाल शर्माको

४ सितम्बर, १९४०

चि० शर्मा,

तुमारा खत मिला। तुमारे शीघ्र अच्छा हो जाना चाहिये। यहां अति वृष्टि हूई। नुकसान हूआ है। कुछ ध्यान खीचे ऐसी सधारणा यहाँ नहि हूई है।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २८९

४८९. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

सेवाग्राम, वर्धा
४ सितम्बर, १९४०

भाई हरिभाऊ,

प्रजामण्डल इ० के सदस्यके बारेमे लिखुगा आगामी ह० से० के लिये।[1]

ह० से० की भाषा अब तो कैसी बनेगी देखना है। प्या० पर यह भार रखा है। सब लेख उसकी नजरसे गुजरेगे। प्या० तुमको लिखेगा। कुछ लेख निबध-रूपमे नहि लेकिन बिनासे भरे हुए भेज सकते है तो भेजो। भाषाकी टीका तो भेजना ही।

बापुके आशीर्वाद

हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४९०. तार : कार्ल हीथको

वर्धागज
६ सितम्बर, १९४०

कार्ल हीथ
फ्रेड्स हाउस
यूस्टन रोड
लन्दन

आपका तार[2] मिला। सघर्षको, जो अनिवार्य लगता है, भरसक टालने की कोशिश कर रहा हूँ। वाइसरायसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। पत्र-व्यवहारसे लगता है कि एमरी द्वारा प्रतिपादित नीति बदली नही जा सकती। प्रमुख काग्रेसियोकी गिरफ्तारी जारी है। एमरीने आपको जो आश्वासन दिया है, प्रत्यक्ष तथ्योंसे उसका समर्थन नही होता।

१. देखिए "प्रश्नोत्तर", पृ० ५०३-४।

२. अपने ३० अगस्तके तारमें कार्ल हीथने कहा था कि उन्हें एमरीने आश्वासन दिया है कि कांग्रेसकी परेशान न करनेवाली नीतिका कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया जा रहा है, और आदेश विशेष रूपसे कांग्रेसके विरुद्ध नहीं है, बल्कि सामान्य ढंगके है। उन्होंने आग्रह किया था कि गांधीजी वाइसरायसे मुलाकात करने की कोशिश करें।

कांग्रेसकी ओरसे संयमका प्रयोग अपने विनाशके लिए नहीं किया जा सकता।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४२) से

४९१. पत्र : शैलेन्द्रनाथ चटर्जीको

सेवाग्राम, वर्धा
६ सितम्बर, १९४०

प्रिय शैलेन्द्र,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। पिताजी से बात हुई थी। वैसे विचारोंवाला व्यक्ति तुम्हे प्रलोभन दे यह उचित नही है। ईश्वरपर भरोसा रखना चाहिए कि वह सबकी देख-भाल करेगा। पिताजी भले मृत्यु की बात करे, तुम्हे नही करनी चाहिए। तुम्हारे लिए तो वे हमेशा जीवित ही रहेगे। मेरी सलाह है कि जो तुम्हारे पास है[2] उसीको पकड़े रहो। मात्र अपनी योग्यताके बलपर तुम्हे संघमें अधिक कमा सकना चाहिए। उन्हे मालूम होना चाहिए कि संघमें भी २० रुपयेसे ज्यादा कमानेवाले व्यक्ति है। बहनोकी चिन्ता करने की जरूरत तुम्हे नही है। क्योंकि जब उनका विवाह होगा, कोई खर्च नही होगा। धीरेन[3] अच्छी कमाई करने की योग्यता हासिल कर रहा है। मॉकी जरूरतें पूरी करने का इन्तजाम पिताजी कर ही रहे है। इसलिए कमसे-कम फिलहाल तुम्हें किसीकी फिक्र करने की जरूरत नही है।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०१६१) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

१. आश्रमवासी अमृतलाल चटर्जीके पुत्र
२. शैलेन्द्रनाथ चटर्जी कलकत्तामें अ० भा० च० संघमें काम करते थे।
३. शैलेन्द्रनाथ चटर्जीके छोटे भाई, जो आश्रममें प्रशिक्षण पा रहे थे।

४९२. पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा
६ सितम्बर, १९४०

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मेरे पिछले महीनेकी छह तारीखके पत्रका तत्परताके साथ उत्तर देने के लिए आपको धन्यवाद। आपका तार भी मिला था। मुझे सीधे मुलाकातका समय दे देने में आपकी झिझकको मै समझता हूँ।[1]

इस पत्र-व्यवहारके फलस्वरूप अगर मैं आपसे मिलने आया तो जब भी आऊँगा, बेशक जाहिर यही किया जायेगा कि आपसे मुलाकात मैंने माँगी। अभी वस्तु-स्थिति मुझे जैसी नजर आती है उसके मुताबिक सम्भव है कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकके बाद मै फिरसे मुलाकातका समय माँगूं। क्योकि जबतक मै आपसे वस्तु-स्थितिपर बातचीत करके इस सम्बन्धमें आश्वस्त नहीं हो जाता कि गलतफहमीके लिए कोई गुंजाइश नही रह गई है, तबतक मै कोई कदम नही उठाना चाहता।

मुझे इस बातका पूरा भान था कि आपका वक्तव्य और भारत-मन्त्रीका भाषण, दोनो सम्राट्की सरकारकी निश्चित नीतिको प्रतिबिम्बित करते है। अगर आपसे मिला होता तो जिस ढगसे इस नीतिको कार्यान्वित किया जा रहा है उसके बारेमे आपसे अपनी शकाओका समाधान करवाने की कोशिश करता और आपके सामने अपने असन्तोषके कारणोको अधिक विस्तारसे रखता। और यहाँ मुझे बता देना चाहिए कि रोज-रोजकी घटनाओसे मेरा असन्तोष गहरा ही होता जा रहा है। काग्रेसको अधिकारहीन होकर भटकना पडे, इसकी मुझे कोई परवाह नही। और यदि सरकारकी नीति ऐसी बातोंपर आधारित हो जिसे कोई सीधा-सादा आदमी समझ सकता है तो उस नीतिपर भी फिलहाल मैं सरकारसे झगडना नही चाहूँगा। लेकिन जिस महान् संगठनको मैंने इस नाजुक घड़ीमे सम्राट्की सरकारको किसी परेशानीमे न डालने के विचारसे अकुशमे रखा है उसके समूल नाशका असहाय साक्षी मुझे नही बनना चाहिए। मुझे लोगोको यह कहने का मौका नही देना चाहिए कि एक झूठे नैतिक आग्रहके कारण मैंने काग्रेसको बिना सघर्ष किये कुचल जाने दिया। यही विचार मेरे मनको कचोटता रहता है।

१. वाइसरायने अपने २ सितम्बरके पत्रमें लिखा था: "कहने की जरूरत नहीं कि आपसे मिलकर मुझे खुशी होगी. . .हालाँकि आपको ईमानदारीकी बात बता दूँ कि मेरा वक्तव्य सम्राट्की सरकारकी निश्चित नीतिको ही प्रतिबिम्बित करता है। मुझे भरोसा है कि आप मेरी इस बातका भी गलत अर्थ न लगायेंगे कि. . .मुझे यह स्पष्ट कर देना होगा. . .कि. . .पहल मेरी ओरसे नहीं की गई।"

जहाँतक मौलाना साहबकी आपसे मिलने की अनिच्छाका सम्बन्ध है, मैंने तो बिलकुल साफ-साफ यह समझा था कि आप उन्हें, अगर वे आपसे मिलना चाहें तो, मिलने का अन्यथा लिखित उत्तर देने का विकल्प देंगे। और सचमुच आपने उन्हें विकल्प दिया भी। लेकिन लिखित उत्तर देने के पूर्व वे यह जान लेना चाहते थे कि क्या उन्हें घोषणा पर चर्चा करने की छूट है, और जब उन्हें बताया गया कि उसकी छूट नहीं है तब स्वभावत उन्होंने तय किया कि जो योजना उन्हें पूर्णत नापसन्द थी उसके अमलकी तफसीलोंकी चर्चामें आपका समय नष्ट न करें।[1] स्थितिको जैसा मैंने समझा है, उस दृष्टिसे उसे देखते हुए, क्या आप यह नहीं मानते कि उनका आपसे न मिलना ठीक ही था?

अगर जरूरी हुआ तो जबरन वसूली और ऊँची तनख्वाहोंके सम्बन्धमें अपने आरोपोंके बारेमें मैं अगले पत्रमें लिखूंगा। आप मेरी शिकायतोंके सम्बन्धमें जो तकलीफ उठा रहे हैं, उसके लिए फिलहाल धन्यवाद देता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७८४८) से। सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला

४९३. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

६ सितम्बर, १९४०

चि० विट्ठलदास,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई लक्ष्मीदासकी[2] योजना अच्छी है, लेकिन उसे अभी कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। खादीसे हमें इतना फायदा कभी नहीं होगा कि उसमें से हम उधार लिया पैसा वापस लौटा सकें या अपनी पूंजीमें इजाफा कर सकें, क्योंकि खादी अभी श्रद्धाके बलपर चल रही है और इसलिए उसे व्यापारकी वस्तु नहीं माना जा सकता। अत जबतक राज्य-सत्ता लोगोंके हाथमें नहीं आ जाती अथवा राज्य-सत्ता खादीको नहीं अपनाती, तबतक खादीको दान-वृत्तिपर गुजारा करना पड़ेगा। खादीका प्रसार और किसी रीतिसे नहीं हो सकता। जैसा कि मैं समझा हूँ, भाई लक्ष्मीदासकी योजनामें भी पूंजी वापस लौटानेकी बात नहीं है।

१. वाइसरायने ४ अगस्तको अबुल कलाम आजादको लिखे अपने पत्रमें कहा था " . . मुझे कुछ प्रतिनिधि भारतीयोंको अपनी कार्यकारिणी परिषद्में शामिल होने के लिए आमन्त्रित करने का अधिकार दिया गया है। . . . मेरा हार्दिक विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस केन्द्रीय सरकार और युद्ध परामर्श समितिमें मेरे साथ शामिल हो सकना शक्य पायेगी . मैं सहज ही यह समझता हूँ कि मुझे विधिवत् उत्तर भेजने के पूर्व इस विषयमें आगे चर्चा कर लेना शायद आपके लिए सुविधाजनक रहेगा। . . . आपकी सुविधानुसार किसी भी समय . आपसे मिलकर मुझे खुशी होगी।" मौलाना आजादको वाइसरायकी घोषणामें ऐसी कोई चीज नहीं मिली जिसपर सरकार और कांग्रेसमें सहमति हो सके। फलतः उन्होंने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया।

२. लक्ष्मीदास आसर

उधार ली हुई रकमपर थोड़ा ब्याज-भर दिया जायेगा। इतने ब्याजके लिए कोई व्यापारी रकम नहीं लगायेगा। हम ऐसी प्रतिश्रुति नहीं दे सकते कि जिससे खादी शेयर बाजारमे बेची जा सके। इसलिए यदि पैसा उधार मिलेगा, तो वह भी परोपकारी खादी-भक्तोसे ही मिलेगा। इसलिए मैं तो अभी दान लेने का ही प्रयत्न कर रहा हूँ। भाई शान्तिकुमारके[1] पास जो विवरण भेजा है, उसमे कुछ हस्ताक्षर भी है। अब देखे, क्या नतीजा निकलता है। यदि अभी आवश्यक दान मिल जाये, तो हम अधिक विकास कर सकते है।

तुम्हे कुछ और कहना हो तो लिखना।

आशा है, वैद्यका काम ठीक चल रहा होगा

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९७९६) से

४९४. पत्र: मीराबहनको

दुहराया नहीं

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
७ सितम्बर, १९४०

चि० मीरा,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला। इससे मै उस द्वन्द्वको समझ सकता हूँ, जो तुम्हारे भीतर चल रहा है। तुम हर बातके लिए अपने भीतर देखने की कला अभीतक नही सीख सकी हो। अगर धुनाईकी क्रियाको भी तुम एक बार ईश्वरके साथ जोड़ लो, तो उससे उतनी ही शान्ति मिलनी चाहिए जितनी कताईसे। फरहादको पहाड खोदने मे ही अपना ईश्वर दिखाई दिया था। कहानीमें उसका चित्रण एक ऐसे व्यक्तिके रूपमे किया गया है जो ईश्वरकी दी हुई पूरी ताकतसे लगातार उस पहाड पर भारी चोटे करता जाता है। उसने पहाड़को तोड़ दिया और अपने ईश्वरको, जिसे एक खूबसूरत दुल्हनका रूप दिया गया है, पा लिया। तुम साबरमती या और कही की दी हुई पूनियोसे ही कातोगी तो यह एक विलास होगा। लेकिन सम्भव है, तुम्हारे हाथ इतने कमजोर हो कि बहुत न धुन सको। मुमकिन है, तुम्हारा शरीर इतना दुर्बल हो कि गति और मात्रासे सम्बन्ध रखनेवाली सारी क्रियाएँ करने में तुम्हारा साथ न दे सके। लेकिन तुम्हारे लिए ये दोनो चीजे जरूरी नही है। जरूरी तो यह है कि तुममे ईश्वरके प्रति समर्पणकी भावना हो। तुम्हारी बाहरी प्रवृत्ति कुछ भी क्यो न हो, सब ईश्वरकी खातिर होनी चाहिए। आत्म-वंचनासे बचने के लिए हमने कताईके पहलेकी सभी क्रियाओके साथ कताईकी

१. शान्तिकुमार मोरारजी

योजना बनाई है। यदि इतना तुम साफ समझ गई हो तो तुम्हें थोड़ी मात्रामें बिना ओटी रुई लेनी चाहिए। इसे तुम हाथ-बेलनसे ओटो। इसकी विधि तो तुम जानती हो। इन्हें तुम वहीं बना सकती हो। लोहेकी छड़के बजाय तुम लकड़ीका बेलन भी ले सकती हो। इस तरह, तुम अपने काम-भर के लिए काफी ओट लोगी। इस रुईको धुनना तो बच्चोंके खेल-जैसा होगा। इसके लिए तुम आन्ध्रवाला तरीका अख्तियार करना। इस प्रकार बनाई गई पूनियाँ निर्दोष होंगी — और बनाने में कोई आवाज नहीं, कोई थकान नहीं, कोई गन्दगी नहीं, कोई धूल नहीं। इस तरह तुम उत्कृष्ट सूत कात सकोगी और उसके हर तारके साथ ईश्वरके ज्यादा करीब पहुँचती जाओगी। इस मौसममें बिना ओटी रुई पा सकना मेरे लिए शायद कठिन हो। लेकिन जैसे ही मुझे तुम्हारी रायका पता चलेगा, मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है। जबतक तुम्हारी ओरसे जवाब नहीं आयेगा, मैं कुछ नहीं करूँगा।

मुझे १२ से लेकर कुछ दिनोंके लिए कांग्रेसकी बैठकके लिए बम्बई जाना होगा।

यहाँ मौसम खुश्क है। यदि फसल बचानी है तो जल्दी ही हम चाहेंगे कि कुछ पानी बरस जाये।

ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४५८) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० १००५३ से भी

४९५. पत्र : पुरुषोत्तम कानजी जेराजाणीको

सेवाग्राम
७ सितम्बर, १९४०

भाई काकुभाई,

तुम्हारा त्यागपत्र देना सर्वथा उचित है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०८४८) से। सौजन्य पुरुषोत्तम का० जेराजाणी

४९६. पत्र : नारणदास गांधीको

सेवाग्राम
७ सितम्बर, १९४०

चि० नारणदास,

तुम भी दिन-दिन बरस बढ़ाते ही जा रहे हो और अन्तमें बूढ़ोंमें शामिल हो जाओगे। मेरी तो यह इच्छा है कि तुम शतक पूरा करो और जवान बने रहो।

बापूके आशीर्वाद

श्री नारणदास गाधी
राष्ट्रीय शाला
नवु परु
राजकोट (काठियावाड)

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५७८ से भी, सौजन्य नारणदास गाधी

४९७. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेवाग्राम, वर्धा, सी० पी०
७ सितम्बर, १९४०

चि० जमनालाल,

साथ का खत क्या है? जो उचित समजा जाय किया जाय।

राजेन्द्रबाबू अच्छे होंगे। तुमारी तबीयत कैसे रहती है? हरिभाउने लिखा है उस बारेमें मैं ह० से० मे लिखुगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०१४) से

४९८. पाठकोसे

'हरिजनसेवक' का प्रथम अंक जो पूनामें प्रकाशित हुआ, उसमें काफी छपाईकी गलतियां रह गई हैं। पाठक-गण क्षमा करेंगे। पूनामें हिन्दुस्तानी जाननेवाले कम मिलते हैं। यूं तो गुजराती जाननेवाले भी कम ही हैं। 'हरिजन' किस हालतमें शुरू हुआ यह पाठक जानते हैं। 'हरिजनबन्धु' पूनामें प्रकाशित करने में बहुत आपत्ति न आई, क्योंकि मेरे पास गुजराती काम करनेवाले साथी मौजूद थे। हिन्दुस्तानी काम करनेवाले जगह-जगह बिखरे हुए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूं कि 'हरिजनसेवक' की छपाई जल्दी ठीक से हो जायगी और गलतियां कम होती जायेंगी। 'हरिजनसेवक' की भाषामें रस लेनेवाले अगर अपनी टीका मुझे भेजेंगे तो उनका उपकार होगा।

सम्पादक रहना वियोगीजी ने तारसे स्वीकार कर तो लिया था, लेकिन वे लिखते हैं कि उनको मुक्ति मिलने से ज्यादा सन्तोष होगा। बिना जिम्मेदारीके सम्पादक रहने में वे नैतिक दोष मानते हैं। वे तो ऐसा भी कहते हैं कि उन्हें लिखने की फुरसत भी कम मिलेगी। उनका दृष्टि-बिन्दु मैं समझता हूं। उसकी मेरे नजदीक कीमत भी है। इसलिए उनको मुक्ति दी है। प्यारेलालने मेरी बात मान ली और सम्पादक होना स्वीकार किया। उनका स्वभाव जानते हुए मैं उन्हें मुक्त रखना चाहता था। लेकिन मेरे निकटवर्ती साथियोंमें से वही सम्पादक-पद ग्रहण करने योग्य हैं। वह उर्दू अच्छी तरह जानते हैं, हिन्दीका भी अभ्यास है। इसलिए हिन्दुस्तानी सम्पादककी जिम्मेदारी उठाने की उनमें शक्ति है। वे 'यंग इंडिया' के सम्पादक रह चुके हैं। यह सब होते हुए भी पाठकोंकी उदारताकी और टीकाके रूपमें उनकी मददकी मुझे जरूरत रहेगी।

मुख्य वस्तु हेतु-सिद्धि है। 'हरिजनसेवक' प्रकाशित करने का हेतु तो यही है कि हिन्दुस्तानी जाननेवाली जनताके सामने सत्याग्रहके सब पहलू रखे जायें। सत्याग्रहका अर्थ सिर्फ सिविल नाफरमानी नहीं। उससे कई गुना महत्त्व की वस्तु तरह-तरहका रचनात्मक कार्यक्रम है। उसके सिवा सिविल नाफरमानी कोई चीज नहीं है। यह तेरह अंगोवाला कार्यक्रम क्या है, कैसे चलाया जा सकता है, उसकी प्रगति कैसे हो रही है, यह सब 'हरिजनसेवक' द्वारा बताने की चेष्टा की जायेगी। पहले भी कार्य तो वही था, लेकिन मेरी सीधी देख-भालमें नहीं होता था। अब यथासम्भव मेरी देखभाल रहेगी। 'हरिजनसेवक' का मूल उद्देश्य — हरिजन-सेवा — कभी भूला नहीं जायेगा। क्योंकि छुआछूतका भूत जबतक हममें भरा है तबतक स्वराज आकाश-पुष्प-सा रहेगा।

अब पाठक समझेंगे कि भाषाको मैंने क्यों गौण पद दिया है। भाषाकी कोई स्वतन्त्र कीमत नहीं है। भाषा न शब्द-जाल है, न शब्दाडंबर। विचारोंको प्रकट

करने का एक बड़ा साधन अवश्य है। विचारमें कुछ शक्ति होगी, कुछ कहने लायक बात होगी, या लेखकके पास पाठकोंके लिए कुछ उपयोगी सूचना या सन्देशा होगा तो भाषा कैसी भी हो, पाठकके हृदयमें वह अवश्य प्रवेश करेगी।

तेरह प्रकारका कार्यक्रम

उपरोक्त कार्यक्रम नीचे दिया जाता है:

(१) हिन्दू-मुस्लिम या कौमी एकता
(२) अस्पृश्यता-निवारण
(३) मादक पदार्थोंका त्याग
(४) चरखा व खादी
(५) दूसरे ग्रामोद्योग
(६) ग्राम-सफाई
(७) नई या बुनियादी तालीम
(८) प्रौढ़-शिक्षण
(९) स्त्री-जातिकी उन्नति
(१०) आरोग्य और स्वच्छताकी तालीम
(११) राष्ट्रभाषा (हिन्दुस्तानी)का प्रचार
(१२) स्वभाषा या मातृभाषाका प्रेम
(१३) आर्थिक समानता

सेवाग्राम, ८ सितम्बर, १९४०

हरिजनसेवक, १४-९-१९४०

४९९. सलाह: प्रभाकरको[1]

[९ सितम्बर, १९४० के पूर्व][2]

मैं तुमसे भी एक कदम आगे जाने को तैयार हूँ। गोमाता हमें जन्म देनेवाली माँसे कई तरहसे बेहतर है। हमारी माँ हमें दो-एक वर्ष दूध देती है और फिर हमारे बड़े हो जाने पर आशा करती है कि हम उसकी सेवा करें। गोमाता हमसे घास और थोड़े-बहुत अनाजके सिवा और कुछ आशा नहीं करती। हमारी माँ अकसर बीमार पड़ जाती है और हमसे सेवाकी आशा करती है। गोमाता बहुत ही कम बीमार

१ और २. महादेव देसाई द्वारा लिखित "सेवाग्राम नोट्स" (सेवाग्रामकी टिप्पणियाँ), ९-९-१९४० से उद्धृत। आन्ध्रके एक हरिजन कार्यकर्ता प्रभाकरने मृत गायका मांस खाकर गायोंके प्रति जो घोर अपराध किया था उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप गायका दूध त्याग दिया था।

पड़ती है। उसकी सेवा अटूट चलती रहती है और उसकी मृत्युके साथ भी समाप्त नहीं होती। हमारी माँ जब मरती है तो उसके दाह-संस्कार या दफनाने में खर्च करना होता है। गोमाता मरने पर भी उतनी ही कामकी रहती है जितनी कि जीवितावस्थामें। हम उसके शरीरके हर हिस्सेको उपयोगमें ला सकते हैं — उसका मांस, उसकी हड्डियाँ, उसकी आँतें, उसके सींग और उसकी खाल। हाँ, मैं यह सब हमें जन्म देनेवाली माँका महत्त्व घटाकर दिखाने के लिए नहीं कह रहा हूँ, बल्कि मैं गायकी पूजा क्यों करता हूँ, इसके ठोस कारण तुम्हें बता रहा हूँ। यद्यपि मैं ऐसा गो-भक्त हूँ जो तुमसे दूध पीनेको कह रहा है। मैं गायका दूध नहीं लेता, क्योंकि मैंने इस सम्बन्धमें एक प्रतिज्ञा की थी। लेकिन तुमने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। यहाँ गोशालाके विस्तारके लिए मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, वह तो तुम देख ही रहे हो। यदि तुम्हारे मनमें गायके लिए इतनी ममता है, तो तुम अपने-आपको उसकी सेवामें समर्पित कर सकते हो।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-९-१९४०

५००. प्रश्नोत्तर

देशी राज्योंमें

प्र०: क्या देशी राज्योंमें कांग्रेसके सदस्य ही न बनाये जायें?

उ० यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है। मैंने तो शुरूसे ही राय दी है कि देशी राज्योंमें कांग्रेसके सदस्य बनाना हर तरहसे अनुचित है। ऐसा करनेमें घर्षणकी संभावना रहती है और सतोषकारक संगठन भी नहीं हो पाता। देशी राज्यवाले जो कांग्रेसके सदस्य बनना चाहते हैं, वे ब्रिटिश हिन्दुस्तानमें अपने नजदीककी कांग्रेस कमेटीके सदस्य बनें। अच्छा तो यह होगा कि देशी राज्यवाले अपने ही राज्यमें बन सके इतना काम करें। वह तो ज्यादातर रचनात्मक ही हो सकता है। उसीकी मारफत सच्ची जागृति और देश-भावना पैदा हो सकती है। कांग्रेसके सदस्य बननेके बदले कांग्रेसी वृत्तिवाले और कांग्रेसी भावनावाले बननेसे ज्यादा और सच्चा काम हो सकता है, ऐसा मेरा मत है।

चरखा संघके कार्यकर्ता

प्र०: यदि बनाये जायें तो चरखा संघके अथवा प्रजा मण्डलके कार्यकर्त्ता इस कामको न करें? सहयोग भी न दें?

उ० दोनों संस्थाएँ अपने-अपने क्षेत्रसे बाहर न जायें। चरखा संघको तो मना है ही। चरखा संघ कांग्रेसकी कृति है, लेकिन उसका राज्य-प्रकरणसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं। यह पारमार्थिक और आर्थिक संस्था है। [illegible]

मारफत दो काम नही किये जा सकते। प्रजा मण्डलके लिए दूसरी नीति है। परिणाम एक ही है। प्रजा मण्डल कठिनाइयोका सामना करके अपना काम करते हैं। उनपर काग्रेसके सदस्य बनाने का बोझ डालने मे मै बडा खतरा देखता हूँ।

जब सदस्य न बनाये तो सहयोग कैसे दे? अगर सहयोगका अर्थ मानसिक सहानुभूति किया जाये तो वह तो मिलेगा ही। तीनो सस्थाओके कार्यक्षेत्र अकित है। अपने सच्चे कामसे ही वे एक-दूसरेकी सहायता कर सकते है। फिर यह है भी स्वाभाविक। एक ही भावना तीनोंको प्रेरित करती है। अगर काग्रेस राज्य-प्रकरणमे सफल हो तो चरखा सघ और प्रजा मण्डलोको उस सफलतासे लाभ होगा ही। इसलिए चरखा सघकी सफलतासे काग्रेसकी सेवा होती है। एक भी प्रजा मण्डल अपने कार्यमें सफल हो तो इतनी हदतक काग्रेसको अवश्य बल मिलेगा। लेकिन अपने क्षेत्रके बाहर जायेगे तो नुकसान होना सभव है।

सेवाग्राम, ९ सितम्बर, १९४०

हरिजनसेवक, १४-९-१९४०

५०१. खादी-पत्रिकाएँ

आजकल चरखा संघकी शाखाओकी तरफसे अनेक पत्रिकाएँ निकलती है। सब तो मैंने नही देखी। लेकिन जो देखी हैं उनमे से 'महाराष्ट्र खादी-पत्रिका' ने ही मुझे आकर्षित किया है। बाकी प्रान्तोकी तरफसे जो निकल रही है और मैंने देखी है उनमे मैंने कुछ खास जानने जैसा नही पाया। अगर सब प्रान्तवाले मुझे अपनी पत्रिका भेजेंगे तो मैं उनकी परीक्षा करवाकर अभिप्राय भेज सकूँगा। इसके अलावा वर्धा, नालवाडी कार्यालयकी तरफसे 'ग्राम-सेवा-वृत्त' निकलता है, वह पढने के योग्य होता है। श्री विनोबाकी देख-भालके नीचे वह निकलता है। मराठी भाषामे छपता है। प्राय उसमें एक लेख विनोबाका होता ही है। मेरा अभिप्राय है कि पत्रिका निकालने की खातिर एक भी पत्रिका न निकालनी चाहिए। सब स्वावलम्बी होनी चाहिए। भले कार्यकर्त्ताओंके लिए ही क्यों न हो, अगर उसकी आवश्यकता है तो कार्यकर्त्ता उसे दाम देकर लेगे। अगर पत्रिकामे कुछ शक्ति है तो पाठक काफी ज्ञान हासिल करेगा और कीमतसे अधिक उसमे से वसूल कर लेगा।

'महाराष्ट्र खादी-पत्रिका' का अगस्तका अक मेरे सामने है। उसमे से एक वस्तु "कपडेके उद्योगका एक पहलू" 'हरिजनसेवक' मे आ भी चुकी है।

पत्रिकाका कुछ अश मराठीमें है, बाकी हिन्दीमे। मजकूर अकमें ४३ पृष्ठ है। एक अंककी कीमत ०–२–० रखी गई है, वर्षकी रु० १–४–०। चादामे छपती है। वर्धा खादी कार्यालय से भी मिल सकती है। छपाई खादी कागजपर ही है।

पत्रिका खादीके बारेमे ज्ञानसे भरी हुई है। उसके अगस्तके अकमे यह लेख है 'सूतका व्यास और कपड़ेका पोत', 'पूनियोकी रखवाली', 'गाधी आश्रम, रणीवांके

प्रयोग', 'वस्त्र-विद्यालय, मूलका अभ्यासक्रम', 'गांधी-सेवा-संघ — ग्राम-सेवा-योजना', 'यवरडा' और 'किसान-चक्रपर कातनेवालों के लिए', 'धनुष-तकली', 'कताई-गणित', 'घरकी बातें'। खादीका कोई अभ्यासी इस पत्रिकाके बगैर नहीं रहना चाहिए।

पत्रिकाके दो लेख सब कातनेवालों के लिए उपयोगी हैं। वे इसी अंकमें दिये जाते हैं।

सेवाग्राम, ९ सितम्बर, १९४०

हरिजनसेवक, १४-९-१९४०

५०२. टिप्पणियाँ[1]

कांग्रेसकी अहिंसा

मुझपर पत्रोंकी वर्षा हो रही है। कुछ लोग तो पत्र कहीं गुम न हो जाये इसलिए रजिस्ट्री करके भेजते हैं। सभी पत्रोंका सार यह है कि पूनाके भाई-बहनोंके सामने मैंने कांग्रेसकी अहिंसाकी जो व्याख्या की,[2] उसमें अहिंसाको बहुत संकुचित कर दिया है। ऐसा लिखनेवाले यह भूल जाते हैं कि वहाँ मैंने जो-कुछ कहा उसमें कांग्रेसकी अहिंसाकी मर्यादा आँकी थी। मैं तो खटमल भी नहीं मारता, साँप-बिच्छूको भी नहीं मारता और मांस भी नहीं खाता। लेकिन ऐसी अहिंसा कांग्रेसपर नहीं लादी जा सकती। कांग्रेस धार्मिक संस्था नहीं, राजनीतिक संस्था है। उसकी अहिंसाका दायरा मनुष्योंतक ही सीमित है। यदि अहिंसाको इससे आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाये तो कांग्रेसमें हिन्दुओंके अतिरिक्त दूसरे लोग आ ही नहीं सकते; इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दुओंमें से भी केवल जैन और वैष्णव ही आयेंगे और करोड़ों मांस-मछली खानेवाले हिन्दू उससे बहिष्कृत हो जायेंगे। यह बात इतनी सीधी-सादी और साफ है कि इसके बारेमें शिकायत कैसे हो सकती है, यही मेरी समझमें नहीं आता। पत्र लिखनेवालोंको समझना चाहिए कि बहुत-से मुसलमान भाई तो कांग्रेस द्वारा निर्धारित सीमाको भी स्वीकार नहीं करते। फिर, हमने यह भी देखा है कि कांग्रेसने ही वर्धा और पूनाके प्रस्तावों द्वारा अहिंसाको इतना सीमित कर दिया है कि मेरी दृष्टिमें तो यह अहिंसा लगभग निरर्थक हो गई है।

अहिंसाको मनुष्यसे आगे ले जाने में हम सीमित अहिंसाको भी खोयेंगे और व्यापक अहिंसाका प्रयोजन भी पूरा नहीं होगा। अहिंसाके व्यापक होने में बहुत समय लगेगा। हाँ, साधकोंके लिये इसका उपयोग अवश्य है। लेकिन साधारण जनतामें यदि एक-दूसरेके प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हो जाये, कोई किसीको अपना दुश्मन न माने, तो मैं समझूँगा कि मनुष्यने सभ्यताकी दिशामें काफी प्रगति कर ली। यह बात भी याद रखने

१. *हरिजनबन्धु*में इस शीर्षकके अन्तर्गत दिये गये तीन उपशीर्षकोंमें से प्रथम दो एक साथ "अहिंसा विषे" (अहिंसाके विषयमें) शीर्षकसे और तीसरा "नोंध" (टिप्पणी) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ है; किन्तु *हरिजन* (अंग्रेजी) में तीनोंका अनुवाद एक साथ "नोट्स" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ है। यहाँ हमने *हरिजन*का ही विन्यास रखा है।

२. देखिए "बातचीत: बाल गंगाधर खेर तथा अन्य लोगोंके साथ", पृ० ४३२-४४१ ।

लायक है कि हम केवल जीवोंके प्रति दया करके काम-क्रोधादि विकारोंको नहीं जीत सकते। इन छह शत्रुओंको जीतने के लिए मनुष्यकी मनुष्यके प्रति अहिंसा ही काम आती है। जिस व्यक्तिने इन छह शत्रुओंको जीत लिया है, और जिसके हृदयमें मनुष्य-मात्रके प्रति प्रेम ही भरा हुआ है, जो अपने अनेक प्रकारके व्यवहारमें प्रेमका ही प्रयोग करता है, वह मांसाहार करते हुए भी हजार वंदनाओंका पात्र है। और जो काम-क्रोधसे लिपटा हुआ संसारको धोखा देते हुए अपना समय बिताता है, लेकिन रोज चींटियोंको चुगाता है और खटमलको भी नहीं मारता, उसकी भूतदयाका मूल्य नहीं के बराबर है, क्योंकि उसकी भूतदया आत्म-ज्ञानसे उद्भूत नहीं होती, वह केवल रूढ़िका अनुसरण करती है और सम्भव है, दम्भयुक्त भी हो।

दंगे-फसाद और अहिंसा

एक मित्र लिखते हैं:

> **मैं नहीं समझ सकता कि दंगे-फसाद-जैसे मामलोंमें अहिंसा प्रभावकारी परिणाम कैसे ला सकती है। आप ही ने कहा है कि बलिदान करनेवाला जिसके सम्पर्कमें आया होगा उसीपर उसके बलिदानका प्रभाव भी होगा। अब दंगोंमें जो गुंडे मार-पीटके लिए निकलते हैं वे मरनेवालों के सम्पर्कमें तो कभी आये ही नहीं होते। ऐसी हालतमें वे उसे मारने में क्यों हिचकिचायेंगे? उनके सामने यह सवाल ही पैदा नहीं होता कि मैं किसको मार रहा हूँ।**

यह प्रश्न बहुत विचारणीय है। पत्र-लेखक उन व्यक्तियोंमें से हैं जो अपने जीवनको खतरेमें डालकर पिछले दंगे-फसादमें कूद पड़े थे। इस विषयपर मैं पहले भी लिख चुका हूँ, लेकिन यह बात बार-बार दुहराये जाने लायक है। दुःखकी बात यह है कि कांग्रेसके सदस्योंका ध्यान दंगे-फसाद आदिकी समस्याको शान्तिपूर्वक सुलझाने की ओर गया ही नहीं है। उन्होंने अपनी अहिंसा-शक्तिका विकास सरकारके विरुद्ध लड़ने-भरके लिए किया है। मैं बता चुका हूँ कि जो अहिंसा यहीं रुक जाती है, वह अहिंसा ही नहीं कही जा सकती। उसे हम निःशस्त्र प्रतीकार भले कह लें। लेकिन वह तो सरकारको तंग करने की एक प्रकारकी युक्ति कही जायेगी और इसलिए वह एक प्रकारकी हिंसा ही हुई।

दंगोंको शान्तिपूर्वक शान्त करने के लिए तो मनमें सच्ची शान्ति चाहिए, गुंडेके प्रति भी प्रेम होना चाहिए। ऐसी वृत्ति एकाएक नहीं आ जाती। वह तो अभ्याससे ही आती है। जब दंगे न हो रहे हों तब इस वृत्तिका अभ्यास करना चाहिए। मतलब यह कि जहाँ हम खुद रहते हों, वहाँके गुंडे माने जानेवाले लोगोंसे हम परिचय करें। शान्तिका अभ्यास करनेवाला अपने आस-पासके समाजके किसी भी अंगको छोड़ेगा नहीं। वह सबके साथ मीठे सम्बन्ध जोड़ेगा, सबकी सेवा करेगा। गुंडे कोई आकाशसे नहीं उतरते, भूतोंके समान पृथ्वीके पेटसे नहीं निकलते। उनकी उत्पत्ति समाजकी दुर्व्यवस्थासे होती है, इसलिए समाज उनके लिए जिम्मेदार है। गुंडेको समाजमें घुसा हुआ रोग या उसकी सड़ाँध समझना चाहिए। ऐसा समझ-

कर हम उसके कारणोंको खोजें और कारण मालूम होने पर उनका उपाय करें। इस दिशामें जरा भी प्रयत्न नहीं हुआ। 'जब जागे तभी सवेरा', ऐसा समझकर यह प्रयत्न शुरू करना चाहिए। प्रयत्न शुरू हो भी गया है। सब अपनी-अपनी जगह ऐसा प्रयत्न करें। ऐसे प्रयत्नोंकी सफलतामें ही प्रस्तुत प्रश्नका जवाब निहित है।

क्या करना चाहिए?

डबोहीसे एक भाई लिखते हैं

> (१) कताईका प्रचार देशके हर हिस्सेमें ठीक-ठीक हो रहा है। किन्तु उसके साथ-साथ चरखा संघको खादी-उत्पादनके केन्द्र भी खोलने चाहिए, जहाँ लोग कमसे-कम खर्चमें अपना सूत दे सकें और खादी तैयार करा सकें। इसके अतिरिक्त जो लोग अपना सूत बेचना चाहते हों उनका सूत भी चरखा संघको खरीद लेना चाहिए।
>
> (२) चरखा संघको चाहिए कि वह जहाँ सूत तैयार होता हो, उसी गाँवमें बुनकरसे अपने उपयोगके लिए खादी बुनवाने और उसे बेचने की अनुमति हरएक व्यक्तिको दे।
>
> (३) बड़े शहरोंमें खादी-भण्डार खोलने का परिणाम यह होता है कि खादीपर मकान-भाड़ा, बिजली और कार्यकर्त्ताओंके वेतन आदिके कारण खर्च बहुत ज्यादा बढ़ जाता है, जिससे सामान्य लोगोंको खादी बहुत महँगी मिलती है, अतः ऐसा प्रबन्ध किया जाना चाहिए कि हर छोटे-बड़े गाँव या ताल्लुकेमें सस्ती खादी मिल सके।

ये तीनों सुझाव बहुत अच्छे हैं, किन्तु उन्हें कार्यान्वित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि हमारे पास उतने कार्यकर्त्ता नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहाँ कताई होती हो वहीं बुनाई भी होनी चाहिए, और खादीका उपयोग भी उसी क्षेत्रमें होना चाहिए। खादीकी विशिष्टता इसीमें है। खादीका अर्थशास्त्र बड़ी हदतक मिलोंके अर्थशास्त्रसे उलटा है। मैंचेस्टरमें जो कपड़ा बनता है उसका उपयोग मैंचेस्टरमें तो होता ही नहीं बल्कि इंग्लैण्ड और यूरोपमें भी नहीं होता। वह कपड़ा एशिया और आफ्रिकाके लोगोंके उपयोगके लिए ही बनाया जा रहा है। किन्तु इसके विपरीत, जहाँ खादीका उत्पादन होता है वहीं उसका उपयोग भी होना चाहिए। मिलोंका माल बहुत थोड़े लोग करोड़ोंके लिए बनाते हैं, किन्तु खादी करोड़ोंके लिए विभिन्न गाँवोंमें रहनेवाले करोड़ों लोगों द्वारा ही पैदा की जाती है। मिलोंके लिए कपास जाने कहाँ-कहाँसे आती है, किन्तु खादीके लिए कपास जहाँ खादी तैयार होती है वहीं पैदा होती है। खादीने अपने लिए जो आदर्श स्वीकार किया है वहाँतक अभी हम पहुँचे नहीं हैं और उस सीमातक खादीकी नींव कच्ची ही मानी जानी चाहिए। जब खादीका आरम्भ हुआ उस समयतक खादी-शास्त्रका निर्माण नहीं हुआ था। ज्यों-ज्यों खादीका प्रचार होता गया त्यों-त्यों उसका शास्त्र

भी बनता गया। अब भी उसमे सम्पूर्णता नही आई है। सतत जागरूक खादी-सेवक उसपर विचार करते रहते हैं और अपने अनुभवोके आधारपर उसके शास्त्रका सृजन कर रहे हैं। मुझे भय है कि पत्र-लेखकने जो आदर्श पेश किया है वहाँतक पहुँचने में हमें अभी काफी समय लगेगा। अलबत्ता वहाँतक पहुँचने का हमारा प्रयत्न जारी है किन्तु मार्गमे बाधाएँ आती ही रहती है। खादीके साधनोमे मुख्य साधन मनुष्योका सहयोग है। यन्त्रोसे काम लेना हो तो उसकी योजना घरमे बैठकर बनाई जा सकती है और उसमे सफलता भी पाई जा सकती है। किन्तु जहाँ मनुष्योंको समझाकर तैयार करने का सवाल हो वहाँ तो समय लगेगा ही।

इसलिए अभी तो बडे शहरोके भण्डारोको हमे सहन करना ही होगा। इनमे से अधिकाश भण्डार स्वावलम्बी हैं। यदि ये भण्डार न हो तो खादीकी आज जितनी खपत है वह भी न रह जाये। अत. आदर्शको प्राप्त करने के सारे प्रयत्न करने के बावजूद जबतक हम उसे प्राप्त नही कर लेते तबतक आजकी अपूर्ण स्थितिकी हम अवगणना नही कर सकते।

सेवाग्राम, ९ सितम्बर, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १४-९-१९४०

५०३. प्रश्नोत्तर

विद्यार्थी क्यों न भाग लें?

प्र० : आप सत्याग्रहकी लड़ाईमें विद्यार्थियोंको भाग लेन से क्यों रोकते हैं? और ऐसा क्यों कहते हैं कि यदि वे भाग लें ही तो उन्हे कॉलिज या शालामें दुबारा प्रवेश नहीं करना चाहिए? इंग्लैण्ड आजकल लड़ाईमें फँसा हुआ है तो क्या वहाँके विद्यार्थी शान्तिसे बैठे होंगे?

उ० विद्यार्थियोको शालाओसे बाहर आने के लिए कहने का अर्थ उन्हे शालाओसे असहयोग करने के लिए प्रेरित करना हुआ। अभी हमारा कार्यक्रम शालाओको खाली करवाने का नही है। सत्याग्रहका सचालन मेरे हाथमें हो तो मैं विद्यार्थियोको न तो शालाएँ छोडने के लिए निमन्त्रित करूँ और न उन्हे इसके लिए कोई प्रेरणा ही दूँ। अपने अनुभवसे हमने जाना है कि सरकारी शालाओंके प्रति विद्यार्थियोका मोह कम नही हुआ है। निश्चय ही इतना लाभ हुआ है कि इन शालाओकी जितनी प्रतिष्ठा थी, उतनी अब नही रही। किन्तु मैं इसकी बहुत कीमत नही आँकता। और यदि इन शालाओको चलते रहना है तो विद्यार्थियोको सत्याग्रहमे हिस्सा लेने के लिए उन्हें छोडने को कहना निरर्थक है और लड़ाईमे भी उससे कोई मदद नही मिलेगी। विद्यार्थियोके ऐसे त्यागको मैं अहिंसक नही मानूँगा। इसीलिए मैंने कहा है कि जो

विद्यार्थी लडाईमें हिस्सा लेना चाहें वे अपनी शालाओंको पूरी तरह छोड़कर ही आयें और भविष्यमें सेवा-कार्यमें ही लगे रहें। इग्लैण्डके विद्यार्थियोंके साथ यहांके विद्यार्थियोंकी तुलना हो ही नहीं सकती। वहां तो सारे राष्ट्रपर युद्धकी आपत्ति आ पड़ी है। वहां शालाएँ सचालकोंने स्वय बन्द की हैं। यहां जो विद्यार्थी अपनी शालाएँ छोड़ेंगे वे सचालकोंकी इच्छाकी अवज्ञा करके ही छोड़ेंगे।

क्या उपवास-मात्र हिंसा नहीं?

प्र० : क्या उपवासमें हिंसाका दोष नहीं है? अगर कोई खराब काम करता हो या गलत और अन्यायपूर्ण काम होता हो और मैं उपवास करूँ तो क्या इसे एक तरहसे 'दबाव' डालना नहीं कहा जा सकता?

उ० उपवासके नियमोंके अनुसार किये जानेवाले उपवासमें विशुद्ध अहिंसा है। इसमें दबाव डालनेकी गुजाइश नहीं है। यदि मेरा कोई मित्र गलत मार्गपर जा रहा हो तो उसकी सद्वृत्तिको जाग्रत करने के लिए मैं उपवासके द्वारा कष्ट सहन करूँ तो उसमें केवल मेरा प्रेम ही होगा। जिस प्रियजनके लिए मैं उपवास करता हूँ उसमें यदि प्रेम न हो तो वह अपना दुष्कर्म नही छोड सकता। प्रेम हो और उसके वशीभूत होकर वह दुष्कर्म करना छोड दे, यह वाछनीय है। उसके इस कार्यका विश्लेषण मैं इस प्रकार करूँगा उसने कुकर्म करने की अपेक्षा मेरे प्रति अपने प्रेमको ज्यादा महत्त्व दिया। इसके फलस्वरूप यह परिणाम निकलने की सम्भावना तो है ही कि उपवासका प्रभाव दूर हो जाने पर वही काम पुन करने का लालच हो तो ऐसी स्थितिमें फिर उपवास किया जा सकता है। अन्तत या तो प्रियजनपर ऐसे प्रेमका अधिकाधिक असर होगा और दुष्कर्म करने की ओर उसका मन जायेगा ही नहीं या फिर ऐसा परिणाम भी निकल सकता है कि उसका मन जड हो जाये और वह उस उपवासकी परवाह ही न करे। मेरा अनुभव यह है कि शुद्ध भावसे किये हुए उपवासका ऐसा उलटा नतीजा नही निकलता। लेकिन विपरीत परिणामकी सम्भावना है, इस कारण उपवास-जैसे पवित्र साधनकी अवगणना नहीं की जा सकती। किन्तु यह भय ही बताता है कि उपवासके लिए योग्यता चाहिए, और उपवास विवेक और विचारपूर्वक ही किया जाना चाहिए।

प्रायश्चित्त

प्र० : क्या प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता है ही? मान लीजिए कि मुझसे कोई दोष हो गया और जब मुझे अपनी भूलका ज्ञान हुआ तो मुझे उसका दु ख हुआ। उसके बाद मैंने निश्चय किया कि ऐसा दोष दुबारा नहीं करूँगा। ऐसी स्थिति में तो प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

उ० अमुक दोष करने के बाद उसके लिए पश्चात्ताप हुआ और उसे दुबारा न करने का दृढ निश्चय किया, यह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त है। जिस तरह सांप अपनी केंचुली उतार देता है उसी तरह जिसने अपनी पाप-रूपी केंचुली उतार फेंकी वह शुद्ध

हो गया। और शुद्ध होना ही पूर्ण प्रायश्चित्त है। लेकिन जिसे दोष करने की टेव पड जाती है वह अपने दोषको जल्दी नही छोड सकता। हममे से अधिकाश इसी कोटि के होते हैं। प्रायश्चित्तका सामान्यत. जो अर्थ किया जाता है वैसा प्रायश्चित्त, यदि वह विवेकपूर्वक किया जाये तो, ऐसे व्यक्तियोके लिए बहुत सहायक होता है।

सेवाग्राम, १० सितम्बर, १९४०

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १४-९-१९४०

५०४. पत्र : शकरीबहन चि० शाहको

१० सितम्बर, १९४०

चि० शकरीबहन,

घबराती क्यो हो? शरीरके साथ सुख और दु.ख, आरोग्य और रोग, जवानी और बुढापा तो लगे ही हुए हैं। कौन जाने, कौन-सा पापका फल है और कौन-सा पुण्य का? तुम्हारे वहाँ रहने मे कोई दोष नही है। इसलिए जब तुम्हारी इच्छा हो, यहाँ आ जाना। इस पत्रके मिलते ही आ जाओ तो चिन्तासे मुक्त हो जाओगी। शारदाको लेकर आना है। सब ठीक ही होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० ३१)से

५०५. बिलकुल नया नहीं है[1]

मेरे इस सुझावके सन्दर्भमे कि बाहरी आक्रमणके खिलाफ अहिंसात्मक प्रतिरक्षा की बात उतनी विलक्षण नही है जितना कि उसे समझा जाता है, एक पत्र-लेखकने १९२७ की 'विश्वभारती' के लेखसे यह उद्धरण भेजा है.

> निस्सन्देह, हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि एक-दूसरेको मारना ही युद्धका एकमात्र प्रकार है। मनुष्यका प्रधान गुण उसका नैतिकता-बोध है। उसे युद्धकी अपनी सहज प्रवृत्ति नैतिक धरातलपर ले जानी चाहिए, और उसके शस्त्र नैतिक शस्त्र होने चाहिए। बालीके हिन्दू निवासी आक्रमणकारियों के समक्ष अपने प्राणोंका बलिदान करते हुए भौतिक शक्तिके विरुद्ध नैतिक

१. यह "नोट्स" (टिप्पणियाँ) शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

शस्त्रोंसे लड़े थे। एक दिन ऐसा आयेगा जब मानव-इतिहास उनकी विजयको स्वीकार करेगा। यह भी युद्ध ही था। तथापि इस युद्धका शान्तिके साथ सामंजस्य था और इसलिए यह महिमामय था।

सेवाग्राम, ११ सितम्बर, १९४०
[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-९-१९४०

५०६. सिन्धमें आर्थिक तबाही

श्री ताराचन्द डी० गजरा और श्री सी० टी० वलेचाने निम्नलिखित मुद्रित पत्र वितरित किया है

> हमें विश्वास है कि आपको हमारा पहलेका पत्र 'सिन्धमें अराजकताकी वर्तमान स्थितिपर टिप्पणी' मिला होगा। अब एक और पत्र 'सिन्धमें अराजकताके कारण आर्थिक तबाही' पेश है। यह जनता अथवा अधिकारियोंकी ओरसे किसी प्रकारकी सहायताके बिना अपने घर-बार छोड़कर जा रहे लोगोंकी मूक व्यथाकी करुण कहानी है। ऐसी चीज कहीं और हो तो वह विशाल पैमानेपर अन्तर्राष्ट्रीय जन-सहयोग और सहानुभूति जाग्रत कर दे। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रान्तमें आपकी दिलचस्पी बढ़ेगी।

पत्रमें उल्लिखित वक्तव्यमें से मैं निम्न अंश उद्धृत करता हूँ

> सिन्धमें आज जो अराजकता फैली हुई है उसके कारण प्रान्तके आर्थिक जीवनमें बड़ी तबाही हुई है। ग्रामीण जीवन तो लगभग सर्वनाशके कगारपर है। किसान, जिनकी एकमात्र सम्पत्ति तथा गुजर-बसरके साधन बैल और दूध देनेवाले पशु हैं, चोरोंकी करतूतोंके कारण अपनेको इन दोनोंसे वंचित पाते हैं, क्योंकि पशुओंकी चोरी असाधारण हदतक बढ़ गई है। अब कृषकका भाग्य यह हो गया है कि दिन मेहनत करते गुजरता है और रात चौकसी करते।
>
> गाँवोंमें हिन्दू अपनेको इतना शक्तिशाली महसूस नहीं करते कि चोरों और डाकुओंका मुकाबला कर सकें। इसलिए वे छोटे गाँवोंसे बड़े गाँवोंमें जाने लगे हैं और जो बड़े गाँवोंमें हैं वे शहरी क्षेत्रोंको जा रहे हैं।
>
> अपने घर-बार छोड़ने के इस सिलसिलेका कुछ अन्दाजा आपको हो जाये, इसके लिए सिन्धकी इकसठ तहसीलोंमें से एक, हैदराबाद ताल्लुकेके बारेमें आँकड़े यहाँ दिये जा रहे हैं। ये आँकड़े प्रोफेसर घनश्याम, एम० एल० ए० (कांग्रेस—हैदराबाद ग्रामीण निर्वाचन-क्षेत्र)ने इकट्ठे किये हैं। कई गाँवोंमें लगभग सभी हिन्दू-परिवार चले गये हैं और शेष गाँवोंमें से अधिकांशके लगभग पचास प्रतिशत हिन्दू चले गये हैं।

इसके बाद हैदराबादकी एक ही तहसीलके ४२ गाँवोके आँकडे दिये गये है। इनमे से १७ गाँवोके सभी हिन्दू-परिवार चले गये है। शेषमे से कुछ गाँवोमे केवल एक-एक परिवार बचा है। अन्य सब गांवोमे से ५० प्रतिशतसे अधिक परिवार चले गये है। वक्तव्य तैयार करनेवालो ने इन आँकड़ोपर जो टिप्पणी की है वह इस प्रकार है:

> **उपर्युक्त आँकड़ोंका महत्त्व पूरी तरह समझ पाने के लिए यह याद रखना चाहिए कि हैदराबाद तहसील प्रान्तके एक सबसे अच्छे हिस्सेमें है। यह जिलेके सदर मुकामके बिलकुल पास है, जब कि हैदराबाद जिला खुद प्रान्तका केन्द्रीय जिला है — पूर्वी रेगिस्तानी सीमा-क्षेत्र और पश्चिमी पहाड़ी सीमा-क्षेत्र, दोनों ही इससे बहुत दूर हैं। यहाँतक कि सक्खर जिला, जिसने हालके नृशंस अत्याचारोंको सहा है, हैदराबादसे बहुत दूर है। यदि प्रान्तके सबसे ज्यादा सुरक्षित हिस्सेमें यह हालत है, तो दादू, जैकोबाबाद, लरकाना और सक्खर-जैसे अन्य जिलोंकी तहसीलोंके गाँवोंसे कितने लोग घर छोड़कर भागे होंगे, इसका अन्दाजा आसानीसे लगाया जा सकता है।**

वक्तव्यके अन्य अनुच्छेदोको उद्धृत करने की जरूरत नही है। पूरा वक्तव्य हिन्दुओपर जो विपत्ति आई है उसका मर्यादायुक्त और निष्पक्ष वर्णन है। इस वर्णनसे दिखता है कि उस विपत्तिका मुसलमानोपर भी असर पडने लगा है। सिन्ध के हिन्दू उद्यमशील है। वे मुसलमान किसानोको जरूरतकी चीजे मुहैया करते है। दोनो एक-दूसरेसे घनिष्ठ रूपसे जुड़े हुए है। यह विषैली साम्प्रदायिकता तो हालकी उपज है। अराजकता कई मुँहवाला दानव है। यह अन्तमे सबको चोट पहुँचाती है — उन्हे भी जो इसके लिए मुख्यत. जिम्मेदार होते है।

जिस पत्रके साथ वक्तव्य भेजा गया है उसके लेखकोका यह कहना सही है कि सिन्धकी विपत्ति समस्त भारतकी चिन्ताका विषय है। परिस्थितिका सही ढगसे मुकाबला करना जितना काग्रेसका फर्ज है उतना ही मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभाका भी। सिन्धकी सरकार इस स्थितिका जिस ढगसे मुकाबला करती है, उसीसे वह परखी जायेगी। भारतका एक प्रान्त, जिसे महान् सिन्धु नदी सींचती है और जिसमे हमारे गौरवपूर्ण अतीतके अवशेष मौजूद है, जब ऐसी अराजकतासे तबाह किया जा रहा हो तो केन्द्रीय सरकार भी उसे उदासीनतासे देखती नही रह सकती। यदि इस अराजकताको समय रहते नही रोका गया तो यह सिन्धकी काल्पनिक सीमासे बाहर भी फैल सकती है। क्योकि भारतके एक हिस्सेमे अच्छा या बुरा जो-कुछ होता है, वह अन्ततोगत्वा पूरे भारतको जरूर प्रभावित करता है।

बम्बई जाते हुए रेलमें, ११ सितम्बर, १९४०

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-९-१९४०

५०७. पत्र : अकबर हैदरीको

[१२ सितम्बर, १९४० के पूर्व][1]

सर अकबर हैदरीको लिखे एक पत्रमें गांधीजी ने कहा है कि राज्य-कांग्रेसने उनकी सलाहपर ही सत्याग्रह स्थगित किया है। फिर भी गांधीजी मानते हैं कि कुछ-न-कुछ कार्रवाई करने का समय आ गया है और उन्होंने सत्याग्रह करने के इच्छुक लोगोंकी लम्बी सूचीमें से केवल चार व्यक्तियोंको[2] चुना है, जो कल औरंगाबादमें सत्याग्रह करेंगे। उनकी गिरफ्तारीके बाद और कोई सत्याग्रह नहीं करेगा, लेकिन यदि उन्हें रिहा कर दिया गया तो वे दुबारा सत्याग्रह करेंगे।

ये चार सत्याग्रही कल रात वर्धासे औरंगाबाद रवाना हो गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-९-१९४०

१. साधन-सूत्रमें समाचारपर १२ सितम्बरकी तारीख है।

२. ये चार सत्याग्रही थे अच्युतराव देशपाण्डे, मोतीलाल मन्त्रिरी, देवराम नानजी चौहान और हीरालाल कोटेचा।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

सत्याग्रह की प्रतिज्ञा[1]

सेवामे

सत्याग्रह/कांग्रेस कमेटी

. . . .

मैं अपना नाम सक्रिय सत्याग्रहीके रूपमें दर्ज करवाना चाहता हूँ।

मैं गम्भीरतापूर्वक घोषणा करता हूँ कि,

(१) जबतक मैं सक्रिय सत्याग्रही रहूँगा, मैं वचन और कर्मसे अहिंसक रहूँगा तथा मनसे भी अहिंसक बननेका पूरा प्रयत्न करूँगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारतकी आज जो परिस्थिति है उसमें पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्तिमें तथा भारतकी हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि सभी जातियों और समुदायोंके बीच एकताको सुदृढ़ करनेमें केवल अहिंसा ही हमारी मदद कर सकती है और उसीके फलस्वरूप ये चीजें सम्भव हो सकती हैं।

(२) मैं ऐसी एकतामें विश्वास करता हूँ और इसे बढ़ावा देनेके लिए सदैव प्रयत्न करूँगा।

(३) मेरा विश्वास है कि अस्पृश्यताकी बुराईको दूर करना उचित और जरूरी है और मुझसे जब भी बन पड़ेगा, मैं दलित वर्गोंसे व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने और उनकी सेवा करनेका प्रयत्न करूँगा।

(४) मैं स्वदेशीको भारतके आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक उद्धारके लिए अनिवार्य मानता हूँ और हर प्रकारके कपड़ेका बहिष्कार कर केवल हाथसे कते और बुने खद्दरका ही इस्तेमाल करूँगा। मैं यथासम्भव दस्तकारी और ग्रामोद्योगोंकी बनी चीजोंका ही इस्तेमाल करूँगा।

(५) मैं नियमित रूपसे कातूँगा।

(६) मैं अपने वरिष्ठ अधिकारियोंके निर्देशों तथा कांग्रेसकी किसी वरिष्ठ संस्था अथवा कार्य-समिति अथवा कांग्रेस द्वारा स्थापित किसी अन्य एजेन्सीके ऐसे सभी नियमोंका पालन करूँगा जो इस प्रतिज्ञासे बेमेल न हों।

(७) मैं देशके लिए और जिस उद्देश्यको लेकर हम लड़ रहे हैं उसके लिए बिना किसी क्षोभके कैद भुगतने अथवा मरनेके लिए भी तैयार हूँ।

१. देखिए पृ० ८९।

(८) यदि मुझे गिरफ्तार कर लिया जाता है तो उस हालतमें मैं अपने, अपने परिवार अथवा आश्रितोंके भरण-पोषणके लिए कांग्रेससे कोई मांग नहीं करूँगा।

हस्ताक्षर

पूरा नाम . . . .
पता . . . .
तारीख . . . .

टिप्पणी जो १८ वर्षसे अधिक आयुके नहीं हैं वे यह प्रतिज्ञा-पत्र न भरें।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४०, जिल्द १, पृ० २४०

परिशिष्ट २

दीनबन्धु-स्मारक[1]

हाल में ही चार्ल्स फ्रीअर एन्ड्रचूजके निधनसे विश्वके जो असंख्य लोग शोक-निमग्न हो गये हैं, उन्हें अवश्य ही इस दुःखकी घड़ीमें लग रहा होगा कि जिस सेवा और मेलजोलके कार्यके लिए उन्होंने इतना अधिक परिश्रम किया उसे उनके मित्रोंको चालू रखना चाहिए। हम उनकी जीवन-स्मृतिको सहज ही मिटने नहीं देंगे, हम उस जीवनकी मूल भावनाको स्थायी और मूर्त रूपमें कायम रखनेका प्रयत्न कर रहे हैं। एन्ड्रचूजका स्थायी भारतीय आवास बंगालमें वीरभूम जिला-स्थित शान्ति-निकेतन था, जहाँ उन्होंने अपने जीवनके पचीससे अधिक वर्ष बिताये और जिसके साथ उन्होंने अपना प्रेममय तादात्म्य स्थापित कर लिया था। उस आश्रमकी स्थापना मूलतः स्वर्गीय देवेन्द्रनाथ ठाकुरने की थी और उसका खर्च उनकी पैतृक निधिसे चलता था। उनके पुत्र कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें शान्तिनिकेतनकी शिक्षण-संस्थाओं और निकट ही स्थित ग्राम-पुनर्निर्माण केन्द्र श्रीनिकेतनका मूल कल्पनासे बहुत अधिक विकास हो चुका है और वे अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृतिके केन्द्रके रूपमें विश्व-भरमें प्रसिद्ध हो चुके हैं। विश्व-बन्धुत्वकी कल्पनासे युक्त और अन्तर्राष्ट्रीय मेलजोल तथा शान्तिके लिए प्रयत्नशील संस्थाओंको कविवरके निकटतम मित्र एन्ड्रचूजने अपनी सम्पूर्ण निष्ठा अर्पित कर दी थी। ऐसे शिक्षा और अनुसन्धान-केन्द्रके लिए किसी व्यक्तिके निजी साधन पर्याप्त नहीं हो सकते, और पौर्वात्य तथा पाश्चात्य जगत् से इसे जो वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है उसमें से अधिकांश एन्ड्रचूजके धैर्य, कठोर श्रम और उसके भविष्यमें उनकी आस्थाका परिणाम है। उनके निकटतम सम्पर्क में आनेवाले हम लोग जानते हैं कि उनके स्मारकके लिए इससे अधिक उपयुक्त स्थानकी अथवा जो स्वयं उन्हें इससे अधिक प्रिय होता, ऐसे स्थानकी कल्पना नहीं की जा सकती।

१. देखिए पृ० १८९ और ४६७-७१।

यह सच है कि ईंट-गारेका कोई भी स्मारक एन्ड्रयूजकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान नही कर सकता। उसे स्थायित्व प्रदान करने का सबसे अच्छा तरीका स्वतन्त्र राष्ट्रो के रूपमे भारत और ग्रेट ब्रिटेनके बीच सच्ची और स्थायी मैत्रीको और उनके सम्मिलित प्रयत्नसे विश्व-शान्तिको बढ़ावा देना है। लेकिन मेलजोलके इस कार्यको किसी ऐसे केन्द्रमे मूर्त रूप देना चाहिए जहाँसे उनका प्रभाव विकीर्ण हो। उनके लिए इससे अच्छा स्मारक और कुछ नही हो सकता कि जिस स्थानमे उन्हे अपना आध्यात्मिक गेह और मानव-दयाकी महानतम प्रेरणा प्राप्त हुई उसके लिए इतने बड़े कोषकी व्यवस्था कर दी जाये जिससे वह रोज-रोजकी आर्थिक चिन्तासे मुक्त रहकर निर्बाध रूपसे उनकी आशाओंको फलीभूत कर सके। इसलिए उनके नामपर और जिन कविगुरुके सपनेके वे पूर्ण सहभागी थे उनके नामपर हम अपील करते हैं कि इस कोषमे उदारतासे दान दिया जाये।

शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतनके कार्यका दो प्रकारसे विस्तार करने की योजना है और इन दोनोंको स्वय एन्ड्रयूज विशेष रूपसे फलीभूत होते देखना चाहते थे। यदि जनताने स्मारक-कोषके लिए हमारी अपीलका उदारतासे उत्तर दिया तो उससे चालू कामको तो स्थायित्व प्राप्त होगा ही, उन दोनों विस्तार-योजनाओंको भी कार्यान्वित करना शक्य हो जायेगा।

एन्ड्रयूजको यथार्थ ही 'दीनबन्धु' कहा जाता था, और बीरभूमके दीन-जन उनके बन्धुत्वको जानते थे। श्रीनिकेतनके ग्रामीण केन्द्रमे एक अच्छा डाक्टर और ओषधालय है, लेकिन कोई अस्पताल या शल्यक्रिया-कक्ष नही है। हम आसपासके ग्रामवासियोंकी सेवाके लिए एक छोटा लेकिन सुसज्जित अस्पताल बनवाना चाहते हैं और सबसे जरूरतमन्द इलाकोमे हर साल 'दीनबन्धु कूप' खुदवाना चाहते हैं। बीरभूम जिलेको बंगालकी बड़ी नदियोंके जलका लाभ नही मिलता, और पर्याप्त जलकी अनुपलब्धता उसकी घोर गरीबीका मुख्य कारण है।

एक भारतीय मित्रने सच्ची अन्तर्दृष्टिका परिचय देते हुए उनके नामके [अंग्रेजीके] आरम्भिक अक्षरो सी० एफ० ए० का अर्थ "क्राइस्ट्स फेथफुल एपॉसल" (ईसाका सच्चा सन्देशवाहक) लगाया था। ईसाके प्रति अनन्य भक्ति एन्ड्रयूजकी सबसे प्रमुख विशेषता और उनकी प्रेरणा तथा शक्तिका स्रोत थी। शान्तिनिकेतनमे अन्तिम महीनोंके दौरान वे अकसर यह आशा व्यक्त किया करते थे कि यहाँ, जहाँ विश्वकी सभ्यताएँ एक-दूसरेके साथ अपने-अपने बुनियादी और चिरन्तन तत्त्वोका आदान-प्रदान कर सकती है, एक ईसाई संस्कृति भवनकी स्थापना की जा सकती है, जो भारतको पाश्चात्य जगत्के विचारोंके सम्पर्कमे लाकर भारतीय चिन्तनके लिए वही काम कर सकता है जो चीनके साथ हमारे सम्पर्कके सन्दर्भमे चीन-भवन द्वारा किये जाने की आशा की जाती है। इस भवनका मुख्य प्रयोजन ईसाकी शिक्षा और उनके स्वरूप का अध्ययन करना और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओंके समाधानमे उसका प्रयोग करना होगा। वह विद्वानों और अध्येताओंको — खासकर पौर्वात्य जगत्के विद्वानो और अध्येताओंको — अपनी चिन्तन-प्रणालियोंके अनुसार ईसाकी भावना और मानसकी

व्याख्या करने के कार्यमें नियोजित करने का प्रयत्न करेगा। हम एक ऐसा साधारण-सा भवन बनवाना चाहते हैं जो इतने साधनसे युक्त हो जिसमें विद्वानों और विद्यार्थियोंको कमसे-कम खर्चपर रखा जा सके, जिसमें सादी रिहाइशी जगह हो, एक सभा-कक्ष हो, और एक पुस्तकालय हो, जिसके लिए चार्ल्स एन्ड्रयूजने अपने जीवन-कालमें ही पुस्तकोंका सग्रह आरम्भ कर दिया था। एक ईसाईके रूपमें अपने सक्रिय सेवा-कालमें ही उन्होंने अपनी इच्छासे शान्तिनिकेतनको अपना गेह बनाया था, जहांसे उनकी सेवाका सौरभ विश्वके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँचता था। हमें आशा है कि यह भवन ऐसा पवित्र सेवाकार्य करनेवाले अन्य लोगोंके लिए इसी प्रकारके गेहका काम कर सकेगा।

इस कार्यक्रमको पूरे तौरपर कार्यान्वित करने के लिए कमसे-कम ५,००,००० रुपये (४०,००० पौण्ड)की आवश्यकता होगी। हम एन्ड्रयूजके विश्व-भरके मित्रों और प्रशंसकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे इस योजनाको उदारताके साथ अपना सहारा और समर्थन दें जो उनके नामपर उस कार्यको सुरक्षित रखना और सवर्धित करना शक्य बनायेगी जो उन्हें सबसे अधिक प्रिय था।

शान्तिनिकेतन और श्रीनिकेतन अपने संस्थापक-अध्यक्ष डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर नीलरतन सरकार, श्री हितेन्द्रनाथ दत्त, श्री एल० के० एमहर्स्ट, डॉ० डी० एम० बोस (कोषाध्यक्ष), और महामन्त्री श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर — इन ट्रस्टियोंकी देख-रेखमें हैं। ट्रस्टका दस्तावेज पंजीकृत है। उसकी जमीन-जायदाद और माल-मिल्कियतका मूल्य आज १७,००,००० रुपये है। उसका सालाना खर्च लगभग ३,३०,००० रुपये है।

अबुल कलाम आजाद
एस० के० दत्त
मो० क० गांधी
म० मो० मालवीय
सरोजिनी नायडू
जवाहरलाल नेहरू
वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
फॉस वेस्टकॉट (बिशप)

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-६-१९४०

परिशिष्ट ३

कार्य-समितिकी दिल्लीकी बैठकके विचारार्थ राजगोपालाचारीका प्रस्ताव[1]

३ जुलाई, १९४०

कार्य-समितिकी यह राय है कि वाइसराय महोदयने महात्मा गांधीके साथ हुई अपनी बातचीतमें जो सुझाव रखे हैं वे वर्त्तमान स्थितिके तकाजोंको तनिक भी सन्तोषजनक ढंगसे पूरा नहीं करते।

इन सुझावोंके अनुसार कांग्रेसकी यह माँग पूरी नहीं होती कि ब्रिटेन यह घोषणा करे कि भारतका दर्जा पूर्ण रूपसे स्वाधीन राष्ट्रका है। ऐसी किसी भी घोषणासे, जिसमें यह कहा गया हो कि भारतकी स्थिति ठीक वैसी ही होगी जैसी ब्रिटिश राष्ट्रकुलके किसी भी स्वशासी देशकी है, भारतकी माँग पूरी नहीं होती। और विश्वकी वर्त्तमान स्थितिको देखते हुए इसका कोई वास्तविक मूल्य भी नहीं है।

इसके अलावा भी — और विशेष रूपसे रक्षा-प्रयत्नोंके सम्बन्धमें की जानेवाली तात्कालिक कार्रवाइयोंके विषयमें — कार्य-समितिका यह दृढ मत है कि जबतक केन्द्रीय सरकारके सारे विभागोंको, जिनमें प्रतिरक्षा-विभाग भी शामिल है, तुरन्त राष्ट्रीय सरकारके हवाले नहीं कर दिया जाता तबतक कांग्रेस अपना असहयोग वापस नहीं ले सकती। हालाँकि इस सरकारकी स्थापना तार्दथिक और अस्थायी कदमके रूपमें होगी, लेकिन उसका गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसे केन्द्रीय विधान-मण्डल और प्रान्तोंकी उत्तरदायी सरकारोंके सभी निर्वाचित समूहोंका विश्वास प्राप्त हो। अगर ऐसी केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकार तुरन्त नहीं बनाई जाती तो भारतकी प्रतिरक्षाके लिए किये जानेवाले सभी प्रयत्न न्याय और लोकतान्त्रिक शासनके मूलभूत सिद्धान्तोंके विपरीत होंगे; इतना ही नहीं, बल्कि ऐसे सारे प्रयत्न बिलकुल बेकार होंगे।

[अंग्रेजीसे]

वर्धा ऑफिस, सत्याग्रह फाइल १९४०-४१। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

1. देखिए पृ० ४४८।

परिशिष्ट ४

कार्य-समितिकी दिल्लीमें हुई बैठकमें पास किया गया प्रस्ताव[1]

७ जुलाई, १९४०

राजनीतिक स्थिति

कार्य-समितिने उन गम्भीर घटनाओंको लक्ष्य किया है जिनके परिणामस्वरूप भारतीय राजनीतिक स्थितिके मौजूदा गतिरोधको दूर करने के लिए कोई समाधान ढूंढ निकालने के लिए ताजा अपीलें जारी की गई हैं, और इस मामलेमें कांग्रेसकी स्थितिको स्पष्ट करने की वाछनीयताको देखते हुए कार्य-समितिने विश्वमें हुई ताजी घटनाओंको ध्यानमें रखते हुए एक बार फिर उत्कटताके साथ सारी स्थितिपर विचार किया है।

कार्य-समितिको इस बातका, पहलेके किसी भी समयकी अपेक्षा, और अधिक विश्वास हो गया है कि ब्रिटेन और भारत दोनोंके सम्मुख जो समस्या है उसका एकमात्र समाधान है ब्रिटेन द्वारा भारतकी पूर्ण स्वाधीनताकी स्वीकृति और इसलिए कार्य-समितिकी यह राय है कि इस आशयकी एक सुस्पष्ट घोषणा तुरन्त कर दी जानी चाहिए और इसे तुरन्त ही लागू किये जाने के कदमके रूपमें केन्द्रमें एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकारका गठन किया जाना चाहिए। इस सरकारकी स्थापना यद्यपि अस्थायी कदमके तौरपर होगी, लेकिन इसका गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि इसे केन्द्रीय विधान-मण्डलके सभी निर्वाचित तत्त्वोंका विश्वास तथा प्रान्तोंमें जिम्मेदार सरकारोंका निकटतम सहयोग प्राप्त हो।

कार्य-समितिकी यह राय है कि जबतक उपर्युक्त घोषणा नहीं की जाती और उसके अनुरूप केन्द्रमें अविलम्ब राष्ट्रीय सरकार नहीं बनाई जाती तबतक देशकी प्रतिरक्षाके लिए नैतिक और भौतिक ससाधन जुटाने का कोई भी प्रयत्न किसी भी अर्थमें स्वैच्छिक अथवा एक स्वतन्त्र देशकी ओरसे किया गया प्रयत्न नहीं हो सकता और इसलिए बेकार होगा। कार्य-समिति यह घोषणा करती है कि अगर ये कदम उठाये जाते हैं तो उससे कांग्रेस देशकी प्रतिरक्षाके प्रभावकारी सगठनके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोंमें अपना पूरा जोर लगा सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

द इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४०, जिल्द २, पृ० १७६-७७

१. देखिए पृ० २८८-९० और ४४८।

परिशिष्ट ५

श्रीनिवास शास्त्रीके पत्रके अंश[1]

१६ जुलाई, १९४०

. . . ब्रिटेनसे यह माँग करना तो असम्भव चीजकी माँग करना है कि वह भारतको स्वतन्त्र मान ले या घोषणा करे कि अमुक तिथिसे भारत स्वतन्त्र होगा। दक्षिण आफ्रिका और ईरिने[2] ऐसी माँग नही की है। इच्छानुसार अलग हो जाने के अधिकारका मतलब स्वतन्त्रता है। इस अधिकारका दावा दोनो उपनिवेशोने खुल्लम-खुल्ला किया है और ब्रिटेनकी ओरसे उसके विरोधमे किसीने स्वर नही उठाया है। कोई ऐसा करने का साहस भी नही करेगा। लेकिन यह एक बिलकुल अलग बात है कि पार्लियामेंटसे किसी ऐसे प्रस्ताव या अधिनियमकी माँग की जाये जिसमे अलग होने के अधिकारकी घोषणा की जाये या उसे स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया जाये। हम कममे-कम एक बार वास्तविकतावादी बनकर औपनिवेशिक स्वराज्यसे ही क्यों न सन्तोष करें — उस औपनिवेशिक स्वराज्यसे जिसके निहित और स्पष्ट दोनों प्रकारके महत्त्वसे अब हम अवगत हैं? आपने हालमें कहा कि युद्धके बाद औपनिवेशिक दर्जा या तो समाप्त हो जायेगा या इतना बदल जायेगा कि पहचानमें नही आयेगा। ऐसा होता है तो होने दीजिए। हम दूसरे उपनिवेशोसे बदतर हालतमें तो नही होंगे। . . . युद्ध जोर-शोरसे शुरू हुआ तब आपने और कांग्रेसने ऐसा माना या ऐसा समझानेवालों की बातको आप लोगोंने अपने गले उतरने दिया कि आपकी स्वतन्त्रताकी माँग स्वीकार कर ली जायेगी। युद्ध ज्यो-ज्यो अधिक भयावना होता जा रहा है, आपका यह विश्वास अधिकाधिक पुष्ट होता जा रहा है। यह सच है कि अगर भारतमें परिस्थिति सामान्य होती तो आज ब्रिटेनपर दबाव डालकर उसे मजबूर किया जा सकता था। मेरा मतलब यह है कि अगर ब्रिटेनको यह विश्वास दिलाया जा सकता कि आपकी इच्छाको स्वीकार करके वह खोने से ज्यादा पायेगा तो वह उसे स्वीकार कर लेता। लेकिन उसका अन्दाजा है कि उसे स्वीकार करके वह बदतर हालतमे पहुँच जायेगा। कौन विश्वासपूर्वक कह सकता है कि ऐसा नही होगा? खुद मेरी राय — हालाँकि मै इतना अज्ञानी हूँ कि मेरी इस रायका कोई खास महत्त्व नही है — यह है कि उसे कांग्रेसकी खुशीसे जितना लाभ हो सकता है, मुसलमानोकी नाराजगीसे उससे कही ज्यादा नुकसान हो सकता है। कोई नही कह सकता कि जिन्नाका प्रभाव ठीक-ठीक कितना है। एक मनुष्य और राजनीतिज्ञके रूपमें उनका अप्रत्याशित विकास हुआ है। . . . तथापि, कांग्रेस उनकी ओरसे उदासीन

१. देखिए पृ० ३३२।
२. आयरलैण्ड

होने या उनकी उपेक्षा करने में समर्थ नही है, फिर ब्रिटिश सरकार वैसा कैसे कर सकती है? खतरा बहुत बडा है। . .

संक्षेपमें, ब्रिटेनकी इच्छासे स्वतन्त्रता प्राप्त करने का कोई सवाल नहीं उठता। युद्धका ऐसा परिणाम हो सकता है कि हम सहसा पायें कि हम ब्रिटेनसे स्वतन्त्र हो गये है (ऐसे परिणामसे ईश्वर बचाये)। लेकिन न तो हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते है और न उसकी रक्षा ही कर सकते है। . . .

मेरी रायमें राजाजी के प्रस्तावका विफल होना निश्चित है, क्योंकि उसके साथ स्वतन्त्रताकी माँग जुड़ी हुई है। शायद आचरणकी सगति और प्रतिष्ठाका तकाजा है कि वह माँग की जानी चाहिए, लेकिन इन दोमें से किसी भी बातका बहुत अधिक महत्त्व नहीं है।

अब मैं कार्य-समिति द्वारा ब्रिटेनके समक्ष रखे प्रस्तावका आशय स्पष्ट करता हूँ। हमारी स्वतन्त्रताको स्वीकार करो और उस स्वीकृतिकी सचाईके प्रमाण-स्वरूप केन्द्रीय सरकारका राष्ट्रीयकरण करो। हम अहिंसाका त्याग कर देंगे और तुम्हारी सहायताके लिए भारतके सारे ससोधन जुटा देंगे। आज सबसे शक्तिशाली और देश-भक्त दलका यह स्पष्ट कर्तव्य है कि शक्ति प्राप्त करने के हर अवसरका वह लाभ उठाये और उस शक्तिका उपयोग लोगोकी रक्षाके लिए करे तथा फिलहाल अन्य सभी खयालोको — स्वतन्त्रताके खयालको भी — गौण बना दे और स्थगित कर दे। इसके बजाय राजाजी की स्थिति, सक्षेपमें, इस प्रकार है "जबतक भारत स्वतन्त्र नहीं होता या स्वतन्त्र घोषित नही किया जाता तबतक काग्रेस अपनी शक्ति-भर पूरी सहायता नही कर सकती। चूंकि आप हमें शक्ति-भर पूरी सहायता करने योग्य नहीं बनने दे रहे है, इसलिए हम जितनी कर सकते है उतनी भी नही करेंगे, चाहे हमारे उस कार्यका उद्देश्य अपने लोगोकी बुनियादी जरूरतें पूरी करना ही क्यों न हो।"

इसके विपरीत, मान लीजिए कि काग्रेस कार्य-समिति उन लोगोंको, जो पहले प्रान्तोंमें मन्त्री थे, फिरसे पदारूढ होने और जनताकी रक्षाके लिए दूसरे आवश्यक कदम उठाने का निर्देश देती है तो इसका परिणाम क्या यह नहीं होगा कि शीघ्र ही जनतामें फिर विश्वास जग जायेगा और अराजकताका वह भय दूर हो जायेगा जो आज व्यापक रूपसे फैला हुआ है और जो शीघ्र ही गाँवोंके निवासियोंके मनोबलको भी तोड़ दे सकता है? सत्ताके साथ कुछ जिम्मेदारी भी जुडी हुई है, यह उचित नही होगा कि काग्रेसजन अब परेशान नागरिकोंसे कहें "जबतक अग्रेज नहीं झुक जाते तबतक आप कष्ट सहते रहिए।" क्या आप अपने पूर्वाग्रहो और सनकोंको छोड़कर प्रान्तीय सासदोको फिरसे अपने कर्तव्य-स्थलोपर सन्नद्ध होने को नहीं कहेंगे? आप उनसे कहे कि शान्तिपूर्ण जीवन स्वतन्त्रताकी पूर्वशर्त है, और कि अंग्रेजो तथा मुसलमानोसे तो बादमें भी निबटा जा सकता है। .

[अग्रेजीसे]

श्रीनिवास शास्त्री पेपर्स। फाइल न० जी-१। सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

परिशिष्ट ६

जवाहरलाल नेहरूका पत्र[1]

१० अगस्त, १९४०

प्रिय बापू,

आपका ८ तारीखका पत्र अभी-अभी मिला है। हैदराबादके बारेमे तो मैं कोई सुझाव नही दे सकता। बहुत-सी बाते वहाँके लोगोकी शक्ति और सगठनपर निर्भर है। लेकिन मेरा खयाल है कि अगर वे देहाती इलाकोपर, जहाँ कौमी झगड़ोके आसार शायद कम है, ध्यान टिकाये तो बहुत बेहतर हो। इन हालातमे वे निष्क्रिय कैसे रह सकते है, मेरी समझमें नही आता। लेकिन पूरे भारतकी राजनीतिक परिस्थितिमे तेजीसे जो बातें हो रही है उनको मद्देनजर रखते हुए अगर वे तत्काल कोई बडे संकटकी स्थिति पैदा न करें तो यह शायद बेहतर हो। भारत-भरकी स्थितिमे और प्रगति होने पर हैदराबादके लोग अपने अधिकारोका आग्रह करने की दृष्टिसे शायद बेहतर हालतमे हो।

एक मायनेमे हैदराबादकी घटनाओपर मुझे कोई अफसोस नही है। बहादुर यारखाँ और अन्य लोगोंने जो असम्भव रुख अपनाया है वह उलटकर उन्हीका नुकसान करेगा। बेशक, उसके फलस्वरूप बहुत उपद्रव और खून-खराबा हो सकता है। जो भी हो, राज्य काग्रेसवालो को बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहिए कि जिम्मेदार सरकारकी अपनी माँगमे वे रत्ती-भर भी कमी नही कर सकते।

मालूम हुआ है, आठ-नौ दिनोंमे कार्य-समितिकी बैठक वर्धामे होनेवाली है। उस समय आपसे मिलने की उम्मीद रखता हूँ।

युद्ध-कोषके लिए जबरन वसूलीके बारेमें मैंने सयुक्त प्रान्तीय काग्रेस कमेटीके मन्त्रीको पत्र लिखकर कहा है कि वे आपको कुछ तफसीले भेज दे। कुछ तो समाचार-पत्रोंमे प्रकाशित हो चुकी है और वे काफी स्पष्ट है। कुछ दूसरे मामले यद्यपि काफी स्पष्ट है, फिर भी उनके कुछ और स्पष्टीकरण दिये जा सकते है। उदाहरणके लिए, एक आम बात यह है कि किसीसे चन्दा देने को कहा जाता है, वह इनकार कर देता है या माँगसे कम चन्दा देता है, इसपर उसे तुरन्त या एक-दो दिन बाद इस आरोपमें गिरफ्तार कर लिया जाता है कि वह दूसरोको युद्ध-कोषमे चन्दा देने से रोक रहा था और इस प्रकार युद्ध-प्रयत्नमे बाधा डाल रहा था।

मुझे अभी इलाहाबाद जिलेसे एक ऐसे मामलेकी जानकारी मिली है। एक गरीब देहाती दुकानदारसे १५ या २० रुपये देने को कहा गया। उसने कहा कि मैं ज्यादासे

१. देखिए पृ० ४७१।

ज्यादा ५ रुपये दे सकता हूँ। इसपर उसके साथ गालीगलौज की गई, और तुरन्त उसे इस आशयका नोटिस दे दिया गया कि वह अदालतमें इस बातकी सफाई देने के लिए उपस्थित हो कि भारत-रक्षा नियमोंके अधीन उसके खिलाफ मुकदमा क्यों न चलाया जाये। आज यहाँकी एक अदालतमें उसके मामलेकी सुनवाई हो रही है। जो पूरी तरहसे कांग्रेसी है उसके साथ आम तौरपर इस तरहका व्यवहार नहीं किया जाता, क्योंकि वह तो हर हालतमें इनकार करेगा ही। मेरे पास आज जो एक दूसरा मामला आया है वह एटा जिला-स्थित कासगजके बारेमें है। एक नायब तहसीलदारने २ अगस्तको एक कांग्रेसीकी दुकानपर जाकर युद्ध-कोषके लिए चन्दा माँगा। उसने इनकार कर दिया और बताया कि कांग्रेसी होनेके कारण वह ऐसा नहीं कर सकता। इसपर नायब तहसीलदारने कार्रवाई करने की धमकी दी और उसका नाम लिख लिया। अगले दिन उस आदमीको, जो जिलेके एक विख्यात कांग्रेसीका भतीजा है, अचानक यह आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया गया कि उसने एक दण्डात्मक पुलिस-कर अदा नहीं किया। उसे ३० घंटेतक हवालातमें रखा गया और इस बीच भोजन या नहाने-धोने की कोई सुविधा नहीं दी गई। यह गिरफ्तारी बिलकुल गैर-कानूनी है, क्योंकि दण्डात्मक-कर केवल सम्पत्ति कुर्क करके वसूल किया जा सकता है, और ओप्रकाश नामक इस व्यक्तिके पास काफी चल और अचल सम्पत्ति है। दण्डात्मक-करकी रकम केवल ६ रुपये थी, जो सम्पत्तिकी कुर्की करके आसानीसे वसूल की जा सकती थी। इसके बाद ओप्रकाशके चाचा मनपाल गुप्तने खूब शोर-गुल मचाया, जिससे अन्तमें ओप्रकाशको छोड़ दिया गया। अभी बात जहाँ-की-तहाँ है।

दूसरा दिलचस्प मामला रायबरेली जिला-स्थित सिमरीके ताल्लुकेदार ठाकुर सुरेन्द्रबहादुर सिंहका है। वे विधान-सभाके कांग्रेसी सदस्य हैं। उनके पिताका हालमें देहान्त हो गया, और तब खुद उन्हींकी प्रार्थनापर वह ताल्लुका कोर्ट ऑफ वार्ड्स (प्रतिपालक अधिकरण)के अधीन ले लिया गया। उपायुक्तने उन्हें सूचित किया कि उन्हें युद्ध-कोषमें १५०० रुपये देने चाहिए। कांग्रेसी होने के नाते उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इसपर उन्हें सूचित किया गया कि वे ताल्लुकेके मालिक इस शर्तपर हैं कि वे सरकारके प्रति वफादार रहेंगे और उसकी ठीक सेवा करेंगे, और कोर्ट ऑफ वार्ड्सको ताल्लुकेके राजस्वमें से वह चन्दा देने का पूरा अधिकार प्राप्त है। तब उन्होंने उपायुक्तको एक रजिस्टर्ड सूचना भेजी, जिसमें इस वसूलीका यह कहकर विरोध किया गया कि वह पूरी तरह गैरकानूनी है। उनका पक्ष यह था कि सरकारके प्रति वफादारीके अभावके कारण उनकी सम्पत्तिकी जब्तीका अधिकार सरकारको हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। लेकिन उसे यह अधिकार बिलकुल नहीं है कि वह उनकी ओरसे या उनकी मर्जीके खिलाफ चन्दा दे। इसके बावजूद उपायुक्तने युद्ध-कोषमें वह राशि या तो दे दी है या अब वह देनेवाला है, और सुरेन्द्रबहादुर सिंह किसी अदालतमें ज्ञापक (डिक्लेरेटरी) मुकदमा दायर करने की सोच रहे हैं।

मुझे विभिन्न जिलोंसे इस आशयकी शिकायतें मिल रही हैं कि किसानोंपर फी हल आठ आने या एक रुपया चन्दा देने के लिए दबाव डाला जा रहा है। स्पष्ट है कि वे चन्दा नहीं देना चाहते, लेकिन देने पर मजबूर किये जाते हैं।

छोटे-छोटे सरकारी नौकर और अमले तो जब उनसे चन्दा देने को कहा जाता है तब इनकार करने का साहस ही नहीं कर सकते। अभी हाल में मेरे ध्यानमें अनौपचारिक तौरपर लेकिन बिलकुल सही रूपमें एक जिला मजिस्ट्रेटके स्टेनो-टाइपिस्टका मामला आया है। उससे २०० रुपये देने को कहा गया। उसका मासिक वेतन १२५ रुपये था। उसने झिझकते हुए बताया कि उसका परिवार बहुत बड़ा है और इतनी बड़ी रकम देना उसके बूतेसे बिलकुल बाहर है। इसपर उससे कहा गया कि अगर ब्रिटेन हार जाता है तब भी तो उसे और उसके परिवारको भूखों ही मरना पड़ेगा। तो इस तरह उसे एक प्रकारसे बीमेकी राशि अदा करनी थी। अन्तमें तय पाया गया कि वह कोषमें १५० रुपये दे। विचित्र बात यह है कि बड़े अफसरों द्वारा चन्दा देने की बात खास सुनने में नहीं आती। वे शायद यह मानते हैं कि मोटी-मोटी तनख्वाहोंके बदले अपनी कुशल सेवा देना ही युद्ध-उद्देश्यकी उनके द्वारा की गई पर्याप्त सेवा है।

मोटी तनख्वाहोंपर नई नियुक्तियोंकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। संगृहीत कोषका शायद एक बहुत बड़ा हिस्सा ये मोटी तनख्वाहें चुकाने में खर्च होता है। मालूम हुआ है, शिमला ऐसे अफसरोंकी भीड़से भरा हुआ है। वे लोग कल्पनातीत रूपसे मोटी-मोटी तनख्वाहें लेकर बहुत कम काम करके या कुछ भी नहीं करके इस महान् उद्देश्यकी सेवा करते हैं। हालमें एक अंग्रेज अफसरका मामला सामने आया है। हाल तक वह ७५० रुपये मासिक पा रहा था, लेकिन सहसा उसे किसी युद्ध-कार्यमें लगा दिया गया और अब उसे प्रतिमास २,५०० रुपये दिये जा रहे हैं। कहा गया कि उसने भारी व्यक्तिगत त्याग करके यह नया काम स्वीकार किया।

स्नेहाधीन,

महात्मा गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९४०। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

परिशिष्ट ७

वाइसरायका ८ अगस्त, १९४० का वक्तव्य[1]

अत्याचार और आक्रमणके विरुद्ध विश्वके इस संघर्षकी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घड़ीमें सामान्य उद्देश्यकी प्राप्तिमें और हमारे सामान्य आदर्शोंकी विजयमें योगदान करने की भारतकी इच्छा स्पष्ट है। वह इसमें पहले ही भारी योगदान कर चुका है। वह और भी बड़ा योग देने को उत्सुक है। सम्राट्की सरकार इस बातके लिए बहुत फिक्रमन्द है कि भारतमें राष्ट्रीय प्रयोजनकी एकता, जो उसे वह योग देने में सक्षम बनायेगी, यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र सिद्ध की जाये। उसका खयाल है कि उसके इरादोंके सम्बन्धमें कुछ और बातें बता देना भी उस एकताको बढ़ावा देने में सहायक होगा।

गत अक्तूबरमें सम्राट्की सरकारने फिर स्पष्ट किया कि भारतमें उसका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है। उसने यह भी बताया था कि वह गवर्नर-जनरल की परिषद्का विस्तार करने का अधिकार देने को तैयार है, ताकि राजनीतिक दलोंके कुछ प्रतिनिधियोंका उसमें समावेश हो सके। क्योंकि उसका इरादा एक सलाहकार समितिकी स्थापनाका था। यह स्पष्ट था कि मेलजोल-भरे सहयोगका मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रान्तोंमें बड़े पक्षोंके बीच किसी हदतक सहमति स्थापित हो जाये, यह केन्द्रमें संयुक्त प्रयत्नोंकी एक वांछनीय शर्त है। दुर्भाग्यवश, ऐसी सहमति कायम नहीं हो सकी, और इसलिए उस समय कोई प्रगति सम्भव नहीं हुई।

वर्षके पूर्वभागमें मैंने राजनीतिक दलोंको एक साथ लाने का प्रयत्न जारी रखा। पिछले कुछ सप्ताहोंके दौरान मैंने ब्रिटिश भारतके प्रमुख राजनीतिक व्यक्तियों और नरेन्द्र-मण्डलके अध्यक्षके साथ फिर बातचीत चलाई, जिसके परिणाम सम्राट्की सरकारको सूचित कर दिये गये हैं। सम्राट्की सरकारने कांग्रेस कार्य-समिति, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा द्वारा पास किये गये प्रस्ताव भी देखे हैं।

स्पष्ट है कि पहलेके वे मतभेद जिनके कारण राष्ट्रीय एकता स्थापित नहीं हो पाई थी, आज भी कायम हैं। सम्राट्की सरकारको इसका बहुत अफसोस है, तथापि वह यह नहीं समझती कि इन मतभेदोंके कारण गवर्नर-जनरलकी परिषद्के विस्तारको और एक ऐसी समितिकी स्थापनाको और भी टाला जाये जो केन्द्रीय सरकार द्वारा युद्ध-प्रयत्नोंके संचालनमें भारतीय लोकमतको अधिक घनिष्ठतासे

१. देखिए पृ० ४१६ और ४५४-५८।

जोड़ेगी। इसलिए सम्राट्की सरकारने मुझे अधिकार दिया है कि मैं कुछ प्रतिनिधि-भारतीयोंको अपनी कार्यकारिणी परिषद्मे शामिल होने को आमन्त्रित करूँ। उसने मुझे यह अधिकार भी दिया है कि मैं एक युद्ध परामर्श-समितिकी स्थापना करूँ जिसकी बैठक बीच-बीचमे निश्चित समयपर हुआ करेगी और जिसमे भारतीय रियासतो और सम्पूर्ण भारतके राष्ट्रीय जीवनसे सम्बन्धित अन्य हितोंके प्रतिनिधि शामिल होंगे।

लेकिन जो बातचीत हुई है उससे, और अभी कतिपय सस्थाओके जिन प्रस्तावोका उल्लेख किया गया है उनसे, स्पष्ट हो जाता है कि भारतके सवैधानिक भविष्यके सम्बन्धमे सम्राट्की सरकारके इरादोके बारेमे कुछ हलकोमे अब भी कुछ शका है और इस सम्बन्धमे भी कुछ शका है कि हर सवैधानिक परिवर्तनके सन्दर्भ मे अल्पसख्यक समुदायोंकी, चाहे वे राजनीतिक अल्पसख्यक समुदाय हो या धार्मिक, स्थितिको पहले ही दिये जा चुके आश्वासन द्वारा पर्याप्त सरक्षण प्रदान कर दिया गया है। दो मुख्य मुद्दे सामने आये हैं। सम्राट्की सरकार चाहती है कि उनके सम्बन्धमे मैं उसकी स्थिति स्पष्ट कर दूं।

पहला मुद्दा हर भावी सवैधानिक योजनाके सन्दर्भमे अल्पसख्यक समुदायो की स्थितिसे सम्बन्ध रखता है। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि मेरी गत अक्तूबरकी घोषणामे १९३५ के अधिनियमके किसी भी हिस्से अथवा उसके आधार-रूप नीति और योजनाओकी छान-बीन करने का कोई वर्जन नही है। सम्राट्की सरकार को इसकी बड़ी चिन्ता है कि कोई भी सशोधन-परिवर्तन करते समय अल्पसख्यक समुदायोंके विचारोंका पूरा खयाल किया जाना चाहिए, यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है। सम्राट्की सरकारकी वह स्थिति आज भी कायम है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भारतमे शान्ति स्थापित रखने और उसकी भलाई करनेकी अपनी जिम्मेदारियोंको किसी भी ऐसी सरकारको सौपने की बात नही सोच सकती जिसकी सत्ताको भारतीय राष्ट्रीय जीवनके बड़े और शक्तिशाली तत्त्व प्रत्यक्ष रूपसे अस्वीकार करते हों। इसी प्रकार ऐसे तत्त्वोंको ऐसी किसी सरकारकी अधीनता मान लेने के लिए जबरदस्ती मजबूर करने के किसी भी प्रयत्नमे वह शरीक नही हो सकती।

दूसरा मुद्दा आम दिलचस्पीका है, जिसका सम्बन्ध समय आने पर ब्रिटिश राष्ट्रकुलके अन्तर्गत एक नई संवैधानिक योजना तैयार करने के साधनसे है। इस बातपर बहुत आग्रह किया जाता रहा है कि इस योजनाकी रचनाका काम मुख्यत भारतीयोके हाथोमे होना चाहिए, और उसे भारतीय जीवनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचेसे उद्भूत होना चाहिए। इस इच्छाके प्रति सम्राट्की सरकारकी सहानुभूति है, और वह चाहती है कि इस इच्छाको व्यवहारसे अधिक उतारा जाये, लेकिन साथ ही उन कर्त्तव्योंके निर्वाहका पूरा खयाल रखना है जो भारतके साथ ग्रेट ब्रिटेनके दीर्घ सम्बन्धोके कारण उसके सिर आ गये हैं और जिनके निर्वाह की जिम्मेदारीसे सम्राट्की सरकार अपनेको मुक्त नही कर सकती। यह स्पष्ट है कि एक ऐसी घड़ीमे, जब राष्ट्रकुल अपने अस्तित्वके सघर्षमे जूझ रहा है, बुनियादी संवैधानिक प्रश्न अन्तिम रूपसे नही निबटाये जा सकते। लेकिन सम्राट्की सरकारने

मुझे यह घोषणा करने का अधिकार दिया है कि युद्धकी समाप्तिके बाद वह भारतीय राष्ट्रीय जीवनके मुख्य तत्त्वोंकी एक ऐसी प्रातिनिधिक संस्थाकी यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र स्थापनापर अपनी सहमति सहर्ष दे देगी जिसका काम नये संविधानका ढाँचा तैयार करना होगा, और वह सभी प्रासंगिक मामलोंपर जल्दीसे-जल्दी निर्णय कराने में अपनी शक्ति-भर पूरी मदद देगी। इस बीच स्वयं प्रतिनिधि भारतीय एक तो युद्धोत्तर प्रातिनिधिक संस्थाके स्वरूपके बारेमें और वह जिन तरीकोंसे अपने निष्कर्षों पर पहुँचेगी उनके सम्बन्धमें, तथा दूसरे, स्वयं संविधानके सिद्धान्तों और रूपरेखाके बारेमें मैत्रीपूर्ण सहमतिका आधार तैयार करने के लिए जो भी ईमानदाराना और व्यावहारिक कदम उठायेंगे उसका सम्राट्की सरकार स्वागत करेगी और उसमें हर सम्भव तरीकेसे सहायता देगी। लेकिन उसका विश्वास है कि जबतक लड़ाई चल रही है तबतक तो सभी पक्ष, समुदाय और हित (जैसा मैंने बताया है उस ढंगसे पुनर्गठित कर दी गई और सुदृढ़ बना दी गई केन्द्रीय सरकार तथा युद्ध परामर्श-समितिकी सहायतासे) एकजुट होकर सहयोग करेंगे, जिससे आज दाँवपर लगे विश्वहितको विजयी बनाने में भारत उल्लेखनीय योगदान कर सके। इसके अलावा, वह आशा करती है कि इस प्रक्रियामें एकता और आपसी समझके नये सूत्र कायम होंगे, और इस प्रकार भारत द्वारा ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें वह स्वतन्त्र और समान साझेदारीकी प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त होगा जो आज भी सम्राट् और ब्रिटिश संसदका घोषित और स्वीकृत लक्ष्य है।

मुद्रित अंग्रेजी प्रतिसे. लॉर्ड लिनलिथगो पेपर्स। माइक्रोफिल्म नं० १०९, भाग २, मद सं० १३७। सौजन्य. राष्ट्रीय अभिलेखागार

परिशिष्ट ८

कांग्रेस कार्य-समितिकी वर्धाकी बैठकमें पास किया गया प्रस्ताव[1]

२१ अगस्त, १९४०

ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये अधिकारके आधारपर ८ अगस्तको वाइसराय द्वारा जारी किये गये वक्तव्य और वाइसरायके वक्तव्यको स्पष्ट करते हुए कॉमन्स सभामें भारत-मन्त्री द्वारा दिये गये भाषणके विवरणको कार्य-समितिने पढ़ा है। उसने बड़े दुःखके साथ लक्ष्य किया है कि गतिरोधको दूर करने और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके लिए अपना असहयोग वापस लेने का रास्ता खोलने तथा इस संकटकी घड़ीमें भारतके शासन तथा राष्ट्रीय प्रतिरक्षाके संगठनमें भारतके सभी लोगोंका देशभक्तिपूर्ण सहयोग प्राप्त करने के निमित्त पास किये गये २८ जुलाईके अ० भा० कांग्रेस कमेटीके पूना-प्रस्तावमें की गई दोस्ताना पेशकश और उसमें दिये गये व्यावहारिक सुझावको ब्रिटिश सरकारने अस्वीकार कर दिया है।

१. देखिए पृ० ४५४-५८।

कार्य-समितिने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे दिये गये उन वक्तव्यो और भाषणोमें निहित घोषणा और दावोको गहरे दुःख और क्षोभके साथ पढ़ा है जिनमे भारतके पूर्ण राष्ट्रीय स्वराज्यके स्वाभाविक अधिकारको अस्वीकार करने का प्रयत्न किया गया है और इस दावेको, जिसे किसी भी प्रकार उचित नही सिद्ध किया जा सकता है, दुहराया गया है कि राज्यके उच्चतर कार्योंके सचालनमे ब्रिटेनको भारतमे अपनी प्रभुत्वपूर्ण स्थिति कायम रखनी चाहिए। ये दावे खुद उसके इस वादेको झूठा और खोखला सावित कर देते हैं कि वह भारतको शीघ्र ही ब्रिटिश राष्ट्रकुलकी एक स्वतन्त्र और बरावरीकी इकाईके रूपमे मान्य करनेवाली है। ऐसे दावो तथा विश्वकी हाल को घटनाओ और परिस्थितियोसे समितिके इस विश्वासकी पुष्टि हुई है कि भारत साम्राज्यवादी शक्तिके दायरेमे काम नही कर सकता और उसे स्वतन्त्र और स्वाधीन राष्ट्रका दर्जा प्राप्त करना ही है। इसका मतलब यह नही कि विश्व-शान्तिके निमित्त वह स्वतन्त्र राष्ट्रोके समूहके अन्दरके अन्य देशोसे निकट सम्बन्ध नही कायम कर सकता।

ब्रिटिश सरकारकी ओरसे दिये गये वक्तव्योमे यह आग्रह निहित है कि वह भारतकी जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोको सत्ता और दायित्व नही सौंपेगी और इसलिए वर्त्तमान निरकुश और अनुत्तरदायी शासन-प्रणाली तवतक कायम रहेगी जबतक कि जनताका कोई भी हिस्सा और रियासती जनतासे भिन्न देशी नरेश या शायद विदेशी निहित हित भी भारतीय जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा बनाये गये सविधानपर आपत्ति करेंगे। कार्य-समितिकी राय है कि इस आग्रहका मतलब लोगो के बीच वैमनस्य और सघर्षको प्रत्यक्ष रूपसे बढ़ावा और प्रोत्साहन देना है और उसके फलस्वरूप विभिन्न माँगोके बीच समझौता और सामजस्य स्थापित करने की इच्छाको घातक चोट पहुँची है।

समितिको इस बातका दु.ख है कि यद्यपि उसने किसी भी अल्पसख्यक समुदाय के साथ जवरदस्ती करने की बात कभी सोची तक नही — और ब्रिटिश सरकारसे वैसा करने को कहने का तो कोई सवाल ही नही उठता — तथापि विधिवत् निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी सविधान-सभाके माध्यमसे सविधानके प्रश्नके निबटारे की माँगको गलत ढगसे जबरदस्तीके तरीके के रूपमें पेश किया गया है और अल्पसख्यकोके प्रश्नको भारतकी प्रगतिके मार्गमें एक अलघ्य दीवार बना दिया गया है। काग्रेसने यह प्रस्ताव किया है कि सम्बन्धित अल्पसख्यक समुदायोके निर्वाचित प्रतिनिधियोसे समझौता करके अल्पसख्यकोंके अधिकारोंको यथेष्ट सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इसलिए कार्य-समिति वरवस इसी निष्कर्षपर पहुँचती है कि ब्रिटिश सरकारकी ओरसे दिये गये इन वक्तव्योंमे निहित रुख और दावे आम तौरपर व्याप्त इस भावनाकी पुष्टि करते हैं कि ब्रिटिश सत्ताधारी वरावर इस ढगसे काम करते रहे हैं जिससे भारतीय राष्ट्रीय जीवनमे विभेद उत्पन्न हो, कायम रहे और बढ़े।

कार्य-समिति इस बातपर आश्चर्य प्रकट करती है कि १९१९ के भारतीय सविधानके अनुसार गठित वर्त्तमान केन्द्रीय विधान-मण्डलके विभिन्न निर्वाचित समूहो के विश्वासके भाजन लोगोंकी एक कामचलाऊ राष्ट्रीय सरकार बनाने की माँगको भारत-

मन्त्रीने ऐसी माँग बताया जो ऐसा सवैधानिक सवाल खड़ा कर देगी जिसका हल नहीं निकल पाया है और उसे ऐसा रुझान दे देगी जो बहुसंख्यकोंके अनुकूल और अल्पसंख्यकोंके विरुद्ध होगा। कार्य-समितिकी राय है कि इस प्रस्तावकी अस्वीकृतिसे स्पष्ट संकेत मिलता है कि जो बात स्वीकार करने से भारतकी जनताके लोकतान्त्रिक ढंगसे अपना शासन आप चलाने के अधिकारोंके मान्य किये जाने की दिशामें कुछ सहायता मिलती हो वैसी कोई बात स्वीकार करने के बजाय ब्रिटिश सरकार भारतकी जनताके बहुसंख्यक भागकी इच्छाओंका विरोध करनेवाले विमत समूहों और व्यक्तियों-को इकट्ठा करके उन्हींसे सरोकार रखना और केन्द्र या प्रान्तोंके निर्वाचित विधान-मण्डलोंसे कोई तालमेल न रखना अधिक पसन्द करेगी।

इन कारणोंसे कार्य-समिति इस निष्कर्षपर पहुँची है कि उपर्युक्त वक्तव्य न केवल लोकतन्त्रके उस सिद्धान्तके विरुद्ध है जिसका कि ब्रिटिश सरकार युद्धके सिलसिलेमें जय-जयकार कर रही है, बल्कि वे भारतके सच्चे हितोंके भी खिलाफ है, और कार्य-समिति उन वक्तव्योंमें निहित प्रस्तावोंकी स्वीकृतिमें या देशको उसे स्वीकार करने की सलाह देने मे साझेदार नहीं हो सकती। कार्य-समितिका विचार है कि ये घोषणाएँ और प्रस्ताव न केवल कांग्रेसकी माँगको देखते हुए बहुत कम है, बल्कि वे स्वतन्त्र और ऐक्यबद्ध भारतके विकासमें बाधक भी होंगे।

कार्य-समिति जनताका आह्वान करती है कि वह सार्वजनिक सभाएँ करके तथा अन्य प्रकारसे और साथ ही प्रान्तीय विधान-मण्डलोंके अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों-के माध्यमसे भी ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाये गये रुखकी भर्त्सना करे।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४०, जिल्द २, पृ० १९६-९७

सामग्रीके साधन-सूत्र

'इंडियन एनुअल रजिस्टर, १९४०', जिल्द २ (अंग्रेजी) स० नृपेन्द्रनाथ मित्र, द एनुअल रजिस्टर ऑफिस, कलकत्ता।

'गांधीजी और राजस्थान'. स० शोभालाल गुप्त, राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, भीलवाडा, राजस्थान, १९६९।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद' स० द० बा० कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

प्यारेलाल पेपर्स : श्री प्यारेलाल (नई दिल्ली)के यहाँ उपलब्ध प्रलेख।

'बापुना पत्रो–२. सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) स० मणिबहेन पटेल; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुना पत्रो–४ मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) स० मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६०।

'बापूकी छायामे' बलवन्तसिंह, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष'· हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम, इलाहाबाद, १९५७।

'बापू——मैंने क्या देखा क्या समझा?' रामनारायण चौधरी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५४।

'महात्मा लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ५ (अंग्रेजी) डी० जी० तेंडुलकर, विट्ठलभाई के० झवेरी और डी० जी० तेंडुलकर, ६४, वालकेश्वर रोड, बम्बई।

महादेवभाईकी हस्तलिखित डायरी स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमे सुरक्षित।

'मौलाना अबुल कलाम आजाद' (अंग्रेजी) महादेव देसाई, जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन लिमिटेड, ४० म्यूजियम स्ट्रीट, लन्दन, १९४१।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

'लेटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री' (अंग्रेजी) स० टी० एन० जगदीशन्, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९६३।

'सर्वोदय'. वर्धासे प्रकाशित हिन्दी/गुजराती मासिक पत्रिका।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद पुस्तकालय तथा गांधीजी से सम्बन्धित प्रलेखोका संग्रहालय।

'हरिजन'. (१९३३-५६) हरिजन सेवक संघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। प्रथम प्रकाशन ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे; २७ अक्तूबर, १९३३ को

मद्रास स्थानान्तरित, १३ अप्रैल, १९३५ को पुन: पूना स्थानान्तरित, बादमें अहमदाबादसे प्रकाशित।

'हरिजनबन्धु' (१९३३-५६) हरिजन सेवक संघके तत्त्वावधानमें प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक, प्रथम प्रकाशन १२ मार्च, १९३३ को पूनामें।

'हरिजनसेवक' (१९३३-५६) हरिजन सेवक संघके तत्त्वावधानमें प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक, प्रथम प्रकाशन २३ फरवरी, १९३३ को नई दिल्लीमें।

'हितवाद' नागपुरसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१६ अप्रैल – ११ सितम्बर, १९४०)

१६ अप्रैल: सेवाग्राम। गांधीजी वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

१७ अप्रैल : वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए। जवाहरलाल नेहरूसे बातचीत की।

२० अप्रैल: मौलाना आजादके साथ बातचीत की।

२४ अप्रैल : क० मा० मुंशी गांधीजी से मिलने आये।

३ मई : गांधीजी अ० भा० शिक्षा परिषद्में शामिल हुए। कांग्रेस स्वयंसेवक दलके बारेमें आर० एस० पण्डितसे बातचीत की।

९ मई : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' को दी गई भेंटमें कहा कि शान्ति और सम्मानको सुनिश्चित करनेवाले किसी भी समाधानका वे स्वागत करेंगे।

१६ मई लाल कुर्तीवालों के शिष्टमण्डलको मुलाकात दी, उस समय जवाहरलाल नेहरू भी उपस्थित थे।

१७ मई : गांधीजी ने जवाहरलाल नेहरूसे बातचीत की।

१८ मई . 'मौलाना अबुल कलाम आजाद' की प्रस्तावना लिखी।

२४ मई : साढ़े सात बजे सुबहसे अनिश्चित कालका मौन लिया। एसोसिएटेड प्रेसको दी गई मुलाकातमें कॉमन्स सभामें एमरीके वक्तव्यपर टिप्पणी करने से इनकार किया।

२ जून : आश्रममें एक कलम और कुछ पत्रोंकी चोरी हुई।

३ जून : गांधीजी ने घोषणा की कि यदि चोरीका पता न चला तो वे ८ जूनसे अनशन करेंगे।

८ जून : सभी आश्रमवासियोंके विरोधके कारण प्रस्तावित उपवास रद्द कर दिया।

१७-१९ जून : वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकोंमें शामिल हुए।

२० जून . सेवाग्राम। सुबह मौलाना आजाद मिलने आये। गांधीजी ने सुभाषचन्द्र बोससे बातचीत की।

२१ जून . गांधी सेवा संघ और चरखा संघ, वर्धाकी संयुक्त बैठकमें शामिल हुए। कांग्रेस कार्य-समितिने कांग्रेसके भावी कार्यक्रम और नीतियोंकी जिम्मेदारीसे गांधीजी को मुक्त करते हुए प्रस्ताव पास किया।

२२ जून वर्धामें गांधी सेवा संघ और चरखा संघकी संयुक्त बैठकमें गांधीजी ने भाषण दिया।

पट्टाभि सीतारामय्या, राजगोपालाचारी, राजेन्द्रप्रसाद और जमनालाल बजाज से लम्बी बातचीत की।

२७ जून जमनालाल बजाज, महादेव देसाई, प्यारेलाल आदिके साथ शिमला जाते हुए दिल्लीके लिए प्रस्थान किया।

२८ जून दिल्ली पहुँचे।
आसफअलीसे बातचीत की।
शिमलाके लिए रवाना हुए।

२९ जून शिमलामें वाइसरायसे मिले।
नई दिल्ली रवाना।

३० जून नई दिल्ली।
हरिजन बस्तीकी प्रार्थना-सभामें शरीक हुए।

२ जुलाई सभी अंग्रेजोंके नाम अहिंसक अस्त्रसे नाजीवादका मुकाबला करने की अपील जारी की।

३ जुलाई विशेष निमन्त्रणपर कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए और समितिको वाइसरायसे अपनी मुलाकातके बारेमें बताया।

४ और ५ जुलाई कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकोंमें शामिल हुए।

६ जुलाई कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शरीक हुए।
अणेके साथ राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें बातचीत की।

७ जुलाई कांग्रेस कार्य-समितिने इस आशयका प्रस्ताव पास किया कि ब्रिटेन भारतको पूर्ण स्वराज्य देने की तत्काल स्पष्ट घोषणा करे।
गांधीजी चरखा क्लब देखने गये।
नई दिल्लीसे वर्धाके लिए रवाना।

८ जुलाई वर्धा पहुँचे और वहाँसे सेवाग्राम गये। अपने सभी लेखोंके अनुवादोंपर स्वत्वाधिकारकी घोषणा की।

१० जुलाई राजगोपालाचारीसे बातचीत की।

१३ जुलाई वर्धामें जमनालाल बजाजकी सबसे छोटी पुत्री उमाकी शादीमें शरीक हुए।

२० जुलाई गांधीजी को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए राजी करने के लिए एमिली किनेर्ड उनसे मिली।

२१ जुलाई पण्डित कुँजरूसे गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई। कोदण्डराव गांधीजी से मिले।

२३ जुलाई डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष गांधीजी से मिले।

२४ जुलाई मौलाना आजाद, राजेन्द्रप्रसाद और प्रफुल्लचन्द्र घोषसे गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई।

३० जुलाई राजगोपालाचारी, प्रफुल्लचन्द्र घोष और गोपीनाथ बारदलई गांधीजी से मिले।

१ अगस्त राजगोपालाचारीसे गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई।

२ अगस्त प्रातःकाल मौलाना आजाद गांधीजी से मिले।

१० अगस्त जयपुरके मामलेके बारेमें जमनालाल बजाजसे गांधीजी की बातचीत हुई।

१७ अगस्त : मौलाना आजाद बातचीतके लिए पहुँचे।

१८ अगस्त मौलाना आजादसे गांधीजी की लम्बी बातचीत हुई। गांधीजीने वर्धामें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

१९ अगस्त . वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमे शामिल हुए।

२० अगस्त . वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी तीसरे पहरकी बैठकमें शामिल हुए।

२१ अगस्त . वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी तीसरे पहरकी बैठकमे शामिल हुए।

२२ अगस्त : वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी तीसरे पहरकी बैठकमे शामिल हुए।

२३ अगस्त . सरदार पटेल, नेहरू और आजाद गांधीजी से मिले।

२४ अगस्त : गांधीजी ने प्रातःकाल मौलाना आजादसे बातचीत की। बादमे अन्य कांग्रेसी नेता भी पहुँचे। गांधीजी वर्धामे राष्ट्रीय आयोजना समितिकी बैठकमें शरीक हुए।

२५ अगस्त : कांग्रेसी नेताओंसे बातचीत करने वर्धा गये।

२ सितम्बर : वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमे शामिल हुए।

६ सितम्बर : सेवाग्राम : दाक्षायणी और वेलायुधनके विवाहमे शामिल हुए।

१० सितम्बर : सैयद महमूद और अब्दुल गफ्फारखां गांधीजी से मिलने पहुँचे।

११ सितम्बर गांधीजी अब्दुल गफ्फारखांसे मिले।

कस्तूरबा, अब्दुल गफ्फारखां और सैयद महमूदके साथ बम्बई रवाना हुए।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ऋ

ए

ओ

औ

क

ख

थ

द

ध

न

म

य

र

ल

व

श

स

ह